तीर्थ - १

नास्ति श्रद्धासमं पुण्यं नास्ति श्रद्धासमं सुखम् । नास्ति श्रद्धासमं तीर्थं संसारे प्राणिनां नृप ।।

(पद्मपु० भूमि०३९/१२५)

तीर्थयात्रा महापुण्या सर्वपापप्रमोचनी । अश्वमेधशतास्याग्र्यं फलं प्रेत्य स भोक्ष्यति ।।

(म० भा० वन ८५/११४)

तीर्थ शब्द का उच्चारण करते ही मन संकीर्णता से ऊपर उठकर स्वान्त:सुख का अनुभव करने लगता है । वैदिक सनातन धर्म की व्यवस्था, वर्ण-आश्रम और इनके विधि-विधानों को लेकर सामान्य और विशेष दो भागों में बँटी है । विशेषधर्म विशेष काल, ऋतु, समय पर सम्पन्न किये जाते हैं । इसमें सभी का भाग लेना आवश्यक नहीं है । सामान्य धर्म अधिक से अधिक लोगों द्वारा पालनीय हैं । धर्मसूत्रों के अनुसार सामान्य धर्म में मुख्य निम्नलिखित बातें आती है -

क्षमा, सत्य, दम (मानस संयम), शौच, दान, इन्द्रिय-संयम, अहिंसा, गुरुशुश्रूषा, तीर्थ-यात्रा, आर्जव (सरलता), लोभशून्यता, देव-ब्राह्मण पूजन, अनभ्यसूया (ईर्ष्या का अभाव) -

क्षमा सत्यं दमः शौचं दानमिन्द्रियसंयमः । अहिंसा गुरुशुश्रूषा तीर्थानुसरणं दया ।।
आर्जवं लोभशून्यत्वं देवब्राह्मणपूजनम् । अनभ्यसूया च तथा धर्मः सामान्य उच्चते ।।

(विष्णुधर्मसूत्र २/१६-१७)

उपर्युक्त सूची में आये हुए शब्द-व्यक्ति, अन्त:करण और समाज में आयी हुई गन्दगी को साफ कर साधक की आत्मभाव की ओर प्रवृत्ति को बताते हैं । सामान्य धर्म को हम सामाजिक और राष्ट्रिय धर्म भी कह सकते हैं- समाज इससे प्राण शक्ति प्राप्त करता है । ऊपर कहे गये शब्दों में एक शब्द दूसरे शब्द की पूर्ति नहीं करता, परन्तु तीर्थयात्रा शब्द में उपर्युक्त सभी शब्दों का तात्पर्य आ जाता है। तीर्थयात्रा की दृष्टि एक विशेष दृष्टि है, जिसे समझने के लिये शास्त्रीय विचारों के अतिरिक्त हमारी अपनी योग्यता का होना भी आवश्यक है । सभी धर्मों में तीर्थयात्रा और तीर्थयात्रियों को एक महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है और वर्तमान में भी विश्व के सभी धर्मों में तीर्थ और तीर्थयात्रा के स्थलों की सुरक्षा राष्ट्र सुरक्षा की तरह महत्त्वपूर्ण स्थान पा चुकी है । आज भी ये स्थान सबसे अधिक संवेदनशील स्थान माने जाते हैं । इनकी सुरक्षा और पवित्रता को बनाये रखना राष्ट्र और समाज दोनों का साझा कर्तव्य है।

राष्ट्र विप्लव के समय सभी कुछ छिन्न-भिन्न हो जाता है । देश के साथ ही धर्म, दर्शन, संस्कृति और इसके अंगभूत- क्षमा, सत्य, दम, शौचाचार, दान, इन्द्रियसंयम, अहिंसा, गुरुभाव, दया, सरलता, लोभशून्यता, देवभावना, अतिथिसत्कार, ईर्ष्या से मुक्ति- जैसे शब्द कपूर की तरह गायब हो जाते हैं । हमारे पास फिर से इनकी खेती के लिये बीज भी नहीं रहता । विश्व इतिहास में अव्यवस्था के ताण्डव का ऐसा कोहरा कई दशक और शताब्दियों तक भी छाया हुआ दिखता है, हमलों और

आक्रमणों के असर से तीर्थ स्थान भी अछूते नहीं रहे हैं, तीर्थ ही नहीं इन आक्रमणों से कई राष्ट्रों की जनता का और उनकी परम्परा का सफाया हो गया, एक हजार वर्षों में विश्व की अधिकांश संख्या की परम्परा के धर्म, दर्शन, भाषा, रीति, रिवाज भी पूरी तरह से बदल दिये गये, भारतवर्ष पर अनन्त आक्रमण और अत्याचार होने पर भी धातु-प्रकृति-प्रत्यय से सम्पन्न, अपरिवर्तनीय संस्कृत भाषा के कारण परिवर्तन नहीं हो पाया, संस्कृत भाषा और तीर्थों के कारण ही भारतवर्ष की महान् परम्परा सुरक्षित है । जलकर, भस्म होकर, खण्डहर में बदलकर भी अंकुरित होकर व्यक्ति और समाज के पोषक तत्त्वों की लहलहाती फसल देना तीर्थों का स्वभाव रहा है । इसीलिये प्राचीन काल में आततायियों के सैनिक अभियानों का मुख्य केन्द्र तीर्थ स्थान, धार्मिक स्थल, धार्मिक प्रतीक ही हुआ करते थे । वे जानते थे कि राष्ट्र की मजबूती के आधार तीर्थ और इसके प्रतीक स्थल ही हैं । तीर्थों को, धार्मिक मर्यादा स्थानों को तहस-नहस, विध्वंस करने के ये अवगुण लोगों में आज भी देखे जाते हैं । संगठित गिरोह धर्म और धार्मिकता की आड़ में राष्ट्रीय अस्मिता को हिलाने के लिये इन स्थानों को अपना निशाना बनाते हैं । ऐसे निन्दनीय कर्म सभ्य-समाज का अंधेरा पक्ष है ।

वैदिक और पौराणिक काल का भारतवर्ष बहुत व्यापक विस्तार वाला था । सूर्योदय से सूर्यास्त तक का भूमण्डल उसमें समा जाता था । इसके प्रतीक चिह्न आज भी दुनिया के बहुत बड़े हिस्से में पाये जाते हैं । भारतीय धर्म, दर्शन, संस्कृति और संस्कृत भाषा की गहराई, विस्तार के प्रतीक चिह्नों, मानव की समृद्धि के आधार तीर्थ स्थान ही रहे हैं । इस बात को आज के परिप्रेक्ष्य में विभाजित भारत, अविभाजित भारत और धर्म-संस्कृति के प्रतीकों की दूरगामी यात्राओं और मुख्यरूप से संस्कृत भाषा की विश्वयात्रा द्वारा समझा जा सकता है । विश्व की सभी भाषाओं की यात्रा, विवेचना संस्कृत भाषा को अलग कर नहीं समझी जा सकती । ऋषि, मुनियों की वैदिक वाणी यदि कहीं प्रकट हुई है तो यह वाणी दीर्घकालीन यात्राओं के बाद कालान्तर में प्रतीकात्मक चिह्न और तीर्थों में बदल जाती हैं । यदि वैदिक सनातन धर्म के विचार पवित्र नदियों- गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु, कावेरी, पवित्र तीर्थ स्थान- मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, प्रयाग में हजारों-लाखों वर्ष की सतत साधना से उपजे हैं तो निश्चित रूप से ये विचार भूत, भौतिक, जगत् की रक्षा के लिये, मनुष्य, प्राणी और प्रकृति के वर्धापन के लिये ही उपजे होंगे, यह अकाट्य और निर्विवाद सत्य है । इसीलिये भारत के योद्धाओं की, राजाओं की यात्रा विश्वविजय के लिये न होकर धर्म प्राप्ति के लिये रही है, सनातन परम्परा में वैदिक ऋषि राजा बनते हुए नहीं दिखते हैं अपितु चक्रवर्ती विश्वामित्र, महाराजा जह्नु (गङ्गा जी के पिता) आदि सम्राट् ऋषि बनते हुए पाये जाते हैं । महाभारत काल के सम्राट् धृतराष्ट्र, गांधारी वानप्रस्थी होकर अग्नि में समा जाते हैं और पांचों पाण्डव सपत्नीक राज्य छोड़कर स्वर्गारोहण में बर्फ में गल जाते हैं - ऐसा उदात्त और वीर हृदय तीर्थ स्थान ही पैदा कर सकते हैं ।

यह आवश्यक नहीं है कि भौतिक दृश्य ही तीर्थ हों । तीर्थों के विचार पर शास्त्रों में बहुत से

दृष्टिकोण प्राप्त होते हैं । अमुकतीर्थ शास्त्र में लिखा है या नहीं, लिखा है तो कहाँ है, दिखता क्यों नहीं है, इसी तरह के विचार व्रत और पर्वों में भी पैदा होते हैं - इनका प्रामाणीकरण हो ऐसा सनातन परम्परा में आवश्यक नहीं है । तीर्थों का मुख्य आशय मन की निर्मलता द्वारा शरीर को देवमय बनाना और वातावरण को शुद्ध रखना है । उपर्युक्त कहे गये सामान्य धर्म और श्रीमद्भगवद्गीता के सोलहवें अध्याय में कही गयी दैवी संपत्ति उस तीर्थ और तीर्थवासियों की जीवनपद्धति बन जाती है । दैवी गुणों से सम्पन्न हम सभी ऐसे स्थानों से तादात्म्य का अनुभव करने लग जाते हैं, चाहे वह तीर्थ स्थान किसी स्वधर्मी का हो या विधर्मी का यह भेद सनातन दृष्टि द्वारा समाप्त हो जाता है ।

तीर्थ सम्पत्तिः दैवीय गुण -

१- अभय- भय का सर्वथा अभाव (आत्मबल), २- सत्त्वसंशुद्धि- मन, वाणी कर्म की पूर्ण निर्मलता, ३- ज्ञानयोगव्यवस्थिति - परमात्मा के स्वरूप में एक भाव से एकाग्रता, ४- दान - वस्तु पर से अपना अधिकार छोड़ देना, ५-दम- इन्द्रियों पर नियंत्रण, ६- यज्ञ - उत्तम कर्मों का आचरण, ७- स्वाध्याय- सत्साहित्य का पठन-पाठन, ८- तप-कष्टसहन, ९- आर्जव - सरलता, १०- अहिंसा - किसी भी प्राणी को कष्ट न देना, ११- सत्य - अप्रिय और असत्य से रहित यथार्थवचन, १२- अक्रोध- दूसरों से अपमानित होकर भी शान्त रहना, १३- त्याग - आत्म कल्याण के लिये संसार से दूरी (संन्यास), १४- शान्ति - मन का संकल्प रहित होना, १५- अपैशुन - दूसरों के सामने किसी के अवगुणों को प्रकट न करना या चुगलखोरी न करना, १६- दया - दुःखी प्राणियों के कष्टों को दूर करना, १७- अलोलुपता - आसक्ति का न होना, १८- मार्दव - व्यवहार में कोमलता, १९- ह्री - समाज और शास्त्र के नियमों को तोड़ने में शर्म आना, २०- अचपलता - बन्दर की तरह स्वभाव का न होना, स्थिरता होना, २१- तेज - तेजस्विता, निर्णय लेने की क्षमता, मानसिक स्थिरता, २२- क्षमा- किसी नुकसान के होने पर भी अन्तःकरण में कुविचार न लाना, २३- धृति - शरीर और इन्द्रियों में थकावट उत्पन्न होने पर, उस थकावट को हटाने वाली अन्तःकरण की स्थिर वृत्ति का नाम धृति है, इस वृत्ति की साधना से मनुष्य शारीरिक (Physical) और मानसिक (Mental) थकान का अनुभव नहीं करता है और सदा स्वस्थ रहकर कार्य में लगा रहता है । धृति का दूसरा अर्थ पतन का अभाव भी है । पतन के अभाव से तात्पर्य, अपने संकल्प और मार्ग से न हटकर ध्येय को पूरा करना । २४- शौच - शरीर और मन की शुद्धता, २५- अद्रोह - दूसरे पर घात न करना, २६- नातिमानिता- अत्यन्तमान का नाम अतिमान है अर्थात् अपने में सबसे श्रेष्ठता की भावना का न होना - इन गुणों और अन्य योग्यता का होना दैवीय गुण से युक्त होने की निशानी है और तीर्थवास, तीर्थवासना इसकी उपजाऊ भूमि है।

प्रकृति और राष्ट्र विप्लव के समय यदि कालक्रम और परिस्थियों के कारण मनुष्यों में ये दैवीय गुण व्यक्ति या समाज से लुप्त हो जाते हैं तो तीर्थस्थली में ये गुण १. विधिपरम्परा - अच्छे कार्यो का आदेश और २. निषेध- निन्दित कर्मो को न करना, जिसमें निन्दनीय धार्मिक अनुष्ठान और धार्मिक

स्थल पर पशुबलि को न करना जैसे अहिंसा के सिद्धान्तों का पालन भी आता है- ऐसी व्यवस्था तीर्थ स्थानों में ही सुरक्षित रह सकती है और समाज फिर से इन ऊँचे विचारों को प्राप्त कर सकता है और विश्व इतिहास में प्राप्त भी किया है, इसीलिये तीर्थों, देवालय और धार्मिक स्थानों के नष्ट होने पर भी ये ऊँचे शास्त्रीय विचारों के कारण पुन: उत्पन्न होकर समृद्धि को प्राप्त होने लगते हैं । तीर्थ और तीर्थों में उत्पन्न होने वाली शास्त्रीय वृत्तियाँ के समान्तर माना जा सकता है, ये एक दूसरे के पूरक हैं ।

सभी तीर्थ स्थान धर्म स्थान हैं, जहाँ विचार और आचार का संयोग पहली अनिवार्यता है, धर्म में विचार और आचार का संयोग अत्यन्त आवश्यक है । वैसे विश्व के सभी धर्मों में विचार और आचार दोनों पर्याप्त रूप से प्राप्त होते हैं, किन्तु विचारों को आचार, व्यवहार में परिणित करना हिन्दूधर्म की मौलिक विशेषता है आचार-विचार-व्यवहार के सन्तुलन और असन्तुलन के कारण ही सनातन धर्म के पलड़े कभी नीचे आते हैं कभी ऊँचे उठते हैं । सूत जी ऋषि-मुनि के सामने ऊँचे आसन पर बैठते हैं। सदाचार की शून्यता किसी धर्म को मृत स्वीकार करती है । धर्म को लेकर समाज में यह मूढदृष्टि बन गयी है कि धर्म केवल हमारे परलोक का रास्ता तैयार करेगा, इहलोक इस दुनिया को तो हम रुपया-पैसा, राजनीति, कूटनीति, ताकत और तिकड़म से बना लेंगे । ऐसी धर्म दृष्टि की वैदिक सनातन धर्म में कहीं भी जगह नहीं है । हिन्दूधर्म इहलोक और परलोक के आचार में भेद नहीं करता है, दोनों मार्गों में एक ही सत्य को स्वीकार किया गया है । इसीलिये हिन्दूधर्म विश्व में पूरी तरह स्वीकार करने योग्य या पूरी तरह ठुकराने योग्य बन गया है, क्योंकि आचार और व्यवहार में अशुद्धता, मिलावट हिन्दू धर्म को स्वीकार नहीं है और इस धर्म में धर्म के मूल्यों के साथ समझौते की कोई गुंजाइश नहीं है ।

यहाँ तक ईश्वर में आस्था रखने वालों में भी एक-दूसरे के प्रति ईर्ष्या-द्वेष देखा जाता है । एक दूसरे के धर्म स्थान और धर्म भाव को धूल में मिलाना गौरव की बात बन गयी है । शास्त्रकारों ने भिन्न-भिन्न विश्वास, आस्था, तीर्थों में देवधारणा को एक साथ बांधने का और आपस में सामञ्जस्य बैठाने का बहुत परिश्रम किया है । परन्तु व्यावहारिक रूप से अधिक सफलता नहीं मिली । इसके मूल में कारण है- लोगों की भेद में आस्था और अभेद अद्वैत में आकर्षण का न होना । गीता और धर्मशास्त्रादि का प्रथम उद्देश्य दु:ख संयोग का वियोग ही है । शास्त्रों के सभी प्रसंगों में दु:ख संयोग का कारण कामना और कामनाओं का कारण अविचार और अनाचार है । अनाचार-व्यक्ति और समाज में दु:ख पैदा करता है और सदाचार-सामञ्जस्य, शान्ति और सुख देता है, तीर्थ स्थान इन विचारों की जीती-जागती क्रियाशील पाठशाला है या तो इसमें प्रवेश लें या न लें ।

हिन्दूधर्म व्यावहारिक धर्म है, इसे ऐसी निरर्थक कल्पना से नहीं भरा गया है कि यह अन्य धर्मों की तरह अजीबो-गरीब चीज बन कर रह जाये और धर्म के अस्तित्त्व को ही समाप्त कर दे, व्यवहार का हिस्सा भी न बन सके और डरावना रूप ले ले । इसमें असम्भव और अविचारित ढोंगी आदर्श के लिये कोई जगह नहीं है । बहुदेव में एक देव की शक्ति का विचार हमारे तीर्थों की मुख्य अवधारणा

है । शास्त्रकारों ने सदाचार का लक्षण 'विचाराचारसंयोग: सदाचार:' किया गया है । यह सदाचार ही धार्मिकता की रीढ है । गीता आदि के सामान्य धर्म सदाचार के द्वारा मानव जीवन को सभी के अनुकूल और हितकर बनाने का मार्ग दिखाते हैं, तीर्थों में ही ये विचार उच्चता को प्राप्त हो सकते हैं ।

धर्म और धर्मस्थल अनेक बाधाओं से निकलते रहे हैं, इन बाधाओं को सफलता-पूर्वक पारकर जो धर्म निकल जाता है वह धर्म उतना ही जीवित माना जाता है- वैदिक धर्म इसी कारण से सनातन धर्म कहा गया है, क्योंकि इसने अपने प्रवाह को विश्व के अन्य धर्मों की अपेक्षा बहुत शुद्ध, लचीला और सुरक्षित रखा है । लाखों वर्ष पुरानी वेदों के संरक्षण की कष्ट साध्य जटिल पद्धति-अष्टविकृति आदि के द्वारा वेदों के स्वरूप को आज भी यथावत् बनाये रखा गया है, यह विश्व की वेदों की तरह ही सबसे प्राचीन वेद संरक्षण की परिपाटी है जो मनुष्यों के परिश्रम द्वारा हजारों, लाखों वर्षों से आज भी सुरक्षित रखी जा रही है शायद यह विश्व की सबसे प्राचीन पद्धति है । यह धर्म में, तीर्थों में, ऋषिदृष्टि में दृढ श्रद्धा और विश्वास के कारण ही सम्भव हो सकता है। बहुत बड़े आश्चर्य की बात है कि इस विचार से प्राचीन धर्मग्रन्थ 'अवेस्ता' की अव्यवस्था की तुलना की जा सकती है । जो अत्याचार परसियों पर हुये उसी तरह से अत्याचार भारतीय परम्परा पर भी किये गये हैं परन्तु सनातनी वैदिक दृष्टि ने विश्व की सबसे प्राचीन वैदिक सम्पत्ति को यथावत् रूप से बचा लिया । व्यक्ति चाहे जितना भी पाँच-दस हजार साल के सनातन धर्म के व्यवहार आदि से भिन्न हो परन्तु वह अपनी सभी मान्यताओं का स्रोत वेद से प्राप्त करता है और वेदाचार को दृष्टि में रखकर ही समाज में उसे मान्यता दी जाती है, क्योंकि वेद आज भी हमारे सिद्धान्त, कर्म और व्यवहार में उसी तरह जीवित है जैसे प्राचीनकाल में जीवित थे । इन्हीं वैदिक सनातन धर्म के जीवित विचारों का मूर्त स्वरूप क्रियापद्धति हम हमारे तीर्थों में यथावत् प्राप्त करते हैं । भारतवर्ष के तीर्थ डगमगाती परम्परा को रास्ता दिखाने वाले प्रकाश स्तम्भ के रूप में जाने जाते हैं । तीर्थ दर्शन से मन की शान्ति, पापों का नाश, दैवी गुणों की प्राप्ति सहज ही हो जाती है, यदि राजनीति और सरकारी तन्त्र में तीर्थों, तीर्थनदियों, तीर्थस्थानों, शास्त्रों के प्रति श्रद्धा होती और ये शास्त्र सरकारी तन्त्र के हिस्सा होते तो सरकार द्वारा बनायी गई नदियों के शोधन की नीतियों की इतनी दुर्दशा नहीं होती और अपने ही तीर्थों में जाने के लिये हाथ नहीं पसारना पड़ता।

शास्त्र जहाँ धर्म-दर्शन को समझने के लिये दीर्घकालीन, समय-साध्य कठिन प्रक्रिया को पैदा करते हैं वहीं तीर्थ स्थान सभी क्रिया पद्धति को हाथ में रखे आँवले की तरह क्षण भर में प्रकट कर देते हैं- यह तीर्थों की अभूतपूर्व विशेषता है । बचपन में भूले गये धार्मिक संस्कार युवावस्था में विवाह के समय सजीव हो जाते हैं । वर्तमान में संसार का कोई भी धर्म स्वाध्याय और आचार भाग को सनातन धर्म की तरह सुरक्षित नहीं रख सका है । आज भी इसका मूल स्वरूप आदिवैदिककाल की तरह सुरक्षित है । इसका पूरा श्रेय तीर्थ स्थान और वहाँ के कठोर तपस्वियों, विद्वानों, ब्राह्मणों, साधु-सन्तों, पण्डा-पुजारियों को ही जाता है । हम यह निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि विश्व के प्राचीन महान् धर्मों,

उनके दर्शन, संस्कृति और सभ्यता व्यवहार के मूल बीज प्राय: लुप्त हो चुके हैं । कुछ ही वर्षों के परिश्रम से विश्व के सभी धर्मों के ह्रास-विकास की यात्रा को या धर्मों में आये डरावनेपन को सनातन धर्म के दर्पण में प्रामाणिक रूप से देखा जा सकता है और उनकी विकृतियों को दूर भी किया जा सकता है । यदि विश्वधर्म दृष्टि पर भविष्य में अनुसंधान किया जायेगा तो इस अनुसंधान में हमारे महनीय तीर्थ स्थानों एवं संस्कृत भाषा का योगदान अवर्णनीय रहेगा ।

सनातन धर्म के तीर्थ स्थान को दर्पण की जगह रखने में हमारा यही आग्रह है कि- विश्व सभ्यता के विकृत रूप से शुद्धरूप का चुनाव और तथाकथित शुद्धता का मुखौटा पहने हुये विकृतधर्म की नि:सारता को जाँचने का पैमाना क्या हो? इसमें विश्व के धर्म, कर्म, परम्परा, भाषा की यात्रा, वेषभूषा, संस्कृति, कला, सभ्यता, आचार-विचार आदि सभी आ जाते हैं । इस कसौटी का एक ही उत्तर है- हिन्दूतीर्थ स्थान का संरक्षण, नदियों का स्वच्छीकरण और पवित्रीकरण संस्कृत भाषा का विश्वधरोहर के रूप में संरक्षण । इस वक्तव्य की सच्चाई को समझने के लिये एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा- यह निर्विवाद है कि विश्व के पुस्तकालय में रखी सबसे प्राचीन लिपिबद्ध पुस्तक वेद ही है और वेद की भाषा संस्कृत है, जो विश्व इतिहास की यात्रा, कथा है ।

वैदिक संस्कृत भाषा के ढांचे (Structure) से होकर संसार की ९९% भाषाओं का जन्म, आधार और विकास हुआ, विश्व की इन भाषाओं का स्वरूप लगातार बदलता रहता है, लेकिन संस्कृत भाषा का स्वरूप लाखों वर्षों से आज तक बदला नहीं है । इसीलिये इसके मौलिक स्वरूप के दर्पण में विश्व की समग्र भाषाओं का व्याकरण (Science of Grammer), निरुक्त (Etymology) तैयार हो सका । भाषा किसी भी राष्ट्र के धर्म, संस्कृति, सभ्यता और प्रेरणा की रीढ होती है । यदि भाषा परिवर्तनशील है तो निश्चित ही धर्म दृष्टि भी परिवर्तित हो जायेगी और धर्म की व्याख्या भी हर व्यक्ति अपनी-अपनी करने लगेगा, धर्म के आदर्श भी खण्ड-खण्ड होकर बिखर जायेंगे, भाषा के स्थिर न होने से धर्म दृष्टि की मूलभावना भी लुप्त हो जाती है । इसीलिये यह गड़बड़ी विश्व की सभी सभ्यताओं, धर्मों में देखी गई है, क्योंकि अन्य धर्मों की भाषा संस्कृत न होकर मनगढ़न्त भाषा रही है इसको जल में बहने वाली लकड़ी की तरह समझा जा सकता है कि जिस दिशा में जल बहता है उसी दिशा में वह लकड़ी का टुकड़ा भी बहने लग जाता है । कच्ची भाषा पर सच्चे धर्म की दिवार खड़ी नहीं की जा सकती है, परन्तु सनातन धर्म के प्रवाह में भाषा की स्थिरता के कारण धर्म की मूलभावनाओं का लोप होते हुऐ नहीं देखा जाता है, जिन्होंने संस्कृत भाषा की उपेक्षाकर नये धर्मों की स्थापना की ये नये धर्म, धर्म न होकर छोटे-मोटे समाज सुधारक बनकर समाप्त हो गये या विकृत हो गये । विश्व को ऋषि-महर्षियों की संस्कृत भाषा की देन, अनुपम उपहार है । विश्व इनका सदा ऋणी रहेगा, संस्कृत भाषा के आलोक में प्राचीन काल से लेकर इक्कीसवीं शताब्दी तक आये विश्व के धार्मिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों की पहचान की जा सकती है । संस्कृत के माध्यम से विश्व की संस्कृति- सभ्यता के पुरातन,

मध्यकाल और वर्तमान समय के इतिहास की रक्षा मौनभाव से तीर्थ स्थान ही कर रहे हैं । यह तीर्थों और तीर्थवासियों का विश्व धरोहर की रक्षा के प्रति महान् उपकार है। यदि तीर्थों में कहीं विकृति भी है तो यह प्रकृति का ही अंग है और प्रकृति कभी विकृत नहीं होती । यदि अपनापन है तो उसका सभी कुछ अच्छा लगता है, ऐसा न हो तो आरोप ही आरोप बच जायेंगे जिससे किसी का भला नहीं हो सकता है, तीर्थों में, तीर्थ की प्रक्रिया में, तीर्थवासियों के व्यवसाय में, जीवन पद्धति में विकृति की जगह प्राकृत विचारों को समझना आवश्यक है । शायद तीर्थों में विकृति और अव्यवस्था का दिखायी देना हमारी तीर्थों, तीर्थों के प्रतीक चिह्नों - नदियों, तीर्थ स्थानों, तीर्थ क्षेत्र के प्रति श्रद्धा, विश्वास और जागरूकता का न होना ही है । धार्मिक स्थानों पर लगे मेले के बाद हमें कहीं जमीन दिखाई नहीं देगी, चारों तरफ कूड़ा-कचरा, मल-मूत्र, गन्दगी का साम्राज्य ही दिखेगा- स्पष्ट ही यह तीर्थों को हमारी देन हो गयी । इस तरह से तीर्थों का स्वास्थ्य और वातावरण सदियों से दूषित होता जा रहा है ।

सनातन धर्म के तीर्थ भारतीय संस्कृति और राष्ट्र की मौलिक एकता को बांधने के साथ-साथ विश्व की सभ्यता-संस्कृति को उदारता का संदेश देते हुए **'आत्मवत् सर्वभूतेषु'** का आदर्श उपस्थित करते हैं । जाति- वर्ण की संकीर्णता, देश-विदेश के झमेले से ऊपर उठकर तीर्थ स्थान सभी को एक स्थान पर बैठाकर, गले लगाकर विश्वधर्म, मानवता का संदेश देते हैं । भेद में अभेद दृष्टि को बनाते हुए- क्षमा भाव से निर्बल को जीवन का रास्ता दिखाते हैं, समाज के सबसे निर्बल, उपेक्षित, असहाय, व्यक्तियों को भी हर सम्भव जीने के साधन उपलब्ध कराते हैं, जिस व्यक्ति के दोनों पैर नहीं है या दोनों हाथ ही नहीं है ऐसे व्यक्ति भी तीर्थक्षेत्रों में, मेलाक्षेत्रों में लाखों-करोड़ों का व्यवसाय करते हुये दिख जाते हैं, शायद तीर्थों की क्रियाशक्ति, उत्पादन शक्ति पर अभी किसी तरह का अनुसंधान नहीं किया गया है । तीर्थ, सत्य ही केवल एक मार्ग है- यह सिखाते हैं, शम-दम के पाठ से समाज में पैदा हुई उच्छृंखलता को रोकते हैं, शौच से तन-मन की शुद्धता का रास्ता दिखाते हैं, दान से वर्ग भेद मिटाने का संदेश देते हैं, इन्द्रिय संयम से समाज में फैले कदाचार और अविश्वास को दूर कराते हैं, अहिंसा से सभी को परमात्मा द्वारा दिये गये जीवन के अधिकार का संदेश देते हैं, गुरुशुश्रूषा से गुरुजनों के प्रति आदर प्रकट करते हुए गुरु के ऋण का बोध कराते हैं, दया से निर्बलों के प्रति आत्मभाव दिखाते हैं, आर्जव से जिन्दगी की टेढ़ी-मेढी चाल को सीधा चलना सिखाते है, लोभशून्यता जीने की कला का प्रथम पाठ बताती है, देव-ब्राह्मण, विद्वत् पूजन- एक ऐसे वर्ग का बोध कराता है जिसका जीवन और परम्परा ही परोपकार की संस्था है, जिसने आमोद-प्रमोद को छोड़कर सारस्वत साधना की गंगा बहाने का ही संकल्प ले रखा है, ऐसे भूधर देवों का भारतीय परम्परा को बनाये रखने में अपूर्व योगदान है । अनभ्यसूया- गंदे भावों को दूर कराकर निर्मल मन को तीर्थ बनाने का रास्ता है । हमारी परम्परा में असाधारण गुणों के कारण सभी धर्मों के तीर्थ स्थान वन्दनीय हैं । ये धर्म के सोपान-श्रद्धा और विश्वास से मुक्ति के मार्ग की ओर ले जाते हैं । तीर्थ शब्द, तीर्थों की व्यवस्था, इसकी मान-मर्यादा और

जीवन पद्धति शास्त्रों के द्वारा संचालित होती है, हम तीर्थ स्थानों की गड़बड़ियों को देखकर तीर्थ स्थानों को ही गलत मानने लग जाते हैं, यह शायद हमारे अविवेक और कम परिश्रम का नतीजा है कि तीर्थ स्थान अपने स्वस्थ्य शरीर से बिमार शरीर की तरह नजर आने लगे हैं यह सावधान होने का समय है ।

तीर्थशब्दार्थ -

व्याकरण शास्त्र के अनुसार तीर्थ शब्द की व्युत्पत्ति निम्नलिखित है- तृ-प्लवनतरणयोः धातु से पातृतुदिवचिरिचिसिचिभ्यस्थक् इस औणादिक सूत्र से थक् प्रत्यय लग कर तीर्थ शब्द बनता है । इसका अर्थ है- तरन्ति अनेन इति- ऐसा पवित्र साधन जिसके द्वारा मनुष्य अपनी इच्छित वस्तु को प्राप्त कर लेता है । इसके अतिरिक्त अन्य परिभाषायें भी हैं-

सद्भिः समाश्रितो भूमिभागस्तीर्थतयोच्यते ।।

- राग-द्वेष, मोह-ममता से रहित सज्जनों के रहने का पवित्र स्थान तीर्थ कहा जाता है ।

तीर्थशब्दो वरारोहे धर्मकृत्येषु वर्तते ।।

- धार्मिक विधि-विधान करने के स्थान को तीर्थ कहते हैं ।

तीर्थ शब्द अत्यन्त प्राचीन और वैदिक शब्द है । कुछ लोगों की कल्पना कि- धर्म में भीरुता ने तीर्थो को जन्म दिया यह निरर्थक है । वेदों के प्राकट्य के समय से तीर्थो का अस्तित्व रहा है-यह स्पष्ट है । पीथ, तीर्थ, तुत्थ, उक्थ, रिक्थ, निर्ऋथ, उद्गीथ, यूथ आदि शब्द भी वैदिक शब्द हैं और इनका निर्माण भी औणादिक थक् प्रत्यय से ही हुआ है । वेदों का आविर्भाव यदि किसी डर, कमजोरी, धर्म की भीरुता के कारण हो तो तीर्थो को भी धर्मभीरुता का केन्द्र माना जा सकता है । तीर्थमय जीवन से निम्नलिखित सद्गुणों की प्राप्ति सभी का मुख्य कर्तव्य है जिससे मानव देह ब्रह्ममय भाव को प्राप्त करती है -

धर्म के अन्दर विचार और आचार दोनों का संयोग आवश्यक है । विश्व के सभी मानवीय धर्मो में विचार और आचार दोनों विस्तृत रूप से उपलब्ध होते हैं । फिर भी आचार पर जितना अधिक विवेचन हिन्दुओं के धर्मशास्त्रों ने किया है उतना और कही नहीं मिलता है । इसका मूलभूत कारण सनातनियों की एक वैज्ञानिक दृष्टि रही है कि जो भी फायदा पहुँचाने वाली चीज है, चाहे वह शरीर सम्बन्धी हो, इन्द्रिय सम्बन्धी हो, समाज सम्बन्धी हो, राजनैतिक हो, राष्ट सम्बन्धी हो, विज्ञान सम्बन्धी हो, वह सभी ठीक प्रकार से जीवन में आये, इसके लिए प्रयत्न करना धर्मशास्त्र का कार्य है । आधुनिक युग में धर्मशास्त्रों द्वारा, कर्मकाण्ड मार्ग के द्वारा लौकिक पदार्थो की प्राप्ति में अविश्वास पैदा हो गया है, अनुपयुक्त अपितु अरुचिकर भी लगने लगा है - यदि चलते रास्ते में बोतल बन्द पानी, कागज का टुकड़ा फेंकने पर मिल जाता है तो गंगा-यमुना जैसी प्रकृति की अद्भुत घटनाओं के प्रति किसको चिन्ता होगी? पुराण-स्मृतियों के ऊपर विचार व्यर्थ होता जा रहा है । आज यदि सनातन धर्म की कोई धारा

महत्वपूर्ण रह गई है तो वह तीर्थ स्थान ही बचे हैं जो इस समय दर्शनीय पर्यटन स्थलों में बदल रहे हैं। सदाचार जीवन यज्ञ का वह अंग है जो बाहर प्रकट होता है। अत: जीवन की किसी एक प्रकार की रीति (Ritual) को सदाचार नहीं कहा जा सकता। अत: सदाचारी होने के आधारभूत सिद्धान्तों को समझना आवश्यक है। यदि हम और हमारा समाज मन, वचन और कर्म से शुद्ध, सात्त्विक हों तो इस विश्व को बदलने में समय नहीं लगेगा। वर्तमान में तीर्थ स्थान ही मनुष्य को सर्वोच्च शिखर पर पहुँचाने की कुञ्जी हो सकते हैं, यह मृणमय शरीर ब्रह्ममय शरीर हो सकता है परन्तु इस शिखर पर जाने के लिये जीवन में निम्नलिखित बिन्दुओं पर स्पष्टता का होना आवश्यक है, तभी तीर्थगमन का फल, जीवन की निर्मलता, सदाचार से समाज और आत्मा का परिष्कार सम्भव है। संक्षेप में निर्भयता, मन की सफाई, विचार, चित्त की एकाग्रता, दान, दम, स्वाध्याय, तप, सरलता, प्रेम, सत्य, क्रोध रहितता, भोग रहितता, शांति, अचुगलखोरी, प्राणियों पर दया, अलोलुपता, अक्रूरता, लिहाज, अचपलता, तेज, क्षमा, धैर्य, सफाई, द्रोहरहितता एवं अतिमानिता से रहितता सभी तीर्थों एवं धर्मशास्त्र से उत्पन्न आचार-विचार के आधार हैं। यदि ये विचार हमारे जीवन के अंग नहीं बनते हैं तो कदाचार, अत्याचार से हमारी लड़ाई कभी बन्द नहीं होगी। हम इन सर्वोच्च गुणों पर कुछ विचार करेंगे -

निर्भयता - दु:ख के कारण का अनुभव करने पर दु:ख का आना अवश्यंभावी समझकर मन में जो एक वृत्ति बनती है, उनका नाम भय है। इससे रहित होना ही अभयता है। शास्त्र में कहे हुए प्रयोजन में लगने पर लौकिक पदार्थों की अप्राप्ति का भय भी इसी जाति का है। तीर्थयात्रा निर्भयता को उत्पन्न करने में पूर्ण सक्षम है। घर बैठे टी०वी० देखते हुये अध्यात्म का अनुभव या आध्यात्मिक होना और सुख-दु:ख पाकर तीर्थगमन करना, वहाँ के अनुभवों को आत्मसात् करना- ये दोनों अलग-अलग विचार हैं।

अन्त:करण की सफाई - सभी व्यवहारों के प्रति अंत:करण कर्त्ता की दृष्टि से सर्वप्रधान है। अत: अन्त:करण की शुद्धि होने पर ही व्यवहार की शुद्धि सम्भव है। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि यह एक सर्वप्रधान आचार है। धर्मशास्त्रों में मन की शुद्धि को ही आचार का प्रधान आधार माना है। कर्मकाण्ड आचार का मुख्य केन्द्र है और यह शरीर से की गई बाह्य क्रियाओं को लेता है, अत: कर्मकाण्ड में बाह्य शरीर की प्रधानता हो जाती है। अन्त:करण की निर्मलता को बनाये रखना सदाचार का मूल है। यदि मन शुद्ध नहीं होगा तो बाह्य आचार, व्यवहार विकृत होकर ढोंग का रूप ले लेगें। इसीलिये विगत दो-तीन सौ वर्षों में कर्मकाण्ड पर आघात किये गये हैं। अन्त:करण की शुद्धि का सच्चे अर्थों में तात्पर्य दूसरे को ठगने, माया, झूठ आदि का परित्याग है।

विचार - 'विचाराचारसंयोग: सदाचार:' विचार और आचार का साथ-साथ किया जाना ही सदाचार है अर्थात् बिना विचार किये हुए आचार जैसे प्राण शून्य होता है, वैसे ही आचार के बिना विचार भी

निष्क्रिय होता है । अत: जो भी किया जाये, उस कार्य का फल, उसका साधन इत्यादि सभी बातों को भली प्रकार समझकर जीवन में उतारना चाहिये । तीर्थस्थान विराट् रंगमंच हैं जैसे रंगमंच पर अकुशल कलाकार भी कुशलता से अभिनय करता है वैसे ही तीर्थयात्रा जीवन की बहुत सी कमियों को, बहुत से विचारों को परिष्कृत कर देता है ।

चित्त की एकाग्रता - चित्तशुद्धि एवं विचार करने पर भी जिसका चित्त चंचल होता है और वह किसी एक विषय पर अपने आपको स्थिर नहीं कर पाता । इसलिए नवीन तत्त्वों का पल-पल आगमन उसके लिए असम्भव हो जाता है । जहाँ विचार के साथ सदाचार नहीं होता, वह एक प्रकार से बालू में मकान बनाने की तरह निष्फल होता है । इसीलिए अन्त:करण की शुद्धि के बाद विचार और चित्त की एकाग्रता का होना बहुत ही आवश्यक है । तीर्थों का वातावरण तीर्थयात्रा चित्त की एकाग्रता में बहुत सहायक है ।

दान - प्रत्येक व्यक्ति का धन अपने से बड़ों के द्वारा भी अधिकृत होता है क्योंकि उनके सहयोग के बिना उस धन की प्राप्ति सम्भव नहीं थी । सनातनधर्म परम्परा में दान एक प्रधान विषय है । स्मृतियों के अनुसार भी दान प्रतिदिन का कर्त्तव्य है । हमें हर रोज सोचना चाहिए कि आज हमने अपने ऊपर उपकार करने वालों के लिए न्यूनाधिक कोई कार्य किया या नहीं । शास्त्रों में दान का तात्पर्य किसी को रुपया-दो रुपया दे देना या बची हुई रोटी या पुराने कपड़े को दे देना नहीं है । इस सृष्टि चक्र में हमारा अस्तित्त्व महासागर की बूंद, बालू के कण के बराबर भी नहीं है, अत: यह विचार हमारी जीवन पद्धति का मुख्य विषय होना चाहिये । दान का तात्पर्य किसी को कुछ देना तो है परन्तु मुख्य तात्पर्य अपने अंश से किसी के प्रति किया गया प्रत्युपकार दान शब्द का मुख्य अर्थ है । इस अर्थ के अनुसार बचेगा तो देंगे, गाढ़ी कमाई का पैसा लुटाने के लिये नहीं है - ऐसे वाक्य दान शब्दार्थ को न समझने के कारण हैं । यदि कोई व्यक्ति छह रोटी खाता है और छह रोटी ही उसके पास है इसका यह तात्पर्य नहीं है कि वह भूखें को दो रोटी न दे या पास में खड़े हुये कुत्ते को एक रोटी न दे । तीर्थ स्थानों पर सभी वर्ग धार्मिक भावना से आते हैं, आने वालों में गरीब और सम्पन्न सभी वर्ग के लोग होते हैं । याचकों की संख्या, तीर्थ स्थानों में जीने वाले व्यवसायियों की समस्या भी बहुत बड़ी होती है । जहाँ उनकी समस्या को मिटाना भी तीर्थयात्रा का प्रयोजन है । दान उसी का एक अंग है । प्राचीन भारत में सही दानदृष्टि के कारण ही भारतवर्ष में वर्गसंघर्ष पैदा नहीं हुआ और Capital (Das Kapital) नहीं लिखी गई । सम्राट् हर्षवर्धन पाँच-छह वर्षों में प्रयागराज में अपना सर्वस्व अर्पित करते हुये पाये जाते हैं और वैदिक निर्धन ऋषि वाजस्रवस् भी अपना तिनका-तिनका सर्ववेदस् यज्ञ द्वारा दान करते हुये दिखते हैं ।

शम-दम - मनुष्य के सभी आचार-व्यवहार जब बाहर प्रकट होते हैं तो इन्द्रियों के द्वारा ही प्रकट हो सकते हैं । अत: इन्द्रियों के ऊपर जब तक नियंत्रण नहीं हो जाता तब तक हमारा आचार कभी भी हमारे और समाज के अनुरूप नहीं हो पाता । इन्द्रियों के ऊपर नियंत्रण शम-दम कहलाता है, इसीलिए

आचार के विकास में शम-दम एक प्रधान स्थान रखता है । प्राचीन काल में वर्णाश्रम व्यवस्था के द्वारा हमको इसकी शिक्षा दी जाती थी । आज के युग में यद्यपि यह सम्भव नहीं है तथापि तीर्थयात्रा और तीर्थयात्रियों का संगम शम-दम, इन्द्रिय निग्रह को परिष्कृत करता है ।

स्वाध्याय - वेद का अर्थ सहित अध्ययन एवं अध्ययन के उपरांत प्रतिदिन उसका विचार करना स्वाध्याय कहा जाता है । स्व का वास्तविक अर्थ आत्मा होता है । वेदों में चूंकि आत्मा का ही विस्तार से विचार किया गया है, इसीलिए वेदाध्ययन को स्वाध्याय कहा जाता है । परन्तु इस अध्ययन में हमेशा स्व की तरफ विचार रखना चाहिए अर्थात् चाहे कर्मकाण्ड हो, चाहे उपासना काण्ड हो, चाहे ज्ञान काण्ड, उन्हें हमेशा अपने अन्दर घटाना चाहिए । तभी वह स्वाध्याय हो सकेगा और समाज को उसका लाभ मिलेगा । तीर्थों में कल्पवास, तीर्थों की यात्रा, स्वाध्याय और चित्त एकाग्रता के मुख्य केन्द्र माने गये हैं ।

तप - देवता, ब्राह्मण, गुरु आदि को प्रणाम और सेवा इत्यादि के द्वारा प्रसन्न करना, निषिद्ध मैथुन से अलग रहना, सत्य, प्रिय, हितकारी वाणी बोलना, विपरीत परिस्थिति में भी मन को शांत रखना, चेहरे पर हमेशा प्रसन्नता रखना इत्यादि तप कहा जाता है । शास्त्रों में और भी कठोर तपों का वर्णन है । तीर्थयात्रा तपों की आरम्भिक भूमि है । सद्गुणों और वचन-बद्धता को पूरा करने में, इन गुणों को जीवन में उतारने में एक अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न होता है, इस अन्तर्द्वन्द्व पर विजय भी तप मानी गई है, सत्कर्म, वचनबद्धता को भी तप नाम दिया गया है ।

सरलता - पुत्र, मित्र, पत्नी, शत्रु और खुद अपने में जो एकरूपता की दृष्टि है, वही सरलता कही जाती है अर्थात् अपने सब कार्यों में प्रयत्नपूर्वक अभेद की दृष्टि को लाना ही वास्तविक सरलता है । इस एकरूपता का तात्पर्य ठीक एक जैसा व्यवहार नहीं समझना चाहिए । मन, वाणी शरीर के द्वारा जैसा कर्म हम अपने लिए किसी भी परिस्थिति में करना चाहेंगे, वैसा ही दूसरे के लिए करना, यह सरलता है । वस्तुतः कुटिलता का अर्थ ही होता है कि हम अपने में, दूसरे में, हर चीज में भेद दृष्टि को लायें। इतना ही नहीं दूसरे के सामने प्रकट कुछ और भाव करें और अन्दर कुछ और भाव रखें, जैसे हम अपने साथ इस प्रकार दो भाव नहीं बनाते हैं, वैसे ही दूसरे के साथ एक सा होना एक प्रधान आचार है, इस आचार की प्रक्रिया सरलता से ही उत्पन्न हो सकती है । तीर्थों की मर्यादा इस कार्य के लिये एक उचित पाठशाला मानी जाती है ।

प्रेम - कर्म, मन, वाणी के व्यवहारों से सब प्राणियों के साथ ऐसा व्यवहार करना कि उन्हें हमसे क्लेश न प्राप्त होकर सुख की प्राप्ति हो- इस भाव का नाम ही प्रेम है । इसी को अहिंसा शब्द से शास्त्रों में कहा जाता है । प्रेम का अर्थ केवल मीठी-मीठी बातें और मीठा-मीठा आचार नहीं होता अपितु विषम परिस्थितियों में मन का सन्तुलन बनाकर उचित व्यवहार प्रेम का दूसरा लक्षण है । तीर्थयात्रा में ऐसे प्रसंग कदम-कदम पर उपस्थित होते हैं जहाँ हमारे संयम की परीक्षा होती है ।

सत्य - निर्दुष्ट इन्द्रियों के द्वारा जैसा अनुभव किया जाये, वैसा ही दूसरे के मन में ज्ञान हो, इस भाव से बोला गया वाक्य सत्य है । यह सत्यता, हित की दृष्टि से एवं प्रिय रूप से प्रकट होकर पूर्ण सत्य बन जाती है । कभी-कभी प्राणरक्षा, विवाह आदि सामान्य दृष्टि से कहा गया असत्य भी सत्य लक्षण में आ जाता है । 'सत्यं भूतहितं प्रोक्तं न यथार्थाभिभाषणम्' इत्यादि ही इसमें प्रमाण है। शास्त्रों का स्पष्ट आदेश है कि मनुष्य का जीवन सत्यमय ही होना चाहिये । इसका अभ्यास, परिष्कार तीर्थों में बहुत अच्छे ढंग से किया जा सकता है ।

क्रोधरहितता - दूसरों के द्वारा अभद्र व्यवहार करने पर भी उसके प्रति द्वेषभाव न होना यही क्रोधरहितता है । इसका निरन्तर अभ्यास जीवन को सक्षम बनाता है । तीर्थ स्थान में क्रोध को करना पाप माना गया है । स्पष्ट ही जीवन के विकास में सहजता और क्रोधरहितता होना आवश्क है ।

भोगरहितता - भोग दो प्रकार का होता है- ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय से शरीर और मन की तृप्ति । उच्च अवस्था को प्राप्त करने के लिये भोगरहितता का मानस पैदा करना तीर्थों में ही सम्भव है ।

अचुगलखोरी - दूसरे की गलती को तीसरे के प्रति प्रकट करना, इसका नाम चुगली है । इसमें ईर्ष्या की भावना प्रधान होती है । किसी दूसरे को नीचा दिखाने से एक मिथ्या प्रकार की आत्मतुष्टि होती है मानो हमें कुछ प्राप्त हो गया हो । यह हमारे अन्दर की हीन भावना के कारण ही होता है । जिसकी गलती है उसको उस गलती को बताना उसका कल्याण कर सकता है, लेकिन दूसरे के सामने प्रकट करना कोई लाभ नहीं पहुँचा सकता, केवल अनर्थ का कारण ही बन सकता है । कहीं न कहीं दूसरे का नुकसान हो, ऐसी भावना छिपी रहती है और इसीलिए मनुष्य प्रयत्न करता है कि ऐसे व्यक्ति से चुगली की जाये जिससे इसको नुकसान हो । चुगलखोरी (पिशुनता) का स्वभाव मनुष्य की हीन मानसिकता को दर्शाता है । तीर्थों की सन्निधि ऐसे दुर्गुणों को दूर करके समाज को परिष्कृत करती है।

प्राणियों पर दया - दु:खी जीवों पर उनके दु:ख को देखकर उनका दु:ख निवृत्त हो, इस भावना को एवं इस भावना से प्रयुक्त क्रिया को दया कहा जाता है । दूसरे प्राणियों के दु:ख को मनुष्य तभी सहन कर सकता है जब उसमें भेद-दर्शन प्रधान हो । जितनी-जितनी अभेद दृष्टि बनती है, उतनी-उतनी दूसरे के दु:ख में सह अनुभूति होती जाती है । शत्रु, मित्र, पशु, पक्षी सब प्राणियों के प्रति जो सह अनुभूति है, उसी को दया शब्द का वाच्य माना है । विष्णु पुराण भी 'तापत्रयेनाभिहतं यदेतदखिलं जगत् । तदा शोच्येषु भूतेषु करुणां न करोति क:' (१-१७-८०) में प्रहलाद से इसी बात को कहलाता है कि सारा जगत् अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत तापों के द्वारा पहले ही दु:खी है, फिर ऐसे शोकार्त प्राणियों के प्रति कौन दया, करुणा नहीं करेगा ।

अलोलुपता - विषयों के सामने आ जाने पर भी इन्द्रियों में उन विषयों के प्रति चंचलता रूपी विकार का न होना, अलोलुपता कहा जाता है । यह भी एक प्रकार का लोभ कहा जा सकता है परन्तु लोभ में पदार्थ को संग्रह करने की भावना है और यहाँ पदार्थ को इन्द्रिय के द्वारा ग्रहण करने की भावना की

प्रधानता है। अतिदीर्घ काल के अभ्यास से इन्द्रियों में यह वासना हो गई है कि जहाँ अनुकूल अनुभव हो उसमें तुरन्त प्रवृत्त हो जाना चाहिये। यह संस्कार इतना दृढ है कि अनेक बार मन की इच्छा न होने पर भी मन इन्द्रिय पर नियंत्रण करें, तब तक इन्द्रिय अपना कार्य कर लेती है। समाज में, खान-पान में, लोलुपता-लालच की बहुत गहरी पैठ हो गई है। घर, परिवार सामानों से कूड़े का ढेर बन गये हैं। तीर्थों में त्याग, तितिक्षा, साधना, तप के द्वारा लोलुपता लोभ पर विजय की शिक्षा प्राप्त की जा सकती है।

अक्रूरता - परमात्मा की तरफ जाने वाले के लिए कोमल हृदय होना अत्यंत आवश्यक है। क्रूरता इस मार्ग में बहुत बड़ी बाधा है, यह आधुनिक युग भी क्रूरता से डोलायमान हो रहा है। धर्म भी अभय की जगह क्रूरता को आश्रय दे रहा है। सहजता और सरलता, अक्रूरता तीर्थवास के फल कहे जाते हैं।

अचपलता - बिना प्रयोजन के कर्मेन्द्रियों को क्रियाशील न बनाना ही अचपलता है। इसके द्वारा व्यर्थ परिहास, आयास आदि की निवृत्ति भी बता दी गई। कोशकार की दृष्टि में 'चपलश्चञ्चलोऽस्थिरः' दो प्रकार की चंचलतायें होती हैं, एक स्थान से स्थानांतरण में और दूसरी उसी स्थान पर रहते हुए। दृष्टांत में एक आदमी मीलभर चलता है और दूसरा वही बैठे-बैठे पैर हिलाता रहता है, अथवा एक व्यक्ति एक जगह से उठकर दूसरी जगह बैठ जाता है और दूसरा व्यक्ति वहाँ बैठे-बैठे आसन बदलता रहता है। ये दोनों ही चपलतायें हैं। इन दोनों के परित्याग से ही हमारे में स्थिरता आना सम्भव होता है। लौकिक व्यवहार में चपलता-चंचलता एक गुण माना गया है क्योंकि उसके द्वारा लोकरंजन हो जाता है परन्तु साधक के लिए व्यर्थ चेष्टा के द्वारा चपलता पैदा करना केवल शक्तिक्षय का ही कारण होता है और पुरुषार्थ करने के लिए उसके पास ताकत ही नहीं बच सकेगी। लौकिक क्रिया में आसक्त पुरुष आत्मविचार आदि अथवा ईश्वराराधना के कर्मो को शीघ्रता से समाप्त करके अपनी चपलता का प्रदर्शन करता है। चपलता की निवृत्ति के लिए ही शास्त्रों में आसनों का अभ्यास बताया गया है। तीर्थवास अचपलता की साधना के लिये उचित स्थान है।

क्षमा - किसी के गाली देने या मारने पर अन्दर किसी विक्रिया का उत्पन्न न होना क्षमा है। आत्मकल्याण के लिये क्षमा आवश्यक गुण है।

धैर्य - देह और इन्द्रिय आदि के पूर्ण रूप से थक जाने पर भी कार्यकाल समुपस्थित होने पर शरीर आदि को दृढता देकर कार्य कराने की सामर्थ्य रूपी शक्ति धैर्य कही जाती है। मानसिक शक्ति भी इसी में आती है। इसी के बल से लौकिक और अलौकिक दुःखों में भी चित्त कभी अस्थिर नहीं होता। दुःख आदि में चित्त यदि किसी प्रकार व्याकुल हो भी जाये तो धैर्य रखने से शीघ्र ही फिर स्थिर हो जाता है। बड़ी से बड़ी आपत्ति में भी जिसको संकल्प द्वारा हमने अपना कर्त्तव्य समझ लिया है, उस पर डटे रहना भी धैर्य का ही रूप है। धैर्य धारण से ही संसार में महापुरुष बड़े-बड़े काम कर पाये हैं। तीर्थगमन, तीर्थवास और यहाँ पर प्रकृति का प्रकोप धैर्य की भूमि को दृढ बनाते हैं।

अतिमानिता से रहितता - अपने आप में अत्यंत पूज्यता का, श्रेष्ठता का, बड़बोलेपन का भाव ही अतिमानिता कहा जाता है । प्राय: मनुष्य को अपनी बुद्धि, इन्द्रिय, शरीर इत्यादि में एक तरह का घोर अभिमान होता है कि मुझसे सुन्दर और श्रेष्ठ और कुछ है ही नहीं । इसी दुर्गुण के कारण मनुष्य दूसरों से ठीक प्रकार से सीख भी नहीं पाता । निरंतर अपनी प्रतिष्ठा की अपेक्षा रखता है और जब वे उसे प्रतिष्ठा नहीं देते तो अपने आपको दु:खी बना लेता है । दूसरा मुझे प्रतिष्ठा दे, यह भावना आधार रूप से गलत है । तीर्थस्थान अतिमानिता जैसी अहंकारवृत्ति को समाप्त करते हैं, तीर्थवासी-तीर्थयात्री ऊपर बताये गये गुणों के वाहक होने चाहिये । इन गुणों के बिना तीर्थयात्रा का फल, समाज का परिष्कार और तीर्थों की पवित्रता सुरक्षित नहीं रह सकती प्रत्युपकार में तीर्थों की पवित्रता, स्वच्छता हमारा कर्तव्य है ।

वेदों में तीर्थ वर्णन -

अधायि धीतिरससृग्रमंशास्तीर्थे न दस्ममुप यन्त्यूमा:।

- देवताओं को यज्ञ में पदार्थ, तीर्थ में की जाने वाली विधि से पहुँचते हैं । सायणाचार्य ने वेदमन्त्र में तीर्थ का अर्थ 'गंगादितीर्थे' ही किया है । (ऋग्वेद-१०-३१-०३)

उत मे प्रयियोर्वयियो: सुवास्त्वा अधि तुग्वनि । तिसृणां सप्ततीनां श्याव: प्रणेता भुवद्वसुर्दियानां पति:।।

- इस मन्त्र में 'सुवास्तु' नाम की निवासयोग्य पवित्र एक नदी है 'तुग्वन्' का अर्थ तीर्थ (तरण स्थान या पवित्र स्थल) है, तीर्थ में वस्त्र, धन और गौ-वृषम के दान का उल्लेख निरुक्तकार यास्क और सायणाचार्य करते हैं । (ऋग्वेद ८-१९-३७)

अप्सु स्नाति साक्षादेव दीक्षातपसी अवरुन्धे तीर्थे स्नाति।

- कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय संहिता के इस मन्त्र में यजमान को तीर्थ में स्नान का विधान किया गया है । (तै०सं० ६-१-१)

मानव शरीर के अंगों में जैसे सिर, दायें हाथ को अन्य अंगों की अपेक्षा विशेष महत्त्व दिया है, वैसे ही परमात्मा के विराट् स्थूल शरीर स्वरूप इस जगत् में कुछ स्थानों को पवित्रता की श्रेणी में रखा गया है, ऐसे स्थानों को तीर्थ शब्द से बताया जाता है । इनकी पवित्रता के निम्नलिखित मुख्य कारण हो सकते हैं -

(१) वेद, पुराण, स्मृति, रामायण, महाभारत आदि शास्त्रों में उल्लेख होने के कारण जैसे - हिमालयादि पर्वत, गंगा-यमुना आदि नदियाँ ।

(२) तप:स्थली - व्यास गुफा, वशिष्ठ गुफा, सती तप:स्थली आदि ।

(३) किसी शास्त्रीय घटना के कारण- सती के अंगों के गिरने के कारण- शक्तिपीठ, असुरों के वध स्थान देवों की तपस्थली आदि ।

(४) शास्त्रों में निश्चित निर्देश के कारण भौगोलिक स्थान- काशी, काञ्ची, अवन्ती, हरिद्वार, प्रयाग आदि।

(५) पृथ्वी, जल और पर्वत के कुछ भाग तेजस्वी होते हैं, शास्त्रों में वर्णन -
उपर्युक्त भावों को निम्नलिखित श्लोकों में दर्शाया है -

भौमानामथ तीर्थानां पुण्यत्वे कारणं शृणु। यथा शरीरस्योद्देशाः केचिन्मुख्यतमाः स्मृताः।।
प्रभावादद्भुताद्भूमेः सलिलस्य च तेजसः । परिग्रहान्मुनीनां च तीर्थानां पुण्यता स्मृता ।।

(बृहन्नारदीयपु०उ० २/६२/४७-४८)

शरीरस्य यथोद्देशाः शुचयः परिकीर्तिताः । तथा पृथिव्या भागाश्च पुण्यानि सलिलानि च ।।

(म०भा०अनु०पर्व १०८-१६)

वेदों में जलाशयों, नदियों और कुछ विख्यात नदियों का श्रद्धा के साथ स्मरण किया गया है। इनको दैविक शक्तिसम्पन्न होने से पूजा के योग्य माना है ।

समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात्पुनाना यन्त्यनिविशमानाः ।
इन्द्रो या वज्री वृषभो रराद ता आपो देवीरिह मामवन्तु ।।

- समुद्र जिनमें ज्येष्ठ हैं, वे जल-प्रवाह सदा अंतरिक्ष से आने वाले हैं । इन्द्रदेव ने जिनका मार्ग प्रशस्त किया था, वे जलदेव यहाँ हमारी रक्षा करें ।

या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति खनित्रिमा उत वा याः स्वयञ्जाः।
समुद्रार्था याः शुचयः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ।।

- जो दिव्य जल आकाश से (वृष्टि के द्वारा) प्राप्त होते हैं, जो नदियों में सदा गमनशील हैं, खोदकर जो (कुएँ आदि से) निकाले जाते हैं और जो स्वयं स्रोतों के द्वारा प्रवाहित होकर पवित्रता बिखेरते हुए समुद्र की ओर जाते हैं, वे दिव्यतायुक्त पवित्र जल हमारी रक्षा करें ।

यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृतेऽवपश्यञ्जनानाम् ।
मधुश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ।।

- सर्वत्र व्याप्त होकर सत्य और मिथ्या के साक्षी वरुणदेव जिनके स्वामी हैं, वे ही रसयुक्ता, दीप्तिमती, शोधिका जल देवियाँ हमारी रक्षा करें।

यासु राजा वरुणो यासु सोमो विश्वे देवा यासूर्जं मदन्ति ।
वैश्वानरो यास्वग्निः प्रविष्टस्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ।।

- राजा वरुण और सोम जिस जल में निवास करते हैं, जिसमे विद्यमान सभी देवगण अन्न से आनन्दित होते हैं, विश्व-व्यवस्थापक अग्निदेव जिसमें निवास करते हैं । वे दिव्य जलदेव हमारी रक्षा करें । (ऋग्वेद ७/४९/१-४)

यासां देवा दिवि कृण्वन्ति भक्षं या अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति ।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ।।

- इन्द्रादि देवता जल के सारभूत अमृत और सोम का उपभोग करते हैं, जो अन्तरिक्ष में वृष्टि आदि अनेकों रूपों का हो जाता है और सुन्दर वर्णवाला जल, अग्नि को गर्भ में ध्यान करता है, वह

हमें शान्ति दायक और सुखदायक हो । (अथर्ववेद १/३३/३)

ऋग्वेद में नदियों का देवी और माताओं के रूप में वर्णन किया गया है । नदियों, पर्वतों की पवित्रता की स्तुतियों का वेदों में व्यापक रूप से उल्लेख है-

उपह्वरे गिरीणां सङ्गथे च नदीनाम् । धिया विप्रो अजायत ।।

- पर्वत की गुफाओं- घाटियों, नदियों के संगम एवं पवित्र स्थलों पर किये धार्मिक कार्यों से विप्र (मेधावी और ज्ञानी) होते हैं । (ऋग्वेद ८/६/२८)

आपो वै सर्वा देवताः।

- वेद का स्पष्ट घोष है कि सभी देवता जल में निवास करते हैं ।

(श०ब्रा० १०/५/४/१४)

सर्वं पुण्यं हिमवतो, गङ्गा पुण्या च सर्वतः । समुद्रगाः समुद्राश्च सर्वे पुण्याः समन्ततः ।।
एवमादिषु सर्वेषु श्राद्धं निर्वर्तयेद्बुधः । पूतो भवति स्नात्वा तु दत्त्वाऽदत्वा तथैव च ।।

- स्मृति शास्त्रों में देवतात्मा हिमालय और देवी गंगा, सागरों को पवित्र माना है -

(वायु०पु० ७७/११७-११८)

- पर्वतराज हिमालय का सम्पूर्ण भाग पुण्य को देने वाला, गंगा जी का सम्पूर्ण भाग पुण्य को देने वाला, समुद्र में गिरने वाली सभी नदियाँ पुण्य को देने वाली और सभी समुद्र पुण्य को देने वाले हैं । इन स्थानों पर किये गये धार्मिक कार्यों से मनुष्य पवित्र हो जाता है ।

ब्रह्माण्ड पु. अनुषङ्गपाद और महाभारत में, प्राय: सभी पुराणों में भारतवर्ष के पवित्र पर्वतों, नदियों की सूची दी गई है पर्वतों को देवता और नदियों को- ''विश्वस्य मातर: सर्वा जगत्पापहरा: स्मृता:'' कहा है ।

ग्राम, नगर, नगरीय कोलाहल को छोड़कर, जीवन की भागमभाग से परेशान होकर जीवन का सुख, सृष्टि का श्रृंगार उत्तुंग शिखरों में, जीवन में प्राणों का संचार करने वाली और भोग-मोक्ष को देने वाली नदियों में, मनोहर वनों में कूजते, किलकारी करते, चौकड़ी भरते पशु-पक्षी वन्य प्राणियों में ही देखा जाता है । इनकी शोभा गरिमा सभी के मन को हर लेती है । प्रकृति में देव धारणा भारतीय चिन्तन का प्रधान विषय है । यह अनुपम सौन्दर्य परमात्मा से धरोहर के रूप में हमें प्राप्त हुआ है । किसी को भी प्रकृति के सौन्दर्य को बाधित कर नुकसान पहुँचाने का तिनका भर भी अधिकार नहीं है । भारतीय धर्म मर्यादा इनमें दैवी सत्ता मानती है । सभी वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, पुराण, वेदांग, ऋषि-महर्षि सृष्टि की महिमा से मोहित हैं । वैयाकरण भगवान् पाणिनि भी अपने महान् ग्रन्थ में नदी को सम्मान देने से नहीं चूके और अपने शास्त्र में 'नदीसंज्ञा' जैसे पारिभाषिक- शब्दों का प्रयोग करते हैं ।

भगवान् शंकराचार्य के लघुग्रन्थ पंचीकरण में अकार, उकार, मकार स्वरूप ॐ की व्याख्या करते हुये वार्तिककार सुरेश्वराचार्य परमात्मा के विराट् स्वरूप इस भौतिक जगत् का अद्भुतवर्णन करते हैं, इसका पल्लवन अधिभूत, अधिदेव, अधियज्ञ के रूप में श्रीमद्भगवद्गीता में विस्तार से हुआ है ।

प्राय: सभी वेद, वैदिक वाङ्मय, सभी पुराण, उपपुराण, स्मृतियाँ, महाभारत, वाल्मीकि रामायण आदि शास्त्रों का अध्ययन करने पर निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि भारत के इस धराधाम पर कोई भी ऐसी जगह, नद, नदी, सागर, वन, पर्वत नहीं हैं जो पवित्र और पापनाशक नहीं हों। सभी परमात्मा के भौतिक शरीर हैं। शास्त्रों में आश्चर्यजनक विषय प्राप्त होता है कि भारतवर्ष के कई भू-भाग मनुष्य के जाने या रहने के लिये उचित जगह नहीं मानी गयी, परन्तु वहाँ की नदियों और तीर्थों को पवित्र बताकर पुण्य अर्जित करने के बारे में लिखा गया है, ऐसे विचार तीर्थों के प्रति अगाध श्रद्धा को बताते हैं। ये तीर्थ अक्षय पुण्य, सुख, शान्ति और मुक्ति को देने वाले हैं। महान् तीर्थ स्थान- प्रयाग, अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, कांची, अवन्तिका, द्वारका, महान् पर्वत- हिमालय, विन्ध्य, नील, महेन्द्र, मैनाक आदि, महती नदियाँ- सरस्वती, शतद्रु, गंगा, यमुना, सरयू, गोदावरी, कावेरी, नर्मदा आदि का वर्णन शास्त्रों में प्रसिद्ध ही है। मुश्किल से पाँच सौ फिट से कुछ हजार फिट तक बरसात में बहने वाली छोटी-छोटी नदियों का भी उसी श्रद्धा और दैवी भावना से वर्णन हुआ है, जैसा कि गंगा आदि नदियों का, इनको ऋषियों की पुत्री जैसे पद भी प्राप्त हैं। इन नदियों का उद्गम और लय कुछ सौ फीट तक ही देखा गया है- यह आस्था विचारणीय है, ऐसी आस्थाओं को मान्यता क्यों दी गई यह आज का चर्चित विषय होना चाहिये।

धार्मिक नद, नदी, सरोवर का दर्शन कर हम इनको अलौकिक मान लेते हैं और सोच भी लेते हैं कि गंगा जी को भगीरथ, गौतम जैसे महापुरुष ही ला सकते हैं। भई इसमें हम क्या कर सकते हैं? शास्त्रों के वर्णन के अनुसार प्राय: सभी नद, नदियाँ, सरोवर का उद्गम किसी न किसी मनुष्य के तप और परिश्रम से ही हुआ है, यहाँ तक की साठ हजार सगर पुत्रों, उनके सैनिकों, कार्मिकों और इनकी कई पीढ़ियों के द्वारा पृथ्वी को खोदने से सागरों का निर्माण हुआ माना जाता है। वर्तमान में जीव-जगत् के पोषक इन देवशरीरों- नद, नदी, सरोवर, सागरों आदि पर स्वार्थवश मनुष्यों के अत्याचार का अद्भुत सिलसिला चल रहा है, जो रुकने का नाम नहीं ले रहा है। इन पर चिन्ता करने का समय भी बीत रहा है बहुत जल्दी सावधान होने का समय है।

असहाय के लिये तीर्थ -

सैकड़ों ग्रन्थों और हजारों श्लोकों का सार तीन बिन्दुओं में पूरा हो जाता है- रामनाम, रुपया और लाठी, सभी अवस्था, अव्यवस्था और व्यवस्था में तुम्बी की तरह रुपया सबसे ऊपर आ जाता है। शास्त्रकार बड़े कृपालु हैं, सभी प्राणियों पर एक दृष्टि रखते हैं, तीर्थ यात्रा मात्र से ही महान् यज्ञों का फल प्राप्त होना बताते हैं -

महाभारत वनपर्व के सत्संग प्रसंग में धर्मात्मा भीष्म के प्रश्नों का उत्तर देते हुए महर्षि पुलस्त्य सामर्थ्यहीन मनुष्यों के लिये पुण्य प्राप्ति का सुगम उपाय बताते हुए तीर्थों के दर्शन, स्नान, वास, दानादि कृत्यों का वर्णन करते हैं -

प्राप्यन्ते प्राथिवैरेते समृद्धैर्वा नरैः क्वचित् । नार्थन्यूनैर्नावगणैरेकात्मभिरसाधनैः ।।
ऋषीणां परमं गुह्यमिदं भरतसत्तम । तीर्थाभिगमनं पुण्यं यज्ञैरपि विशिष्यते ।।

- समृद्धिशाली मनुष्य, बड़े-बड़े राजा महाराजा, अपार धन खर्च करके बहुत बड़े-बड़े यज्ञों का अनुष्ठान करते हैं, परन्तु जिस सत्कर्म को असहाय और सामर्थ्यहीन मनुष्य भी कर सकते हैं, ऐसे कर्म यज्ञों के समान फल देने वाले हैं उसे बताता हूँ । महर्षि पुलस्त्य ने कहा राजन्- यह कार्य तीर्थयात्रा है, यह बड़ा पवित्र कर्म है और यज्ञों से भी बढ़कर है । तीर्थयात्रा न करने वाला दरिद्र भी हो जाता है । मनुष्य तीर्थयात्रा से जिस फल को पाता है, उसे अति दक्षिणावाले अग्निष्टोम आदि यज्ञों द्वारा और भजन करके भी प्राप्त नहीं कर सकता -

अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्ट्वा विपुलदक्षिणैः । न तत् फलमवाप्नोति तीर्थाभिगमनेन यत् ।।

(म०भा०वन०अ०८२/१५,१७,१९)

तीर्थों के अधिकारी और फल -

शास्त्र वाक्यों से ज्ञात होता है कि जीवन में शम, दम, तितिक्षा, श्रद्धा इत्यादि का महत्वपूर्ण स्थान है । हमारे मृत पितामह भी यह नहीं चाहते हैं कि हमारी सन्तान किसी गलत रास्ते या तिकड़म से धन का संचय करे । नैतिकता शास्त्रों का मुख्य विषय है चाहे वह इहलोक की उन्नति हो या परलोक की, बिना सद्गुणों के उद्धार का विचार शास्त्रों के पास नहीं है । इन्हीं विषयों को शब्दान्तरों से श्रीवेदव्यास जी ने भी समझाया है -

तारिताः पितरस्तेन नरकात्प्रपितामहाः । यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम् ।।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते । प्रतिग्रहादपावृत्तः संतुष्टो येन केनचित् ।।
अहंकारविमुक्तश्च स तीर्थफलमाप्नुयात् । अकल्पको निरारम्भो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ।।
विमुक्तसर्वसंगैस्तु स तीर्थफलभाग्भवेत् । तीर्थान्यनुसरन्धीरः श्रद्दधानः समाहितः ।।
कृतपापो विशुध्येत्तु किं पुनः शुद्धकर्मकृत् । नृणां पापकृतां तीर्थे पापस्य शमनं भवेत् ।।
यथोक्तफलदं तीर्थं भवेच्छुद्धात्मनां नृणाम् । कामं क्रोधं च लोभं च यो जित्वा तीर्थमाविशेत्।
न तेन किञ्चिदप्राप्तं तीर्थाभिगमनाद्भवेत् । तीर्थानि च यथोक्तेन विधिना सञ्चरंति ये ।
सर्वद्वंद्वसहा धीरास्ते नराः स्वर्गगामिनः ।।

(बृहन्नारदीयपु०उ०ख०६२/१२-१९)

- तीर्थों के सेवन से जो फल होता है उसे सुनाते हुये बताया कि- जिसके हाथ, पैर, मन, इन्द्रियाँ अपने वश में हो विद्या, तप, कीर्ति से जो सम्पन्न हो- वही तीर्थ सेवन का फल पाता है । जो प्रतिग्रह संग्रह- धन की ईच्छा से दूर रहकर अपने आप जो कुछ है, उसी से संतुष्ट रहे और जिसमें अहंकार का अभाव हो- वही तीर्थसेवन का फल पाता है । जो दम्भ आदि दोषों से दूर, कर्तृत्व के अहंकार से शून्य, अल्पाहारी और जितेन्द्रिय हो, सब पापों से विमुक्त हो- वही तीर्थ सेवन का फल पाता है । जिसमें क्रोध न हो जो सत्यवादी और दृढतापूर्वक व्रत का पालन करने वाला हो, तथा जो सब प्राणियों के प्रति आत्मभाव रखता हो- वही तीर्थ सेवन का फल पाता है ।

तीर्थयात्रा से पूर्व पुण्य प्राप्त करने के लिये उच्च नैतिक और आध्यात्मिक गुणों पर बल दिया गया है। स्कन्दपुराण काशी खण्ड ६/३ में भी इसी बात को बलपूर्वक कहा गया है कि- जिसका शरीर पवित्र जल से भीगा हुआ है उसे नहाया हुआ नहीं कहते, जो इन्द्रियसंयम के जल से नहाया हुआ है वही वास्तव में तीर्थ का अधिकारी है। शास्त्रों में मन और इन्द्रियों की शुद्धता के बिना धर्माचरण को पाखण्ड बताने के हजारों प्रसंग हैं -

कामं क्रोधं च लोभं च यो जित्वा तीर्थं भावयेत् । न तेन किञ्चिन्न प्राप्तं तीर्थाभिगमनाद् भवेत् ।।

(म०भा०अनु० २५/६५)

तीर्थों के मुख्य दो भेद -

महाभारत अनुशासन पर्व अध्याय १०८ में पार्थिव तीर्थ तथा मानस तीर्थों का मनोहारी वर्णन करते हुए तीर्थों की श्रेष्ठता को बताया है-

१-पार्थिवतीर्थ-

पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यानि शृणु तान्यपि ।।

- पृथ्वीपर जो पुण्यतीर्थ हैं, उनका महत्त्व भी सुनो।

शरीरस्य यथोद्देशाः शुचयः परिकीर्तिताः । तथा पृथिव्या भागाश्च पुण्यानि सलिलानि च ।।

- जैसे शरीर के विभिन्न स्थान पवित्र बताये गये हैं, उसी प्रकार पृथ्वी के भिन्न-भिन्न भाग भी पवित्र तीर्थ हैं और वहाँ का जल पुण्यदायक है।

कीर्तनाच्चैव तीर्थस्य स्नानाच्च पितृतर्पणात् । धुनन्ति पापं तीर्थेषु ते प्रयान्ति सुखं दिवम् ।।

- जो लोग तीर्थों के नाम लेकर तीर्थों में स्नान करके तथा उनमें पितरों का तर्पण करके अपने पाप को धो डालते हैं, वे बड़े सुख से स्वर्ग में जाते हैं।

परिग्रहाच्च साधूनां पृथिव्याश्चैव तेजसा । अतीव पुण्यभागास्ते सलिलस्य च तेजसा ।।

- पृथ्वी के कुछ भाग साधु पुरुषों के निवास से तथा स्वयं पृथ्वी और जल के तेज से पवित्र माने गये हैं।

मनसश्च पृथिव्याश्च पुण्यास्तीर्थास्तथापरे । उभयोरेव यः स्नायात् स सिद्धिं शीघ्रमाप्नुयात् ।।

- इस प्रकार पृथ्वी पर और मन में भी अनेक पुण्यमय तीर्थ हैं जो इन दोनों प्रकार पार्थिव और मानस के तीर्थों में स्नान करता है वह शीघ्र ही परमात्मप्राप्ति रूप सिद्धि प्राप्त कर लेता है।

यथा बलं क्रियाहीनं क्रिया वा बलवर्जिता । नेह साधयते कार्यं समायुक्ता तु सिध्यति ।।
एवं शरीरशौचेन तीर्थशौचेन चान्वितः । शुचिः सिद्धिमवाप्नोति द्विविधं शौचमुत्तमम् ।।

- जैसे क्रियाहीन बल अथवा बल रहित क्रिया इस जगत् कार्य का साधन नहीं बन सकती। बल और क्रिया दोनों के संयुक्त होने पर ही कार्य की सिद्धि होती है, इसी प्रकार शरीर शुद्धि और तीर्थ शुद्धि से युक्त पुरुष ही पवित्र होकर परमात्मप्राप्ति रूप सिद्धि प्राप्त करता है। अतः दोनों प्रकार की शुद्धि ही उत्तम मानी गयी है। (म०भा०अनु०१०८/१६-२१)

२- मानसतीर्थ -

महाभारत के अनुशासन पर्व में युधिष्ठिर के पूछने पर पितामह भीष्म ने मानसतीर्थ का सारपूर्ण वर्णन किया है ।

सर्वाणि खलु तीर्थानि गुणवन्ति मनीषिणः । यत्तु तीर्थं च शौचं च तन्मे शृणु समाहितः ।।

- भीष्मजी ने युधिष्ठिर को कहा राजन्! इस पृथ्वीपर जितने तीर्थ हैं, वे सब मनीषी पुरुषों के लिये गुणकारी होते हैं, किन्तु उन सबमें जो परम पवित्र और प्रधान तीर्थ हैं, उसका वर्णन करता हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो-

अगाधे विमले शुद्धे सत्यतोये धृतिह्रदे । स्नातव्यं मानसे तीर्थे सत्त्वमालम्ब्य शाश्वतम् ।।

- जिसमें धैर्यरूप कुण्ड और सत्यरूप जल भरा हुआ है तथा जो अगाध, निर्मल एवं अत्यन्त शुद्ध है, उस मानस तीर्थ में सदा परमात्माका आश्रय लेकर स्नान करना चाहिये ।

तीर्थशौचमनर्थित्वमार्जवं सत्यमार्दवम् । अहिंसा सर्वभूतानामानृशंस्यं दमः शमः ।।

- कामना और याचना का अभाव, सरलता, सत्य, मृदुता, अहिंसा, समस्त प्राणियों के प्रति क्रूरता का अभाव- दया, इन्द्रियसंयम और मनोनिग्रह- ये ही इस मानस तीर्थ के सेवन से प्राप्त होने वाली पवित्रता के लक्षण हैं ।

निर्ममा निरहंकारा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः । शुचयस्तीर्थभूतास्ते ये भैक्ष्यमुपभुञ्जते ।।

- जो ममता, अहंकार, राग-द्वेषादि द्वन्द्व और संग्रह से रहित एवं भिक्षासे जीवन निर्वाह करते हैं, वे विशुद्ध अन्तःकरण वाले साधु पुरुष तीर्थस्वरूप हैं ।

तत्त्ववित्त्वनहंबुद्धिस्तीर्थप्रवरमुच्यते । शौचलक्षणमेतत् ते सर्वत्रैवान्ववेक्षतः ।।

- किन्तु जिसकी बुद्धि में अहंकारका नाम भी नहीं है, वह तत्त्वज्ञानी पुरुष श्रेष्ठ तीर्थ कहलाता है। भगवान् नारायण अथवा भगवान् शिवमें जो भक्ति होती है, वह भी उत्तम तीर्थ मानी गयी है। पवित्रताका यह लक्षण तुम्हें विचार करनेपर सर्वत्र ही दृष्टिगोचर होगा।

रजस्तमः सत्त्वमथो येषां निर्धौतमात्मनः । शोचाशौचसमायुक्ताः स्वकार्यपरिमार्गिणः ।।
सर्वत्यागेष्वभिरताः सर्वज्ञाः समदर्शिनः । शौचेन वृत्तशौचार्थास्ते तीर्थाः शुचयश्च ये ।।

- जिनके अन्तःकरण से तमोगुण, रजोगुण और सत्त्वगुण धुल गये हैं अर्थात् जो तीनों गुणों से रहित हैं, जो बाह्य पवित्रता और अपवित्रता से युक्त रहकर भी अपने कर्तव्य (तत्त्व-विचार, ध्यान, उपासना आदि) का ही अनुसंधान करते हैं। जो सर्वस्व के त्याग में ही अभिरुचि रखते हैं, सर्वज्ञ और समदर्शी होकर शौचाचार के पालनद्वारा आत्मशुद्धिका सम्पादन करते हैं, वे सत्पुरुष ही परम पवित्र तीर्थस्वरूप हैं ।

नोदकक्लिन्नगात्रस्तु स्नात इत्यभिधीयते । स स्नातो यो दमस्नातः स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ।।

- शरीर को केवल पानी से भिगो लेना ही स्नान नहीं कहलाता है। सच्चा स्नान तो उसी ने किया है, जिसने मन-इन्द्रिय के संयमरूपी जल में गोता लगाया है। वही बाहर और भीतर से भी पवित्र माना गया है ।

अतीतेष्वनपेक्षा ये प्राप्तेष्वर्थेषु निर्ममाः । शौचमेव परं तेषां येषां नोत्पद्यते स्पृहा ।।

- जो बीते या नष्ट हुए विषयों की अपेक्षा नहीं रखते, प्राप्त हुए पदार्थों में ममताशून्य होते हैं तथा जिनके मनमें कोई इच्छा पैदा ही नहीं होती, उन्हीं में परम पवित्रता होती है ।

प्रज्ञानं शौचमेवेह शरीरस्य विशेषतः । तथा निष्किञ्चनत्वं च मनसश्च प्रसन्नता ।।

- इस जगत् में प्रज्ञान ही शरीर-शुद्धि का विशेष साधन हैं । इसी प्रकार अकिंचनता और मनकी प्रसन्नता भी शरीर को शुद्ध करनेवाले हैं ।

वृत्तशौचं मनःशौचं तीर्थशौचमतः परम् । ज्ञानोत्पन्नं च यच्छौचं तच्छौचं परमं स्मृतम् ।।

- शुद्धि चार प्रकार की मानी गयी है- आचारशुद्धि, मन:शुद्धि, तीर्थशुद्धि और ज्ञानशुद्धि इनमें ज्ञान से प्राप्त होने वाली शुद्धि ही सबसे श्रेष्ठ मानी गयी है।

मनसा च प्रदीप्तेन ब्रह्मज्ञानजलेन च । स्नाति यो मानसे तीर्थे तत्स्नानं तत्त्वदर्शिनः ।।

- जो प्रसन्न एवं शुद्ध मनसे ब्रह्मज्ञानरूपी जल के द्वारा मानसतीर्थ में स्नान करता है, उसका वह स्नान ही तत्त्वदर्शी ज्ञानीका स्नान माना गया है ।

समारोपितशौचस्तु नित्यं भावसमाहितः । केवलं गुणसम्पन्नः शुचिरेव नरः सदा ।।

- जो सदा शौचाचार से सम्पन्न, विशुद्ध भाव से युक्त और केवल सद्गुणों से विभूषित है, उस मनुष्य को सदा शुद्ध ही समझना चाहिये । (म०भा०अनु०१०८/२-१४)

मानस तीर्थ का महत्त्व -

यान्यन्यानि तीर्थाणि दुर्गाणि विषमाणि च । मनसा तानि गम्यानि सर्वतीर्थसमीक्षया ।।

- असामर्थ्य में तीर्थों की मानसिक यात्रा करें । तीर्थों का मन ही मन चिन्तन करें -

(म०भा०अनु०२५/६६)

सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः । सर्वभूतदया तीर्थं तीर्थमार्जवमेव च ।।

- सत्य तीर्थ है, क्षमा तीर्थ है, इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना भी तीर्थ है, सब प्राणियोंपर दया करना तीर्थ है और सरलता भी तीर्थ है ।

दानं तीर्थं दमस्तीर्थं संतोषस्तीर्थमुच्यते । ब्रह्मचर्यं परं तीर्थं तीर्थं च प्रियवादिता ।।

- दान तीर्थ है, मनका संयम तीर्थ है, संतोष भी तीर्थ कहा जाता है । ब्रह्मचर्य परम तीर्थ है और प्रिय वचन बोलना भी तीर्थ है ।

ज्ञानं तीर्थं धृतिस्तीर्थं तपस्तीर्थमुदाहृतम् । तीर्थानामपि तत्तीर्थं विशुद्धिर्मनसः परा ।।

- ज्ञान तीर्थ है, धैर्य तीर्थ है, तपको भी तीर्थ कहा गया है । तीर्थों में भी सबसे श्रेष्ठ तीर्थ है अन्त:करण की आत्यन्तिक विशुद्धि ।

न जलाप्लुतदेहस्य स्नानमित्यभिधीयते । स स्नातो यो दमस्नातः शुचिः शुद्धमनोमलः ।।

- जल में शरीर को डुबो लेना ही स्नान नहीं कहलाता । जिसने दमरूपी तीर्थ में स्नान किया

है- मन-इन्द्रियों को वश में कर रखा है, उसी ने वास्तव में स्नान किया है । जिसने मन का मल धो डाला है, वही शुद्ध है ।

यो लुब्धः पिशुनः क्रूरो दाम्भिको विषयात्मकः। सर्वतीर्थेष्वपि स्नातः पापो मलिन एव सः ।।

- जो लोभी है, चुगलखोर है, निर्दय है, दम्भी है और विषयासक्त है, वह सब तीर्थों में स्नान करके भी पापी और मलिन ही रह जाता है ।

न शरीमलत्यागान्नरो भवति निर्मलः । मानसे तु मले त्यक्ते भवत्यन्तःसुनिर्मलः ।।

- केवल शरीर के मैल को उतार देने से ही मनुष्य निर्मल नहीं हो जाता । मानसिक मलके परित्याग से ही निर्मल होता है ।

जायन्ते च म्रियन्ते च जलेष्वेव जलौकसः । न च गच्छन्ति ते स्वर्गमविशुद्धमनोमलाः ।।

- जल में निवास करनेवाले जीव जल में ही जन्मते और मरते हैं, पर उनका मानसिक मल नहीं धुलता, इससे वे स्वर्गको नहीं जाते ।

विषयेष्वतिसंरागो मानसो मल उच्यते । तेष्वेव हि विरागोऽस्य नैर्मल्यं समुदाहृतम् ।।

- विषयों के प्रति अत्यन्त आसक्तिको ही मानसिक मल कहा जाता है उन विषयों में वैराग्य होना ही निर्मलता कहलाती है ।

चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानान्न शुद्ध्यति । शतशोऽपि जलैर्धौतं सुराभाण्डमिवाशुचिः ।।

- चित्तके भीतर यदि दोष भरा है तो वह तीर्थ-स्नान से शुद्ध नहीं होता। जैसे मदिरा से भरे हुए घड़े को ऊपर से जलों द्वारा सैकड़ों बार धोया जाय तो भी वह पवित्र नहीं होता । उसी प्रकार दूषित अन्तःकरणवाला मनुष्य भी तीर्थस्नानसे शुद्ध नहीं होता ।

दानमिज्या तपः शौचं तीर्थसेवा श्रुतं तथा । सर्वाण्येतान्यतीर्थानि यदि भावो न निर्मलः ।।

- भीतर का भाव शुद्ध न हो तो दान, यज्ञ, तप, शौच, तीर्थसेवन, शास्त्र-श्रवण और स्वाध्याय- ये सभी अतीर्थ हो जाते हैं ।

निगृहीतेन्द्रियग्रामो यत्रैव च वसेन्नरः । तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्कराणि च ।।

- जिसने इन्द्रिय- समूह को वशमें कर लिया है, वह मनुष्य जहाँ भी निवास करता है, वहीं उसके लिये कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य और पुष्कर आदि तीर्थ हैं ।

ध्यानपूते ज्ञानजले रागद्वेषमलापहे । यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम् ।।

- ध्यानके द्वारा पवित्र तथा ज्ञानरूपी जल से भरे हुए, राग-द्वेषरूप मलको दूर करनेवाले मानस-तीर्थ में जो पुरुष स्नान करता है, वह परमगति - मोक्ष को प्राप्त होता है ।

(स्कन्द०काशीखण्ड अ०६/३०-४१)

तीर्थों के चार भेद- दैव, आसुर, आर्ष और मानुष -

ब्रह्मपुराण में तीर्थों के चार भेदों को बताया है -

नारद उवाच -

तपसो यज्ञदानानां तीर्थानां पावनं स्मृतम् । सर्वं श्रुतं मया त्वत्तो जगद्योने जगत्पते ।।१४।।
कियन्ति सन्ति तीर्थानि स्वर्गमर्त्यरसातले । सर्वेषामेव तीर्थानां सर्वदा किं विशिष्यते ।।१५।।

- नारद जी ने कहा- जगत् के आदि कारण ! आपसे मैंने तप, यज्ञ, दान और तीर्थों का पवित्र माहात्म्य पूर्णरूपेण सुना । अब यह बतलाइये कि स्वर्ग, मर्त्य और रसातलों में कितने तीर्थ हैं और उन सब तीर्थों में किसकी महत्ता सर्वदा मानी जाती है ।

ब्रह्मोवाच -

चतुर्विधानि तीर्थानि स्वर्गे मर्त्ये रसातले । दैवानि मुनिशार्दूल आसुराण्यारुषाणि च ।।१६।।
मानुषाणि त्रिलोकेषु विख्यातानि सुरादिभिः । मानुषेभ्यश्च तीर्थेभ्य आर्षं तीर्थमनुत्तमम् ।।१७।।
आर्षेभ्यश्चैव तीर्थेभ्य आसुरं बहुपुण्यदम् । आसुरेभ्यस्तथा पुण्यं दैवं तत्सार्वकामिकम् ।।१८।।

- ब्रह्मा जी ने कहा- मुनिशार्दूल! देवताओं एवं तत्त्वज्ञानियों ने स्वर्ग, मर्त्य और रसातल में स्थित दैव, आसुर, आर्ष और मानुष- ये चार प्रकार के तीर्थ बतलाये हैं । इनमें मानुष तीर्थों से आर्षतीर्थ उत्तम माने गये हैं, आर्ष से आसुरतीर्थ अधिक पुण्यप्रद माने गये हैं, और आसुरतीर्थों से दैवतीर्थ सब मनोरथों के दाता कहे गये हैं । ब्रह्मा-विष्णु-महेश द्वारा प्रतिष्ठित तीर्थ देवतीर्थ कहे जाते हैं । इन तीनों देवों द्वारा जो तीर्थ प्रतिष्ठित हुआ उस दैव तीर्थ से श्रेष्ठ कोई अन्य तीर्थ नहीं है । तीनों लोकों के तीर्थ पवित्र माने गये हैं परन्तु उनमें भी जम्बूद्वीप के तीर्थ बहुत उत्तम फल देने वाले हैं । जम्बूद्वीप के तीर्थों से भी भारतवर्ष त्रिभुवन-प्रसिद्ध तीर्थ हैं । चूँकि यह भारतवर्ष कर्मभूमि है, इसलिये यह तीर्थ कहा जाता है । उस देश में जितने तीर्थ हैं उनके विषय में मैंने तुमसे कहा है कि हिमालय और विन्ध्य गिरि के मध्य की छह नदियाँ हैं। उसी प्रकार हे नारद! विन्ध्य और दक्षिण सागर के मध्य की छह नदियाँ भी देवनदियाँ हैं । ये बारह नदियाँ प्रधान रूप से श्रेष्ठ मानी गयी हैं । क्योंकि भारत सबसे पूजित, अधिक पुण्य देने वाला और कर्मभूमि है, अत एव इसको देवों ने वर्ष (श्रेष्ठ) कहा है। आर्ष और कहीं-कहीं दैवतीर्थ भी आसुर प्रदेशों अथवा असुर-समूह से घिरे हैं, इसीलिए उनको आसुर कहा गया है । दैव प्रदेशों में ही ऋषियों ने तपस्या कर दैव-प्रभाव या अपनी तपस्या के प्रभाव से आर्ष तीर्थों का निर्माण किया है । लोक-कल्याण, मुक्ति, पूजा, ऐश्वर्य-प्राप्ति अथवा अपनी अभीष्ट-सिद्धि या यश प्राप्ति के लिए मनुष्यों ने जिन तीर्थों को बनाया, वे ही मानुष तीर्थ कहे जाते हैं ।

देवतीर्थ - विन्ध्य के दक्षिण भाग में गोदावरी, भीमरथी, तुंगभद्रा, वेणिका, तापी, पयोष्णी, ये नदियाँ हैं । भागीरथी, नर्मदा, यमुना, सरस्वती, विशोका और वितस्ता ये हिमालयादि पुण्य पर्वतों से निकली हैं । ये नदियाँ अत्यन्त पुण्यजनक और देवतीर्थ कही गयी हैं ।

आसुरतीर्थ - गय, कोल्लासुर, वृत्र, त्रिपुर, अन्धक, हयमूर्धा, लवण, नमुचि, शृंगक, यम, पातालकेतु, मय और पुष्कर इन असुरों से अधिष्ठित अथवा घिरे हुए तीर्थ आसुर हैं और शुभ भी हैं।

आर्षतीर्थ - प्रभाव, भार्गव, अगस्ति, नरनारायण, वशिष्ठ, भारद्वाज, गौतम, कश्यप और मनु इत्यादि ऋषियों से सेवित आर्षतीर्थ हैं ।

मानुषतीर्थ - अम्बरीष, हरिश्चन्द्र, मान्धाता, मनु, कुरु, कनखल-दक्षप्रजापति, भद्राश्व, सगर, अश्वयूप, नचिकेता, वृषाकपि, अरिंदम आदि से निर्मित शुभ मानुषतीर्थ हैं । नारद! इस लोक में यश तथा ऐश्वर्य की सिद्धि के निमित्त बनाये गये या स्वयं उत्पन्न दैवतीर्थ जहाँ-कहीं भी इन तीनों लोकों में हैं, वे सभी पुण्यतीर्थ कहे जाते हैं । इस प्रकार मैंने तीर्थ के भेद सुना दिये ।

(ब्रह्ममहापु०अ०-७०)

शास्त्रीय व्यवस्थाओं से यह निश्चय होता है कि तीर्थयात्रा में सभी का अधिकार था । तीर्थों की फलदायकता अन्य शास्त्रीय धार्मिककृत्यों से भी श्रेष्ठ बतायी गयी है । जातिप्रथा, वर्णव्यवस्था, छोटे-बड़े, अमीरी-गरीबी, छुआ-छूत इत्यादि सभी भेद-भावों का तीर्थों में निषेध किया गया है ।

तीर्थे विवाहे यात्रायां संग्रामे देशविप्लवे । नगरग्रामदाहे च स्पृष्टास्पृष्टिर्न दुष्यति ।।

(स्मृति चन्द्रिका -१२२)

तीर्थयात्रा से किसकी शुद्धि होती है?-

श्रद्धावान्, जितेन्द्रिय और शुभकर्म करने वालों को तीर्थयात्रा से शुद्ध होना बताया है परन्तु १- अश्रद्धावान्, २- पापी, ३- नास्तिक, ४- संशयात्मा ५- हेतुद्रष्टा-क्या, क्यों, कैसे- जैसे व्यर्थ के तर्कों में लगे हुए लोगों को तीर्थ के फलों की प्राप्ति नहीं बतायी गयी है -

अश्रद्दधानः पापार्तो नास्तिकोऽच्छिन्नसंशयः। हेतुनिष्ठश्च पंचैते न तीर्थफलभागिनः ।।

(बृहन्नारदीयपु०उ०ख०अ०-६२/१६-१७)

तीर्थ में किये गये यज्ञ, दान, स्वाध्याय, पापों को दमन करने वाले बताये गये हैं, वामन पुराण तीर्थ का विस्तार करते हुए इसे और आलंकारिक रूपक देते हैं -

आत्मा नदी संयमपुण्यतीर्था सत्योदका शीलशमादियुक्ता ।
तस्यां स्नातः पुण्यकर्मा पुनाति न वारिणा शुद्ध्यन्ति चान्तरात्मा ।।

- आत्मसंयमरूप नदी ही मनुष्यों को शुद्ध कर सकती है । नारद, पद्म, वराह पुराण और महाभारत आदि में तीर्थों की संख्या अनन्त कोटि बतायी है । सभी तीर्थों का सार गंगा में बताया है। धर्मशास्त्र निबन्धकारों ने गंगा जी की अपार महिमा के कारण गंगा तीर्थों पर ही ज्यादा विस्तार से लिखा है । (वामनपु०४३/२५)

तीर्थों में कैसे रहें - तीर्थों में तड़क-भड़क छोड़कर सादगी से रहने और साधारण वस्त्र, सादा भोजन, नियम-संयम से रहने का विधान है । तीर्थों के माहात्म्य वर्णन के बारे में वैदिक साहित्य के अतिरिक्त पुराण, रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों में एक लाख बीस हजार से अधिक श्लोक हैं । तीर्थों के प्रति अपार श्रद्धा शास्त्रों का मुख्य विषय रहा है- यह जगह-जगह देखने में आता है । ब्रह्मपुराण के चौदह

हजार श्लोकों में आठ हजार श्लोक तीर्थों के वर्णन में ही पूरे हो जाते हैं । इसके अतिरिक्त, धर्मशास्त्र-निबन्धकार आचार्य लक्ष्मीधर का तीर्थ विवेचन, हेमाद्रि का तीर्थ खण्ड, वाचस्पति की तीर्थ चिन्तामणि, नृसिंह प्रसाद का तीर्थसार, नारायणभट्ट का त्रिस्थली सेतु, रघुनन्दन का तीर्थतत्त्व, मित्रमिश्र का तीर्थप्रकाश, भट्टोजीदीक्षित का त्रिस्थली सेतु संग्रह, नागेश का तीर्थेन्दुशेखर और निर्णयसिन्धु, धर्मसिन्धु आदि अनुपम ग्रन्थ तीर्थों की महिमा को बताने के लिये लिखे गये हैं ।

धर्मस्थल और तीर्थयात्रा शास्त्र का विषय है, मनमानी का विषय नहीं है । इनकी शास्त्रीय मर्यादा है । इनको पिकनिक सेन्टर या मौजमस्ती की जगह के रूप में देखना या बदलना अपराध और पाप है । इस अपराध और पाप को करने में हजारों व्यावसायिक संगठन और सरकार की अदूरदर्शी योजनायें बहुत ताकत के साथ खड़ी हो गई है, पूरा हिमालय, हवाई जहाज और हेलीकाप्टर की गड़गड़ाहट, डायनामाइट से काँप रहा है । सुन्दर और मनोहर प्रकृति को विकृत करना अक्षम्य अपराध है । विज्ञान एवं सरकारी योजनायें इस बात को अच्छी तरह से जानती हैं कि पृथ्वी पर जो कुछ भी नष्ट हो जायेगा वह वापस कभी नहीं आयेगा । प्राय: सभी जगह तीर्थों की, नदी, पर्वतों की मौलिकता, पवित्रता और इसके भौतिक स्वरूप को बदलने का दूषित प्रयास, स्वार्थ, पर्यटन और विकास के नाम पर किया जा रहा है। डिब्बों, ठेलों, ट्रालियों और ट्रकों में भरकर नवरात्रि, गणेशपूजन, लक्ष्मीपूजन, जैसे उत्सवों का कचरा कूड़ा धार्मिक लोगों द्वारा ही सबसे ज्यादा नदियों, तालाबों में डाला जा रहा है। शास्त्र की आज्ञा है कि धर्म का अध्ययन पूरी तरह से करके ही धर्म को आचरण में लाना चाहिये अन्यथा अनर्थ होने की पूरी-पूरी सम्भावना है । शास्त्रों में उच्छिष्ट, कूड़ा-कचरा, या मृतक के संस्कार के तीन तरीके बताये गये हैं -

(१) भूनिखात (जमीन में गाड़ देना),

(२) अग्निदाह,

(३) जल प्रवाह-

सबसे अच्छा तरीका है- जमीन में गाड़ देना या जला देना । गंदगी को जल में डालकर जल, तालाब, नदी, सागरों को दूषित नहीं करना चाहिये । लाखों-करोड़ों वर्षों से कलकल बहती नदियों, झरनों को हमने कुछ ही वर्षों में गन्दे नालों में बदल दिया और पुण्यप्रदा नदियों को शान से नाला भी बोलने लग गये हैं । ऐसा अधर्म और अपराध शायद ही किसी युग में, किसी धर्म में देखने को मिला होगा । प्रस्तुत पुस्तिका में शास्त्रों के प्रामाणिक उद्धरण देने का यही तात्पर्य है कि हम अपने धर्म-कर्म का मूलस्त्रोत और जीवनीशक्ति मूलशास्त्रों से ही प्राप्त करें । मूल ग्रन्थों के आलोक में ही सफलता है। व्यावसायिकता के दौर में बाग-बगीचे, प्राकृत और मानव निर्मित दर्शनीय ऐतिहासिक स्थल, पीने का पानी आदि सभी को पैसे के लेन-देन से जोड़ दिया गया है । प्राय: सभी अच्छी प्राकृतिक जगहों पर व्यावसायिक दृष्टि रखने वाले लोगों का कब्जा हो गया है । धार्मिक प्रतीकों को नष्ट कर उन स्थानों को

तेजी से व्यावसायिक गिरफ्त में लिया जा रहा है । दिखावा और स्वार्थवश नयी-नयी कोलाहल और प्रदूषण से भरी हुई अशास्त्रीय धार्मिकता जन्म ले रही है- इस सभी बातों पर विचार कर धर्म के शुद्धरूप को जनमानस को दिखाना हम सभी का परम दायित्व है ।

तीर्थविधि -

यं समाश्रित्य मनुजो यथोक्तं फलमाप्नुयात् । तीर्थाभिगमनं पुण्यं यज्ञैरपि विशिष्यते ।।

- तीर्थों में जाकर पुण्य अर्जन करने की विधियों के बारे में शास्त्रों ने विस्तार से बताया है कि सभी मनुष्यों के लिये तीर्थों का फल यज्ञों के फल से भी अधिक है ।

अनुपोष्य त्रिरात्राणि तीर्थान्यप्यभिगम्य च । अदत्त्वा कांचनं गाश्च दरिद्रो जायते नरः ।।

- तीर्थों में जाकर कम से कम तीन रात्रि वहाँ निवास करें और यथाशक्ति दान-पुण्य करे ।

अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्ट्वा विपुलदक्षिणैः । न तत्फलमावाप्नोति तीर्थाभिगमनेन यत् ।।
अज्ञानेनापि यस्येह तीर्थाभिगमनं भवेत् । सर्वकामसमृद्धः स स्वर्गलोके महीयते ।।
स्थानं च लभते नित्यं धनधान्यसमाकुलम् । ऐश्वर्यज्ञानसंपूर्णः सदा भवति भोगवान् ।।

- तीर्थ में जाने की इच्छा न हो और किसी के साथ तीर्थों में चला भी जाये तो ऐसे व्यक्ति को भी महायज्ञ करने के बराबर जो फल होता है वह उसे भी तीर्थयात्रा में जाने पर मिल जाता है ।

गंगादितीर्थेषु वसंति मत्स्या देवालये पक्षिगणाश्च सन्ति ।
भावोज्झितास्ते न फलं लभंते तीर्थाच्च देवायतनाच्च मुख्यात् ।।
भावं ततो हृत्कमले निधाय तीर्थानि सेवेत समाहितात्मा ।
या तीर्थयात्रा कथिता मुनीन्द्रैः कृता प्रयुक्ता ह्यनुमोदिता च ।।

- जल में रहने वाले जीवों और देवालयों में पलने वाले पक्षियों की तरह ही बिना ज्ञान, श्रद्धाभक्ति, तितिक्षा के पुण्यतीर्थों में किये गये स्नान का लाभ और देवालयों का वास निरर्थक बताया है।

मन की शुद्धता और भावों की प्रधानता के साथ मन को समाहित करके तीर्थयात्रा करना चाहिये, यही शास्त्रों का आदेश है । (बृहन्नारदीयपु०उ०ख०अ०-६२/२०-२१)

तीर्थयात्रा प्राचीन भारत में बहुत ही दुष्कर थी । तीर्थयात्रा करके वापस लौट आने में सन्देह रहता था, तीर्थयात्री अपना जीवित श्राद्ध करके यात्रा करते थे । ऋषियों ने सभी को तीर्थयात्रा के समान फल की प्राप्ति हो इसलिये कई सुगम मार्ग बताये हैं, निम्नलिखित छः स्थान भी तीर्थों के समान ही माने गये हैं -

तीर्थों के आलंकारिक भेद -

१-भक्त तीर्थ -

भवद्विधा भागवतास्तीर्थभूताः स्वयं विभो । तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तःस्थेन गदाभृता।।

- युधिष्ठिर जी भक्तश्रेष्ठ विदुरजी से कहते हैं- आप जैसे भागवत- भगवान् के प्रिय भक्त स्वयं ही तीर्थरूप होते हैं । आप लोग अपने हृदय में विराजित भगवान् के द्वारा तीर्थों को भी महातीर्थ बनाते हुए विचरण करते हैं ।' (श्रीमद्भागपु० १/१३/१०)

२-गुरु तीर्थ -

दिवा प्रकाशकः सूर्यः शशी रात्रौ प्रकाशकः । गृहप्रकाशको दीपस्तमोनाशकरः सदा ।।
रात्रौ दिवा गृहस्यान्ते गुरुः शिष्यं सदैव हि । अज्ञानाख्यं तमस्तस्य गुरुः सर्वं प्रकाशयेत् ।।
तस्माद् गुरुः परं तीर्थं शिष्याणामवनीपते ।।

- सूर्य दिन में प्रकाश करते हैं, चन्द्रमा रात्रिमें प्रकाशित होते हैं, दीपक घरमें उजाला करता है तथा सदा घरके अँधेरे का नाश करता है; परंतु गुरु अपने शिष्य के हृदय में रात-दिन सदा ही प्रकाश फैलाते रहते हैं। वे शिष्य के सम्पूर्ण अज्ञानमय अन्धकार का नाश कर देते हैं। अत एव राजन्! शिष्यों के लिये गुरु ही परम तीर्थ हैं। (पद्मपु०भूमि०८४/१२-१४)

३-माता तीर्थ, ४- पिता तीर्थ -

नास्ति मातृसमं तीर्थं पुत्राणां च पितुः समम् । तारणाय हितायैव इहैव च परत्र च ।।
वेदैरपि च किं विप्र पिता येन न पूजितः । माता न पूजिता येन तस्य वेदा निरर्थकाः ।।
एष पुत्रस्य वै धर्मस्तथा तीर्थं नरेष्विह । एष पुत्रस्य वै मोक्षस्तथा जन्मफलं शुभम् ।।

- पुत्रों के इस लोक और परलोक के कल्याण के लिये माता-पिता के समान कोई तीर्थ नहीं है। माता-पिता का जिसने पूजन नहीं किया, उसे वेदों से क्या प्रयोजन है? (उसका वेदाध्ययन व्यर्थ है।) पुत्र के लिये माता-पिता का पूजन ही धर्म है, वही तीर्थ है, वही मोक्ष है और वही जन्म का शुभ फल है। (पद्मपु०भूमि० ६४/१४,१९,२१)

५-पति तीर्थ -

सव्यं पादं स्वभर्तुश्च प्रयागं विद्धि सत्तम । वामं च पुष्करं तस्य या नारी परिकल्पयेत् ।।
तस्य पादोदकस्नानात् तत्पुण्यं परिजायते । प्रयागपुष्करसमं स्नानं स्त्रीणां न संशयः ।
सर्वतीर्थमयो भर्ता सर्वपुण्यमयः पतिः ।

- जो स्त्री अपने पति के दाहिने चरण को प्रयाग और बायें चरण को पुष्कर समझकर पति के चरणोदक से स्नान करती है, उसे उन तीर्थों के स्नान का पुण्य होता है। ऐसा स्नान प्रयाग तथा पुष्कर में स्नान करने के सदृश है, इसमें कोई संदेह नहीं है। पति सर्वतीर्थमय और सर्वपुण्यमय है।
(पद्मपु०४१/१३-१४,१५)

६-पत्नी तीर्थ -

सर्वाचारपरा भव्या धर्मसाधनतत्परा । पतिव्रतरता नित्यं सर्वदा ज्ञानवत्सला ।।
एवंगुणा भवेद् भार्या यस्य पुण्या महासती । तस्य गेहे सदा देवास्तिष्ठन्ति च महौजसः ।।
पितरो गेहमध्यस्थाः श्रेयो वाञ्छन्ति तस्य च । गङ्गाद्याः सरितः पुण्याः सागरास्तत्र नान्यथा ।।
पुण्या सती यस्य गेहे वर्तते सत्यतत्परा । तत्र यज्ञाश्च गावश्च ऋषयस्तत्र नान्यथा ।।
तत्र सर्वाणि तीर्थानि पुण्यानि विविधानि च । नास्ति भार्यासमं तीर्थं नास्ति भार्यासमं सुखम्।।
नास्ति भार्यासमं पुण्यं तारणाय हिताय च ।।

- जो सब प्रकार से सदाचार का पालन करने वाली, प्रशंसा के योग्य आचरण वाली, धर्म

साधन में लगी हुई, सदा पातिव्रत्य का पालन करने वाली तथा ज्ञान की नित्य अनुरागिणी है, ऐसी गुणवती पुण्यमयी महासती जिसके घर में पत्नी हो, उसके घर में सदा देवता निवास करते हैं, पितर भी उसके घर में रहकर सदा उसके कल्याण की कामना करते हैं। जिसके घर में ऐसी सत्परायणा, पवित्रहृदया सती रहती है, उस घर में गंगा आदि पवित्र नदियाँ, समुद्र, यज्ञ, गौएँ, ऋषिगण तथा सम्पूर्ण विविध पवित्र तीर्थ रहते हैं। कल्याण तथा उद्धार के लिये भार्या के समान कोई तीर्थ नहीं है, भार्या के समान सुख नहीं है और भार्या के समान पुण्य नहीं है। (पद्मपु०भूमि० ५९/११-२४)

तीर्थयात्रा में स्त्रियों का पूर्ण अधिकार, आख्यान -

सभी आश्रम- ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास के लोग तीर्थ में स्नानकर सात पीढ़ियों की रक्षा करते हैं, चारों वर्णों के लोग एवं स्त्रियाँ भक्तिपूर्वक स्नान, ध्यान, दान करने से परमोच्च ध्येय को प्राप्त करती हैं। ब्रह्मचारी को गुरु की आज्ञा और महिला को पति के साथ ही तीर्थ यात्रा करनी चाहिये। पति को भी पत्नी के साथ ही तीर्थयात्रा का विधान किया गया है। पत्नी के बिना पति को तीर्थयात्रा का फल प्राप्त नहीं होता है। पद्मपुराण के एक आख्यान में वेन के प्रश्न में भगवान् विष्णु स्पष्ट करते है कि पुत्र, पत्नी, माता, पिता और गुरु भी तीर्थ हैं। नीचे दी गई कथा में पत्नीतीर्थ की उपेक्षा करके गये हुए, कृकल नामक धनपति वैश्य की तीर्थयात्रा की निरर्थकता और पितृगणों का बन्धन से न छूटना बताया गया है-

गंगा के किनारे बसी हुई काशी नगरी में कृकल नाम का वैश्य रहता था। उसकी पत्नी सुकला परम साध्वी और उत्तम व्रतों का पालन करने वाली थी। कृकल वैश्य भी बहुत धार्मिक और धनवान् व्यक्ति थे। तीर्थ यात्रा में उनकी बहुत श्रद्धा थी। सुकला को पता चला की पतिदेव अकेले ही तीर्थ यात्रा पर जाना चाहते हैं। एकान्त पाकर पति से निवेदन किया- प्राणनाथ आप अकेले ही तीर्थ यात्रा पर क्यों जा रहे हैं, मैं आपकी अर्धांगिनी हूँ। पति कृकल सुकुमारी पत्नी को कठिन यात्रा पर ले जाना नहीं चाहते थे। रात्रि में पत्नी को बिना बताये चुपचाप चल दिये। रोती हुई सुकला अपने पति को खोजने लगी, उसकी दशा देख लोगों ने समझाया तुम्हारे पति धर्मात्मा हैं, कुछ ही समय में तीर्थ यात्रा करके आ जायेंगे, चिन्ता मत करो। दुःखी होकर बिना श्रृंगार किये व्रत करती हुई, चटाई पर सोकर सुकला अपने दिन बिताने लगी। इसकी दशा देख कर सखियों ने पूछा, तुम्हारी यह दशा क्यों है? सुकला बोली मेरे पति मुझे छोड़कर धर्मकमाने तीर्थयात्रा पर गये हैं, इसी से मैं दुःखी हूँ।

समय बीतने के बाद कृकल वैश्य तीर्थ यात्रा से घर की ओर बड़ी प्रसन्नता से लौटे। वे सोच रहे थे- मेरा जन्म सफल हो गया मेरे पितर मुक्त हो गये हैं। वे सोच ही रहे थे कि एक विकराल पुरुष कृकल के पिता-पितामहों को बांधे हुए कृकल के सामने खड़ा हो गया, कहने लगा- तुम्हारा पुण्य उत्तम नहीं हैं, तुम्हे तीर्थयात्रा का फल नहीं मिला, तुम्हारे पितर मुक्त नहीं हुए हैं, ये पाश से बंधे हुए हैं, तुमने उत्तम विचार वाली अपनी पुण्यमयी पत्नी को अकेले छोड़कर यह यात्रा की है। कृकल ने कहा धर्मदेव

मुझे पितरों को बन्धन से मुक्त करने का मार्ग दिखाइये। धर्मदेव ने कहा- विवाहित के लिये पत्नी तीर्थ से बड़ा कोई तीर्थ नहीं है। तुम घर जाकर पत्नी के साथ श्राद्ध करो, तुम्हारे पितृगण मुक्त हो जायेंगे।

नास्ति भार्यासमं तीर्थं पुंसां सुगतिदायकम् । भार्यां बिना चयो धर्मः स एव निष्फलो भवेत् ।।

(पद्मपु०भूमि०५९/३३-३४)

तीर्थों में प्रयागराज की श्रेष्ठता -

ततो गच्छेत राजेन्द्र प्रयागमृषिसंस्तुतम् ।।
तत्र ब्रह्मादयो देवा दिशश्च सदिगीश्वराः । लोकपालाश्च साध्याश्च पितरो लोकसम्मताः।।
सनत्कुमारप्रमुखास्तथैव परमर्षयः । अङ्गिरःप्रमुखाश्चैव तथा ब्रह्मर्षयोऽमलाः ।।
तथा नागाः सुपर्णाश्च सिद्धाश्चक्रचरास्तथा। सरितः सागराश्चैव गन्धर्वाप्सरसोऽपि च।।
हरिश्च भगवानास्ते प्रजापतिपुरस्कृतः । तत्र त्रीण्यग्निकुण्डानि येषां मध्येन जाह्नवी ।।
वेगेन समतिक्रान्ता सर्वतीर्थपुरस्कृता । तपनस्य सुता देवी त्रिषु लोकेषु विश्रुता ।।
यमुना गङ्गया सार्धं संगता लोकपावनी । गङ्गायमुनयोर्मध्यं पृथिव्या जघनं स्मृतम् ।।

- राजेन्द्र ! तत्पश्चात् महर्षियों द्वारा प्रशंसित प्रयागतीर्थ में जायें। जहाँ ब्रह्मा आदि देवता, दिशा, दिक्पाल, लोकपाल, साध्य, लोकसम्मानित पितर, सनत्कुमार आदि महर्षि, अंगिरा आदि निर्मल ब्रह्मर्षि, नाग, सुपर्ण, सिद्ध, सूर्य, नदी, समुद्र, गन्धर्व, अप्सरा तथा ब्रह्माजी सहित भगवान् विष्णु निवास करते हैं। वहाँ तीन अग्निकुण्ड हैं जिनके बीच से सब तीर्थों से सम्पन्न गंगा वेगपूर्वक बहती है। त्रिभुवनविख्यात सूर्यपूत्री लोकपावनी यमुना देवी वहाँ गंगा जी के साथ मिली हैं। गंगा और यमुना का मध्यभाग पृथ्वी का जघन माना गया है ।।६९-७५।।

प्रयागं जघनस्थानमुपस्थमृषयो विदुः । प्रयागं सप्रतिष्ठानं कम्बलाश्वतरौ तथा ।।
तीर्थं भोगवती चैव वेदिरेषा प्रजापतेः । तत्र वेदाश्च यज्ञाश्च मूर्तिमन्तो युधिष्ठिर ।।
प्रजापतिमुपासन्ते ऋषयश्च तपोधनाः । यजन्ते क्रतुभिर्देवास्तथा चक्रधरा नृपाः ।।
ततः पुण्यतमं नाम त्रिषु लोकेषु भारत । प्रयागं सर्वतीर्थेभ्यः प्रवदन्त्यधिकं विभो ।।
गमनात् तस्य तीर्थस्य नामसंकीर्तनादपि । मृत्युकालभयाच्चापि नरः पापात् प्रमुच्यते ।।

- ऋषियों ने प्रयाग को जघनस्थानीय उपस्थ बताया है। प्रतिष्ठानपुर (झूसी) सहित प्रयाग, कम्बल और अश्वतर नाग तथा भोगवतीतीर्थ यह ब्रह्मा जी की वेदी है। युधिष्ठिर ! उस तीर्थ में वेद और यज्ञ मूर्तिमान् होकर रहते हैं और प्रजापति की उपासना करते हैं। तपोधन ऋषि, देवता तथा चक्रधर नृपतिगण वहाँ यज्ञों द्वारा भगवान् का यजन करते हैं। इसीलिये तीनों लोकों में प्रयाग को सब तीर्थों की अपेक्षा श्रेष्ठ और पुण्यतम बताते हैं। उस तीर्थ में जाने से अथवा उसका नाम लेने मात्र से भी मनुष्य मृत्युकाल के भय और पाप से मुक्त हो जाता है ।।७६-८०।।

तत्राभिषेकं यः कुर्यात् संगमे लोकविश्रुते । पुण्यं स फलमाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः ।।

- वहाँ के विश्वविख्यात संगम में जो स्नान करता है वह राजसूय और अश्वमेधयज्ञों का

पुण्यफल प्राप्त कर लेता है ॥८१॥

एषा यजनभूमिर्हि देवानामभिसंस्कृता । तत्र दत्तं सूक्ष्ममपि महद् भवति भारत ।।

- भरतनन्दन ! यह प्रयाग देवताओं की संस्कार की हुई यज्ञभूमि है । यहाँ दिया हुआ थोड़ा सा भी दान महान् होता है ॥८२॥

न वेदवचनात् तात न लोकवचनादपि । मतिरुत्क्रमणीया ते प्रयागमरणं प्रति ।।

- तात् तुम्हें किसी वैदिक वचनसे या लौकिक वचन से भी प्रयाग में मरने का विचार नहीं त्यागना चाहिये ॥८३॥

दश तीर्थसहस्राणि षष्टिः कोट्यस्तथापराः । येषां सांनिध्यमत्रैव कीर्तितं कुरुनन्दन ।।
चतुर्विद्ये च यत् पुण्यं सत्यवादिषु चैव यत् । स्नात एव तदाप्नोति गङ्गायमुनसंगमे ।।

- कुरुनन्दन ! साठ करोड़ दस हजार तीर्थों का निवास केवल इस प्रयाग में ही बताया गया है । चारों विद्याओं के ज्ञान से जो पुण्य होता है तथा सत्य बोलने वाले व्यक्तियों को जिस पुण्य की प्राप्ति होती है वह सब गंगा-यमुना के संगम में स्नान करने मात्र से प्राप्त हो जाता है ॥८४-८५॥

तत्र भोगवती नाम वासुकेस्तीर्थमुत्तमम् । तत्राभिषेकं यः कुर्यात् सोऽश्वमेधफलं लभेत्।।

- प्रयाग में भोगवती नाम से प्रसिद्ध वासुकि नाग का उत्तम तीर्थ है । जो वहाँ स्नान करता है, उसे अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है ॥८६॥

तत्र हंसप्रपतनं तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् । दशाश्वमेधिकं चैव गङ्गायां कुरुनन्दन ।।

- कुरुनन्दन ! वहीं त्रिलोकविख्यात हंसप्रपतन नामक तीर्थ है और गंगा के तटपर दशाश्वमेधिक तीर्थ है ॥८७॥

कुरुक्षेत्रसमा गङ्गा यत्र तत्रावगाहिता । विशेषो वै कनखले प्रयागे परमं महत् ।।

- गंगा में जहाँ कहीं भी स्नान किया जाय वह कुरुक्षेत्र के समान पुण्यदायिनी है । कनखल में गंगा का स्नान विशेष माहात्म्य रखता है और प्रयाग में गंगा-स्नान का माहात्म्य सबकी अपेक्षा बहुत अधिक है ॥८८॥　　(म०भा०वन०अ०८५, ६९-८८)

●

गङ्गा जी - २

भगवती गङ्गा भारतीय सनातन धर्म, मनुष्य के जीवन का, कर्म का और मोक्ष का केन्द्र है। गङ्गा विहीन भारतवर्ष की कल्पना असम्भव है, प्राचीनतम वेद ग्रन्थ से लेकर सभी धर्मशास्त्रों में गङ्गा जी की महिमा पर अनन्त श्लोक, स्तुतियाँ दी गई है। आधुनिक विचारक भी गङ्गा की भक्ति और शक्ति से अभिभूत हैं। विगत तीस वर्षों से भी गङ्गा-गङ्गाजल पर शोध और निर्मलीकरण, गङ्गा की दशा सुधारने का कार्य हो रहा है। भगवती गङ्गा पुण्यनदी है और इसके तटों पर महान् संस्कृति और सभ्यताओं ने जन्म लेकर इतिहास में उच्च स्थान प्राप्त किया है। आस्था के साथ ही करोंड़ों मनुष्यों और पशु-पक्षियों के जीवन का सम्बन्ध साक्षात् गङ्गा जी से है। करोंड़ों जीव-अजीव धारियों को भुक्ति, मुक्ति जीवन देने वाली भगवती गङ्गा जी इहामुत्र फलप्रदा, सर्वजगद्धिता है। यहाँ प्रसंग प्राप्त वेदों से लेकर आगे तक के शास्त्रों पर आधारित गङ्गा सम्बन्धी माहात्म्य विचार प्रस्तुत करेंगे और इसके बाद गङ्गा जी से सम्बन्धित कुछ कथानक दिये जायेंगे।

ऋग्वेद के १०/७५/५-६ सूक्त में सर्वप्रथम भगवती गङ्गा, यमुना, सरस्वती का स्मरण किया गया है -

इमं में गङ्गे यमुने सरस्वति ।

गंगा गमनादित्यादिनिरुक्तम् । (सायणाचार्यः)

- स्वर्ग से मृत्युलोक में गमन के कारण गङ्गा शब्द की प्रसिद्धि है।

अन्यत्र गाङ्गय (ऋ० ६/४५/३१) शब्द का भी उल्लेख है। गङ्गा जी की महिमा का वैदिक साहित्य शतपथ ब्राह्मण (१३/५/४/११-१३), ऐतरेय ब्राह्मण ८/२३ or २९/९५, ३९/९, तैत्तिरीय आरण्यक २/२० एवं अन्यत्र भी आरण्यकों में शब्दान्तर से उल्लेख है। महाभारत अनुशासनपर्व २६/२६-१०३, नारदीय पुराण ३९/४१ आदि शास्त्रों में गङ्गा जी की महिमा बतायी गई है।

तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च तीर्थानां वायुरब्रवीत् । दिवि भूम्यन्तरिक्षे च तत्सर्वं जाह्नवी स्मृता ।।

- गङ्गा जी में करोंड़ों तीर्थों का वास है गङ्गा नाम स्वर्गलोक, अंतरिक्षलोक, देवलोक तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। (कूर्मपु० १/३७-७)

यत्र गंगा महाभागा स देशस्तत् तपोवनम् । सिद्धिक्षेत्रं तु तज्ज्ञेयं गंगातीरसमाश्रितम् ।।८।।

- जिस भू-भाग में गङ्गा जी बहती है वह देश तपोवन है, गंगातीर पर स्थित स्थान सिद्धि क्षेत्र कहे जाते हैं। (कूर्मपु० १/३७/८)

षष्टिर्धनुःसहस्राणि यानि रक्षन्ति जाह्नवीम् ।

- साठ हजार देव योद्धा जाह्नवी गङ्गा की रक्षा करते हैं। (कूर्मपु० १/३४/२३)

यावदस्थीनि गङ्गायां तिष्ठन्ति पुरुषस्य तु । तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ।।

- मृत मनुष्य की हड्डियाँ जब तक गङ्गा जी में रहती है तब तक हजारों वर्षो वह स्वर्गलोक में रहता है । (स्कन्दपु०४/२८/३५)

सर्वत्र सुलभा गंगा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा । गंगाद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसंगमे ।।

- गङ्गा जी का माहात्म्य हरिद्वार, प्रयाग और गङ्गासागर में सबसे अधिक है । (कूर्मपु० १/३५/३३)

गंगामेव निषेवेत प्रयागे तु विशेषतः । नान्यत् कलियुगोद्भूतं मलं हन्तु सुदुष्कृतम् ।।

- सब तीर्थों में बढ़कर गङ्गा जी का माहात्म्य प्रयाग में सबसे अधिक है । कलयुग के पापों का प्रक्षालन गङ्गा जी के अतिरिक्त कोई नहीं कर सकता है । (कूर्मपु० १/३५/३७)

गङ्गामाहात्म्यमाख्यास्ये सेव्या सा भुक्तिमुक्तिदा । येषां मध्ये याति गंगा ते देशाः पावना वराः ।।
गतिर्गङ्गा तु भूतानां गतिमन्वेषतां सदा । गंगा तारयते चोभौ वंशौ नित्यं हि सेविता ।।
चान्द्रायणसहस्राच्च गंगाम्भःपानमुत्तमम् । गंगामासं तु संसेव्य सर्वयज्ञफलं लभेत् ।।
सकलाघहरी देवी स्वर्गलोकप्रदायिनी । यावदस्थि च गंगायां तावत् स्वर्गे स तिष्ठति।।
अन्धादयस्तु तां सेव्य देवैर्गच्छन्ति तुल्यताम् । गंगातीर्थसमुद्भूतमृद्धारी सोऽघहाऽर्कवत्।।
दर्शनात्स्पर्शनात्पानात्तथा गंगेतिकीर्तनात् । पुनाति पुण्यपुरुषाञ्शतशोऽथ सहस्रशः ।।

- अब मैं गङ्गा के माहात्म्य का वर्णन करता हूँ- सेवन करने से गङ्गा भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाली हैं । जिन प्रदेशों से होकर गङ्गा आती है, वे प्रदेश उत्तम हैं । गति चाहने वाले जीवों के लिए गङ्गा गति स्वरूपा हैं । जो नित्य ही गङ्गा का सेवन करता है, वह अपने दोनों वंशों को तार देता है । हजारों चान्द्रायण व्रत करने की अपेक्षा गङ्गाजल का पान करना उत्तम है । व्यक्ति एक मास (माघ मास) तक गङ्गा का सेवन करके समस्त यज्ञों के फल को प्राप्त कर लेता है । गङ्गादेवी सभी पापों को विनष्ट करने वाली तथा स्वर्गलोक प्रदान करने वाली हैं । मनुष्य की हड्डी जब तक गङ्गा में पड़ी रहती है तब तक वह मनुष्य स्वर्ग में निवास करता है । अन्धे आदि मनुष्य गङ्गा का सेवन करके देवताओं के तुल्य हो जाते हैं । गङ्गातीर्थ से निकली हुई मिट्टी को धारण करने वाला मनुष्य सूर्य के समान पापों को नष्ट करने वाला है । गङ्गा का दर्शन, स्पर्श, जलपान तथा गङ्गा का नाम का उच्चारण करने वाला मनुष्य अपने सैकड़ों, हजारों पीढ़ियों को पवित्र कर देता है । (अग्निपु० ११०/१-६)

पश्चिमाभिमुखी गंगा कालिंद्या सह संगता । हन्ति कल्पशतं पापं सा माघे देवि दुर्लभा ।।

- प्रयागराज में पश्चिम वाहिनी गङ्गा का कालिन्दी के साथ संगम होता है, माघ मास में इस संगम में स्नान करने से कई कल्पों के पाप समाप्त हो जाते हैं । (नारदपु०उ०ख०६३/५)

गंगा गंगेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि । मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ।।

- दूर से ही गङ्गा का उच्चारण करने मात्र से ही सभी पाप समाप्त होकर, गङ्गा शब्द का उच्चारण करने वाला विष्णु लोक को प्राप्त होता है । (पद्मपु०उ०८१/३६)

गङ्गा समं नास्ति तीर्थं भूयो भूयो मयोच्यते। यदम्बुकणिकां स्पृष्ट्वा परमं धाम लभ्यते ।।

- गङ्गा के समान इस धरा-धाम पर कोई तीर्थ नहीं है, गङ्गा जल की एक बूंद का स्पर्श परम धाम विष्णु लोक को प्राप्त कराता है । (पद्मपु०क्रिया७-१२७)

अन्य तीर्थे कृतं पापं गङ्गायां च विनश्यति । गङ्गायां यत्कृतं पापं तत्कुत्रापि न शाम्यते ।।

- अन्य तीर्थों में किये गये पाप गङ्गा स्नान से समाप्त हो जाते हैं परन्तु गङ्गा में किये गये पापों का शमन कहीं नही होता । (पद्मपु०क्रिया ८-१२)

गंगानामसु नामानि वदेद्गच्छञ्जनः पथि । माहात्म्यं जाह्नवीदेव्याः सर्वपापप्रणाशनम् ।।१९।।

- मार्ग में गङ्गा-गङ्गा के नाम का उच्चारण सभी पापों को नष्ट करता है ।

(पद्मपु०क्रिया ९-१९)

गंगाजले प्रयागे वा मृतास्ते स्वर्गगामिनः ।

- प्रयाग के संगम में प्रवाहित मृतक, उसकी भस्म एवं अस्थि मृतक को स्वर्गधाम प्राप्त कराती है।

(स्कन्दपु० ७/२/७/१३)

गंगा तु वैष्णवी मूर्तिः सर्वपापप्रणाशिनी रुद्रदेव समुद्भूता ।।

- भगवान् शिव की जटाओं से उत्पन्न गङ्गा की वैष्णवीमूर्ति सर्वपापों को समाप्त कर देती है।

(स्कन्दपु०५/३/९/४६)

गंगा त्रैलोक्यपापघ्नी वर्तते लोकपूजिता ।।

- सर्वलोक में पूजित गङ्गा तीनों लोकों के पापों को समाप्त करती है ।

(स्कन्दपु० २/४/४/५३)

गंगा जी - लिंगपूजा -

अग्निहोत्रं च यज्ञाश्च व्रतदानतपांसि च। गंगायां लिंगपूजायाः कोट्यंशेनापि नो समाः ।।४२।।

- गङ्गा में शिवलिङ्ग की पूजा, मृतिका से बने हुये शिवलिङ्ग का पूजन, अग्निहोत्र, यज्ञ, व्रत, दान, तप से बढ़कर है । (स्कन्दपु०४/२७/४२)

शास्त्रार्थपारगेभ्यश्च गंगास्नायी विशिष्यते ।।

- गङ्गा जी में नित्य स्नान करने वाला वेद शास्त्रों के ज्ञाता से बड़ा है ।

(स्कन्दपु०४/२७/१५)

गंगालाभात्परो लाभः क्वचिदन्यो न विद्यते। तस्माद्गङ्गामुपासीत गङ्गैव परमः पुमान् ।।

- गङ्गा जल के स्नान, पान से बढ़कर इस संसार में अन्य कोई सार नहीं है, अतः मनुष्यों को चाहिये सदा गङ्गा की उपासना, पूजन, जल में स्नान आदि करता रहे । (स्कन्दपु०४/२७/३०)

गंगास्नानविहीनस्य हरे जन्मनिरर्थकम् ।।

- जिसने गङ्गा में स्नान नहीं किया उसका जीवन निरर्थक है । (स्कन्दपु०४/२७/३१)

वृथा दानानि तस्येह कलौ गंगां न यो भजेत् ।।

- कलयुग में जिसने गङ्गा का भजन, पूजन, स्नान नहीं किया उसका दान, धर्म और जीवन निरर्थक है ।

(स्कन्दपु०४/२७/३२)

पितृनुदिश्य यो भक्त्या पायसं मधुसंयुतम् । गुडसर्पिष्तिलैः सार्धं गंगाम्भसि निक्षिपेत्।।
तृप्ता भवन्ति पितरस्तस्य वर्षशतं हरे ।।

- पितृगणों की आत्मा की शान्ति के लिये भक्तिपूर्वक खीर, मधु, गुड, घृत, तिल के साथ जो गंगा जी का पूजन करता है गङ्गा जी में इनको अर्पित करता है उसके पितृगण सैकड़ों वर्षों तक तृप्त रहते हैं । (स्कन्दपु०४/२७/३८-३९)

गंगातीरे स्वशक्त्या यः कुर्याद्देवालयं सुधीः। अन्यतीर्थप्रतिष्ठातो भवेत्कोटिगुणं फलम्।।
अश्वत्थवटचूतादिवृक्षारोपेण यत्फलम् । कूपवापीतडागादि-प्रपासत्रादिभिस्तथा ।।
गङ्गास्पर्शं ततोऽधिकम् ।

- जो मनुष्य गङ्गा किनारे देवालय का निर्माण, पीपल, बड़, पाकड़, आम आदि महावृक्षों को लगाता है, यात्रियों की सुख-सुविधा के लिये कुँआ, बावड़ी, तालाब, प्याऊ, धर्मशाला, अन्नक्षेत्र का निर्माण करता है- ऐसे कर्म अनन्त कोटि फल को देने वाले होते हैं, गङ्गा के जल स्पर्श से वही फल प्राप्त होता है । (स्कन्दपु०४/२७/१००-१०२)

कृमिकीटपतंगाद्या ये मृता जाह्नवीतटे । कूलात्पतन्ति ये वृक्षास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ।।

- गङ्गा जी के तट पर उत्पन्न होने वाले कीड़े, कीट-पतंग, गङ्गा में टूट कर गिरे हुये वृक्ष भी परम गति को प्राप्त होते हैं । (स्कन्दपु०४/२७/१३४)

गंगा पूजन षोडशोपचार -

आसनं पाद्यमर्घ्यञ्च स्नानीयं चानुलेपनम् । धूपं दीपञ्च नैवेद्यं ताम्बूलं शीतलं जलम् ।।
वसनं भूषणं माल्यं गंधमाचमनीयकम् ।

(देवीभा०पु०९/१२-१३)

यथागौरी तथा गंगा तस्माद्गौर्यास्तु पूजने । यो विधिर्विहितः सम्यक्सोऽपि गंगापूजने ।।

- गौरी-पार्वती के पूजन की षोडशोपचार विधि ही गङ्गा पूजन की विधि है । गङ्गा जी के पूजन का वही विधान है जो भगवती गौरी के पूजन का विधान है । (स्कन्दपु०४/२७/१८२)

देवाः सपितरो यस्माद्गङ्गायां सर्वदा स्थिताः । आवाहनं विसर्गञ्च तेषां तत्र ततो न हि।।

- पितृगणों का, देवताओं का निवास सदा गङ्गा जी में रहता है, अत: इनका आवाहन और विसर्जन नहीं करना चाहिये । केवल श्राद्ध पूजन ही करें । (स्कन्दपु०४/२८/९)

करुणामृतपूर्णेन देवदेवेन शम्भुना । एषा प्रवर्तिता गंगा जगदुद्धरणाय वै ।।
यथाऽन्याः सरितो लोके वारिपूर्णाः सहस्रशः। तथैषा नानुमन्तव्या सद्भिस्त्रिपथगामिनी।।
श्रुत्यक्षराणि निश्चीत्य कारुण्याच्छंभुना मुने । निर्मिता तद्द्रवैरेषा गंगा गंगाधरेण च ।।
योगोपनिषदामेतं सारमाकृष्य शंकरः । कृपया सर्वजन्तूनां चक्रे सरितां वराम् ।।

- करुणामूर्ति भगवान् शंकर ने जगत् के उद्धार के लिये भगवती गङ्गा को प्रकट किया । इस धरा-धाम पर त्रिपथगामिनी गङ्गा के समान कोई नदी नहीं है । भगवती गङ्गा श्रुति, वेद का द्रवमय सार

है, गङ्गा जी सभी धर्मशास्त्र, योग, उपनिषद् का सार है । भगवान् शंकर ने सभी शास्त्रों का सार लेकर गङ्गा जी को उत्पन्न किया है । (स्कन्दपु०४/२८/८५-८८)

गङ्गा हि सर्वभूतानामिहामुत्र फलप्रदा । भावानुरूपो विष्णो सदा सर्वजगद्धिता।।

- सर्वजगत् की हितकारिणी गङ्गा भावानुसार इस लोक में और परलोक में फल देती है । (स्कन्दपु. काशीखण्ड चतुर्थ अ०२७/२३)

ज्ञात्वाऽज्ञात्वा च गंगायां यः पंचत्वमवाप्नुयात्। अनात्मघाती स्वर्गी स्यान्नरकान् स न पश्यति।।
गंगैव सर्वतीर्थानि गंगैव च तपोवनम् । गंगैव सिद्धिक्षेत्रं हि नात्र कार्या विचारणा ।।

- जानते हुये या अन्जाने जिसका शरीर पात गङ्गा जी में हो जाता है वह स्वर्गलोक को प्राप्त करता है । उसे कभी भी नरक का दर्शन नहीं होता । गङ्गा जी ही सभी तीर्थ है, गङ्गा ही तपोवन है, गङ्गा ही सिद्धि क्षेत्र है- इसमें किसी तरह का संदेह नहीं करना चाहिये । (स्कन्दपु०४/२८/२०-२१)

गंगास्नानफलं ब्रह्मन्गंगायामेव लभ्यते ।।१०।।

- अन्य नदियों के स्नान का फल गङ्गा स्नान से प्राप्त हो जाता है परन्तु गङ्गा स्नान का फल गङ्गा में स्नान करने से ही प्राप्त हो सकता है । (स्कन्दपु० ४/२९/१०)

गंगा किनारे दाह होने पर अस्थि विसर्जन -

यदि गङ्गा के किनारे दाह संस्कार किया जाये तो वहाँ अस्थियों को तत्काल गङ्गा में प्रवाहित करने की परम्परा है । अस्थि-संचयन की आवश्यकता नहीं रहती ।

दस दिनों के भीतर गङ्गा में अस्थिप्रक्षेप करने से मरनेवाले को वही फल प्राप्त होता है, जो गङ्गा में (गङ्गातट पर) मरने से होता है -

दशाहाभ्यन्तरे यस्य गङ्गातोयेऽस्थि मज्जति । गङ्गायां मरणं यादृक् तादृक् फलमवाप्नुयात् ।।
(मदनरत्ने वृद्धमनुवचनम्)

स्त्रोतसामस्मि जाह्नवी ।

- जल स्त्रोतों में सबसे श्रेष्ठ जाह्नवी गङ्गा जी ही है । (गीता-१०/३१)

गमयति प्रापयति ज्ञापयति भगवत्पदं या गंगा ।

- गङ्गा शब्द का अर्थ है जो भगवत्पद को प्राप्त कराती है । (शब्दकल्पद्रुम)

गङ्गातरङ्गरूपेण सोपानं निर्ममे ।।

- गङ्गा तरङ्गरूप से स्वर्ग की सीढी है । (स्कन्दपु० ४/२७/६८)

जह्नोः कन्यां स्वर्गसोपानपंक्तिम् ।।

- महर्षि जह्नु की कन्या गङ्गा स्वर्ग की सोपानपंक्ति (सीढ़ी) है । (मेघदूतम् १/५०)

गङ्गा शतगुणा पुण्या ।।

- गङ्गा अन्य पवित्र नदियों से सौ गुणा पुण्य को देने वाली है । (वाराहपु.- १५०/३०)

पुनाति कीर्तिता पापं दृष्टा भद्रं प्रयच्छति । अवगाढा च पीता च पुनात्यासप्तमं कुलम् ।।

- गङ्गा जी नाम लेते ही पापों को दूर कर देती है । दर्शन करने पर कल्याण प्रदान करती है

तथा स्नान और जलपान करने पर मनुष्य की सात पीढ़ियों को पावन बना देती है ।
(म०भा०वन०८५/९३)

न गङ्गासदृशं तीर्थम् ।

- गङ्गा जी के समान इस धराधाम पर कोई तीर्थ नहीं है । (म०भा०वन० ८५/९६)

यत्र गंगा महाराज स देशस्तत् तपोवनम् । सिद्धिक्षेत्रं च तज्ज्ञेयं गंगातीरसमाश्रितम् ।।

- राजन् ! जहाँ-जहाँ गङ्गा जी बहती हो वे सभी क्षेत्र तपोवन हैं, गङ्गा किनारे बसे हुये ये स्थान सिद्धि को देने वाले हैं । (म०भा०वन० ८५/९७)

गङ्गा जी वैदिक सनातन धर्म और भारतीय संस्कृति की पहचान हैं । गङ्गा जी के गुण, गङ्गा जी के माहात्म्य के बारे में शास्त्रों में जगह-जगह वर्णन आया है । गङ्गा जी के दर्शन मात्र से ही पापों से मुक्ति, गङ्गा जी के जलपान से पापों का प्रक्षालन, गङ्गा जी में स्नान से पापों का नाश बताया है। भुक्ति और मुक्ति गङ्गा जी की कृपा से सभी को सहज प्राप्त हो जाती है । श्रीमद्वाल्मीकि रामायण, महाभारत, सभी पुराण गङ्गा जी की महिमा का गान करते हुये थकते नहीं है । भगवान् वेद ने भी गङ्गा जी की महिमा का गान किया है ।

गङ्गा जी इस लोक और परलोक में भाव के अनुरूप फल को देने वाली और जगत् का हित करने वाली कही गयी हैं-

१- गङ्गा जी वेद में -

इमं में गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्णया ।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयाऽऽर्जीकीये शृणुह्या सुषोमया ।।

- गङ्गा, यमुना, सरस्वती, शतद्रु आदि नदियों का वर्णन वेद में प्राप्त है ।
(ऋ०१०/७५/५)

२- गाङ्ग्यः -

अधि बृबुः पणीनां वर्षिष्ठे मूर्धन्नस्थात् । उरुः कक्षो न गाङ्ग्यः ।।
सायणाचार्यः- गांग्यः गङ्गायाः कूले उन्नते भवः ।

- गङ्गा के ऊँचे तटों की तरह ऊँचे स्थान पर बृबुः ने अनुष्ठान किया ।
(ऋ० ६/४५/३१)

सितासिते सरिते यत्र संगथे तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति । ये वै तन्वं विसृजन्ति धीरास्ते जनासो अमृतत्त्वं भजन्ते ।।

- सित-गङ्गा, असित-यमुना का स्नान अमरता प्रदान करता है ।
(ऋग्वेद खिलभाग १०/७५/५ मन्त्रस्यानन्तरं पठ्यते ।)
(खिललक्षणम्-परशाखीयं स्वशाखायामपेक्षावशात् पठ्यते ।)

श्रीमद्वाल्मीकि रामायण में गङ्गा जी की ह्लादिनी, पावनी, नलिनी, सुचक्षु, सीता, महानदी सिन्धु और सातवीं धारा गङ्गा जी का वर्णन है । गङ्गा जी के माहात्म्य के कारण गोदावरी, क्षिप्रा आदि

पवित्र नदियों को भी शास्त्रों में गङ्गा कहा गया है। शास्त्रों का गङ्गा आदि नदियों की प्रशस्ति में बहुत बड़ा भाग समर्पित है। इन्द्र द्वारा राजा सगर के घोड़ों का अपहरण, सगर के साठ हजार पुत्रों द्वारा पृथ्वी का खनन, सगर पुत्रों के अत्याचार से उनका भस्म हो जाना, सगर पुत्र अंशुमान् का अश्व को वापस लाना, अंशुमान्, भगीरथ की गङ्गा जी को लाने के लिये प्रार्थना-तपस्या, भगवान् शंकर के द्वारा गङ्गा को जटा में धारण करना, गङ्गा की सात धारा, गङ्गा जी का इस धराधाम पर अवतरण, सगर के पुत्रों की मुक्ति आदि आख्यान के लिये श्रीमद्वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड-अध्याय-३८-४४ पठनीय हैं।

श्रीमद्भागवत में दिव्य देवनदी गङ्गा -

गङ्गा जी, सीता, अलकनन्दा, चक्षु, भद्रा नदियों के नामों से भी जानी जाती हैं, शास्त्रों में गङ्गा जी को अनेक धाराओं और अनेक नामों से बताया गया है -

तत्र चतुर्धा भिद्यमाना चतुर्भिर्नामभिश्चतुर्दिशमभिस्पन्दन्ती ,
नदनदीपतिमेवाभिनिविशति सीताऽलकनन्दाचक्षुर्भद्रेति ।।

उस निर्मल धाराका स्पर्श होते ही संसार से सारे पाप नष्ट हो जाते है, किन्तु वह सर्वथा निर्मल ही रहती है। पहले किसी और नाम से पुकार कर उसे 'भगवत्पदी' ही कहते थे। वह धारा हजारों युग बीतने पर स्वर्ग के शिरोभाग में स्थित ध्रुवलोक में उतरी, जिसे 'विष्णुपद' भी कहते है। उस ध्रुव लोक में उत्तानपाद के पुत्र परम भागवत ध्रुव जी रहते है। वे नित्य प्रति बढते हुए भक्ति भाव से 'यह हमारें कुल देवता का चरणोदक हैं' ऐसा मानकर आज भी उस जल को बडे आदर से सिर पर चढाते हैं। उस समय प्रेमावेशके कारण उनका हृदय अत्यन्त गद्गद हो जाता है, उत्कण्ठावश बरबस मुँदे हुए दोनों नयन-कमलों से निर्मल आँसुओं की धारा बहने लगती है और शरीर में रोमाञ्च हो आता है। इसके पश्चात् आत्मनिष्ठ सप्तर्षिगण उनका प्रभाव जानने के कारण 'यही तपस्या की आत्यन्तिक सिद्धि है' ऐसा मानकर उसे आज भी इस प्रकार आदर पूर्वक अपने जटा जूट पर वैसे ही धारण करते हैं, जैसे मुमुक्षुजन प्राप्त हुई मुक्ति को। ध्रुव जी बडे ही निष्काम हैं, सर्वात्मा भगवान् वासुदेव की निश्चल भक्ति को ही अपना परम धन मानकर इन्होंने अन्य सभी कामनाओं को त्याग दिया है, यहाँ तक कि आत्मज्ञान को भी ये उसके सामने कोई चीज नहीं समझते वहाँ से गङ्गा जी करोडों विमानों से घिरे हुए आकाश में होकर उतरती हैं और चन्द्रमण्डल को आप्लावित करती मेरु शिखर पर ब्रह्मपुरी में गिरती हैं, वहाँ ये सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा नाम से चार धाराओं में बहती हुई अन्त में नद-नदियों के अधीश्वर समुद्र में गिर जाती हैं इनमें सीता ब्रह्मपुरी से गिर कर केसराचलों के सर्वोच्च शिखरों में होकर नीचे की ओर बहती गन्धमादन के शिखरों पर गिरती है और भद्राश्ववर्ष को पवित्र कर पूर्वकी ओर खारे समुद्र में मिल जाती है। इसी प्रकार चक्षु माल्यवान् शिखर पर पहुँच कर वहाँ से बेरोक-टोक केतुमालवर्ष में बहती हुई पश्चिमकी ओर क्षारसमुद्र में जा मिलती है। भद्रा मेरु पर्वत के शिखर से उत्तर की ओर गिरती है तथा एक पर्वत से दूसरे पर्वत पर जाती हुई अन्त में शृङ्गवान् के शिखर से गिरकर

उत्तरकुरु देश में होकर उत्तरकी ओर बहती हुई समुद्र में मिल जाती है । अलकनन्दा ब्रह्मपुरी से दक्षिणकी ओर गिरकर अनेकों गिरि-शिखरों को लाँघती हुई हेमकूट पर्वत पर पहुँचती है, वहाँ से अत्यन्त तीव्र वेग से हिमालय के शिखरों को चीरती हुई भारतवर्ष में आती है और फिर दक्षिण की ओर समुद्र में जा मिलती है । इसमें स्नान करने के लिये आने वाले पुरुषों को पद-पदपर अश्वमेध और राजसूय आदि यज्ञों का फल भी दुर्लभ नहीं है । प्रत्येक वर्ष में मेरु आदि पर्वतों से निकली हुई और भी सैकडों नद-नदियाँ हैं । (श्रीमद्भाग० ५/१७)

गङ्गा जी से सम्बन्धित कुछ कथायें -

सभी शास्त्रों में वर्णित सुरेश्वरी भगवती गंगा से सम्बन्धित अलौकिक और लौकिक आख्यान देव नदी गङ्गा के अद्भूत माहात्म्य को बताने वाले हैं । नीचे दी गयी कथाओं में गङ्गा जी की मुख्य जीवन यात्रा का वर्णन किया गया है –

१ - गङ्गा विष्णुपदी -

सुरनदी गङ्गा नाम का मूल स्थान विष्णुलोक है । भगवान् विष्णु के अवतार वामन हैं । इन्द्र के संरक्षण और विरोचन पुत्र बलि के बन्धन के लिये यह वामन अवतार हुआ था । विष्णु ने दान में राजा बलि से तीन पग धरती माँगी और भगवान् वामन ने तीन पगों से समस्त सृष्टि को नाप लिया। इस कथा का उल्लेख पुराण, ब्राह्मण और वेद में प्राप्त है -

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । त्रीणि पदा विचक्रमे ।।

(ऋ०१-२२-१७-१८)

निरुक्त ग्रन्थ में विष्णु के तीन पगों से पृथ्वी, अंतरिक्ष और आकाश को नापने की निरुक्ति प्राप्त है । शतपथ ब्राह्मण की कथा के अनुसार देव-दानवों के संग्राम में देवताओं की पराजय हो गयी और इधर-उधर भाग गये । असुर जमीन का बटवारा करने बैठे । विष्णु भगवान् के नेतृत्व में देव गण असुरों से अपने रहने के लिये भी जमीन मांगने गये, हंसते हुए असुरों ने विष्णु को तीन पग (मृत्यु के समय तीन पग, दो गज) जमीन ही नापने के लिये कहा । वामनरूप धारी विष्णु ने विराट् रुप धारण कर तीनों लोकों को नापकर देवताओं का राज्य स्थापित कर दिया । भगवान् वामन कश्यप और अदिति के पुत्र हैं । इनकी पत्नी का नाम कीर्ति एवं पुत्र का नाम बृहत् श्लोक था । भगवान् का जन्म भाद्रपद् शुक्ल द्वादशी के दिन श्रवण नक्षत्र अभिजित् मुहूर्त में हुआ था ।

श्रोणायां श्रवणद्वादश्यां मुहूर्तेऽभिजिति प्रभुः । (श्रीमद्भाग० ८-१८-५)

ब्रह्मा एवं माता अदिति को अपना वास्तविक दर्शन प्रकट करने के बाद भगवान् ने ब्रह्मचारी का रूप धारण किया । महाभारत में इसका विस्तार से वर्णन दिया गया हैं, जहाँ इनको दण्डी, यज्ञोपवीती, कृष्णाजिनधारी, शिखी, पलाशदण्डधारी कहा गया है । ब्राह्मण बटुक वेश में ही भगवान् विष्णु वामन रुप में विरोचन पुत्र राजा बलि के यज्ञ मण्डप में प्रविष्ट हुए । वामन ने बलि वैरोचन से

त्रिपाद भूमि (तीनपग) की याचना की । महादानी बलि ने 'तथास्तु' कहकर स्वीकार किया, भगवान् वामन ने पहले दो पगों में पृथ्वी और स्वर्ग को नाप लिया, तीसरा पग आकाश- अन्तरिक्ष की ओर उठाकर बालि के मस्तक पर रखने के लिये तैयार हुए, यह देखकर वीरभद्र आदि असुर युद्ध करने के लिये तैयार हुए, जिन्हें वामन ने परास्त किया । उस समय राजा बलि, भक्त प्रह्लाद एवं बलि की पत्नी विन्ध्या ने वामन भगवान् की स्तुति की । प्रसन्न होकर भगवान् ने बलि को नमुचि, शम्बर, प्रह्लाद आदि असुरों के साथ 'सुतल' नामक पाताल लोक का राज्य समर्पित किया और इन्द्र त्रिभुवन के राजा हुए । जगदुद्धार कर्ता बटुक वेशधारी भगवान् वामन के चरित्र गान के लिये वामन पुराण समर्पित है। भगवान् वामन ने पहले पग से पूरी पृथ्वी को नाप लिया, द्वितीय चरण से स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक और तपोलोक वैराजलोक को नापते हुए अनन्त अन्तरिक्ष आकाश लोक को नापने के लिये ऊपर उठा, भगवान् के विशाल प्रतापी चरण के अंगुठे ने ब्रह्माण्ड के उदर भाग ब्रह्माण्ड कटाह आकाश का भेदन कर दिया, अनन्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त वक्राकार आकाश गङ्गा विष्णुपदी, सुरनदी, देवनदी नाम से प्रकट हो गयी । (श्रीमद्भाग० ८/१८-१९)

तस्या विष्णुपदीत्येवं नामाख्यातमभून्मूने । तथा सुरनदीत्येवं तामसेवन्त तापसाः।।

भगवान् विष्णु के विराट् चरण कमल से प्रकट होने के कारण गंगा विष्णुपदी नाम से प्रसिद्ध है । देवलोक को आनन्द देने वाली गङ्गा, आकाश गङ्गा अनन्त वर्षो तक देवलोक को ही पवित्र करती रही । पृथ्वी लोक पर अवतरण राजा भगीरथ द्वारा होगा । (वामनपु०९१/३४)

२- लक्ष्मी, सरस्वती तथा गंगा का परस्पर शापवश भारतवर्ष में आगमन -

लक्ष्मी, सरस्वती और गङ्गा-ये तीनों ही विष्णु की भार्याएँ हैं । ये बड़े प्रेम के साथ सर्वदा भगवान् विष्णु के समीप विराजमान रहती हैं । एक बार गङ्गा कामातुर होकर मुसकराती हुई कटाक्षपूर्वक भगवान् विष्णुका मुख निहार रहीं थीं । तब भगवान् विष्णु क्षणभर उनके मुखकी ओर देखकर मुस्कुराने लगे । उसे देखकर लक्ष्मीने तो सहन कर लिया, किन्तु सरस्वती ने नहीं । उदारताकी मूर्ति लक्ष्मीने हँसकर उन सरस्वती को समझाया, किन्तु अत्यन्त कोपाविष्ट सरस्वती शान्त नहीं हुई। उस समय लाल नेत्रों तथा मुखमण्डलवाली और कुपित तथा कामवेग के कारण निरन्तर काँपते हुए ओठों वाली सरस्वती अपने पति भगवान् विष्णु से कहने लगीं । सरस्वती बोलीं- एक धर्मनिष्ठ, श्रेष्ठ तथा उत्तम पतिकी बुद्धि अपनी सभी पत्नियों के प्रति समान हुआ करती है, किन्तु दुष्ट पतिकी बुद्धि इसके विपरीत होती है । हे गदाधर ! मुझे ज्ञात हो गया कि गङ्गापर आपका अधिक प्रेम रहता है । किन्तु हे प्रभो ! मुझपर आपका थोडा भी प्रेम नहीं है । गंगा और लक्ष्मी के साथ आपकी प्रीति समान है, इसीलिये (गङ्गा के) इस विपरीत व्यवहार को भी लक्ष्मी ने क्षमा कर दिया । अब यहाँ पर मुझ अभागिनी के जीवित रहने से क्या लाभ? क्योंकि जो स्त्री अपने पति के प्रेम से वंचित है, उसका जीवन व्यर्थ है । जो विद्वान् लोग आपको सात्त्विक स्वरूपवाला कहते हैं, वे सब वेदज्ञ नहीं हैं अपितु मूर्ख हैं, वे

आपकी बुद्धि को नहीं जानते हैं । सरस्वती की यह बात सुनकर और उन्हें कोपाविष्ट देखकर भगवान् ने मन-ही-मन कुछ सोचा और इसके बाद वे वहाँ से बाहर निकलकर सभा में चले गये । भगवान् नारायण के चले जाने पर वाणी की अधिष्ठातृ-देवी उन सरस्वती ने कुपित होकर निर्भीकता पूर्वक गङ्गा से सुनने में अन्यन्त कटु वचन कहा । हे निर्लज्ज ! हे सकाम ! तुम अपने पतिपर इतना गर्व क्यों कर रही हो? 'मेरे ऊपर पतिका अधिक प्रेम रहता है'-ऐसा तुम प्रदर्शित करना चाहती हो । हे कान्तवल्लभे! आज मैं भगवान् विष्णु के सामने ही तुम्हारा अभिमान चूर्ण कर दूँगी, तुम्हारा वह पति मेरा क्या कर लेगा? ऐसा कहकर वे गङ्गा के बाल खींचने के लिये उद्यत हुई, तब लक्ष्मी ने दोनों के बीच में आकर उन सरस्वती को ऐसा करने से रोक दिया । इससे महान् बलवती तथा सतीत्वमयी सरस्वती ने लक्ष्मीको शाप दे दिया कि तुम नदी और वृक्ष रूपवाली हो जाओगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है । गङ्गा का विपरीत आचरण देखकर भी तुमने कुछ नहीं कहा और सभा के बीच में वृक्ष तथा नदीकी भाँति तुम जडवत् बन गयी थी, इसलिये तुम वही हो जाओ । यह शाप सुनकर भी लक्ष्मी ने न तो शाप दिया और न क्रोध ही किया । वे सरस्वती हाथ पकडकर दु:खित हो वहीं पर बैठी रह गयीं । कोप के कारण काँपते हुए ओठों तथा लाल नेत्रों वाली और अत्यन्त असन्तुष्ट उस सरस्वती को देखकर गङ्गा लक्ष्मी से कहने लगी - हे पद्मे ! तुम अत्यन्त उग्र स्वभाववाली इस सरस्वती को छोड़ दो । यह शीलरहित, मुखर, विनाशिनी तथा नित्य वाचाल रहनेवाली सरस्वती मेरा क्या कर लेगी । वाणी की अधिष्ठात्री देवी यह सरस्वती सर्वदा कलहप्रिय है । इसमें जितनी योग्यता तथा शक्ति हो, वह सब लगाकर यह आज मेरे साथ विवाद कर ले । यह दुर्मुखी अपने तथा मेरे बलका प्रदर्शन करना चाहती है तो सभी लोग आज दोनों के प्रभाव तथा पराक्रम को जान लें । ऐसा कहकर गङ्गा ने सरस्वती को शाप दे दिया (और उन्होंने लक्ष्मी से कहा-) जिस सरस्वती ने तुम्हें शाप दिया है, वह भी नदीरूप हो जाये । यह नीचे मृत्युलोक में चली जाय, जहाँ पापी लोग निवास करते हैं । वहाँ यह कलियुग में उन पापियों के पाप ग्रहण करेगी, इसमें सन्देह नहीं है । गङ्गा की बात सुनकर सरस्वती ने भी उसे शाप दे दिया कि तुम्हें भी धरातल पर जाना होगा और वहाँ पापियों के पापको अंगीकार करना होगा । इसी बीच चार भुजाओं वाले भगवान् विष्णु, चार भुजाओं वाले अपने चार पार्षदों के साथ वहाँ आ गये । सर्वज्ञ श्रीहरि ने सरस्वती का हाथ पकड़कर प्रेमपूर्वक उन्हें अपने वक्ष से लगा लिया और उन्हें शाश्वत तथा सर्वोत्कृष्ट ज्ञान प्रदान किया । उनके कलह तथा शापकी बात सुनकर प्रभु श्रीहरि उन दु:खित स्त्रियों से समयानुकूलित बात कहने लगे । श्री भगवान् बाले – हे लक्ष्मि ! हे शुभे ! तुम अपने अंश से पृथ्वी पर राजा धर्मध्वज के घर जाओ । तुम अयोनिज के रुप में उनकी कन्या होकर प्रकट होओगी । वहीं पर तुम दुर्भाग्य से वृक्ष बन जाओगी । मेरे ही अंश से उत्पन्न शंखचूड नामक असुरकी भार्या होने के बाद ही पुन: तुम मेरी पत्नी बनोगी, इसमें सन्देह नहीं है । उस समय तीनों लोकों को पवित्र करने वाली तुलसी के नाम से भारतवर्ष में तुम प्रसिद्ध हो जाओगी । हे वरानने ! अब तुम सरस्वती के शाप से

अपने अंश से नदी रुप में प्रकट होकर भारतवर्ष में शीघ्र जाओ और वहाँ 'पद्मावती' नाम से प्रतिष्ठित होओ । तत्पश्चात् उन्होंने गङ्गा से कहा -हे गङ्गे ! लक्ष्मी के पश्चात् तुम भी सरस्वती के शापवश पापियों का पाप भस्म करने के लिये अपने ही अंश से विश्वपावनी नदी बनकर भारतवर्ष में जाओ। हे सुकल्पिते ! राजा भगीरथ की तपस्या से उनके द्वारा धरातल पर ले जायी गयी तुम पवित्र 'भागीरथी' नाम से प्रसिद्ध होओगी । हे सुरेश्वरि ! मेरी आज्ञाके अनुसार तुम मेरे ही अंश से उत्पन्न समुद्र की पत्नी और मेरी कला के अंश से उत्पन्न राजा शान्तनुकी भी पत्नी होना स्वीकार कर लेना । तदन्तर उन्होंने सरस्वती से कहा- हे भारति! गङ्गा के शाप को स्वीकार करके तुम अपनी कला से भारतवर्ष जाओ और दोनों सपत्नियों (गङ्गा तथा लक्ष्मी)- के साथ कलह करने का फल भोगो । साथ ही हे अच्युते! अपने पूर्ण अंश से ब्रह्मसदन में ब्रह्माकी भार्या बन जाओ । गङ्गा जी शिव के स्थानपर चली जायँ । यहाँ पर केवल शान्त स्वभाववाली, क्रोधरहित, मेरी भक्त, सत्त्वस्वरुपा, महान् साध्वी, अत्यन्त सौभाग्यवती, सुशील तथा धर्म का आचरण करनेवाली लक्ष्मी ही विराजमान रहें । जिनके एक अंश की कला से समस्त लोकों में सभी स्त्रियाँ धर्मनिष्ठ, पतिव्रता, शान्तरूपा तथा सुशील बनकर पूजित होती हैं ।

श्रीनारायण बोले - हे नारद ! ऐसा कहकर जगत् के स्वामी भगवान् विष्णु चुप हो गये । तब वे तीनों देवियाँ एक-दूसरे का आलिंगन करके बहुत रोने लगीं । भगवान् की ओर देखकर भय तथा शोक से काँपती हुई वे सभी देवियाँ अश्रुपूरित नेत्रों से उनसे बारी-बारी से कहने लगीं । सरस्वती बोली– हे नाथ ! मुझे जीवन भर सन्ताप देने वाला कोई भी कठोर शाप दे दें (किन्तु मेरा त्याग न करें), क्योंकि श्रेष्ठ स्वामी के द्वारा परित्यक्त वे स्त्रियाँ कैसे जीवित रह सकती हैं । भारतवर्ष में जाकर मैं निश्चय ही योग के द्वारा देह त्याग कर दूँगी । जिसकी भी अत्यधिक उन्नति होती है, उसका अधोपतन भी अवश्यम्भावी है । गङ्गा बोली – हे जगत्पते ! आपने मेरे किस अपराध के कारण मेरा त्याग कर दिया। मैं तो अपने देह को त्याग दूँगी और इस प्रकार आपको एक निरापराध स्त्री के वध का पाप लगेगा। जो मनुष्य इस पृथ्वी पर निर्दोष पत्नी का परित्याग कर देता है, वह घोर नरक की यात्रा करता है, चाहे वह सर्वेश्वर ही क्यों न हो । पद्मा बोलीं – हे नाथ ! आप तो सत्त्वस्वरुप हैं । अहो, आपको ऐसा कोप कैसे हो गया ! आप अपनी इन दोनों पत्नियों को प्रसन्न कीजिये, क्योंकि एक उत्तम पति के लिये क्षमा ही श्रेष्ठ है । मैं सरस्वती का शाप स्वीकार करके अपनी एक कला से भारतवर्ष में जाऊँगी, किंतु मैं वहाँ कितने समय तक रहूँगी और आपके चरणों का दर्शन कब कर पाऊँगी । पामरजन स्नान तथा अवगाहन करके शीघ्र ही अपना पाप मुझे दे देंगे । तब किस उपाय के द्वारा उस पाप से मुक्त होकर आपके चरणों में पुन: स्थान पाऊँगी ? हे अच्युत ! अपनी एक कलासे धर्मध्वज की साध्वी पुत्री होकर तुलसी रूप प्राप्त करके मैं आपके चरण कमल पुन: कब प्राप्त कर सकूँगी ? आप जिसके अधिष्ठातृदेवता हैं, ऐसे वृक्षरूप तुलसी के रूप में मै प्रकट होऊँगी । किन्तु हे कृपानिधान ! आप मुझे

यह बता दीजिये कि मेरा उद्धार कब करेंगे ? यदि गङ्गा सरस्वती के शाप से भारत में जायँगी, तब पुन: कब शाप तथा पाप से मुक्त होकर ये आपको प्राप्त करेंगी ? साथ ही, गङ्गा के शाप से सरस्वती भी यदि भारत में जायेगी, तब पुन: कब शाप से मुक्त होकर ये आप से चरणों का सांनिध्य प्राप्त कर सकेंगी? हे नाथ! आप जो उन सरस्वती को ब्रह्माके तथा गङ्गा को शिव के भवन जाने के लिये कह रहे हैं, तो मैं आपके इन वचनों के लिये आपसे क्षमा चाहती हूँ । (हे नारद !) ऐसा कहकर लक्ष्मी ने अपने पति श्री विष्णु के चरण पकड़कर उन्हें प्रणाम किया और अपने केशों से उनके चरणों को वेष्टित करके वे बार-बार रोने लगीं । (भक्तोंपर कृपा करने के लिये सदा व्याकुल रहने वाले तथा मन्द मुस्कानसे युक्त प्रसन्न मुखमण्डलवाले भगवान् विष्णु लक्ष्मी को अपने वक्ष से लगाकर उनसे कहने लगे।) श्रीभगवान् बोले – हे सुरेश्वरि ! मैं तुम्हारे तथा अपने दोनों के वचन सत्य सिद्ध करूँगा । हे कमलेक्षणे ! सुनो, मैं तुम तीनों में समता कर दूँगा । ये सरस्वती अपनी कला के अंश से नदी रूप होकर भारतवर्ष में जायें, आधे अंश से ब्रह्मा के भवन जायँ और पूर्ण अंश से स्वयं मेरे पास रहें । इसी प्रकार भगीरथी के द्वारा ले जायी गयी ये गङ्गा तीनों लोकों को पवित्र करने के लिये अपने कलांश से भारतवर्ष मे जायेंगी और स्वयं पूर्ण अंश से मेरे भवन में रहें । वहाँ पर ये चन्द्रशेखर शिवके दुर्लभ मस्तक को प्राप्त करेंगी । वहाँ जानेपर स्वभाव से पवित्र गङ्गा और भी पवित्र हो जायेंगी । हे वामलोचने! तुम अपनी कला के अंशांश से पद्मावती नामक नदी के रूपमें तथा तुलसी नामक वृक्ष के रुप में भारतवर्ष मे जाओ । तत्पश्चात् उन श्रीहरिकी आज्ञा के अनुसार वे कार्य करने में संलग्न हो गयीं और स्वयं भगवान् अपने सुखदायक आसनपर विराजमान हो गये । (देवीभापु० ९/६-७)

३- ब्रह्मा का गंगा को शाप -

इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न महाभिष नाम से प्रसिद्ध एक राजा हो गये हैं, जो सत्यवादी होने के साथ ही पराक्रमी भी थे । उन्होंने एक हजार अश्वमेध और एक सौ राजसूय यज्ञों द्वारा देवेश्वर इन्द्र को संतुष्ट किया और उन यज्ञों के पुण्य से उन शक्तिशाली नरेश ने स्वर्ग लोक प्राप्त कर लिया । तदनन्तर एक समय सब देवता ब्रह्माजी की सेवा में उनके समीप बैठे हुए थे । वहाँ बहुत- से राजर्षि तथा पूर्वोक्त राजा महाभिष भी उपस्थित थे । इसी समय सरिताओं में श्रेष्ठ गङ्गा ब्रह्माजी के समीप आयी । उस समय वायु के झोंके से उसके शरीर का चाँदनी के समान उज्ज्वल वस्त्र सहसा ऊपर की ओर उठ गया । यह देख सब देवताओं ने तुरन्त अपना मुँह नीचे की ओर कर लिया; किंतु राजर्षि महाभिष नि:शङ्क होकर देवनदीकी ओर देखते ही रह गये । तब भगवान् ब्रह्मा ने महाभिष को शाप देते हुए कहा- 'दुर्मते ! तुम मनुष्यों में जन्म लेकर फिर पुण्यलोकों में आओगे । जिस गङ्गाने तुम्हारे चित्तको चुरा लिया है, वही मनुष्य लोक में तुम्हारे प्रतिकूल आचरण करेगी । 'जब तुम्हें गङ्गा पर क्रोध आ जायेगा, तब तुम भी शाप से छूट जाओगे ।' तब राजा महाभिषने अन्य बहुत से तपस्वी राजाओं का चिन्तन करके महातेजस्वी राजा प्रतीप को अपना पिता बनाने के योग्य चुना-उन्हीं को पसंद किया । महानदी गङ्गा राजा महाभिष को धैर्य खोते देख मन-ही-मन उन्हीं का चिन्तन करती हुई लौटी । मार्ग से जाते हुये

गङ्गा ने अष्टवसुओं के शरीर को नीचे गिरते हुये देखा । गङ्गा ने अष्टवसुओं से कहा कि तुम लोगों की यह दुर्दशा कैसे हो गयी । वसुओं ने उत्तर दिया- वसिष्ठ का सम्मान नहीं करने से हम अभिशप्त हो गये हैं । कुपित होकर उन्होंने शाप दिया कि तुमलोग मनुष्य योनि में जन्म लो । वसुओं ने गङ्गा जी से प्रार्थना की- देवि! आप ही हमारी माता बने! गङ्गा जी ने तथास्तु कहकर स्वीकार कर लिया । गङ्गा जी ने वसुओं से प्रश्न किया कि वसुओं यह बताओं मृत्युलोक में तुम लोगों का पिता कौन होगा? वसुगण बोले प्रतीप के पुत्र राजा शान्तनु हमारे जनक होंगे । गङ्गा ! हमारी मुक्ति के लिये पैदा होते ही जल में फेंक देना । ठीक है मैं ऐसा ही करुँगी । परन्तु राजा अपुत्रवाले न रह जायें यह व्यवस्था होनी चाहिये । वसुगणों ने रास्ता दिखाया कि हम अपने तेज का अष्टमांश देंगे, वह तुम्हारा पुत्र होगा।

राजा भगीरथ की तपस्या, सगर पुत्रों की मुक्ति, गङ्गा जी का अवतरण आदि गङ्गा जी से सम्बन्धित आख्यान श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण के बालकाण्ड में विस्तार से दिये गये हैं ।

४ - भगीरथ द्वारा गङ्गा अवतरण -

प्राचीन भारत के चक्रवर्ती सम्राट् महाराज सगर थे- इनकी दो पत्नियाँ - सुमति (वैदर्भी) और केशिनी (शैब्या) थी । केशिनी से अंशुमान् का जन्म हुआ और सुमति से साठ हजार पुत्रों का । सगर के साठ हजार पुत्रों ने धराधाम पर कोहराम मचा दिया । सभी देवता दु:खी होकर ब्रह्मा जी के पास पहुँचे, ब्रह्मा जी ने कहा आप लोग चिन्ता नहीं करें महर्षि कपिल इन साठ हजार उत्पातियों को भस्म कर देंगे। महाराज सगर ने अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा छोड़ दिया - सगर ने अश्वरक्षा के लिये साठ हजार पुत्रों को नियुक्त किया देवराज इन्द्र ने अश्व को चुरा लिया और तपस्यारत महर्षि कपिल के स्थान पर बांध दिया, महर्षि कपिल को घोड़ा चुराने वाला समझकर राजकुमारों ने महर्षि पर हमलाकर दिया । शोर सुनकर महर्षि ने आँखें खोली, आँखों के खुलते ही साठ हजार राजकुमार भस्म हो गये । अपने पुत्रों को न आया हुआ देख राजा चिन्तित हुए उन्होंने पुत्र अंशुमान् को खोज-खबर लेने के लिये भेजा- ज्ञात हुआ कि महर्षि की क्रोधाग्नि से सभी राजकुमार भस्म हो गये हैं, घोड़ा भी वहीं पर है । भगवान् कपिल की स्तुति कर घोड़ा ले आये, अश्वमेध यज्ञपूर्ण हुआ परन्तु सभी को साठ हजार कुमारों की मुक्ति की चिन्ता सताने लगी । महर्षि कपिल ने कहा कि इनका उद्धार स्वर्गलोक से आकर गङ्गा जी ही कर सकती है आपलोग गङ्गा को इस पृथ्वी लोकपर लाने का प्रयत्न और तप करें- इनका उद्धार तभी हो सकता है । गङ्गा जी को पृथ्वी पर लाने में अंशुमान् की कई पीढियाँ बीत गयी परन्तु गङ्गा अवतरण का यह यह कठिन कार्य सम्भव नहीं हो सका । इस परम्परा में महाराज भगीरथ सम्राट् बने इन्हें भी अपने पूर्वजों की अधोगति का दु:ख था, भगीरथ दृढ निश्यच वाले थे, अपना राजपाट, ऐश्वर्य छोड़कर गङ्गा लाने के लिये हिमालय में कठोर तप करने लगे । गङ्गा जीने प्रसन्न होकर राजा से कहा राजन् मैं तुम्हारे पूर्वजों का उद्धार करने के लिये पृथ्वी पर आ सकती हूँ परन्तु मेरे महान् वेग से यह पृथ्वी रसातल में चली जायेगी मेरे वेग को संभालने के लिये पहले आप भगवान् शंकर को प्रसन्न करें ।

भगीरथ शिवजी को प्रसन्न करने के लिये तपस्या करने लगे, प्रसन्न होकर शिव जी ने कहा राजन् मैं गङ्गा के पतन वेग को अपनी जटाओं में धारण करूँगा। यह सुनकर चञ्चल गङ्गा ने अपने महान् वेग से भगवान् शंकर को ही रसातल में ले जाने की कोशिश की, भगवान् गङ्गा की इस चंचलता को समझ गये, शिव ने अपनी विश्वनियन्ता शक्ति से गङ्गा को वश में करके अपनी जटाओं में ही समेट लिया यह देख सभी को महान् आश्चर्य हुआ। तपस्यारत भगीरथ के लिये फिर संकट पैदा हो गया, शिव को प्रसन्न करने के लिये फिर तपस्या करने लगे। प्रसन्न होकर भगवान् ने कहा राजन् यह पृथ्वी गङ्गा के वेग को धारण नहीं कर सकती है मैं गङ्गा के वेग का कुछ अंश पृथ्वी लोक में दूँगा यह गङ्गा कई धाराओं में विभक्त होकर और गङ्गा होकर तुम्हारे मनोरथ को पूर्ण करेगी। भगवान् ने अपनी जटाओं को हिलाकर महावेगवती गङ्गा का कुछ अंश पृथ्वी लोक को दिया- बिन्दु सरोवर में गङ्गा जी का आगमन हुआ वहाँ गङ्गा जल सात नदियों में विभाजित हो गया। गङ्गा जी ने भगीरथ से कहा मुझे मार्ग दिखाओ राजा भगीरथ गङ्गा के आगे-आगे चलकर महर्षि कपिल के आश्रम पर पहुँचे - गङ्गा की पवित्र धारा से सगर के साठ हजार पुत्रों की मुक्ति हुई। (गङ्गा जी की यह पुण्य देने वाली कथा, प्रायः सभी पुराणों में है)

वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड- ४३,४४, ब्रह्माण्ड पुराण - ३/५६, देवी भागवत- ९/६-७, महाभारत - द्रोण-६०, अनुशासन-२६, वन-१०९

५- गङ्गा जाह्नवी -

राजा भरत के पौत्र एवं भूमन्यु के पुत्र सुहोत्र अत्यन्त दानवीर एवं अतिथि सेवक थे। दानशूरता से प्रसन्न होकर इन्द्र ने इनके राज्य में एक वर्ष तक सुवर्ण की वर्षा की थी। सुवर्ण सम्पत्ति इसने ब्राह्मणों में बांट दी– महाभारत द्रोण पर्व और शान्तिपर्व में यह उल्लेख है। प्रतापी राजा सुहोत्र एवं पत्नी इक्ष्वाकु कन्या स्वर्णा के पुत्र अजमीढ थे। अजमीढ अत्यन्त प्रतापवान् राजा थे। अजमीढ मन्त्रद्रष्टा हैं। ऋग्वेद में इनके दो सूक्त हैं। पत्नी शिनी के गर्भ से महर्षि जह्नु का जन्म हुआ। मूलतः क्षत्रिय होते हुए भी इस वंश के लोग तप के द्वारा ऋषि हुये -

क्षात्रोपेताः स्मृता ह्येते तपसा ऋषितां गताः। एते राजर्षयः सर्वे सिद्धिं सुमहतीं गताः।।

(वायुपु०९१/११८)

गङ्गा अवतरण के समय मार्ग में गङ्गा अपने जल प्रवाह से जह्नु के यज्ञ मण्डप को बहा ले गयी जिस पर कुपित होकर जह्नु ने गङ्गा के समस्त जल को पी लिया, इसे देख सभी ऋषिगण आश्चर्य चकित हो गये -

अपिबत् तु जलं सर्वं गङ्गायाः परमाद्भुतम्। ततो देवाः सगन्धर्वा ऋषयश्च सुविस्मिताः।।

गङ्गा को लुप्त हुआ देखकर सभी अत्यन्त दुखी हो गये महर्षि जह्नु से गङ्गा जी को प्रकट करने की प्रार्थना की। प्रसन्न होकर महर्षि ने जाह्नवी को प्रकट किया तभी से गङ्गा जाह्नवी के नाम से महर्षि जह्नु की कन्या प्रसिद्ध हुई। (वा०रा०१/४३/३६)

६- गङ्गा सागर, समुद्र संगम -

गङ्गा सागर संगम-गङ्गा सागर कोलकाता से दक्षिण पूर्व सुन्दरवन क्षेत्र में स्थित एकतीर्थ जो गङ्गा सागर संगम पर स्थित है । यहीं पर कपिल मुनि का आश्रम था जहाँ ६०,००० सगर पुत्र भस्म हो गये थे । मकर संक्रान्ति को विशाल मेला लगता है । गङ्गा सागर के माहात्म्य का शास्त्रों में अपार वर्णन है । सभी तीर्थ बार-बार परन्तु गङ्गा सागर में एक बार में ही स्नान करने से सभी तीर्थों का फल प्राप्त हो जाता है ।

७- गंगा, राजा प्रतीप -

इस पृथ्वी पर आधिपत्य राजा प्रतीप का था, एक समय वे गङ्गाद्वार (हरिद्वार) आकर गङ्गा जी के किनारे साधना कर रहे थे । इसी समय गङ्गा जी उत्तम गुणों से युक्त अपूर्व सुन्दरी के रूप में आकर राजा प्रतीप की दाहिनी जाँघ पर जा बैठी । उनका रूप देवांगनाओं के समान था । मुख अत्यन्त मनोहर था । राजा प्रतीप ने गङ्गा से पूछा कल्याणि मैं तुम्हारा कौन सा प्रिय कार्य करूँ । तुम्हारी क्या इच्छा है । गङ्गा बोली राजन् मैं आपको ही चाहती हूँ मुझे पत्नी के रूप में स्वीकार करें । राजा प्रतीप ने कहा शोभने! यह कैसे हो सकता है, तुम मेरी दायीं जाँघ पर बैठी हो, यह स्थान पुत्र-पुत्री, पुत्रवधू का आसन है । बाँया भाग स्त्री के लिये होता है । अब यह सम्भव नहीं है कि मैं तुम्हे अपनी पत्नी बनाऊँ । तुम मेरी पुत्रवधू हो जाओ मैं अपने पुत्र के लिये तुम्हारा वरण करता हूँ ।

८- गङ्गा, अष्टवसु -

मार्ग से जाती हुई गङ्गा ने अष्टवसुदेवताओं को देखा । उनका शरीर स्वर्ग से नीचे गिर रहा था । वे मोहाच्छन्न एवं मलिन दिखायी दे रहे थे । उन्हें इस रूप में देखकर नदियों में श्रेष्ठ गङ्गा ने पूछा- तुम लोगों का दिव्य रूप कैसे नष्ट हो गया ? देवता सकुशल तो हैं न ? तब वसुदेवताओं ने गङ्गा से कहा- 'महानदि ! महात्मा वशिष्ठ ने थोड़े से अपराध पर क्रोध में आकर हमें शाप दे दिया है । एक दिन जब वशिष्ठ जी पेड़ों की आड़ में संध्योपासना कर रहे थे, हम सबने मोहवश उनकी धेनुका का अपहरण कर लिया । इससे कुपित होकर उन्होंने हमें शाप दिया कि 'तुम लोग मनुष्ययोनि में जन्म लो' । उन ब्रह्मवादी महर्षि ने जो बात कह दी है, यह टाली नहीं जा सकती, अत: हमारी प्रार्थना है कि तुम पृथ्वी पर मानवपत्नी होकर हम वसुओं को अपने पुत्र रूप से उत्पन्न करो ।

शुभे ! हमें मानुषी स्त्रियों के उदर में प्रवेश न करना पड़े, इसीलिये हमने यह अनुरोध किया है । वसुओं के ऐसा कहने पर गङ्गाजी 'तथास्तु' कहकर बोलीं- वसुओं ! मृत्युलोक में ऐसे श्रेष्ठ पुरुष कौन हैं, तुम लोगों के पिता होगें । वसुगण बोले- प्रतीप के पुत्र राजा शान्तनु लोकविख्यात साधु पुरुष होंगे । मनुष्य लोक में वे ही हमारे जनक होंगे । गङ्गाजी ने कहा- निष्पाप देवाताओं ! तुम लोग जैसा कहते हो, वैसा ही मेरा भी विचार है । मैं राजा शान्तनुका प्रिय करूँगी और तुम्हारे इस अभीष्ट कार्यको भी सिद्ध करुँगी । तीनों लोकों में प्रवाहित होने वाली गङ्गे ! हम लोग जब तुम्हारे गर्भ से जन्म लें,

तब तुम पैदा होते ही हमें अपने जल में फेंक देना; जिससे शीघ्र ही हमारा मर्त्यलोक से छुटकारा हो जाय । गङ्गा ने कहा- ठीक हैं, मैं ऐसा ही करूँगी, परन्तु उस राजा का मेरे साथ पुत्र के लिये किया हुआ सम्बन्ध व्यर्थ न हो जाये, इसलिये उनके लिये एक पुत्रकी भी व्यवस्था होनी चाहिये । हम सब लोग अपने तेज का एक-एक अष्टमांश देगें । उस तेज से जो तुम्हारा एक पुत्र होगा, वह उस राजा की इच्छा के अनुरूप होगा । किंतु मर्त्यलोक में उसकी कोई संतान न होगी । अत: तुम्हारा वह पुत्र संतानहीन होने के साथ ही अत्यन्त परक्रमी होगा । इस प्रकार गङ्गाजी के साथ शर्त करके वसुगण प्रसन्नतापूर्वक अपनी इच्छा के अनुसार चले गये ।

९- गङ्गा, राजा शान्तनु-

शान्त पिता की सन्तान होने से प्रतीप पुत्र शान्तनु कहलाये । प्रतीप ने गङ्गा जी के साथ हुई घटना को शान्तनु को बताया और कहा यदि तुम्हारे पास वह सुन्दरनारी आये तो तुम उसे ग्रहण करने से मना नहीं करना । किसी समय शान्तनु गङ्गा जी के किनारे भ्रमण कर रहे थे, उन्होंने सर्वाङ्ग सुन्दरी नारी को देखा और बोले- क्या तुम देवी हो, दानवी हो, गन्धर्वी हो, अप्सरा हो, नागकन्या हो अथवा मानवी हो? तुम जो भी हो मैं तुमसे याचना करता हूँ कि मेरी पत्नी हो जाओ । गङ्गा को वसुओं को दिया हुआ वचन याद हो आया । प्रतीप के साथ हुई घटना स्मृति में आ गई । गङ्गा ने शर्त रखी कि-

यत्तु कुर्यामहं राजञ्छुभं वा यदि वाऽशुभम्। न तद् वारयितव्याऽस्मि न वक्तव्या तथाऽप्रियम् ।।

(म०भा०आदि ९८/३)

- राजन्! मैं भला या बुरा जो कुछ भी करूँ उसके लिये आपको मुझे नहीं रोकना चाहिये और मुझसे कभी अप्रिय वचन भी नहीं कहना चाहिये । यदि विपरीत हुआ तो मैं छोड़कर चली जाऊँगी । दिन बीतते गये, गङ्गा को शान्तनु से पुत्र उत्पन्न होते और गङ्गा उनको जलधारा में डुबो देती, परन्तु महाराजा शान्तनु अपने दिये गये वचन को याद कर कुछ नहीं बोल पाते थे, अन्दर से बहुत दु:खी थे । जब आठवें बालक ने जन्म लिया तो गङ्गा महाराजा शान्तनु के सामने, हँसते हुये नवजात बालक को धारा में डुबाने के लिये ले जाने लगी, अब महाराज शान्तनु के धैर्य का बांध टूट गया, उन्होंने मन में विचार किया जो होना है वह होगा मैं इस बालक को गङ्गा में डुबोने नहीं दूँगा । बालक को पकड़ कर बोले हे कुलघातिनि ! तुम कौन हो तुम पुत्र हत्या क्यों कर रही हो? महाराजा शान्तनु को गङ्गा को अपनी पत्नी बनाते हुये यह पता नहीं था कि यह देवलोक से आयी गङ्गा नदी ही है । गङ्गा बोली- राजन् ! अब मेरे रहने का समय समाप्त हो गया मैं इस पुत्र को नहीं मारूँगी । मैं महर्षि जह्नु की पुत्री भागीरथी गङ्गा हूँ, देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिये मैं आयी थी । तुमने आठ वसुओं को जन्म देकर अपना जन्म सफल कर लिया है । यह आठवाँ बालक वसुओं के अंश से उत्पन्न हुआ है इसे मेरा बालक समझना और इसका नाम गङ्गादत्त रखना -

मत्प्रसूतिं विजानीहि गङ्गादत्तमिमं सुतम् ।।

अष्टवसुओं को शाप और मुक्ति की कहानी सुनाकर गङ्गा देवी उस नवजात शिशु को साथ ले राजा शान्तनु के सामने ही वहीं गङ्गा में अन्तर्धान हो गई । कालान्तर में आठवें गङ्गापुत्र, अन्य नाम देवव्रत, अपनी अटल प्रतिज्ञा के कारण भीष्म नाम से प्रसिद्ध हुये । (म०भा०आदि ९८/२४)

१०- गङ्गापुत्र भीष्म -

१-जन्म- ब्रह्मा के शाप के कारण, गङ्गा नदी को पुरुवंशीय राजा शांतनु की पत्नी बनना पड़ा । वसिष्ठ के शाप तथा इन्द्र की आज्ञा से अष्टवसुओं ने गङ्गा के उदर में जन्म लिया । उनमें से सात पुत्रों को गङ्गा ने नदी में डुबो दिया । आठवाँ पुत्र 'द्यु' नामक वसु का अंश था, जिसको डुबाते समय शांतनु ने गङ्गा से विरोध किया । यही पुत्र भीष्म है, जिसे साथ लेकर गङ्गा अन्तर्धान हो गयी । इस आठवें पुत्र को वसुओं द्वारा यह शाप दिया गया था कि यह नि:संतान ही होगा ।

२- सुविख्यात राजनीति एवं रणनीतिकार, सत्यप्रतिज्ञ, भीष्मपितामह कुरु राजा शान्तनु के द्वारा गङ्गा नदी के गर्भ से उत्पन्न हुये । (म०भा०आ०९८/२४) । इसका मूल नाम 'गङ्गादत्त/देवव्रत' था । गङ्गा का पुत्र होने के कारण गङ्गापुत्र 'गाङ्गेय' 'जाह्नवीपुत्र' 'भागीरथीपुत्र' आदि नामांतर भी प्राप्त थे । 'भीष्म' का शाब्दिक अर्थ 'भयंकर' है । अपने पिता शान्तनु के सुख के लिए आजन्म अविवाहित रहने एवं राज्यत्याग करने की भयंकर प्रतिज्ञा की थी । इसी से इन्हें 'भीष्म' कहा गया ।

३- अपने पुत्र भीष्म को गङ्गा को दे देने के उपरांत, करीब छत्तीस वर्षो के बाद एक समय महाराजा शांतनु गङ्गा किनारे शिकार कर रहे थे । हिरण के पीछे दौड़ते हुये गङ्गा नदी के पास आ कर देखा कि गङ्गा का पानी कम हो गया है । शांतनु के आश्चर्य की सीमा न रही । जब उन्होंने देखा कि एक सुन्दर युवा, बालक ने अपने अचूक शरसंधान के द्वारा गङ्गा का प्रवाह रोक रखा है । इस प्रकार बालक की अस्त्रविद्या को देखकर शान्तनु चकित हो गया । (म०भा०आ०१००/२२) यह बालक और कोई न हो कर गङ्गापुत्र, शान्तनुपुत्र भीष्म ही था । परन्तु भीष्म को कभी युवा होते हुये न देखने के कारण वह उसे पहचान न सका । जैसे ही शांतनु ने इसे देखा, वह तत्काल ही दृष्टि से ओझल हो गया । उसके मन में यह शंका हुयी कि कहीं यह मेरा तो पुत्र नहीं है? यह बात मन में आते ही उसने गङ्गा का स्मरण किया और पुत्र को पुन: दिखाने के लिए आग्रह किया । तब स्त्रीरूपधारणी गङ्गा शुभ्र परिधानों तथा बहुमूल्य अलंकारों को धारण किए हुए उपस्थित हुयीं । अन्त में गङ्गा ने संपूर्ण पूर्वकथन कहते हुए, अपने पुत्र भीष्म को राजा शांतनु को दे दिया । (म०भा०आ० १००/४०) जिस समय गङ्गा ने भीष्म को दिया, उस समय उसका मातृहृदय शोक से विह्वल था, क्योंकि, जिस पुत्र का पालन पोषण किया, शिक्षादि दी, वही पुत्र आज उससे दूर जा रहा था । अंत में गङ्गा पुत्र भीष्म को दे कर अंतर्धान हो गयी । भीष्मपितामह के महनीय चरित्र, अद्भुत आख्यानों का वर्णन महाभारत में हजारों श्लोकों में किया गया है । महाभारत की लगभग पूरी धूरी भीष्मपितामह के इर्द-गिर्द ही घूमती है । भीष्मपितामह ने बहुत लम्बी आयु प्राप्त की थी, महाभारत के युद्ध के समय इनकी आयु लगभग १६०

वर्ष थी । महाभारत में जीवित मानवीय चरित्रों में इतनी लम्बी आयु का कोई नहीं है । भीष्मपितामह को इच्छा मृत्यु का वरदान प्राप्त था । कौरव, पाण्डव एवं भगवान् श्रीकृष्ण के समक्ष हाथ जोड़कर भीष्मपितामह ने भगवान् श्रीकृष्ण से प्रार्थना की आप आज्ञा दीजिये मैं इस शरीर का परित्याग करूँगा। भगवान् ने कहा भीष्म ! तुम मार्कण्डेय के समान हो और मृत्यु तुम्हारे ही हाथ में है, तुम जब चाहो इसका वरण कर सकते हो । भगवान् की आज्ञा प्राप्त कर भीष्म ने कौरव, पाण्डवों सभी को उपदेश दिया कि सत्यमार्ग से और धर्ममार्ग से कभी विचलित नहीं होना - ''**सत्यं हि परमं बलम्**'' भीष्मपितामह की मृत्यु के समय के अन्तिम शब्द -

ब्राह्मणाश्चैव ते नित्यं प्राज्ञाश्चैव विशेषतः। आचार्या ऋत्त्विजश्चैव पूजनीया जनाधिपः ।।

- राजन् युधिष्ठिर तुम्हे सभी ब्राह्मणों की, विशेषत: विद्वानों की और आचार्य तथा ऋत्त्विजों की सदा पूजा करनी चाहिये- यह कहकर भीष्मपितामह ने योगशक्ति द्वारा प्राणों को सब ओर से रोक लिया, इनके प्राण ब्रह्मरन्ध्र (मस्तिष्क) को फोड़कर स्वर्गलोक में चले गये- ये वाक्य भीष्म पितामह के अन्तिम वाक्य थे । (म०भा०अनु०१६८/५२)

११- गङ्गा का रुदन-

युद्ध के समय शिखण्डी और अर्जुन द्वारा भीष्मपितामह का रोम-रोम बाणों से बेध दिया गया था, रथ से भूमि पर गिरने के समय उनके शरीर को भूमि का स्पर्श नहीं था । भीष्मपितामह के मृत्युकाल के उपरान्त कौरव, पाण्डवों, श्रीकृष्ण के द्वारा गङ्गा के तट पर दिये गये श्राद्ध-जलाञ्जलि के बाद सभी के समक्ष भीष्मजननी गङ्गा प्रकट हुयी- पुत्र शोक से विह्वल हो रुदन एवं विलाप करती हुई बोलीं- भीष्म राजोचित सदाचार से सम्पन्न थे, वे उत्तम बुद्धि और श्रेष्ठ कुल से सम्पन्न थे, महान् व्रतधारी भीष्म कुरुकुलवृद्ध पुरुषोंके सत्कार करने वाले और अपने पिता के बड़े भक्त थे, भीष्म के गुरु परशुराम युद्ध में मेरे महापराक्रमी पुत्र को पराजित नहीं कर सके, वह इस समय शिखण्डी के हाथ से मारा गया, यह कितने कष्ट की बात है, राजाओं ! अवश्य ही मेरा हृदय पत्थर और लोहेका बना हुआ है, तभी तो अपने प्रिय पुत्र को जीवित न देखकर भी आज यह फट नहीं जाता है, काशीपुरी के स्वयंवर में समस्त भूमण्डल के क्षत्रिय एकत्र हुए थे, किन्तु भीष्म ने एकमात्र रथ की ही सहायता से उन सबको जीतकर काशिराजकी तीनों कन्याओं का अपहरण किया था । हाय ! इस पृथ्वीपर बल में जिसकी समानता करने वाला दूसरा कोई नहीं है, उसी को शिखण्डी के हाथ से मारा गया सुनकर आज मेरी छाती क्यों नहीं फट जाती, जिस महामना वीर ने जमदग्निनन्दन परशुराम को कुरुक्षेत्र के युद्ध में अनायास ही पीड़ित कर दिया था, वही शिखण्डी के हाथ से मारा गया, यह कितने दु:ख की बात है। ऐसी बातें कहकर जब महानदी गङ्गाजी बहुत विलाप करने लगीं, तब भगवान् श्रीकृष्ण ने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा - भद्रे ! धैर्य धारण करो । शुभदर्शने ! शोक न करो । तुम्हारे पुत्र भीष्म अत्यन्त उत्तम लोक में गये हैं, इसमें संशय नहीं है । शोभने ! ये महातेजस्वी वसु थे, वसिष्ठजी के शाप-दोष से इन्हें

मनुष्य योनि में आना पड़ा था, अतः इनके लिये शोक नहीं करना चाहिये ।
(म०भा०अनु०१६८/३०-३२)

स एष क्षत्रधर्मेण अयुध्यत रणाजिरे । धनञ्जयेन निहतो नैष देवि शिखण्डिना ।।

- देवि ! इन्होंने समरांगण में क्षत्रियधर्म के अनुसार युद्ध किया था । ये अर्जुन के हाथ से मारे गये हैं, शिखण्डी* के हाथ से नहीं । (म०भा०अनु०१६८/३२-३३)

* **शिखण्डी कथा -** भीष्मपितामह अपने भाइयों के विवाह के लिये काशिराज की तीन कन्या- अम्बा, अम्बिका, अम्बालिका का स्वयंवर से अपहरण कर लाये । राजकुमारी अम्बा किसी राजा से प्रेम करती थी उसने भीष्म से प्रार्थना की मुझे आप छोड़ दीजिये, भीष्म ने अम्बा को छोड़ दिया किन्तु अम्बा के प्रेमी राजा ने अम्बा को स्वीकार नहीं किया । अम्बा ने आकर भीष्म से कहा तुम्हारे कारण मेरी यह दुर्गति हुई है तुम ही मुझसे विवाह करो, किन्तु भीष्म आजन्म कुंवारे रहने की प्रतिज्ञा ले चुके थे । यहीं से राजकुमारी अम्बा की दुर्दशा के दिन प्रारम्भ हो गये, अम्बा भटकती हुयी चारों दिशाओं में सहायता माँगने लगी, मामा सृञ्जय के पास गई और अपनी कहानी सुनाई, अम्बा ने कहा कि आपके मित्र परशुराम क्षत्रिय द्रोही हैं परशुराम से भीष्म को मरवा दीजिये, मामा सृञ्जय इसके लिये तैयार नहीं हुए, अम्बा की जिदपर मामा और भाँजी परशुराम के यहाँ पहुँचे, भगवान् परशुराम ने कहा मैं उन्हीं क्षत्रियों का वध करता हूँ जो ब्राह्मणद्रोही होते हैं, भीष्म इस श्रेणी में नहीं आते परन्तु अम्बा और सृञ्जय के बार-बार अनुरोध करने पर परशुराम अपने शिष्य भीष्म को समझाने के लिये चल पड़े । गुरु के बार-बार कहने पर भी दृढप्रतिज्ञ भीष्म अम्बा को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं हुये, परशुराम ने अपना अपमान समझा और भीष्म को युद्ध के लिये ललकार दिया । दु:खी मन से भीष्म भी युद्ध करने के लिये तैयार हो गये । कई दिन तक युद्ध चला, अन्त में माता गङ्गा ने आकर युद्ध को रुकवाया। अम्बा यहाँ भी अपना कार्य पूरा होते हुये न देखकर दुखी होकर चारों दिशाओं में भटकने लगी । तीर्थों में जाकर अम्बा ने कठोर तपस्या की । भगवान् शंकर की आराधना यमुना किनारे, यमुना जी में रहकर करने लगी, गङ्गा भीष्म की माता थी इसलिये अम्बा गङ्गा जी से दूर ही रहती थी परन्तु गङ्गा जी को अम्बा की तपस्या का रहस्य मालुम था कि अम्बा मेरे पुत्र भीष्म को मरवाने के लिये तप कर रही है, गङ्गा ने कई बार अम्बा को समझाया कि तुम भीष्ममरण के लिये तप मत करो, भीष्म का तुम्हारी दुर्दशा में कोई हाथ नहीं है किन्तु अम्बा अपने कर्म में अटल रही, भगवान् शंकर ने अम्बा को वरदान दिया कि तुम अगले जन्म में शिखण्डी होकर भीष्म का वध करोगी- **कन्या भूत्वा पुमान् भावी इति चोक्तोऽस्मि शम्भुना ।** (म०भा०उ०१८८/७) और तुम्हे पूर्वजन्म की स्मृति भी रहेगी । राजा द्रुपद की तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् शंकर ने कहा राजन् ! तुम्हारे यहाँ एक बालिका का जन्म होगा यह बालिका बड़ी होने पर पुरुष हो जायेगा । राजा द्रुपद के यहाँ अम्बा ने शिखण्डिनी बालिका के रूप में जन्म लिया, द्रुपद और द्रुपद पत्नी ने इस रहस्य को छिपाये रखा कि यह बालिका है और बालक की तरह ही इसका

नामकरण पुलिंग शब्द शिखण्डी (शिखण्डिन्) रखा और पुत्र की तरह ही पालन-पोषण किया, विवाह भी राजकुमारी से कर दिया गया । राजकुमारी ने इस दुर्घटना की जानकारी अपने माता-पिता को दी। राजकुमारी की यह बात सुनकर इसके माता-पिता को बहुत दु:ख हुआ, राजा ने द्रुपद पर हमले की तैयारी कर दी, इस दु:ख को देखकर शिखण्डिनी हिमालय के वन में भटकती हुयी गन्धर्व स्थूणाकर्ण के राज्य में पहुँची, स्थूणाकर्ण के सामने शिखण्डिनी ने अपनी पूरी कहानी सुनाई, इस कथा को सुनकर स्थूणाकर्ण ने कहा राजकुमारी मैं तुम्हे अपना पुरुषत्व कुछ समय के लिये दे देता हूँ तुम अपना संकट समाप्त होने के बाद मुझे मेरा पुरुषत्व वापस कर दोगी । शिखण्डिनी प्रसन्नता पूर्वक शिखण्डी (पुरुष) होकर अपने राज्य में आया और अपने पुरुषत्व की परीक्षा दी । संकट समाप्त हो गया । इसी बीच गन्धर्वराज के यहाँ कुबेर आये परन्तु कुबेर के सामने स्त्री रूप में स्थूणाकर्ण उपस्थित नहीं हुआ, कुबेर को पता चला कि इसने अपना पुरुषत्व शिखण्डिनी को दे दिया है, स्थूणाकर्ण को कुबेर के सामने बुलाया गया और स्थूणाकर्ण ने सारी कथा कुबेर को सुनाई, कुबेर ने अभिशाप दिया कि तुम शिखण्डी की मृत्यु के बाद ही पुरुष बनोगे और कुबेर अपने लोक में चले गये। इतने में ही प्रतिज्ञाबद्ध शिखण्डी अपने पुरुषत्व को वापस करने के लिये गन्धर्व स्थूणाकर्ण के पास आया, स्थूणाकर्ण ने कहा-राजकुमार शिखण्डी अब इस पुरुषत्व को तुम अपने पास ही रखो, तुम्हारी मृत्यु के बाद ही तुम्हारा पुरुषत्व मुझे प्राप्त होगा ऐसा गन्धर्वराज कुबेर ने कहा है । राजा द्रुपद पर भगवान् शंकर के वरदान से अम्बा शिखण्डिनी पूर्ण पुरुष के रूप में परिवर्तित हो गई और इसका नामकरण शिखण्डी (शिखण्डिन् पुलिंग शब्द का प्रथमा का एक वचन किया गया) जिसे भ्रम से ''बड़ी ई'' की मात्रा होने के कारण स्त्रीलिंग समझ लिया जाता है । गन्धर्व स्थूणाकर्ण द्वारा दिये गये पूर्ण पुरुषत्व के बाद से मृत्यु पर्यन्त शिखण्डी पूर्ण पुरुष हैं और पाण्डव सेना के पन्द्रह हजार सैनिकों के प्रतिदिन के महारथी थे । राजकुमार शिखण्डी ने कौरव, पाण्डवों के साथ ही द्रोणाचार्य से शिक्षा प्राप्त की थी । इनके पुत्र का नाम क्षत्रदेव था, ये भी महाभारत के युद्ध में रथी सेनापति थे । शिखण्डी और अर्जुन के सेनापतित्व में कौरवों-पाण्डवों के बीच घनघोर युद्ध हुआ । इस युद्ध में भीष्मपितामह ने शिखण्डी के बालिका के रूप में जन्म लेने के कारण और युवा अवस्था तक इसी जन्म में स्त्री रहने के कारण शिखण्डी को मारने के लिये भीष्मपितामह ने अस्त्र-शस्त्र नहीं चलाया और भीष्मपितामह बाणों से आहत होकर रथ से गिर पड़े ।

पाण्डव पक्ष में शिखण्डी का बहुत बड़ा सम्मान है श्रीमद्भगवद्गीता में भी शिखण्डी को महारथी कहा है । दुर्भाग्य से बालिका रूप में जन्म लेने से स्त्रीत्व का साया शिखण्डी के साथ सदा लगा रहा। भीष्मपितामह की यह प्रतिज्ञा थी कि मैं स्त्री के सामने शस्त्र नहीं उठाऊँगा और जिस सेनापति के ध्वज पर अमांगलिक चिह्न होगा उसके सामने भी मैं शस्त्र नहीं उठाऊँगा । भीष्मपितामह को शिखण्डी का अम्बा-बालिका के रूप में जन्म लेना मालुम था और यह भी मालुम था कि यह युद्धकाल के समय पूर्ण

पुरुष और महान् योद्धा है, परन्तु भीष्मपितामह का धर्म और सत्यता का विचार बहुत ही ऊँचा था जिसे आज के समय में समझना मुश्किल है । ऐसी व्यवस्था के लिये भीष्मपितामह का मस्तिष्क तैयार नहीं था, उन्होंने बालिका शिखण्डिनी को पुरुषरूप में परिवर्तित होने पर भी स्त्री ही माना और श्रीकृष्ण, पाण्डवों को अपनी मृत्यु का रहस्य भी बता दिया कि शिखण्डी योद्धा को आगे रखकर आप लोग युद्ध करेंगे तो मैं शिखण्डी के सामने अस्त्र-शस्त्र नहीं उठाऊँगा और अर्जुन मेरा वध कर दे । इस तरह से अम्बा का भीष्म से बैर, भीष्म की मृत्यु के बाद शान्त हुआ । शिखण्डी का वध महाभारत में द्रोणाचार्य पुत्र अश्वत्थामा द्वारा किया गया ।

१२- गङ्गा, कार्तिकेय की माता -

असुरों और राक्षसों के उपद्रव से देवलोक और इन्द्र का सिंहासन काँप रहा था, देवताओं ने भगवान् ब्रह्मा से प्रार्थना की भगवन् हमें असुरों से युद्ध करने के लिये सेनापति दीजिये । देवों के सेनापति स्कन्द, कार्तिकस्वामी ने तारकासुर एवं अन्य असुरों का वध करने के लिए जन्म लिया । ब्रह्मा ने तारकासुर को अवध्यता का वरदान देते हुए कहा था कि इस सृष्टि में केवल सात दिन का अर्भक, जन्म लिया हुआ बालक ही तारकासुर का वध कर सकता है । इसी कारण जन्म के पश्चात् सात दिनों की अवधि में ही कुमार स्वामी ने तारकासुर से युद्ध कर, उसका वध किया । रामायण, महाभारत, पद्मपुराण, मत्स्य, ब्रह्माण्डपुराण, स्कन्दपुराण आदि में कार्तिकेय की रोचक कथायें विस्तार से दी गयी हैं । स्कन्द पुराण कार्तिकेय के नाम से ही जाना जाता है ।

शिव-पार्वती के तेज को जब कोई धारण नहीं कर सका तो अष्टवसुओं में से एक अनल-अग्नि नामक वसु को शिव का तेज दिया गया, परन्तु अग्निवसु उसे धारण नहीं कर सका । अग्नि ने उस तेज को गंगा जी को दे दिया, गङ्गा ने उस तेज को बड़ी कठिनाई से कुछ समय धारण किया, ब्रह्मादि देवताओं के कहने पर गङ्गा ने उस तेज को भूमि पर छोड़ दिया, वहाँ घास, शर-सरकण्डों के जंगल में कार्तिकेय का जन्म हुआ, जिससे शर+वन (शरवण) इनका नामकरण हुआ । कार्तिकेय को इसीलिये जाह्नवीपुत्र, गङ्गापुत्र भी कहा जाता है ।

तस्मिञ्जाते महाभागे कुमारे जाह्नवीसुते । (ब्रह्माण्डपु० ३-१०-३५)

भगवान् कार्तिकेय शिव, पार्वती, अग्नि, सप्तर्षिपत्नी, कृतिकाओं के पुत्र होते हुए भी, मुख्यरूप से भागीरथी गङ्गा के ही पुत्र हैं । देवसेनापति कार्तिकेय से सम्बन्धित पूजा विधान, आख्यान, माहात्म्य शास्त्रों में उपलब्ध है । जन्म के छठवें दिन देवताओं ने इनको अस्त्र-शस्त्र देकर देवसेनापति बनाया । सातवें दिन इस तेजस्वी बालक ने तारकासुर का वध किया । दक्ष प्रजापति की पुत्री देवसेना ने भगवान् कार्तिकेय का वरण किया ।

जब महादेवजी तपस्या कर रहे थे, उस समय इन्द्र और अग्नि आदि सम्पूर्ण देवता अपने लिये

सेनापति की इच्छा लेकर ब्रह्माजी के पास आये । इन्द्र और अग्निसहित समस्त देवताओं ने भगवान् ब्रह्मा को प्रणाम करके इस प्रकार कहा । प्रभो ! पूर्वकाल में जिस भगवान् महेश्वर ने हमें सेनापति प्रदान किया था, वे उमादेवीके साथ उत्तम तपका आश्रय लेकर तपस्या करते हैं । विधि-विधान के ज्ञाता पितामह! अब लोक हित के लिये जो कर्तव्य प्राप्त हो, उसको पूर्ण कीजिये, क्योंकि आप ही हमारे परम आश्रय हैं । देवताओं की यह बात सुनकर सम्पूर्ण लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने मधुर वचनों द्वारा उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा । देवताओं! गिरिराजकुमारी पार्वती ने जो शाप दिया है, उसके अनुसार तुम्हें अपनी पत्नियों के गर्भ से अब कोई संतान नहीं होगी । उमादेवी की वाणी अमोघ है, अत: वह सत्य होकर ही रहेगी, इसमें संशय नहीं है । ये हैं उमा की बड़ी बहिन आकाशगङ्गा, जिनके गर्भ में शङ्कर जी के उस तेज को स्थापित करके अग्निदेव एक ऐसे पुत्र को जन्म देंगे, जो देवताओं के शत्रुओं का दमन करने में समर्थ सेनापति होगा । ये गंगा गिरिराज की ज्येष्ठ पुत्री हैं, अत: अपनी छोटी बहिन के उस पुत्र को अपने ही पुत्र के समान मानेंगी । उमा को भी यह बहुत प्रिय लगेगा । इसमें संशय नहीं है । ब्रह्माजी का यह वचन सुनकर सब देवता कृतकृत्य हो गये । उन्होंने ब्रह्माजी को प्रणाम करके उनका पूजन किया । विविध धातुओं से अलंकृत उत्तम कैलास पर्वतपर जाकर उन सम्पूर्ण देवताओं ने अग्निदेव को पुत्र उत्पन्न करने के कार्य में नियुक्त किया । वे बोले- देव ! हुताशन ! यह देवताओं का कार्य है, इसे सिद्ध कीजिये । भगवान् रुद्र के उस महान् तेजको अब आप गङ्गा जी में स्थापित कर दीजिये ।

रुद्र, शिव का तेज अग्नि द्वारा गङ्गा में स्थापित – गङ्गा भी स्कन्द-कार्तिकेय की माता -

तत्तेजोऽग्निर्महद्भूतं द्वितीयमिति पावकम् । वधार्थं देवशत्रूणां गंगायां जनयिष्यति ।।

(म०भा०अनु० ८५/१२)

देवताओं से बहुत अच्छा कहकर अग्निदेव गङ्गाजी के निकट आये और बोले - देवि! आप इस गर्भको धारण करें । यह देवताओं का प्रिय कार्य है । अग्निदेव की यह बात सुनकर गङ्गा देवी ने दिव्यरूप धारण कर लिया । उनकी यह महिमा - यह रूप-वैभव देखकर अग्निदेव ने उस रुद्र-तेज को उनके सब ओर बिखेर दिया । गङ्गा जी के सारे स्रोत उससे परिपूर्ण हो गये । गङ्गा ने समस्त देवताओं के अग्रगामी अग्निदेव से इस प्रकार कहा - देव! आपके द्वारा स्थापित किये गये इस बढ़े हुए तेज को धारण करने में मैं असमर्थ हूँ । इसकी आँच से जल रहीं हूँ और मेरी चेतना व्यथित हो गयी है । सम्पूर्ण देवताओं के हविष्य का भोग लगाने वाले अग्निदेव ने गङ्गा देवी से कहा- देवि ! हिमालय पर्वत के पार्श्वभाग में इस गर्भ को स्थापित कर दीजिये । अग्निकी यह बात सुनकर महातेजस्विनी गङ्गा ने उस अत्यन्त प्रकाशमान गर्भ को अपने स्रोतों से निकाल कर यथोचित स्थान में रख दिया । गङ्गा के गर्भ से तेज निकला, वह तपाये हुए जाम्बूनद नामक सुवर्ण के समान कान्तिमान् दिखायी देने लगा (गङ्गा सुवर्णमय मेरुगिरि से प्रकट हुई हैं, अत: उनका बालक भी वैसे ही रूप-रंग का हुआ) । पृथ्वीपर जहाँ

वह तेजस्वी गर्भ स्थापित हुआ, वहाँ की भूमि तथा प्रत्येक वस्तु सुवर्णमयी हो गयी । उसके आस-पास का स्थान अनुपम प्रभा से प्रकाशित होने वाला रजत हो गया । उस तेज की तीक्ष्णता से ही दूरवर्ती भूभागकी वस्तुएँ ताँबे और लोहे के रूप में परिणित हो गयीं । उस तेजस्वी गर्भ का जो मल था, वही वहाँ राँगा और सीसा हुआ । इस प्रकार पृथ्वीपर पड़कर वह तेज नाना प्रकार की धातुओं के रूप में वृद्धि को प्राप्त हुआ । पृथ्वी पर उस गर्भ के रखे जाते ही उसके तेज से व्याप्त होकर पूर्वोक्त श्वेतपर्वत और उससे सम्बन्ध रखने वाला सारा वन सुवर्णमय होकर जगमगाने लगा । तभी से अग्निके समान प्रकाशित होने वाले सुवर्ण का नाम जातरूप हो गया, क्योंकि उसी समय सुवर्ण का तेजस्वी रूप प्रकट हुआ था । उस गर्भ के सम्पर्क से वहाँ का तृण, वृक्ष लता और गुल्म- सब कुछ सोने का हो गया । तदनन्तर इन्द्र और मरुद्गणों सहित सम्पूर्ण देवतओं ने वहाँ उत्पन्न हुए कुमार को दूध पिलाने के लिये छहों कृत्तिकाओं को नियुक्त किया । तब उन कृत्तिकाओं ने यह हम सबका पुत्र हो' ऐसी उत्तम शर्त रखकर और इस बात का निश्चित विश्वास लेकर उस नवजात बालक को अपना दूध प्रदान किया । सब देवता बोले- 'यह बालक कार्तिकेय कहलायेगा और तुम लोगों का त्रिभुवनविख्यात पुत्र होगा - इसमें संशय नहीं है । देवताओं का यह अनुकूल वचन सुनकर शिव और पार्वती से स्कन्दित (स्खलित) तथा गङ्गा द्वारा गर्भस्राव होने पर प्रकट हुए अग्नि के समान उत्तम प्रभासे प्रकाशित होने वाले उस बालक को कृत्तिकाओं ने नहलाया । अग्नितुल्य तेजस्वी महाबाहु कार्तिकेय गर्भस्रावकाल में स्कन्दित हुए थे, इसलिये देवताओं ने उन्हें स्कन्द कहकर पुकारा । तदनन्तर कृत्तिकाओं के स्तनों में परम उत्तम दूध प्रकट हुआ । उस समय स्कन्द ने अपने छः मुख प्रकट करके उन छहों का एक साथ ही स्तनपान किया। एक ही दिन दूध पीकर उस सुकुमार शरीरवाले शक्तिशाली कुमार ने अपने पराक्रम से दैत्यों की सारी सेनाओं पर विजय प्राप्त की । तत्पश्चात् अग्नि आदि सब देवताओं ने मिलकर उन महातेजस्वी स्कन्द का देवसेनापति के पदपर अभिषेक किया । (वा०रा०बाल०सर्ग ३७)

१२- गंगा जी की महत्ता -

- देवनदी गङ्गा आदि को बाँधने का, मार्ग अवरुद्ध करने का किसी को अधिकार नहीं है -

असम्बाधा देवनदी स्वर्गसम्पादनी शुभा । कथमिच्छसि तां रोद्धुं नैष धर्मः सनातनः ।।

(म०भा०आदि १६९/१६-२३)

- जब तक मृतक की अस्थि गङ्गा जी में रहती है- वह मृतक स्वर्ग के सुखों को भोगता है।
- गङ्गा जी का स्नान - अश्वमेधफलों को देता है ।
- गङ्गा स्नान सभी पापों को नष्ट कर देता है ।
- इस धरा धाम पर प्राप्त वस्तुओं में गङ्गाजल सबसे अमूल्य है ।
- गङ्गा जी के तट पर किया गया तप शीघ्र फल वाला होता है ।
- गङ्गा तट पर किया गया अन्नदानादि अक्षय फल को देता है ।

- गङ्गा जी के बालूकण, मिट्टी को धारण करने वाला अनन्तफलों को पाता है ।
- गङ्गा के प्रवाहक्षेत्र पवित्र होते हैं ।
- किसी भी नदी का जल गङ्गा में, गङ्गाजल ही हो जाता है ।
- गङ्गा जी के सेवन करने वाले के दोनों परिवार-मातृवर्ग और पितृवर्ग को भी अक्षयफल की प्राप्ति होती है ।
- गङ्गा जी में एक मास (माघमास) का वास हजारों यज्ञों का फल देता है ।
- गङ्गा जी के जल के दर्शन से, पान से, स्नान से सभी कष्ट दूर हो जाते हैं ।
- गङ्गा जी इस धरा की शक्ति है सभी की माता है ।
- गङ्गा जल में गिरे हुए पेड़-पौधों कीट-पतंगों की भी मुक्ति होती है ।
- गङ्गा जी माता की तरह सभी का हित करती हैं । इसके आश्रित थलचर, नभश्चर, जलचर सभी प्राणी सुखपाते हैं ।
- गङ्गा जी स्वर्ग का सोपान (सीढ़ी) है ।
- गङ्गा जी स्वर्गलोक, मर्त्यलोक, पाताललोक को पवित्र करने वाली है ।
- गङ्गा किनारे रहने वाला- मन, वाणी, कर्म से सच्चा होता है ।
- गङ्गा के नाम का उच्चारण मात्र ही मनुष्य के पापों को समाप्त कर देता है ।
- मृत्युकाल में गंगा की एक बूंद स्वर्ग का दर्शन कराती है ।
- गङ्गा जल में सभी देवताओं, तीर्थों का वास है ।
- अन्यतीर्थों में जाने में असमर्थ गङ्गा के दर्शनमात्र से ही सभी फलों को प्राप्त कर लेता है ।
- वे जन स्वर्गवासियों से भी बढ़कर है जो गङ्गा दर्शन करते हैं ।
- गङ्गा जल बासी नहीं होता - **न वर्ज्यं तुलसीपत्रं न वर्ज्यं जाह्नवीजलम् ।**

(स्कन्दपु०वै०मार्गशीर्ष ८/९)

- गङ्गा जन्म- गङ्गा दशहरा । ज्येष्ठ शुक्ल दशमी बुधवार और हस्त नक्षत्र का योग -

ज्येष्ठे मासे सिते पक्षे दशम्यां बुधहस्तयोः। दशहरा जायते व्यास गंगा जन्म परं शुचिः।

(स्कन्दपु०अवन्ति ७८/७) (म०भा० अनु०-२६, वा०रा०बा०-३५-४४)

१३- गङ्गा, राधा, श्रीकृष्ण - (देवीभा० ९/१२-१४)

१४- गंगा जी वाहनादि - भगवती गंगा मकर वाहिनी- **कुम्भाब्जहस्ता श्वेताभा मकरे वापि जाह्नवी ।**

(अग्निपु०५०/१६)

१५- गंगा जी के पुत्र- भीष्म और कार्तिकेय । पति- शान्तनु ।

१६- गंगा नामावली- आकाश गंगा, भगीरथसुता, शैलराजसुता, शैलसुता, देवनदी, हिमवती, जह्नुसुता, जाह्नवी, समुद्रपत्नी, त्रिपथा, त्रिपथगामिनी, विष्णुपदी, भीष्मजननी आदि ।

१७-गंगासहस्रनामावली- श्रीस्कन्दपुराणे काशीखण्डे पूर्वार्धे एकोनत्रिंशाध्याये (अ०२९)

१८- महाभारत में गङ्गा जी से जुड़ी हुई घटनायें, माहात्म्य और प्रशस्ति -

गङ्गा के तट पर अंगारपर्ण-गन्धर्व को अर्जुन ने जीता -

अङ्गारपर्णं निर्जित्य गङ्गाकूलेऽर्जुनस्तदा । सख्यं कृत्वा ततस्तेन तस्मादेव च शुश्रुवे ।।

(म०भा०आदि २/१११)

गङ्गा के तट पर नागों का वास -

बहूनि नागवेश्मानि गङ्गायास्तीर उत्तरे । तत्रस्थानपि संस्तौमि महतः पन्नगानहम् ।।

(म०भा०आदि ३/१३६)

प्रमाणकोटि गङ्गातीर्थ पर दुर्योधन ने भीम को बांधकर गहरे जल में डाल दिया -

प्रमाणकोट्यां संसुप्तं पुनर्बद्ध्वा वृकोदरम् । तोयेषु भीमं गंगायाः प्रक्षिप्य पुरमाव्रजत्।।

(म०भा०आदि ६१/११)

गङ्गा भीष्म की माता -

तथा भीष्मः शान्तनवो गङ्गायाममितद्युतिः। वसुवीर्यात् समभवन्महावीर्यो महायशाः ।।

(म०भा०आदि ६३/९१)

शान्तनु द्वारा गङ्गा के गर्भ से अष्ट वसुओं का जन्म -

जज्ञिरे वसवस्त्वष्टौ गङ्गायां शान्तनोः सुताः । वसिष्ठस्य च शापेन नियोगाद् वासवस्य च ।।

(म०भा०आदि ६७/७४)

गङ्गा नदी से शोभायमान नर-नारायण-आश्रम की तरह दुष्यन्त ने मालिनी नदी के किनारे बने कण्व आश्रम में प्रवेश किया -

अलंकृतं द्वीपवत्या मालिन्या रम्यतीरया । नरनारायणस्थानं गङ्गयेवोपशोभितम् ।।

(म०भा०आदि ७०/२९)

महाराजा ययाति ने गङ्गा और यमुना के बीच के प्रदेश को अपने पुत्र पुरु को दे दिया -

गङ्गायमुनयोर्मध्ये कृत्स्नोऽयं विषयस्तव । मध्ये पृथिव्यास्त्वं राजा भ्रातरोऽन्त्याधिपास्तव ।।

(म०भा०आदि ८७/५)

कार्तिकेय गङ्गापुत्र -

गङ्गासुतस्त्वं स्वमतेन देव

(म०भा०वन २३२/१५)

गङ्गा शान्तनु की पत्नी भीष्म की माता -

शान्तनुः खलु गङ्गां भागीरथीमुपयेमे । तस्यामस्य जज्ञे देवव्रतो नामः यमाहुर्भीष्ममिति ।।

(म०भा०आदि ९५/४७)

देवनदी गङ्गा ब्रह्मा जी की सभा में -

अथ गङ्गा सरिच्छ्रेष्टा समुपायात् पितामहम् । तस्या वासः समुद्धूतं मारुतेन शशिप्रभम् ।।

(म०भा०आदि ९६/४)

गङ्गा शान्तनु की पत्नी -

दिव्यरूपा हि सा देवी गङ्गा त्रिपथगामिनी । मानुषं विग्रहं कृत्वा श्रीमन्तं वरवर्णिनी ।।
भाग्योपनतकामस्य भार्या चोपनताभवत् । शान्तनोर्नृपसिंहस्य देवराजसमद्युतेः ।।

(म०भा०आदि ९८/८-९)

भीष्म गङ्गा जी के पुत्र– नाम गङ्गादत्त, देवव्रत -

एष पर्यायवासो मे वसूनां संनिधौ कृतः । मत्प्रसूतिं विजानीहि गङ्गादत्तमिमं सुतम् ।।

(म०भा०आदि ९८/२४)

पांडव पांचालदेश में गङ्गा के तटपर सोमाश्रयायण तीर्थपर –

ते त्वगच्छन्नहोरात्रात् तीर्थं सोमाश्रयायणम् । आसेदुः पुरुषव्याघ्रा गङ्गायां पाण्डुनन्दनाः ।।

(म०भा०आदि १६९/३)

हिमालय से निकलकर सात धाराओं में विभक्त गङ्गा- गङ्गा-यमुना-सरस्वती-रथस्था-सरयू-गोमती-गण्डकी नदियों में विभाजित सभी का कल्याण करने वाली नदियों पर किसी को रोक लगाना सनातन धर्म नहीं है –

समुद्रे हिमवत्पार्श्वे नद्यामस्यां च दुर्मते । रात्रावहनि संध्यायां कस्य गुप्तः परिग्रहः ।।
भुक्तो वाप्यथवाभुक्तो रात्रावहनि खेचर । न कालनियमो ह्यस्ति गङ्गां प्राप्य सरिद्वराम्।।
पुरा हिमवतश्चैषा हेमशृङ्गाद् विनिस्सृता । गङ्गा गत्वा समुद्राम्भः सप्तधा समपद्यत ।।
गङ्गां च यमुनां चैव प्लक्षजातां सरस्वतीम् । रथस्थां सरयूं चैव गोमतीं गण्डकीं तथा।।
अपर्युषितपापास्ते नदीः सप्त पिबन्ति ये । इयं भूत्वा चैकवप्रा शुचिराकाशगा पुनः ।।
देवेषु गङ्गा गन्धर्व प्राप्नोत्यलकनन्दताम् । तथा पितॄन् वैतरणी दुस्तरा पापकर्मभिः ।
गङ्गा भवति वै प्राप्य कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ।।
असम्बाधा देवनदी स्वर्गसम्पादनी शुभा । कथमिच्छसि तां रोद्धुं नैष धर्मः सनातनः ।।

(म०भा०आदि १६९/१६-२३)

अर्जुन गङ्गाद्वार – हरिद्वार में –

पुण्यान्यपि च तीर्थानि ददर्श भरतर्षभः। स गङ्गाद्वारमाश्रित्य निवेशमकरोत् प्रभुः ।।

(म०भा०आदि २१३/६)

मयासुर कैलास के पूर्वोत्तर (ईशानकोण) मैनाक पर्वत पर गया जहाँ भगीरथ गङ्गा जी के लिये तपस्या कर रहे थे –

इत्युक्त्वा सोऽसुरः पार्थ प्रागुदीचीं दिशं गतः । अथोत्तरेण कैलासान्मैनाकं पर्वतं प्रति ।।
हिरण्यशृङ्गः सुमहान् महामणिमयो गिरिः । रम्यं बिन्दुसरो नाम यत्र राजा भगीरथः ।।
द्रष्टुं भागीरथीं गङ्गामुवास बहुलाः समाः। नरनारायणौ ब्रह्मा यमः स्थाणुश्च पञ्चमः ।।

(म०भा०सभा ३/९-१५)

त्रिकूट पर्वत – गङ्गा-

त्रिशिखां भ्रुकुटीं चास्य ददृशुः सर्वपार्थिवाः । ललाटस्थां त्रिकूटस्थां गङ्गां त्रिपथगामिव ।।

(म०भा०सभा ४२/११)

हिमालय गङ्गा में अर्जुन का स्नान –

ततोऽर्जुनो हृष्टमना गङ्गायामाप्लुतः शुचिः । जजाप जप्यं कौन्तेयो विधिवत् कुरुनन्दनः ।।

(म०भा०वन ४२/२०)

नर-नारायण आश्रम के पास गङ्गोत्पत्ति –

विख्यातौ त्रिषु लोकेषु नरनारायणावृषी । कार्यार्थमवतीर्णौ तौ पृथ्वीं पुण्यप्रतिश्रयाम् ।।
यन्न शक्यं सुरैर्द्रष्टुमृषिभिर्वा महात्मभिः । तदाश्रमपदं पुण्यं बदरीनाम विश्रुतम् ।।
स निवासोऽभवद् विप्र विष्णोर्जिष्णोस्तथैव च । यतः प्रववृते गङ्गा सिद्धचारणसेविता ।।

(म०भा०वन ४७/१२-१३)

मृगधूमतीर्थ - गङ्गा –

मृगधूमं ततो गच्छेत् त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् । तत्राभिषेकं कुर्वीत गङ्गायां नृपसत्तम ।।

(म०भा०वन ८३/१०१)

प्रयाग संगम में गङ्गा -

गङ्गायमुनयोर्मध्ये स्नाति यः संगमे नरः । दशाश्वमेधानाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत् ।।

(म०भा०वन ८४/३५)

गङ्गा–सरस्वती संगम प्राचीन काल, प्रयाग में –

गङ्गायाश्च नरश्रेष्ठ सरस्वत्याश्च संगमे । स्नात्वाश्वमेधं प्राप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति ।।

(म०भा०वन ८४/३८)

गङ्गा–गोमती संगम वाराणसी -

गोमतीगङ्गयोश्चैव संगमे लोकविश्रुते । अग्निष्टोममवाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत् ।।

(म०भा०वन ८४/८१)

गङ्गा सागर संगम –

गङ्गायास्तत्र राजेन्द्र सागरस्य च संगमे । अश्वमेधं दशगुणं प्रवदन्ति मनीषिणः ।।
गङ्गायास्त्वपरं पारं प्राप्य यः स्नाति मानवः । त्रिरात्रमुषितो राजन् सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।

(म०भा०वन ८५/४-५)

गङ्गा प्रयागराज में, कलियुग में केवल गङ्गा माहात्म्य -

यमुना गङ्गया सार्धं संगता लोकपावनी । गङ्गायमुनयोर्मध्यं पृथिव्यां जघनं स्मृतम् ।।
तत्राभिषेकं यः कुर्यात् संगमे लोकविश्रुते । पुण्यं स फलमाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः ।।
दश तीर्थसहस्राणि षष्टिः कोट्यस्तथापराः । येषां सांनिध्यमत्रैव कीर्तितं कुरुनन्दन ।।
चतुर्विद्ये च यत् पुण्यं सत्यवादिषु चैव यत् । स्नात एव तदाप्नोति गङ्गायमुनसंगमे ।।

सर्वं कृतयुगे पुण्यं त्रेतायां पुष्करं स्मृतम् । द्वापरेऽपि कुरुक्षेत्रं गङ्गा कलियुगे स्मृता।।

(म०भा०वन ८५/७५-९०)

गङ्गा में अस्थि प्रवाह -

यावदस्थि मनुष्यस्य गङ्गायाः स्पृशते जलम्। तावत् स पुरुषो राजन् स्वर्गलोके महीयते ।।
यत्र गङ्गा महाराज स देशस्तत् तपोवनम् । सिद्धिक्षेत्रं च तज्ज्ञेयं गङ्गातीरसमाश्रितम् ।।

(म०भा०वन ८५/९४-९७)

गङ्गा – हरिद्वार

बिभेद तरसा गङ्गा गङ्गाद्वारं युधिष्ठिर । पुण्यं तत् ख्यायते राजन् ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ।।

(म०भा०वन ९०/२१)

गङ्गा जी, बदरीनाथ के पास गरमजलस्त्रोत – शीतलजल –

उष्णतोयवहा गङ्गा शीततोयवहा पुरा । सुवर्णसिकता राजन् विशालां बदरीमनु ।।

(म०भा०वन ९०/२६)

पाण्डव गङ्गा – यमुना संगम, उत्तर दिशा गङ्गा किनारे अगस्त्याश्रम –

एषा भागीरथी पुण्या देवगन्धर्वसेविता । वातेरिता पताकेव विराजति नभस्तले ।।

(म०भा०वन ९९/३१)

राजा दिलीप का गङ्गा के लिये प्रयत्न –

दिलीपस्तु ततः श्रुत्वा पितृणां निधनं महत् ।।
पर्यतप्यत दुःखेन तेषां गतिमचिन्तयत् । गङ्गावतरणे यत्नं सुमहच्चाकरोन्नृपः ।।

(म०भा०वन १०७/६६-६७)

दिलीप पुत्र भगीरथ की हिमालय पर तपस्या गङ्गा दर्शन –

स राज्यं सचिवे न्यस्य हृदयेन विदूयता । जगाम हिमवत्पार्श्वं तपस्तप्तुं नरेश्वर ।।
आरिराधयिषुर्गङ्गां तपसा दग्धकिल्बिषः । सोऽपश्यत नरश्रेष्ठ हिमवन्तं नगोत्तमम् ।।
क्वचित् कनकसंकाशं क्वचिद् रजतसंनिभम् । क्वचिदञ्जनपुञ्जाभं हिमवन्तमुपागमत् ।।
संवत्सरसहस्रे तु गते दिव्ये महानदी । दर्शयामास तं गङ्गा तदा मूर्तिमती स्वयम् ।।

(म०भा०वन१०८/३,४,१२,१४)

मेरे (गङ्गा के) वेग को शिव ही धारण कर सकते हैं – शिव को प्रसन्न करो –

तं तोषय महाबाहो तपसा वरदं हरम् । स तु मां प्रच्युतां देवः शिरसा धारयिष्यति ।।
एतच्छ्रुत्वा ततो राजन् महाराजो भगीरथः । कैलासं पर्वतं गत्वा तोषयामास शंकरम् ।।

(म०भा०वन१०८/२४)

गङ्गावतरण –

एवमुक्त्वा महाबाहो हिमवन्तमुपागमत् । वृतः पारिषदैर्घोरैर्नानाप्रहरणोद्यतैः ।।

(म०भा०वन१०९/३)

नीचे गिरती हुई गङ्गा की तीन धारा –

ततः पपात गगनाद् गङ्गा हिमवतः सुता ।। सा बभूव विसर्पन्ती त्रिधा राजन् समुद्रगा ।।

(म०भा०वन१०८/८-१०)

गङ्गा ने भगीरथ से कहा राजन् मार्ग दिखाओ –

दर्शयस्व महाराज मार्गं केन व्रजाम्यहम् । त्वदर्थमवतीर्णास्मि पृथिवीं पृथिवीपते ।।

(म०भा०वन१०९/१४)

गङ्गा को सर पर धारण करके शिव कैलास को –

गङ्गाया धारणं कृत्वा हरो लोकनमस्कृतः । कैलासं पर्वतश्रेष्ठं जगाम त्रिदशैः सह ।।

(म०भा०वन१०९/१६)

गङ्गा ने जल से समुद्र भर दिया –

समासाद्य समुद्रं च गङ्गया सहितो नृपः ।।
पूरयामास वेगेन समुद्रं वरुणालयम् । दुहितृत्वे च नृपतिर्गङ्गां समनुकल्पयत् ।।

(म०भा०वन१०९/१७,१८)

गङ्गाजल से भगीरथ द्वारा पितृगणों का उद्धार –

पितृणां चोदकं तत्र ददौ पूर्णमनोरथः । एतत् ते सर्वमाख्यातं गङ्गा त्रिपथगा यथा ।।

(म०भा०वन१०९/१९)

नीलपर्वत-चण्डी देवी, उत्तर-मनसा देवी के मध्य में कनखलपर्वत मालायें – गङ्गा जी का प्रवाह क्षेत्र । ७० से १२५ वर्ष पूर्व हरिद्वार की नहर, बांध बनने के पहले दोनों पर्वतों के बीच गङ्गा बहती थी, फोटो उपलब्ध हैं –

एते कनखला राजन्नृषीणां दयिता नगाः । एषा प्रकाशते गङ्गा युधिष्ठिर महानदी ।।

(म०भा०वन १३५/०५)

उत्तर- भृगुतुंग पर्वत उष्णी-गङ्गा तीर्थ -

अपां ह्रदं च पुण्याख्यं भृगुतुङ्गं च पर्वतम् । उष्णीगङ्गे च कौन्तेय सामात्यः समुपस्पृश ।।

(म०भा०वन १३५/०७)

उत्तर उशीरबीज, मैनाक, श्वेत, कालशैल पर्वत–गङ्गा जी की सप्त धारा और तप्तकुण्ड –

उशीरबीजं मैनाकं गिरिं श्वेतं च भारत । समतीतोऽसि कौन्तेय कालशैलं च पार्थिव ।।
एषा गङ्गा सप्तविधा राजते भरतर्षभ । स्थानं विरजसं पुण्यं यत्राग्निर्नित्यमिध्यते ।।

(म०भा०वन१३९/१-२)

पाण्डवों को हिमालय के पर्वतों में रास्ते के लिये लोमश की गङ्गा जी से प्रार्थना -

इन्द्रस्य जाम्बूनदपर्वताद् वै शृणोमि घोषं तव देवि गङ्गे ।
गोपायैनं त्वं सुभगे गिरिभ्यः सर्वाजमीढापचितं नरेन्द्रम् ।।

ददस्व शर्म प्रविविक्षतोऽस्य शैलानिमाञ्छैलसुते नृपस्य ।
उक्त्वा तथा सागरगां स विप्रो यत्तो भवस्वेति शशास पार्थम्।।

(म०भा०वन१३९/१६-१७)

तप से ही गन्धमादन पर्वतपर जाया जा सकता है - गन्धमादन पर महागङ्गा -
तपसा शक्यते गन्तुं पर्वतो गन्धमादनः । तपसा चैव कौन्तेय सर्वे योक्ष्यामहे वयम् ।।
महागङ्गामुदीक्षस्व पुण्यां देवनदीं शुभाम् ।।

(म०भा०वन१४०/२२), (म०भा०वन १५८/९८)

मार्कण्डेय द्वारा अन्य नदियों के साथ गङ्गा को भगवान् बालमुकुन्द के उदर में देखना -
गङ्गां शतद्रुं सीतां च यमुनामथ कोशिकीम् । चर्मण्वतीं वेत्रवतीं चन्द्रभागां सरस्वतीम् ।।
हिमवन्तं च पश्यामि हेमकूटं च पर्वतम् । निषधं चापि पश्यामि श्वेतं च रजतान्वितम् ।।

(म०भा०वन १८८/१०२,११२)

भीष्म और परशुराम युद्ध को नारदादि और गङ्गा ने बन्द कराया -
ततस्ते मुनयः सर्वे नारदप्रमुखा नृप । भागीरथी च मे माता रणमध्ये प्रपेदिरे ।।

(म०भा०उद्यो०१८५/२७)

मेरुपर्वत से गङ्गा चन्द्र सरोवर में गिरती हैं -
तस्य शैलस्य शिखरात् क्षीरधारा नरेश्वर । विश्वरूपापरिमिता भीमनिर्घातनिःस्वना ।।
पुण्या पुण्यतमैर्जुष्टा गङ्गा भागीरथी शुभा । प्लवन्तीव प्रवेगेन ह्रदे चन्द्रमसः शुभे ।।

(म०भा०भीष्म ६/२८-२९)

भारतवर्ष के लोग गङ्गा आदि नदियों का जल पीते हैं, नदियाँ विश्व की मातायें हैं -
नदीं पिबन्ति विपुलां गङ्गां सिन्धुं सरस्वतीम्। गोदावरीं नर्मदां च बाहुदां च महानदीम् ।।
कुमारीमृषिकुल्यां च मारिषां च सरस्वतीम् । मन्दाकिनीं सुपुण्यां च सर्वां गङ्गां च भारत ।।
विश्वस्य मातरः सर्वाः सर्वाश्चैव महाफलाः । तथा नद्यस्त्वप्रकाशाः शतशोऽथ सहस्रशः ।।

(म०भा०भीष्म ९/१४,३६,३७)

शाकद्वीप में अनेक नदियाँ बहती हैं, गङ्गा की बहुत सी धारायें -
प्रजास्तत्र विवर्धन्ते वर्षास्विव समुद्रगाः। नद्यः पुण्यजलास्तत्र गङ्गा च बहुधा गता ।।

(म०भा०भीष्म ११/३१)

सुरनदी गङ्गा का स्वाद वाला जल लोग पीते हैं -
गङ्गायाः सुरनद्या वै स्वादु भूत्वा यथोदकम् ।।

(म०भा०भीष्म ८३/०५)

गङ्गा हिमालयपुत्री –
तस्य तन्मतमाज्ञाय गंगा हिमवतः सुता ।।

(म०भा०भीष्म ११९/९७)

मृत्यु की तपस्या – धेनुकाश्रम, नन्दा नदी, कौशिकी, पंचगङ्गा (पाँच गङ्गायें) वेतसवन, गङ्गा, महामेरु, हिमालय पर –

त्वरमाणा च राजेन्द्र मृत्युर्धेनुकमभ्यगात् ।।
पुनर्गत्वा ततो नन्दां पुण्यां शीतामलोदकाम् ।।
सा पूर्वं कौशिकीं पुण्यां जगाम नियमैधिता ।।
पञ्चगङ्गासु सा पुण्या कन्या वेतसकेषु च ।।
ततो गत्वा तु सा गङ्गां महामेरुं च केवलम् ।।
पुनर्हिमवतो मूर्ध्नि यत्र देवाः पुरायजन् ।।

(म०भा०द्रोण ५४/१६-२५)

गङ्गा पर भगीरथ ने सोने के घाट बनवाये, गङ्गा भगीरथ के उरु (जांघ) पर बैठने से उर्वशी, भगीरथ गङ्गा के पिता –

येन भागीरथी गङ्गा चयनैः काञ्चनैश्चिता ।।
उपह्वरेऽतिव्यथिता तस्याङ्के निःषसाद ह ।।
तथा भागीरथी गङ्गा उर्वशी चा'भवत् पुरा ।।
गङ्गा समुद्रगा देवी वव्रे पितरमीश्वरम् ।।

(म०भा०द्रोण ६०/१-८)

शकुन्तला पुत्र भरत ने गङ्गातट पर चार सौ अश्वमेध यज्ञ किये –

सोऽश्वमेधशतेनेष्ट्वा यमुनामनु वीर्यवान् । त्रिशताश्वान् सरस्वत्यां गङ्गामनु चतुःशतान् ।।

(म०भा०द्रोण ६८/०८)

शकुन्तला पुत्र भरत ने गङ्गा तट पर चौदह अश्वमेध यज्ञ –

यो बद्ध्वा त्रिशतं चाश्वान् देवेभ्यो यमुनामनु । सरस्वतीं विंशतिं च गङ्गामनु चतुर्दश ।।

(म०भा०शान्ति २९/४६)

गङ्गा भगीरथ की जंघा पर बैठने से उर्वशी भगीरथ पुत्री –

उपह्वरे निवसतो यस्याङ्के निषसाद ह । गङ्गा भागीरथी तस्मादुर्वशी चाभवत् पुरा ।।
त्रिलोकपथगा गङ्गा दुहितृत्वमुपेयुषी ।।

(म०भा०शान्ति २९/६८-६९)

गङ्गा का भीष्म को गर्भ में धारण करना, भीष्म के गुरु वशिष्ठ -

यं गङ्गा गर्भविधिना धारयामास पार्थिव । वसिष्ठशिक्षितं तात तमस्मि मनसा गतः ।।

(म०भा०शान्ति ४६/१६)

ध्रुवद्वार से गङ्गा प्रवाहित –

ध्रुवद्वारभवां गङ्गां जगामावततार च ।।

(म०भा०शान्ति २२८/६)

गङ्गा सरिताओं में श्रेष्ठ इसमें सभी तीर्थों के जल का वास -

गङ्गा च सरितां श्रेष्ठा सर्वतीर्थजलोद्भवा । पर्युपासत तं देवं रूपिणी कुरुनन्दन ।।

(म०भा०शान्ति २८३/१७)

हिमालय में शुकदेव (व्यासपुत्र) के जन्म होने पर गङ्गा द्वारा जल से तृप्ति –

तं गङ्गा सरितां श्रेष्ठा मेरुपृष्ठे जनेश्वर । स्वरूपिणी तदाभ्येत्य तर्पयामास वारिणा ।।

(म०भा०शान्ति ३२४/१२-१३)

विराट् पुरुष नारायण की महिमा में अंगों का वर्णन करते हुए– गङ्गा-यमुना नारायण के नितम्ब (कुल्हे) –

कर्णावाकाशपाताले ललाटं भूतधारिणी । गङ्गा सरस्वती श्रोण्यौ भ्रुवावास्तां महोदधी ।।

(म०भा०शान्ति ३४७/५०)

जह्नुपुत्री गङ्गा –

तस्य पुत्रो महानासीज्जह्नुर्नाम नरेश्वरः । दुहितृत्वमनुप्राप्ता गङ्गा यस्य महात्मनः ।।

(म०भा०अनु०४/३)

तीर्थ- हरिद्वार, कनखल, चित्रकूट, संगम, माघमास, गङ्गा महिमा –

गङ्गाद्वारे कुशावर्ते बिल्वके नीलपर्वते । तथा कनखले स्नात्वा धूतपाप्मा दिवं व्रजेत् ।।
चित्रकूटे जनस्थाने तथा मन्दाकिनीजले । विगाह्य वै निराहारो राजलक्ष्म्या निषेव्यते ।।
समागच्छन्ति माघ्यां तु प्रयागे भरतर्षभ ।।
माघमासं प्रयागे तु नियतः संशितव्रतः । स्नात्वा तु भरतश्रेष्ठ निर्मलः स्वर्गमाप्नुयात्।।

(म०भा०अन०२५/१३,२९,३६,३७)

भृगुपुत्र च्यवन की प्रयाग संगमजल में तपस्या –

स्थाणुभूतः शुचिर्भूत्वा दैवतेभ्यः प्रणम्य च । गंगायमुनयोर्मध्ये जलं सम्प्रविवेश ह ।।६।।
गंगा च यमुना चैव सरितश्च सरांसि च । प्रदक्षिणमृषिं चक्रुर्न चैनं पर्यपीडयन् ।।८।।

(म०भा०अनु० ५०/६,८)

च्यवन गङ्गा तट पर –

रमणीयः समुद्देशो गंगातीरमिदं शुभम् । किंचित्कालं व्रतपरो निवत्स्यामीह पार्थिव ।।

(म०भा०अनु० ५३/५६)

जैसे गङ्गा नदियों में श्रेष्ठ है वैसे ही गौवों में कपिला गौ श्रेष्ठ –

बलान्विताः शीलवयोपपन्नाः सर्वाः प्रशंसन्ते सुगन्धवत्यः ।
यथा हि गंगा सरितां वरिष्ठा तथार्जुनीनां कपिला वरिष्ठा ।।

(म०भा०अनु० ७३/४२)

रुद्र, शिव का तेज अग्नि द्वारा गङ्गा में स्थापित – गङ्गा भी स्कन्द-कार्तिकेय की माता -

तत्तेजोऽग्निर्महद्भूतं द्वितीयमिति पावकम् । वधार्थं देवशत्रूणां गंगायां जनयिष्यति ।।

(म०भा०अनु० ८५/१२)

गङ्गा स्मरण से पाप निवृत्ति –

कुरुक्षेत्रं गयां गङ्गां प्रभासं पुष्कराणि च ।।

एतानि मनसा ध्यात्वा अवगाहेत् ततो जलम् । तथा मुच्यति पापेन राहुणा चन्द्रमा यथा ।।

(म०भा०अनु० १२५/४८-४९)

आकाश से पृथ्वी पर – गंगा का अवतरण –

तथा देवनदी चेयं सर्वतीर्थाभिसम्भृता । गगनाद् गां गता देवी गङ्गा सर्वसरिद्वरा ।।

(म०भा०अनु० १४६/१९)

गङ्गा का तीनों संध्या में स्मरण –

संकल्पः सागरो गङ्गा स्रवन्त्योऽथ मरुद्गणः ।।

(म०भा०अनु० १६४/१२)

गङ्गा पुत्र भीष्म की मृत्यु से दुःखी गङ्गा को श्रीकृष्ण और व्यास द्वारा सान्त्वना –

गतः स परमं लोकं तव पुत्रो न संशयः । वसुरेष महातेजाः शापदोषेण शोभने ।।

(म०भा०अनु० १६८/३१)

नदियों में गङ्गा श्रेष्ठ –

तथा त्रिपथगा गङ्गा नदीनामग्रजा स्मृता । तथा सरोदपानानां सर्वेषां सागरोऽग्रजः ।।

(म०भा०आश्व० ४४/१४)

धर्मराज युधिष्ठिर का भौतिक शरीर सहित– स्वर्ग जाना, आकाश गङ्गा में स्नान कर नये शरीर की प्राप्ति -

एह्येहि भरतश्रेष्ठ पश्य गङ्गां त्रिलोकगाम् ।।

गङ्गां देवनदीं पुण्यां पावनीमृषिसंस्तुताम् । अवगाह्य ततो राजा तनुं तत्याज मानुषीम् ।।

(म०भा०स्वर्गा०३/४१)

●

यमुना जी - ३

१. यमुना जी वेदों में - कालिन्दी या यमुना भारतवर्ष की पवित्र और प्राचीन नदियों में से एक है। इस नदी की प्रतिष्ठिता देवी कालिन्दी है। सूर्यपुत्री कालिन्दी यमुना का उद्गमस्थल कालिन्द पर्वत हिमालय है। कालिन्दी गंगा से प्रयाग में मिलकर प्रयागराज संगम नामक महत्त्वपूर्ण तीर्थ स्थल बनाती है। वेद में यमुना जी का स्मरण किया गया है -

इमं में गङ्गे यमुने सरस्वति । (ऋग्. १०/७५/५)

२. श्रीकृष्ण को मार्ग देने का कार्य - श्रीकृष्ण के जन्म के तुरन्त बाद वसुदेव जी उन्हें कारागार से चुपचाप यमुना पार ले जाकर छुपा देना चाहते थे, वर्षा ऋतु में यमुना पूरे उफान में तीव्रवेग से बह रही थी। वसुदेव जी ने जब कालिन्दी से प्रार्थना की तब उन्होंने श्रीकृष्ण के लिये मार्ग बना दिया। (श्रीमद्भागवत१०/०३/५०)

३. यमुना, यमुनातट, भगवान् श्रीकृष्ण की क्रीडास्थली विभिन्न प्रसंगों में।

४. बलभद्र द्वारा कालिन्दी को बलपूर्वक खींचकर लाया गया - एक बार बलभद्र बाल-गोपाल गोपियों के साथ कालिन्दी तट पर वनभोग कर रहे थे। तभी उनकी जल क्रीडा करने की इच्छा हुई। उन्होंने कालिन्दी को आने का आग्रह किया। किन्तु साध्वी कालिन्दी ने ऐसा करने से मना कर दिया तब उग्रस्वभाव बलभद्र ने अपने हल से जमीन में मार्ग बना कर बलपूर्वक कालिन्दी का प्रवाह मोड़कर अपने निकट बुला लिया। (विष्णुपु० ५/२५)

५. श्रीकृष्ण की पत्नी के रूप में कालिन्दी - मय द्वारा इन्द्रप्रस्थ की रचना किये जाने के बाद एक बार श्री कृष्ण अर्जुन सहित कालिन्दी तटपर विचरण कर रहे थे तभी अर्जुन ने एक अनुपम सुन्दरी को तपस्यारत देखा। अर्जुन ने पास जाकर उस स्त्री से पूछा कि वह क्यों तपस्या कर रही है। उस स्त्री ने कहा कि वह श्रीकृष्ण को पतिरूप में पाना चाहती है। अर्जुन ने श्रीकृष्ण को यह सूचित किया तब वह कालिन्दी को रथ में बैठाकर द्वारका ले गये और उनसे विधिवत् विवाह कर लिया।

६. कालिन्दी के पुत्र - कालिन्दी के दस पुत्रों का वर्णन मिलता है।

७. हंस और उसके पुत्र का कालिन्दी में प्राण त्याग - एक बार श्रीकृष्ण ने जरासन्ध और उसके मंत्री पुत्र हंसपर आक्रमण किया। मंत्री को मालुम होने पर कि पुत्र की मृत्यु हो गई पिता ने कालिन्दी में जल समाधि ले ली, किन्तु हंस युद्ध में मारा नहीं गया था, जीवित था, उसने भी पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर शोक में कालिन्दी में डूबकर आत्महत्या कर ली। (म०भा०सभा०अ०१४)

८. यमुना का जल काला कैसे पड़ा - यमुना जल पहले श्याम नहीं था इस सम्बन्ध में एक रोचक आख्यान है। सती के आत्मदाह के बाद दक्ष यज्ञ के ध्वंस के पश्चात् भगवान् शिव शोक से उद्विग्न ब्रह्माण्ड में चारों ओर भटक रहे थे। इसी समय कामदेव ने उनपर उन्मत्तास्त्र से वार किया। फलस्वरूप

शिव अत्यन्त विक्षिप्त और अशांत हो कर कालिन्दी के जल में चले गये कि उन्हे शीतलता और शान्ति मिले इसके फल स्वरूप यमुना जल काला हो गया । (वामनपु०६ /३०)

९. यमुना जल का माहात्म्य - यमुना (कालिन्दी) जल में स्नान करने से बहुत पुण्य होता है । सत्ययुग में निषध देश में हेमकुण्डल नामक एक धनी वणिक् रहता था । उसने अनेक प्रकार के व्यापार से आठ करोड़ स्वर्ण मुद्रायें जमा की। संसार की क्षणभंगुरता देखकर इसने अपनी सम्पत्ति का १/६ भाग दान के निमित्त रखकर, दो विशाल विष्णु और शिवमन्दिर बनाकर पूजापाठ, दान इत्यादि पुण्यकर्म करने लगा। व्यापार इत्यादि उसने अपने श्रीकुण्डल और विकुण्डल नामक बेटों को सौंप दिये । उसके पुत्र सन्मार्ग को छोड़कर विलासिता में लग गये, फलस्वरूप वे दोनों निर्धन हो गये अंत में सभी ने उनका साथ छोड़ दिया और ये दोनों राजभय से नगर के बाहर चले गये । एक पहाड़ में छिप गया जहाँ उसे शेर ने मार दिया दूसरा जंगल में छिप गया जहाँ सर्पदंश से मर गया । अब यमलोक में धर्मराज ने श्रीकुण्डल को सीधे नरकवास दिया किन्तु विकुण्डल को स्वर्ग भेजा । विकुण्डल ने पूछा कि मैने कोई सुकर्म नहीं किया मुझे स्वर्ग क्यों भेज रहें हैं। यमदूतों ने बताया कि जंगल में रहते हुये तुम किसी वैदिक ब्राह्मण के पुत्र के सम्पर्क में आये और दो मास तक यमुना में स्नान किया, अतः तुम स्वर्ग जाने योग्य हो गये । यमुना जल में स्नान के पुण्य से तुम स्वर्गवास करोगे । (पद्मपु०स्व०३०)

१०.यमुना जी की महत्ता -

- कालिन्दी गंगा की सात सहायक नदियों में प्रमुख है- इसका जलपान पापों से मुक्त करने वाला है ।
- इसके जल को पीकर पाण्डवों का वनवास में श्रमदूर हुआ और वह आगे की यात्रा कर सके।
- सृञ्जय युग सहदेव ने अग्निदेव को १००० स्वर्ण मुद्राओं का दान यमुना जी के किनारे किया।
- भरत ने यमुना किनारे सौ अश्वमेध यज्ञ किये ।
- भरत ने यमुना के किनारे अश्वमेध यज्ञ किया ।
- द्रोणपर्व में कहा है कि भरत ने यमुना के किनारे अश्वमेध यज्ञ किये ।
- शान्तिपर्व में कहा गया है भरत ने अश्वमेध यमुना पुलिन पर किये ।
- नाभाग के पुत्र अम्बरीष ने यमुना किनारे यज्ञ किये ।
- महर्षि अगस्त्य ने यमुना तट पर तप किया ।
- महाराज शान्तनु ने यमुना तट पर सात यज्ञ किये ।
- यमुना कालिन्दी नदी का दूसरा नाम है ।
- कालिन्द पर्वत - गंगा यमुना के मध्य ।
- यमुना सूर्य की पुत्री एवं यम की बहन है ।

- भगवान् श्रीकृष्ण की क्रीड़ाओं की साक्षी ।
- यमुनासहस्रनामस्तोत्रम् - श्रीगर्गसंहिता श्रीमाधुर्यखण्ड ।
- यमुनाजी का प्रयागराजमें गङ्गा जी से संगम ।

यमुना प्रशस्ति -

यमुना के जल में स्नान कर, जलपानकर, मनुष्य की सात पीढ़ियों का उद्धार हो जाता है, जो यमुना किनारे प्राणों का त्याग करता है, उसकी परमगति होती है -

तत्र स्नात्वा च पीत्वा च यमुनायां युधिष्ठिर । सर्वपापविर्निमुक्तः पुनात्यासप्तमं कुलम् ।।
प्राणांस्त्यजति यस्तत्र स याति परमां गतिम् ।।

(कूर्मपु० १/३७/३)

सूर्यपुत्री यमुना की सदा सप्तवाहन सविता देव रक्षा करते हैं -

यमुनां रक्षति सदा सविता सप्तवाहनः ।

(कूर्मपु० १/३४/२३)

प्रयाग में वैवस्वत सूर्य की पुत्री यमुना में गंगा मिलती है -

वैवस्वत स्वसा रम्या यमुना यत्र विश्रुता । तां नदीं यमुनां गङ्गा प्रयागे सङ्गमिश्रिता ।।
यमुना च सरिद्वरा

(वाराहपु० १८५/१०१)

सूर्यपुत्री यमुना के तट पर अनेक लोकविख्यात तीर्थ स्थान हैं -

वेगेन समतिक्रान्ता सर्वतीर्थपुरस्कृता । तपनस्य सुता तत्र त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ।।३।।

(अग्निपु० १११/३)

यमुना सभी प्रकार की कामनाओं को पूरा करने वाली है ।

यमुनास्ति महापुण्या यत्र सर्वार्थदायिनी ।

(पद्मपु०उ०खं०२०८/४२)

- गङ्गा यमुना के मध्य संगम में स्नान करने से फलों की प्राप्ति, कुल का उद्धार -

गङ्गायमुनयोर्मध्ये स्नाति यः सङ्गमे नरः । दशाश्वमेधानाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत् ।।

(म०भा०वन० ८४/३५)

यमुना जी के किनारे अनन्त तीर्थ हैं ।

यमुनाख्यं महातीर्थं ।। (स्कन्दपु० ३/१/२६/१)

यमुना वाहन- यमुना कूर्म (कच्छप) वाहिनी - **कूर्मगा यमुना कुम्भकरा श्यामा च पूज्यते ।**

(अग्नि०पु० ५०/१७)

यमुना- दस पुत्र, पति- श्रीकृष्ण

●

सरस्वती जी - ४

(ऋग्वेद १०/७५/५) सूक्त में भगवती गङ्गा, यमुना, सरस्वती का स्मरण किया गया है -

इमं में गङ्गे यमुने सरस्वति ।
नि त्वा दधे वर आ पृथिव्या इलायास्पदे सुदिनत्वे अह्नाम् ।
दृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि ।।

(ऋ०मं०३ सू०२३ म०४)

इन्द्रो नेदिष्टमवसागमिष्ठः सरस्वती सिन्धुभिः पिन्वमाना ।

(ऋ०मं०६ सू०५२ म०६)

इयं शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत् सानु गिरीणां तविषेभिरूर्मिभिः ।
पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः सरस्वतीमा विवासेम धीतिभिः ।।

(ऋ०मं०६ सू०६१म०२)

इमं में गंगे यमुने सरस्वती शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या ।
असिक्निया मरुद्वृधे वितस्तयाऽऽर्जीकीये शृणुह्यासुषोमया ।।

(ऋ०मं०१० सू०७५म०५)

प्र या महिम्ना महिनासु चेकिते द्युम्नेभिरन्या अपसामपस्तमा ।
रथ इव बृहती विभ्वने, कृतोपस्तुल्या चिकितुषा सरस्वती ।।

(ऋ०मं०६सू०६१म०१३)

पंचनद्यः सरस्वतीमपियन्ति सस्रोतसः । सरस्वती तु पंचधा सो देशेऽभवत्सरित् ।।

(शुक्लयजुर्वेदसंहिता ३४,११)

ऋषयो वै सरस्वत्यां सत्रमासते । (ऐतरेयब्राह्मण २ अध्याय १९ सूत्र)

सरस्वती नदी आज के सन्दर्भ में -

मनु महर्षि का काल सनातन धर्म के उद्गम या आगे बढ़कर कहें तो सृष्टि के उद्गम और मानव सभ्यता के विस्तार से जुड़ता है। इसीलिये मनुष्य मात्र मनुसन्तति मानव के नाम से प्रसिद्ध है। मानव या मनुष्य के ५-६ फीट के पिण्ड को बनाने के लिये संस्कृत भाषा में मानव सार्थक शब्द है। मनु महर्षि की मनुस्मृति भारतवर्ष का अत्यन्त प्राचीन मानव संविधान है। यदि इसे प्राचीन माने तो लाखों-करोंड़ों वर्ष प्राचीन है या आधुनिक माने तो भी पांच-दस हजार वर्ष प्राचीन है। भगवान् श्रीकृष्ण 'मनवे प्राह गीता- ४-१' से महर्षि मनु का स्मरण करते है। मनु स्मृति को आधुनिक इतिहासकार और कुछ संस्कृतज्ञ ब्रह्मा द्वारा कही गयी, मनु द्वारा लिखी गयी, महर्षि भृगु द्वारा प्रचारित मानते हैं। इससे भी इसकी अत्यन्त प्राचीनता सिद्ध होती है। मनु स्मृति के प्रसंग में यह विचारणीय है कि मनु स्मृति धर्म शास्त्र होने के साथ ही मनुष्यों के आचार-विचार का संविधान है, धर्म-अधर्म के बारे में व्यापक जानकारी का खजाना है और मनुष्य, प्रकृति के गहन सम्बन्धों का इतिहास भी है। मनुस्मृति के विचारों

में जीवित मनुष्य, प्राणी, जड, नद, नदी, सागर, पर्वत, वृक्ष एक ही तार में पिरोये गये मणिरत्नों की तरह हैं, इस समय के समान ही प्राचीन काल में ही मनुष्य सुखी जीवन जीता था, परन्तु सुखी जीवन के लिये उसने प्रकृति का सर्वनाश नहीं किया था। प्रकृति के साथ ही मनुष्य भी श्वांस लेता था, प्रकृति के अंग-भंग को वह अपना ही अंग-भंग समझता था, परन्तु विगत दो सौ वर्षों के आधुनिक काल में प्रकृति के साथ जो घटित हो रहा है, उसकी भरपाई करना असम्भव हो जायेगा।

हजारों वर्षों के अनुभव से और आधुनिक काल में स्टीम इञ्जन आने के बाद से हम भारतवासी अधिकतर क्षेत्रों में अपने को बहुत कमजोर पाने लगे हैं। हमारे पास प्रमेय का खजाना है परन्तु उपभोक्ता प्रमाता बहुत कमजोर और निर्बल हैं, पश्चिम और कुछ पूर्वी देशों में प्रमाता बहुत मजबूत है परन्तु प्रमेय में बहुत कमजोर है। विगत सौ-दो सौ वर्षों में भारत में भी बड़े-बडे. उद्योगपति पैदा हुए- गहन आकाश और समुद्र में उन्नति के रास्ते न खोजकर अपने रजिस्टर्ड टाइटल पर पंसारी का सामान- हल्दी-नमक-मिर्च-मसाला-साग-सब्जी-जूते-चप्पल-कंगन-कर्णफूल बेचने लग गये। यहाँ तक की अध्यात्म गङ्गा-गीता को समर्पित सन्तों का चोला, शैम्पू, जूते, चप्पल, हल्दी, नमक बेचनें लग गया है। यह हमारे व्यवसाय, कार्य की, दिमागी योजनाओं की और धर्म को समर्पित लोगों की दयनीय हालत है।

लाखों, करोड़ों वर्षों से संरक्षित परम्परा, प्रकृति बहुत बड़े खतरे में है। भारतवर्ष की प्रज्ञा ने ही प्राचीनकाल में वेदों की ऋचाओं के द्वारा मानव मस्तिष्क को जाग्रत किया था, इस संकट के समय ऋषि-मुनि की मति के द्वारा ही समस्याओं के समाधान का समय उपस्थित है, अन्यथा बहुत बड़ी चूक हो जायेगी। हम अपनी भौगोलिक सीमाओं पर बाहरी लोगों द्वारा दिये गये प्रमाण पत्र पर विश्वास करने लगे हैं। यह हमारी सोच की दयनीय हालत है, वेद-वेदांग-स्मृति पुराण में दिये गये विवरणों का मजाक उड़ाते हैं और अविश्वास करते हैं। अपने हजारों साल पुराने तीर्थ स्थानों पर जाने के लिये भी उनसे रास्ते मांगते हैं। पचास साल पहले ही जिन योजनाकारों ने यमुना जी को दिल्ली में गन्दे नाले में बदल दिया, उनको अपनी इंजिनियरिंग पर किसी प्रकार का संदेह नहीं है और न ही दु:ख है। ३५ वर्षों से यही योजनायें गङ्गा जी को स्वच्छ बनाने में लगी हुई है और हम अरबों-खरबों रुपये खर्चकर चुके हैं, शायद ही किसी नाले-नाली का जाना गङ्गा-यमुना में बन्द हुआ होगा, ये कुछ उदाहरण हमारी कमजोर सोच और अधकचरी जाल-बट्टेवाली योजनाओं को बताते हैं। भारत वर्ष की प्राचीन गौरव, नदियों को कल-कल बहते हुये देखने के लिये हमें वर्ल्ड बैंक की जगह वैदिक जीवन दृष्टि से देखना होगा। हमारी भौगोलिक सीमाओं, तीर्थ स्थलों पर दावों के लिये हमें नि:संकोच वैयाकरण महाभाष्य, पौराणिक उल्लेखों की ओर जाना होगा। प्रयागराज इलाहाबाद अर्धकुम्भ विश्व का अति विशिष्ट पर्व है। बारह वर्ष में आने वाले महापर्व कुम्भ / अर्द्धकुम्भ धर्मसंसद् के नाम से भी जाने जाते हैं। सरकार एवं संस्थाओं के प्रयास से यह मेला लोटे-भंटे के मेले से ऊपर उठकर उत्तरोत्तर विकसित हो रहा है,

इस मेले की गूँज विश्वव्यापी हो गयी है । कहीं इतनी बड़ी मानव मेदिनी का समवेतगान, समारोह व्यर्थ ही न चला जाये । हम भारतवासी सरस्वती पुत्र सारस्वत हैं । त्रिवेणी संगम में गङ्गा, यमुना का तो प्रत्यक्ष दर्शन होता है परन्तु हमारी महानदी, देवनदी, वैदिकनदी सरस्वती अज्ञात है । इतिहास के अनुसार लगभग तीन हजारों वर्ष पूर्व सरस्वती नदी प्राकृतिक कारणों से धीरे-धीरे लुप्त हो गई होगी। इसके मार्ग में बने जलाशय अभी भी जीवित हैं । प्राचीन काल में भारत शस्य शामल देश था । चारों ओर नस-नाड़ियों की तरह जल से सम्पन्न सदानीरा नदियाँ बहती थीं, कदम-कदम पर जलाशय-तालाब, कुए, बावड़ियाँ थीं । सौ साल में जल प्रबन्धन के कारण हम बहुत खराब दशा में पहुँच गये हैं, यदि यही हालत रही तो पचास साल में हिमालय, पूर्वोत्तर भारत के पहाड़, वन, भूमि रेगिस्तान में बदल सकते हैं । वर्तमान आबादी का ४०% भू-भाग किसी तरह गंगा, यमुना की कृपा से सम्भला हुआ है । जल प्रबन्धन को लेकर हम लोग वर्तमान में बहुत ही खतरनाक अवस्था में जी रहे हैं । यहाँ प्रसंग प्राप्त पेय जल के बारे में यह जानकारी देना आवश्यक होगा कि भारत वर्ष में १५० वर्ष पूर्व पशुओं की आज की अपेक्षा बहुत बड़ी संख्या थी । एक हाथी को एक दिन में १५० लीटर, ऊँट को ५० लीटर, गाय, भैंस, घोड़ा आदि जानवरों को एक दिन में ३० लीटर पानी की आवश्यकता होती है, ये सभी पशु शुद्ध जल पीते थे । कहने का तात्पर्य यही है कि १५० वर्ष पूर्व के समय में वर्तमान काल से ज्यादा पानी की आवश्यकता थी । दिल्ली में राजाओं, सम्राटों की बहुत बड़ी फौज और सेना रहती थी, लाखों हाथी, घोड़े, ऊँट, जानवर रिजर्व फोर्स के रूप में रहते थे और लाखों मनुष्य वहाँ वास करते थे, दिल्ली को आज जितने जल की आवश्यकता है उससे सौ गुना प्राचीन समय में पानी की आवश्यकता थी, किसी भी तरह जल की कमी नहीं थी । कुरुक्षेत्र में प्राचीनकाल में बड़े-बड़े युद्ध लड़े गये उस समय भी पानी की कमी नहीं थी । वर्तमान में हरियाणा सूखा और बन्जर क्षेत्र है । दु:ख का विषय है कि यमुना जी का सूपड़ा साफ करके आज दिल्ली को गङ्गाजल लाकर अपना निर्वाह करना पड़ रहा है । प्राचीन भारत में जल प्रबन्धन अत्यन्त वैज्ञानिक और धार्मिक सिद्धान्तों पर किया जाता था । सभी प्रकार के जल स्थानों (Reservoir) को देवत्व का, जीवित प्राणी की तरह जीने का अधिकार प्राप्त था । भारतीय धर्म का विचार- एक तरह से कहा जाये तो जल का ही विचार था । प्रकृति में देवत्व भावना के कारण ही सनातन धर्म की हंसी उड़ायी गयी । जिस तरह से बिजली के अभाव में मशीने ठप हो जाती हैं, उसी तरह बिना जल के हिन्दु जीवन पद्धति नहीं चल सकती है । जल, जलाशयों की प्रशस्ति में हजारों, लाखों श्लोक समर्पित हैं । जलाशय भारतीय धर्म में साक्षात् देवता हैं, इन में सदा ही देव-धारणा रही है ।

भारत का पूर्वोत्तर भाग- गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र की कृपा से, मध्य-पश्चिम भाग नर्मदा जी की कृपा से, दक्षिणादि भाग कावेरी, कृष्णा, तुङ्गभद्रा, गोदावरी की कृपा से सम्भला हुआ है । पश्चिम-उत्तर के चार प्रान्त- पंजाब, हरियाणा (दिल्ली) राजस्थान, गुजरात रेगिस्तानी या जलाभाव वाले प्रान्त हैं ।

हजारों वर्ष पहले यहाँ की प्रकृति सम्पन्न थी । कारण बस एक-सदातोया सरस्वती या लुप्त हुई सरस्वती नदी । प्राचीन समय में कुरुक्षेत्र-हरियाणा बहुजल वाला देश था, महाभारत के साक्ष्य और यहाँ लड़े गये युद्धों से इसे समझा जा सकता है । इस क्षेत्र के लिये **''अनूप''** (बहुजल वाला देश) शब्द का प्रयोग भी मिलता है । लुप्त सरस्वती नदी का उद्गम हिमालय पर्वत है और उसका विस्तार और फैलाव पश्चिमोत्तर भारत- वर्तमान का पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, राजस्थान, गुजरात था । सरस्वती नदी प्राचीन शास्त्रों में, धर्मपूर्ण जन मानस में आज भी जीवित है । सरस्वती के मार्ग में आये हुये तीर्थ स्थान, सैकड़ों तीर्थ कुण्डों के रूप में इस समय भी जीवित हैं । समय-समय पर इस नदी की चर्चा सुनाई देती है । ऋग्वेद में ही सरस्वती नदी का उल्लेख ५० से अधिक स्थानों पर हुआ है और पुराण शास्त्रों में सरस्वती नदी के तीर्थों पर स्नान, दान का उल्लेख प्राप्त होता है ।

हम सैकड़ों वर्ष पूर्व तीन इञ्च चौड़ी लोहे की पट्टी पर विश्वास पूर्वक जिन्दगी की गाड़ी दौड़ा चुके हैं । आकाश-समुद्र-पहाड़ों को नये-नये साधनों से नाप चुके हैं । Grand Canal (China), पनामा, स्वेज, हजारों नहर का निर्माण, चाँद की यात्रा, समुद्र के नीचे मार्गों का निर्माण, विज्ञान और मनुष्य के पुरुषार्थ को अमर बनाते हैं। हरिद्वार से कानपुर तक बहने वाली गङ्गा नहर, इन्दिरा गाँधी नहर आधुनिक भगीरथ प्रयत्न, इंजिनियरिंग की मिसाल हमारे सामने है । सरस्वती प्रवाह के लिये भी ३०० फीट चौडा और २० फीट गहरा मार्ग बनाने की अवश्यकता है, नदियाँ अपना मार्ग स्वयं बना लेती हैं । सरस्वती नदी के पुनरुद्धार में विज्ञान अभिनव भगीरथ होगा यह भी विश्वास पैदा होता है । सरस्वती के पुनरुद्धार की महायोजना दस वर्षों में पूरी हो सकती है ऐसा विशेषज्ञ मानते हैं । बहती हुई नदियों से नहरों को न निकालकर पर्वतों से ही नई नदियों का निर्माण करना चाहिये ।

हिमालय से लेकर गुजरात समुद्र संगम तक सरस्वती नदी का प्रवाह क्षेत्र वेदों में, पौराणिक साहित्य में सुरक्षित और जीवित है । सरस्वती का प्रवाह क्षेत्र हिमालय से नीचे उतरकर कुरुक्षेत्र, दिल्ली की अरावली पहाड़ियों को छूते हुये, राजस्थान- अजमेर, पुष्कर, आबू पर्वत के खजूरों से भरे हुये जंगल सरस्वती नदी का मार्ग थे, ऐसी ही भौगोलिक स्थिति अभी भी अर्बुद पर्वत की तलहटी में प्राप्त होती है, यहाँ से गुजरात की ओर सरस्वती जी का गमनमार्ग प्रसिद्ध है । सरस्वती मार्ग में वर्तमान में भी हजारों तालाब प्राप्त होते हैं जो वर्षाकाल में साफ-साफ दिखाई देते हैं कि यह सरस्वती का मार्ग था । वर्तमान में अतिक्रमण, निर्माणकार्य और खेती के कारण सरस्वती मार्ग में आये हुये तालाब और सरस्वती मार्ग तेजी से लुप्त हो रहा है । कुछ ही हजार वर्ष पहले लुप्त हुई सरस्वती की खोज पर विगत ३० वर्षों में बहुत कार्य हो चुका है और कुछ आलेख, पुस्तकें भी प्रकाशित हो गई है । यदि इस कुम्भ महापर्व पर सरस्वती नदी के पुनरुद्धार का विचार हो तो सर्वोत्तम होगा अन्यथा पश्चिमोत्तर भारत का सूखापन पूर्वोत्तर भारत को भविष्य में सूखा कर देगा ।

सरस्वती से सम्बन्धित कुछ कथायें -

१. महामुनि दधीचि ने देवकार्य के लिये अपने प्राणों का त्याग कर दिया- जिससे दधीचि की हड्डियों से वज्र बनाया जा सके । मांस से लिपटी हड्डियों को साफ करने के लिये देवराज इन्द्र ने देव गायों को भेजा । नन्दा, सुभद्रा, सुरभि, सुशीला, सुमना ने अपनी कठोर जीभ से दधीचि की हड्डियों को साफ किया । इस भयंकर कर्म को गौओं ने ब्रह्मा जी को बताया । इसको सुनकर ब्रह्माने देवों को बुलाकर कहा कि आप लोग गौओं के अंगों का स्पर्श करें जिससे शुद्धि हो । देवताओं ने मुख को छोड़कर सभी अंगों का स्पर्श किया । सभा में उपस्थित सरस्वती ने कहा तुम सभी ब्रह्महत्यारी हो इसीलिये देवताओं ने तुम्हारे मुख का स्पर्श नहीं किया । नाराज होकर देव गौओं ने सरस्वती को शाप दिया- तुमने हमारे हृदय को जलाया है तुम भी शीघ्र ही दाह को प्राप्त करोगी ।

कालान्तर में सरस्वती को वडवाग्नि-दाह की प्राप्ति हुई -

अस्माकमेव हृदयमनेन वचसा त्वया । निर्दग्धं येन तस्मात्त्वमचिराद्दाहमाप्स्यसि ।।

(स्कन्दपु०प्रभास खण्ड प्रथम क्षे.मा. वाडवानलवृत्तान्त अ०७/१/३२-३४)

२. मार्कण्डेय महर्षि ने हिमालय में उत्पन्न सरस्वती की स्तुति की और कुरुक्षेत्र और पश्चिम दिशा में जाने का आदेश दिया - (वामनपु०३२)

३. मार्कण्डेय मुनि की तपस्थली प्लक्ष वृक्ष से सरस्वती प्रकट होकर कुरुक्षेत्र होकर पश्चिम दिशा में चली गयी । (बृहन्नारदीयपु०६४)

४. प्लक्ष वृक्ष से हिमालय में सरस्वती प्रकट हुई - (म०भा०वन०८४)

५. **प्रत्यङ्मुखी खलु सरस्वती प्रवहति** - सरस्वती नदी पश्चिम दिशा की ओर बहती है ।

(ताण्ड्य ब्राह्मण - २५ अ (ख०१०सू०१२)

वेद-ब्राह्मणग्रन्थों के भाष्यकार सायणाचार्य का समय तेरहवीं शती प्रसिद्ध है । इनके समय तक सरस्वती नदी का अस्तित्व हिमालय से कुरुक्षेत्र-विनशन में था, आगे पश्चिम दिशा की ओर जाने पर अदृश्य है ।

सूत्र - सरस्वत्या विनशने दीक्षन्ते (ताण्ड्य ब्राह्मण२५/१०/२)

सारस्वतसूत्र दीक्षा प्रसंग में सूत्र का भाष्य- सरस्वती नाम नदी प्रत्यक्स्रोता प्रवहति तस्या: प्रागपरभागौ सर्वलोकप्रत्यक्षौ, मध्यमस्तु भागो भूम्यामन्तर्निमग्न: प्रवहति नासौ केनचिद्दृश्यते तद्विनशनम् (कुरुक्षेत्रम्) ।

- सरस्वती नदी पश्चिमदिशा की ओर बहती है । इसका प्राक् भाग (कुरुक्षेत्र से हिमालय की ओर) और अपर भाग (हिमालय का उद्गमभाग) सर्वलोकप्रत्यक्ष है । कुरुक्षेत्र से राजस्थान की ओर का भाग दिखायी नहीं देता है - भूमि के अन्दर ही बहता है । स्पष्ट ही है सायणाचार्य के समय तक इसका अस्तित्व था और इसके तट पर दीक्षा-संस्कार सम्पन्न होते थे । राजस्थान में खुदायी के समय जलीय जीवों के अवशेष प्राप्त होते रहते हैं ।

६. महाभयङ्कर वाडवाग्नि से संतप्त-परेशान सरस्वती पूर्व दिशा की ओर चली गयी -

ततस्तु जायते प्राची संतप्ता वाडवेन तु । (स्कन्दपु०प्रभास ७/१/३५/४५)

७. शास्त्रों में सरस्वती मार्ग - हिमालय से सरस्वती प्रकट-अप्रकट होकर श्रीकण्ठक्षेत्र में, वहाँ से कुरुक्षेत्र में, विराट नगर, गोपयन पर्वत, वहाँ से पुष्कर क्षेत्र, वहाँ से खजूरों के वन से होकर नन्दा नाम से अर्बुदारण्य (आबू क्षेत्र) यहाँ आज भी खजूर के पेड़ पर्याप्त मात्रा में हैं। वहाँ से- उदम्बर वन, स्तम्ब स्थान, सुप्रभ, शम्भुकुण्डेश्वर, सिद्धेश्वर, द्वारावती, रुललतीर्थ, कोलादेवी तीर्थ, पश्चिम के हिमाचल (गिरनार) से प्रकट-अप्रकट होकर- हारिणी, वज्रिणी, न्यंकु, कपिला, सरस्वती धाराओं में विभक्त होकर पश्चिम समुद्र में समाहित हो गयी। (स्कन्दपु०प्रभास क्षेत्र अग्नितीर्थ अ०३५)

८. शिवपुराण में सरस्वती नदी को साठ मुख (धाराओं वाली) कहा है -

सरस्वती पुण्या प्रोक्ता षष्टिमुखा तथा । तत्तत्तीरे वसेत्प्राज्ञः क्रमाद् ब्रह्म पदं लभेत् ।।

(शिवपु० विश्वेस्वरसंहिता१२)

९. कुरुक्षेत्रे - विनशन क्षेत्र सरस्वती । (कूर्मपु०अ०२/३६/२७)

१०. विश्वामित्र द्वारा सरस्वती को शाप, वशिष्ठ द्वारा शाप निवारण- राजर्षि विश्वामित्र की वशिष्ठ महर्षि से जानी-दुश्मनी शास्त्र प्रसिद्ध है। एक दिन विश्वामित्र ने कहा- सरस्वति मैं वशिष्ठ का वध करना चाहता हूँ जब वशिष्ठ तुम्हारे जल में स्नान करें, कानों में पानी भर जाये ऐसे समय वशिष्ठ को बहाकर मेरे पास ले आओ मैं वशिष्ठ की हत्याकर दूँगा। सरस्वती के मना करने पर विश्वामित्र ने सरस्वती को रक्त प्रवाहवाली नदी होने का शाप दे दिया। श्वेत जल को रक्त वाला देखकर सभी ऋषि-महर्षि-देवी-देवता सरस्वती का किनारा छोड़कर चले गये और महर्षि वशिष्ठ भी आबू पर्वत (राजस्थान) पर चले गये - ''**वशिष्ठोऽपि मुनिश्रेष्ठो जगामार्बुदपर्वतम् ।**'' यह घटना राजस्थान- गुजरात की सीमा आबू पर्वत की तलहटी में बहने वाली सरस्वती स्थान की है। यहाँ यह स्मरणीय है कि हिमालय, कुरुक्षेत्र, अजमेर-पुष्कर तक सरस्वती का जल श्वेत रहा होगा। अजमेर से आगे का और विशेष रूप से माउण्ट आबू का पर्वत की तलहटी का रंग लाल है। यहाँ बहने वाली सरस्वती नदी लाल रंग की हो गई। ''**अर्बुदस्थस्तया प्रोक्ता दीनया दुःखयुक्तया** - आबू पर्वत पर स्थित वशिष्ठ महर्षि ने सरस्वती की प्रार्थना पर इसको शाप से मुक्त कर दिया। आबू पर्वत के तलहटी से आगे जाकर पालनपुर आदि से होकर सरस्वती कई तीर्थों का निर्माण करते हुये गुजरात के पश्चिम समुद्र में मिल जाती है। (स्कन्दपु० नागर खण्ड हाटकेश्वर सरस्वती आख्यान अ०१७२- १७३)

११. महाभारत युद्ध में श्रीकृष्ण का कौरवों का साथ न देने पर, नाराज होकर बलराम का प्रभास क्षेत्र गुजरात, सरस्वती नदी के समुद्र संगम क्षेत्र से लेकर सप्तसरस्वती, सरस्वती के उद्गम स्थान हिमालय तक के तीर्थों का वर्णन । (म०भा०शल्य गदापर्व अ० ३५)

१२. परम भागवत विदुर की सरस्वती तीर्थों की यात्रा - (श्रीमद्भभा०७/३/१)

१३. ब्रह्मा जी के पुत्र सम्राट् मनु की सरस्वती तीर्थों की यात्रा। (श्रीमद्भभा० ३/२२)

१४. श्रीमद्भागवत की रचना सरस्वती तट पर - (श्रीमद्भभा० १/७)

१५. महाराज दशरथ की मृत्यु पर नाना के घर पश्चिम दिशा राजगृह से चलकर भरत जी का पूर्व दिशा अयोध्या आने पर नदियों का वर्णन - सुदामा महानदी, ह्लादिनी, शतद्रु, (सतलज), शिलावहा (दृषद्वती) सरस्वती, यमुना, गङ्गा नाम की अन्य नदी- कुलिंगा, यमुना, भगीरथी, कुटिकोष्टि, उत्तानिका, कुटिका, कपिवती, स्थाणुमती, गोमती, भागीरथी को पार किया। (वा.रा०अयोध्या-७१)

१६. पाण्डवों का काम्यवन जाते समय मार्ग में प्राप्त कुरुक्षेत्र की नदियों का वर्णन - सरस्वती, दृषद्वती, यमुना नदियों का वर्णन। (म०भा०अरण्य पर्व-५)

१७. सरस्वती वाहन- सरस्वती का वाहन हंस, वस्त्र श्वेत।

१८. ब्रह्मसरोवर - कुरुक्षेत्र के बाद सरस्वती दृश्य-अदृश्य। **प्रयाता पश्चिमामाशां दृश्यादृश्यगतिः शुभाः** (वामनपु. ३२/२)

१९. सरस्वती नामकरण - यहाँ उल्लेखनीय है कि प्राचीनकाल में समुद्र के उतर जाने पर पृथ्वी पर नदियों की अनन्त धारायें बहने लगी, जैसे वर्षा में चारों तरफ पानी की धारायें बहने लगती है। कालान्तर में (लाखों-करोड़ों वर्ष में) मुख्य धारायें सरस् (सृञ् - सरणे-बहना, असुन् प्रत्यय) से सरस् बहते रहना शब्द बनता है, जल भराव (Reservoir) के क्षेत्र को सरः या तालाब कहते हैं। सरस्वती शब्द तद्धित प्रत्यय होने पर बनता है। जिसका अर्थ तालाबों वाली नदी भी है। धातु, प्रकृति, प्रत्यय से सरस्वती शब्द ही प्रवाहमयी, जलमयी नदी को बताने वाला शब्द है। अन्य नदियों के नाम कृत्रिम नाम हैं। अनन्त वर्षों के बाद सरस्वती की सैकड़ों धारायें अन्य नदियों के नामों में बदल गयी, सरस्वती का साठ धाराओं का लेख प्राप्त होता है। सुविधा की दृष्टि से सरस्वती की धाराओं को प्राची सरस्वती, पश्चिम वाहिनी सरस्वती नाम प्राप्त हुये। प्रयागराज त्रिवेणी में भी सरस्वती की एक धारा प्रवाहित रही होगी। पूर्व दिशा में बहने के कारण प्राची सरस्वती के नाम से जानी जाती थी, त्रिवेणी में नदियों का क्रमानुसार आगमन- प्रथम-सरस्वती, द्वितीय-यमुना का सरस्वती से संगम, तृतीय- गङ्गा का यमुना, सरस्वती से संगम। कालान्तर में हिमालय से कुरुक्षेत्र, विनशन क्षेत्र (सरस्वती के लुप्त होने का स्थान) से होकर बहने वाली पश्चिम वाहिनी सरस्वती नदी लुप्त हो गई तभी मुख्यधारा से आने वाली प्राची सरस्वती भी लुप्त हो गई।

२०. सरस्वती उत्पत्ति, तीर्थ वर्णन - (वामनपु० अ०३२-४३)

सरस्वती महिमा -

सरस्वती और दृषद्वती का मध्यभाग ब्रह्मावर्त प्रसिद्ध था -

सरस्वती दृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्। तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते॥

(मनु० २/१७)

भारतभूमि का बहुत बड़ा भू-भाग म्लेच्छों से भर गया था किन्तु सरस्वती नदी का तट म्लेच्छों

से रहित था -

द्विसहस्रे कलौ प्राप्ते म्लेच्छवंशविवर्धिता । भूमिर्म्लेच्छमयी सर्वा नानापन्थविवर्धिता ।।
ब्रह्मावर्तमृते तत्र सरस्वत्यास्तटं शुभम् ।
ब्रह्मावर्ते कथं म्लेच्छा न प्राप्ताः कारणं वद। सूतः प्राह शृणुष्वेदं सरस्वत्याः प्रभावतः।।
म्लेच्छाः प्राप्ता न तत्स्थाने।

(भविष्यपु०प्रतिसर्ग,प्र०भाग,अ०५/२९,६/१-२)

सरस्वती नदी में किया गया स्नान पुनर्जन्म को समाप्त करता है -

नित्यं सरस्वतीतोये यः स्नाति मुण्डयेन्नरः । न गर्भवासं कुरुते पुनरेव स मानवः।

(ब्रह्मवै०पु०प्र०क०अ०६१/६८)

जो मनुष्य सरस्वती के तट पर निवास करता है वह ब्रह्मज्ञानी हो जाता है यह निश्चय है-

तत्र यो वै वसेद्धीरः सरस्वत्यास्तटे स्थितः । तस्य ज्ञानं ब्रह्ममयं भविष्यति न संशयः ।।

(नार०पु०उ०भा०अ० ६४/८)

छह धाराओं में बहने वाली सरस्वती नदी के तट पर वास ब्रह्मपद को देता है-

सरस्वती नदी पुण्या प्रोक्ता षष्टिमुखा तथा । तत्तीरे वसेत्प्राज्ञः क्रमाद् ब्रह्मपदं लभेत् ।।

(शिवपुराण विद्येश्वर संहिता अ०१२/९)

कुरुक्षेत्र में स्थित ब्रह्मतीर्थ श्रेष्ठ तीर्थ है, सरस्वती का विनशन क्षेत्र, कुरुक्षेत्र (जहाँ सरस्वती लुप्त होती है) ब्रह्मलोक की प्राप्ति कराता है -

तीर्थेभ्यः परमं तीर्थ ब्रह्मतीर्थमिति श्रुतम् । ब्रह्माणमर्चयित्वाऽत्र ब्रह्मलोके महीयते ।
सरस्वत्या विनशनं प्लक्षं प्रस्रवणं शुभम् ।।

(कूर्मपु०अ०२/३६/२६-२७)

कुरुक्षेत्र में सरस्वती सबसे अधिक पुण्य देने वाली मानी गई है -

इदानीं तत्प्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकमनाः शुभम् । पुण्या कनखले गङ्गा कुरुक्षेत्रे सरस्वती ।।

(कूर्मपु०अ०२/३८/ ७)

भगवान् शंकर ने कहा है, सरस्वती में स्नान, दान से भी श्रेयस्कर है -

सरस्वत्यां च गङ्गायां नर्मदायां युधिष्ठिर । समं स्नानं च दानं च यथा मे शंकरोऽब्रवीत् ।।

(कूर्मपु०२/३८/३१)

सूर्यग्रहण के समय सरस्वती नदी और सन्निहत्या=पुष्करिणी, ब्रह्म सरोवर कुरुक्षेत्र में स्नान स्वर्ग देने वाला होता है -

यदा सूर्यस्य ग्रहणं कालेन भविता क्वचित् । सन्निहत्यां तदा स्नात्वा पूता स्वर्गं गमिष्यसि ।।

(वामनपु०अ०३४/५०)

सरस्वती–यमुना उत्तर दिशामें -

सरस्वती महापुण्या ह्लदिनी तीर्थमालिनी । समुद्रगा महावेगा यमुना यत्र पाण्डव ।।

(महा०भा०३-९०-३)

बालखिल्यऋषि ने सरस्वती किनारे यज्ञ किया–

सरस्वती नदी सद्भिः सततं पार्थ पूजिता । बालखिल्यैर्महाराज यत्रेष्टमृषिभिः पुरा ।।

(महा० भा०३-९०-१०)

सरस्वती के दक्षिण दृषद्वती के उत्तर रहने वाले स्वर्गवासी -

दक्षिणेन सरस्वत्या दृषद्वत्युत्तरेण च । ये वसन्ति कुरुक्षेत्रे ते वसन्ति त्रिविष्टपे ।।
तत्र मासं वसेद् धीरः सरस्वत्यां युधिष्ठिर ।

(महा०भा०वन८३/४-५)

श्रीप्राची सरस्वती (पूर्व दिशा की सरस्वती) माहात्म्य -

देव्युवाच-

यदेतद्भवता प्रोक्तं प्राची सर्वत्र दुर्लभा । विशेषेण कुरुक्षेत्रे प्रभासे पुष्करे तथा ।।१।।
माहात्म्यमखिलं तस्याः प्राच्याः पातकनाशनम् । कथयस्व महेशान् यद्यहं ते प्रिया विभो ।।२।।

ईश्वर उवाच-

साधु प्रोक्तं त्वया भद्रे प्राचीने सर्वत्र दुर्लभा । नापुण्यो वेद देवेशि कर्म निर्मूलनक्षमाम् ।।४।।
ये पिबन्ति नराः पुण्यां प्राचीं देवीं सरस्वतीम् । न ते मनुष्या विज्ञेयाः सत्यं सत्यं वरानने ।।५।।
धन्यास्ते मुनयस्ते च पुण्यास्ते च तपस्विनः । ये च सारस्वतं तोयं पिबन्ति अहरहः सदा ।।६।।
भुक्त्वा वा यदि वाऽभुक्त्वा दिवा वा यदि वा निशि । न कालनियमस्तत्र यत्र प्राची सरस्वती ।।७।।
प्राचीं सरस्वतीं ये तु पिबन्ति सततं मृगाः । तेऽपि स्वर्गं गमिष्यन्ति यज्ञैर्द्विजवरा यथा ।।९।।
सर्वकामप्रपूर्त्यर्थं नृणां तत्क्षेत्रमुत्तमम् । चिन्तामणिसमादेवी यत्र प्राची सरस्वती ।।१०।।
यथा कामदुघा गावः सर्वकामफलप्रदाः । तथा स्वर्गापवर्गाभ्यां प्राची देवी सरस्वती ।।११।।

(स्कन्दपु०७/१/३६/१-११)

प्रयागराज तीर्थ स्थान त्रिवेणी संगम के नाम से प्रसिद्ध है । शास्त्रों में त्रिवेणी से गंगा, यमुना, सरस्वती इन तीन नदियों को बताया गया है । संगम में गंगा, यमुना दृश्य नदियाँ हैं और सरस्वती का दर्शन प्रत्यक्ष आँखों से नहीं होता है । इसलिये इसे अन्तःसलिला भूमि के अन्दर बहने वाली माना गया है । प्रयागराज में सरस्वती नदी नहीं थी यह आधुनिक विचार है । प्राचीन शास्त्रों में प्राची पूर्व दिशा की ओर बहने वाली सरस्वती नदी का उल्लेख आता है । अन्य शास्त्रों में सरस्वती नदी की साठ धारायें, छह धारा का भी उल्लेख मिलता है । वेदों में पचास से अधिक स्थानों पर सरस्वती की स्तुति से यह ज्ञात होता है कि सरस्वती नदी सृष्टि की सबसे प्राचीन नदी है । पृथ्वी के भाग से पानी के उतर जाने पर जो जल की धारायें नदी के रूप में बहती थीं वे धारायें सरस्वती की कई धाराओं के रूप में

विख्यात हुई । सरस्वती शब्द दो भागों से बना है- सरस् - जल या जलाशय मतुप् प्रत्यय - जल से भरी हुई नदी- सरस्वती, सरोवर तालाबों के पर्याय से प्रसिद्ध है । सरस्वती के विनशन क्षेत्र, कुरुक्षेत्र में लुप्त होने के प्रमाण प्राचीन शास्त्रों में भी है और सरस्वती सरोवरों में बदल गयी ऐसे भी प्रमाण हैं । हरियाणा और सरस्वती के मार्ग- राजस्थान, गुजरात में आज भी सैकड़ों-हजारों जलाशय हैं बरसात में अच्छी तरह से आज भी देखे जा सकते हैं । इसी नदी की कई धाराओं का उल्लेख प्राप्त है, प्राची पूर्व दिशा में सरस्वती का होना सम्भव है । शास्त्रों में पश्चिमवाहिनी सरस्वती को भी पूर्व दिशा की ओर बहने के कारण प्राची सरस्वती भी कहा गया है । प्राचीन शास्त्रकार जो नदी दिखाई नहीं देती है या जो नदी संगम में नहीं है उसे त्रिवेणी संगम क्यों कहते । प्राचीन शास्त्रों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि पहले प्रयागराज में सरस्वती नदी बहती थी उसके बाद यमुना का सरस्वती से संगम हुआ और इसके बाद गंगा का प्रयागराज में संगम हुआ । कालक्रम से जैसे सरस्वती का पश्चिम दिशा से लोप हो गया वैसे ही प्रयागराज में आने वाली प्राची सरस्वती भी लुप्त हो गई क्योंकि प्राची सरस्वती पश्चिम सरस्वती की ही धारा रही होगी । प्रयागराज त्रिवेणी में भी सरस्वती नदी थी यह शास्त्रीय प्रमाणों से प्राप्त है । प्राची सरस्वती का उल्लेख पुराणादि शास्त्रों में अनेक जगह पाया जाता है ।

●

तीर्थराज प्रयाग महिमा - ५

तीर्थों में देवधारणा -

विश्व वाङ्मय में वेदों को सर्व प्राचीन होने का गौरव प्राप्त है जो आज भी भाव, भावना, शब्द-रचना, विचारों की उच्चता, अतिमानवीय सोच, गद्य-छन्द रचना से सर्वोच्च स्थान बनाये हुए हैं । अनन्त शब्द राशियों से जीव, जगत्, परमात्मा, प्रकृति, समाज विचार के संवेदनशील सम्बन्धों की व्याख्या चमत्कृत करती है । वैदिक दृष्टि या व्यावहारिक दृष्टि से नद-नदी-जीव-जन्तु-पहाड़-प्रकृति-चन्द्र-सूर्य-नक्षत्र-मण्डल का अनुभव हमारी पञ्चज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों से प्राप्त होता है- इस व्यवहार्य जगत् के उपभोग्य-उपभोक्ता, उत्पन्न और उत्पत्ति कर्ता के धर्मों को हम और हमारा समाज निभाता है और उनका अनुभव करता है । वैदिक ऋषि भी इस व्यावहारिक जगत् को उसी तरह से देखते हैं जिस तरह से हम देखते हैं और अनुभव करते हैं । किसी को भी भौतिक स्वरूप में जीने के लिये, दुनिया का लाभ लेने के लिये और देने के लिये वेद-शास्त्र, धर्म-शास्त्र या कानून व्यवस्था, राष्ट्रिय संविधान की आवश्यकता नहीं है । जीवन जीने की कला और जगत् का रसपान करना नैसर्गिक और स्वाभाविक है । वैदिक ऋषि जगत् के भोगों को जलाञ्जलि-तिलाञ्जलि देकर प्रकृति के विभिन्न प्रभावशाली, चमत्कृत करने वाले नानारूपों के पीछे एक सूत्र को देखते हैं- उनके विचारों में यह अज्ञात सर्वशक्ति, सभी सत्ता और उनके अस्तित्त्व में सूत्र-धागे की तरह पिरोयी गयी है । ऋषि मुनियों की ऐसी दिव्य दृष्टि मानव मस्तिष्क की चेतना का चरम विकास है । एक ऐसी दृष्टि जो दृश्य की तरह ही अदृश्य है, जो पदार्थों के अनुभव की तरह अनुभव का विषय भी है और अनुभव का विषय भी नहीं है । वेदों की धारणा है कि प्रकृति के नाना रूपों में समाहित एक ही शक्ति है जो देश-काल-घटना के साथ नानारूपों में प्रतिबिम्बित हो रही है, जैसे कि एक ही बिम्ब कई दर्पण में बहुत दिखाई देते हैं ।

आधुनिककाल के विचारों के अनुसार सृष्टि के आदिकाल में मनुष्य प्रकृति के वश में था, प्रकृति के रूपों में उसे देव-दानवों के भावों की कल्पना होती थी, प्रकृति से उत्पन्न अच्छी घटनायें देव भाव समझ में आती थी, और बुरी घटनायें उसे दानव-असुर भाव, ऐसे विचार शायद वेदों के पन्ने न पलटने वालों के हो सकते हैं । वैदिक विचारों में ऐसे स्थानों की कोई जगह नहीं है । प्रकृति में वैदिक देवधारणा कार्य-कारण की श्रृंखला में भूत-भौतिकवाद से उपजी, देववाद की ओर प्रवृत्ति वैदिक ऋषियों के विचारों की असाधारण रचना है । यहीं मानस प्रगति मनुष्य को देव धारणा में स्थापित करती है । वेदों को अपौरुषेय- पुरुष के द्वारा वेदों को निर्मित न करना या वेदों की रचना पुरुषों के द्वारा न होना, मानने का यही कारण है कि मनुष्य के कर्म और विधान उसकी वासनायें देश, काल, समाज, परिस्थियों के अनुसार परिवर्तनशील होते हैं, इनमें परिवर्तन ही इनकी नवीनता है - जैसे कि नये-नये भोजन करना, अलग-अलग रंगों के कपड़े पहनना, अलग-अलग सेन्ट लगाना आदि, परन्तु

अपौरुषेय वेद सृष्टि के आदि मानव से लेकर वर्तमान के आधुनिक मानव और भविष्य के मानव, पूर्ण विकसित आत्मज्ञानी की जीवन्मुक्त अवस्था का एक अपूर्व शास्त्र होने के कारण सभी का मार्ग प्रदर्शक है, इसीलिये वेद और वैदिक ऋषि सृष्टि के सार्वभौम, सार्वकालिक विचारों को प्रकट करते हैं, इसलिये वैदिक विचार अपरिवर्तनशील हैं, वेदों में दिये गये विचार विश्व संरचना को सूत्रों में बाँधने के विचार हैं। यदि वैदिक ऋषि या वेद मन्त्र जगत् की व्याख्या करते तो कम से कम पाँच लाख मन्त्र होने चाहिये क्योंकि वैदिक काल भी वर्तमान काल के समान हर विधा से सम्पन्न काल था। इस बात को समझने के लिये एक ही उदाहरण पर्याप्त है- ऋग्वेद में कहीं भी जीवन की अनिवार्य आवश्यकता दीपक (मिट्टी का दिया), शब्द नहीं हैं। दीपक की आवश्यकता प्राचीन काल में भी थी और आज भी रोशनी के साधन के लिये दीपक जैसे साधनों की आवश्यकता है, यदि दीपक जैसे साधन हमारे जीवन में न हों तो लगभग ४०% हमारी क्रियाशक्ति का उपयोग नहीं हो पायेगा। वैदिक ऋषियों ने जीवन को बहुत ऊँचाई देने के लिये दीपक जैसे व्यावहारिक और उपयोगी शब्द का भी उल्लेख नहीं किया है अस्तु।

वेद अपौरुषेय हैं, वेदों के मन्त्रों से ऋषियों का सम्बन्ध जोड़ा जाता है कि ऋषि-महर्षि वेदमन्त्रों के द्रष्टा या कर्ता हैं क्योंकि ये हम लोगों की तरह ही हाथ पैर वाले प्राणी हैं, ऋषि-महर्षियों के मनुष्य होने पर भी इस पहेली को ऐसे समझ सकते हैं कि जैसे भगवान् राम, कृष्ण का अवतार मनुष्य होने पर भी ये अवतार मनुष्य नहीं हैं, देवता हैं, प्राकृत शरीर, मन-बुद्धि, इन्द्रियों वाले नही हैं इनके सभी कर्म अतिमानवीय हैं, मनुष्यों के सुख-दुख से पैदा हुये नहीं है - ऐसे ही वैदिक ऋषि देहधारी मनुष्य होकर भी मानव नहीं हैं, एक विशेष प्रज्ञा, बुद्धि, मति, विचारों के संघात हैं। मनुष्यों के गुण-अवगुण ऋषियों के वैदिक ज्ञान में कहीं भी प्राप्त नहीं होते हैं, इसलिये वेदमन्त्रों में हमारी ऋषि दृष्टि न होने से गड़बड़ियाँ समझमें आती हैं कि अरे! यह क्या लिख दिया है, कुछ समझ नहीं आता। ऐसे में महान् ग्रन्थ पूजा की पोथी बन जाते हैं, परन्तु अत्यन्त प्राचीन भारतीय परम्परा को जाने-अनजाने में यह विश्वास है कि वैदिक मन्त्र और वैदिक ऋषि कुछ विशेष अवश्य कह रहे हैं। इसीलिये अनादिकाल से आज भी वेद पूर्णरूप से सुरक्षित हैं, ऐसी मेहनत शायद विश्व के किसी भी धर्मशास्त्र के साथ नहीं की गई होगी, वेदों के संरक्षण की लगातार चलने वाली शिक्षा पद्धति विश्व की सबसे प्राचीन पद्धति और धरोहर है।

अनादि काल की, हजारों साल की वैदिक परम्परा में या वैदिक काल में कोई भी ऋषि किसी राजा का तख्ता पलट (Coup) करते हुए नहीं दिखता है। उस काल के राजाओं का वर्णन वेदों में, अन्य वैदिक वाङ्मय में, पुराणों में प्राप्त होता है। कदाचारी, व्यभिचारी और अत्यन्त कमजोर राजा में, बालक राजा में भी वैदिक ऋषि सम्मान की, सहयोग की दृष्टि रखते हैं। यह राजा किसी दिन रोग से, शोक से मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा, विकृत राजाओं को, कमजोर राजाओं को देखकर किसी भी वैदिक ऋषि के मुँह में राजसत्ता को देखकर पानी नहीं आया है, अपितु वैदिक राजा ही अपने राज्य

को छोड़कर ऋषि भाव को प्राप्त करना चाहते हैं । यह वैदिक सनातन धर्म की परम्परा का सर्वोच्च आदर्श है । चक्रवर्ती सम्राट् राजा विश्वामित्र, वशिष्ठ महर्षि की तरह ब्रह्मर्षि होने के लिये एड़ी-चोटी का जोर लगा देते हैं, वशिष्ठ के पुत्रों की हत्या भी कर देते हैं फिर भी विश्वामित्र की राजशक्ति ऋषिपद को प्राप्त नहीं करा सकी । यह वैदिक मर्यादा ही थी कि महर्षि वशिष्ठ ने अत्यन्त कष्टों में भी विश्वामित्र को ऋषि नहीं माना, क्योंकि वैदिक ऋषि वशिष्ठ के पास ऋषित्व की ऐसी कुञ्जी है जो सभी को नहीं दी जा सकती, ऋषित्व मानस संरचना है, परमात्मा की कृपा से ही प्राप्त हो सकती है । वैदिक विचारों की ऊँचाई की धारणा आधुनिक काल के राजाओं के समय भी थी, इसके ज्वलन्त उदाहरण महाभारत में भीष्मपितामह हैं- युवावस्था में ही उन्होंने अविवाहित रहने का व्रत ले लिया और सम्पूर्ण जीवन, मृत्युकाल तक निष्काम भावना से राज्य की सेवा करते रहे । घोर कलयुग में भी वैदिक आदर्श जीवित थे- अत्यन्त वीरजाति- गूजर, मीना, जाट, कोल, भील आदि तथा आदिवासी कबीले के मुखिया जैसे लोग आज जीवन व्यापन के लिये आरक्षण की मांग कर रहे हैं- इन्हीं लोगों के हाथ में राजाओं के खजाने की चाबी रहती थी, इनका राज्य के प्रति समर्पण और कर्तव्य परायणता सिर कटने पर भी खजाने की रक्षा करती रही । राजा या राजकुमारों को भी खजाने का भेद ये लोग नहीं देते थे । लोभ से परे धर्म का पालन मानस की निर्मलता से ही प्राप्त हुआ था, मन की निर्मलता, सच्चाई ही कञ्चन-कामिनी में मिट्टी की तरह दृष्टि रखती है। ऐसे विचारों पर ऋषि दृष्टि की छाप है जो व्यवहार में आज भी जीवित है ।

ऋषित्वभाव को प्राप्त करना आनुवांशिक नहीं है । ऋषियों की संतान भी ऋषि नहीं बन पायी। जैसे कलाकार-खिलाड़ी की सन्तान कलाकार नहीं हो पाती है । ऋषित्व परमेश्वर द्वारा पैदा की एक अतिमानस रचना है, ईश्वरीय ज्ञान के अतिरिक्त ऋषियों को अन्य विचारों पर सोचने के लिये किसी भी तरह से बाध्य नहीं किया जा सकता है यही ऋषियों का ऋषित्व है, जो ऋषि को सामान्य प्राणियों से अलग करता है । ऋषि- ज्ञान के उस धरातल, स्तर, स्वरों में, विचारों के उच्च बिन्दु पर प्रवेश कर जाता है जिसे साधारण मानव मस्तिष्क कभी नहीं समझ सकता- जब तक की वह स्वयं ऋषि न बन जाये या उस जीवन पद्धति में प्रवेश न करे । इसीलिये वेद आदि शास्त्रों को हम अपनी आवश्यकताओं को पूरी करने की कुंजी समझने लगते हैं, ताला न खुलने पर झंझट मानकर ढकोसला कहकर आगे बढ़ जाते हैं और नये रास्तों को अपना लेते हैं । यह स्पष्ट समझ लेना चाहिये कि ऋषित्व विचार हमारी आवश्यकताओं के अनुसार किसी काल की माँग को पूरा करने वाला विचार नहीं है अपितु सार्वभौम, सार्वकालिक विचार है, जिसमें सम्पूर्ण भूत-भौतिक सृष्टि सुख का अनुभव करती है, तीनों कालों के प्रलय-महाप्रलय भी ऋषि विचारों के अन्तर्गत आते हैं । मनुष्यों पर करुणा के विचार ऋषियों के लिये सामान्य विचार है, जैसे कि आम का वृक्ष आम खाने के लिये लगाया जाता है, आम के पेड़ से लकड़ी, पत्तियाँ प्राप्त करना सामान्य बात है । ऋषियों की दिव्य दृष्टि से ही भौतिक जगत्

में देवधारणा की स्थापना हुई है, इसीलिये वैदिक ऋषि प्रकृति खण्डों, मेघ, तडित्, नद-नदी-वृक्ष-सागर-और तीर्थ स्थानों, पर्वतों, गौ जैसे प्राणियों की स्तुति करते हुये दिखते हैं । प्रश्न है कि आत्मदृष्टा, दुनिया में किसी पदार्थ की अभिलाषा न रखने वाले वैदिक ऋषि प्रकृति में देवधारण के विचार क्यों रखते थे- वैदिक ऋषियों के सामने मनुष्यों के लिये केवल एक ही आदर्श ध्येय था कि नानात्व में एक तत्त्व की दृष्टि रखें और आत्मभाव को प्राप्त करें । कालान्तर में यह देवधारणा अपने मृण्मय शरीर को देवता बनाने की धारणा बनी । पुराणों में, स्मृतिशास्त्रों में इस देवधारणा को सरलतम रूप में उपस्थित करते हुये देववाद का आत्मवाद से सम्बन्ध स्थापित करना पड़ा । वैदिक ऋषियों के सामने चेतन और अचेतन का भेद नहीं था । अचेतन में चेतन की दृष्टि सनातन धर्म की एक अद्भुत देन है इसी दृष्टि से हम निर्जीव पाषाणखण्ड में देवता की कल्पना करते हैं, सभी धर्म ईंट, पत्थर की रचना में अध्यात्म का अंकुर पैदा होता है यह देखते हैं । अधिभूत, अधिदैव, अध्यात्म का सेतु बना पाते हैं । अधिभूत से अधिदैव और अधिदैव से अध्यात्म तथा अध्यात्म से ब्रह्मभाव- यह सनातन शास्त्रों का दिया गया मार्ग है । इस प्रकार इस त्रिक के सेतु द्वारा जीव-जगत् की व्याख्या वैदिक सिद्धान्त का, वैदिक ऋषियों का मुख्य विषय रहा है, जो संसार के किसी भी धार्मिक या दार्शनिक विचार द्वारा उपस्थापित नहीं किया गया । यह त्रिक दर्शन अ, उ, म् 'ओम्' के रूप में परमात्मसत्ता को ही व्यापक बताता है । यह मान्यता किसी कल्पना के आधार पर नहीं है अपितु अविच्छिन्न कभी भी न टूटने वाली वैदिक सनातन धर्म परम्परा में ही सुरक्षित है और प्रत्यक्षफल को देने वाली भी है- ऋषि दृष्टि के सामने इसी देवधारणा का प्रकाश- यह मानव शरीर है, जल है, वायु है, अग्नि है, नानारूपों में भासित यह प्रकृति है, ये नदियाँ हैं, ये तीर्थ स्थान हैं- ये सभी परमात्मशक्ति के जीवित केन्द्र हैं, वेद दृष्टि का विरोधी भी इन्हीं से जीवन शक्ति प्राप्त करता है । संगम तीर्थ जैसे स्थान उसी विराट् परमात्मा की देह हैं, उन्हीं का निवास स्थान हैं । भगवान् मनु का मानव जाति के लिये अमृतमय उपदेश है -

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः । महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ।।

(मनु० २/२८)

- वेदों के ज्ञान से, श्रुति- स्मृति में बताये गये नियमों के पालन से, ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ-पितृयज्ञ और मनुष्य यज्ञ इन पञ्चमहायज्ञों से यह शरीर ब्रह्म प्राप्ति के योग्य बनाया जाता है । महर्षि मनु के इस एक ही श्लोक में सनातन धर्म और दर्शन का ताना-बाना बुना हुआ है ।

प्रसिद्ध संगमादि तीर्थ स्थान, पवित्र नदियाँ, सरोवर इस मिट्टी के शरीर को देवभाव की ओर ले जाने के लिये उचित स्थान है । वेद अधिकतर प्राकृतिक स्थान - गंगा, यमुना, प्रयाग, काशी जैसे देव स्थानों में देवदृष्टि कराता हैं- परमात्म शक्ति इन तीर्थ स्थानों पर तीर्थों के अनुरूप आकृतिवाली हो जाती है । ये स्थान परमात्मा के साक्षात् स्वरूप बन जाते हैं । इन तीर्थों में सत्कर्मियों को मानवाकार भाव और मानव के कमजोर मन से उपजी हुई फसल- राग, द्वेष, लोभ-लालच, निन्दा-भय भी उत्पन्न

नहीं होते, इनके सभी कर्म ब्रह्ममय होने से ब्रह्माकार वृत्ति में सहायक बन जाते हैं और मन को सभी प्रकार के पापों की भावना, दुर्विचार से दूर करते हैं। अत: तीर्थ स्थान, देवस्थान में साधक देवधारणा करके मनुष्य के भेद-भाव को समाप्त कर अभेद आत्मभाव और उससे ऊपर ब्रह्मभाव की ओर जाता है। इसीलिये सभी वर्ग, सभी जाति के लिये तीर्थों में समान सम्मान व्यवस्था है, किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं है।

मानव में अपरिमित ऊर्जा-शक्ति है, परन्तु उसका विकास या व्यावहारिक रूप क्रियाशक्ति प्रधान ही माना गया है, जैसे लकड़ी, काष्ठ में अग्नि तो है परन्तु घर्षण से ही व्यावहारिक अग्नि पैदा होती है। मनुष्य के स्वकार्य से उत्पन्न चेतना शक्ति काष्ठ की अग्नि के ही समान है जो सुप्तावस्था में ही रहती है। तीर्थ, जप, तप, स्वाध्याय, श्रेष्ठ कर्म, मन की निर्मलता, सभी वर्ग में आत्मभाव की दृष्टि वेदादिशास्त्रों के निर्देश से ही सम्भव है। जड प्रकृति, पर्वत, सागर, नद, नदी, वृक्ष, तीर्थ में चेतनता-देवत्व की धारणा ऋषियों के कालक्रम, युगक्रम के चिन्तन की उच्चता को प्रकट करती है। भौतिक पदार्थों के साथ जीवन जीने में ऋषि चेतना की आवश्यकता नहीं है। मनुष्य स्वाभाविक रूप से ही निम्न भावों में आनन्द लेता आ रहा है और भविष्य में भी लेता रहेगा। वेदों के संरक्षण की अखण्ड परम्परा जिसे हम श्रुति-श्रवण, गुरुशिष्य-परम्परा द्वारा सुरक्षित रखना कहते हैं, संरक्षण की दूसरी विधा स्मृति-स्मरण द्वारा सुरक्षित रखना कहते हैं- इन दोनों विधाओं द्वारा वेदराशि का आज भी संचय और संरक्षण किया जा रहा है- जैसा की हजारों लाखों साल पहले था। यदि ऋषियों द्वारा यह पद्धति विकसित नहीं होती तो वेदराशि का भी वही परिणाम होता जो प्राचीन ईरान-पारसियों के अमूल्य ग्रन्थ, विश्वधरोहर 'अवेस्ता' का हुआ। संस्कृतज्ञों की संस्कृत अध्ययन की परम्परा अत्यन्त प्राचीन और वैज्ञानिक है, व्याकरण महाभाष्य में भी संस्कृत भाषा पर प्रश्न उठाया गया है कि- बहवोऽर्था गम्यन्ते अक्षिनिकोचैः पाणिविहारैश्च- यदि आँख मारने, आँख हिलाने और हाथों के इशारे से ही कार्य चल जाता है तो भाषा को सीखने की क्या आवश्यकता है ? विश्व के ज्ञात इतिहास में सबसे प्राचीन वैदिक विचार-सन्देश जीवन की समस्या मिटाने के ही साधन नहीं है- यदि ऐसा होता तो उस प्राचीन युग से आज के युग में एक हजार गुना समस्याओं का समाधान हो चुका है। बीस घन्टे में हवाई जहाज से पृथ्वी का चक्कर लगाकर वापस आ सकते हैं- आज ऐसे साधन सभी को सुलभ है। इस तरह से समस्या मिटाने वाले विचारों से वेदों के अर्थ का विचार सम्भव नहीं है। फिर प्रश्न पैदा होता है कि वैदिक विचारों की क्या आवश्यकता है?

वैदिक देवशास्त्र द्वारा प्रकृति में देवधारणा बहुत प्राचीन काल से चली आ रही ऋषियों की विचार शृंखला पर आधारित है, जिसके अनुसार प्रकृति का एक-एक कण, परमाणु, जो कुछ भी दृश्यतत्त्व अनुभव का विषय है वह एक ही परमात्मशक्ति से ओतप्रोत है- जड में चेतन दृष्टि ही वैदिक दृष्टि के ज्ञान का मूल है। वैदिक ऋषियों की अपौरुषेय मेधा के सामने जड प्रकृति अपने आवरण को

हटा कर सजीव हो जाती है और अपने को वैदिक दृष्टि के सामने प्रकट कर देती है । इसका दर्शन ऋतम्भरा प्रज्ञा से ही सम्भव है । वास्तव में वैदिक विज्ञान विश्व संरक्षण का विज्ञान है । वैदिक देवत्व धारणा का, अचेतन में चेतन दृष्टि का यही मूल है जो ऋषि दृष्टि से ही समझा जा सकता है । तीर्थ स्थान, गंगा, यमुना, सरस्वती, प्रयाग, संगम जैसे स्थान इस लोक और परलोक के सोपान-सीढी हैं। यहाँ किये गये सभी कृत्य अपूर्व फल को देने वाले होते हैं । तीर्थ स्थानों के फल प्रत्यक्ष भी हैं और अप्रत्यक्ष भी, तीर्थों में हुये विनिमय, जीवन-यापन के जुगाड़ आदि की, प्रत्यक्ष लाभ की व्याख्या अर्थशास्त्री अच्छी तरह से कर सकते हैं । धार्मिक स्थल, धर्म से जुड़ी हुई बहुत बड़ी आर्थिक व्यवस्था करोंड़ों लोगों के जीवन का सजीव साधन है- आधुनिक अर्थशास्त्रियों की दृष्टि में यह तीर्थों का प्रत्यक्ष फल है जीवन व्यापन का कारखाना है ।

कर्मकाण्ड, कर्ममार्ग और धार्मिक स्थलों से उपजी चेतना से भारत भूमि प्रकाशित है- तीर्थ स्थान, नद-नदियाँ, प्रकृति, पर्वत, सागर, वृक्ष भारत की नहीं विश्व की आत्मा है, विश्व की धरोहर है । इनमें देवधारणा, चेतना का विचार, शाक्ति के स्त्रोत का विचार हमारी उन्नत दशा को दर्शाता है। अमलात्मा महर्षियों की दृष्टि स्वार्थगंध से रहित सत्य के अन्वेषण की दृष्टि है- इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं करना चाहिये । भगवान् ने गीता में स्पष्ट कहा है कि जितने भी प्रकृति के रूप हैं सभी मेरे ही रूप हैं । जितने भी देव हैं, वे सभी आत्मा की ही विभूति है । विभूति का अर्थ ऐश्वर्य होता है । सारा संसार ही आत्मा की विभूति है । विभूति, परमात्मा की शक्ति, परमात्मा का ऐश्वर्य केवल दो ही जगह प्रकट हो सकता है- क्रियाशक्ति के रूप में या ज्ञानशक्ति के रूप में या दोनों का एक ही जगह प्रकट होना देवताओं के अवतार में ही सम्भव है । प्राकृत मनुष्य इस धराधाम पर जीवित प्राणियों की शृंखला में सबसे कमजोर कड़ी और प्राणी माना गया है । क्रियाशक्ति या ज्ञानशक्ति में से किसी एक शक्ति का विकास भी मनुष्य में उत्पन्न करना अत्यन्त कठिन प्रकिया है । परमात्मा हाथ में लाठी-डण्डा लेकर लोगों को दण्डित करके जगत् का उद्धार कभी नहीं कर सकता । अत: जड-जङ्गम, चेतन-अचेतन संसार एकमात्र परमात्म विभूति से ही संचालित है ऐसे विचार तीर्थ स्थानों को परमात्मा का निवास, पवित्रता के प्रतीक- गंगा, यमुना, गंगा सागर जैसे धार्मिक स्थान क्रियाशक्ति के प्रमुख केन्द्र बनकर आत्मशक्ति, ज्ञानशक्ति को प्रकट करते हैं । तीर्थों की यही शक्ति आत्मवादियों के मोक्ष का कारण बनती है, यही तीर्थों की शक्ति कामना वालों के लिये भोग का, ऐश्वर्य की प्राप्ति का साधन बन जाती है । अध्यात्ममार्गी, ऋषिदृष्टि सम्पन्न ज्ञानी तो सदा अकम्पित बना रहता है । तीर्थ की शक्ति के कारण ही अनन्त झंझावातों को सहन कर सनातन धर्म स्फूर्तिवान् और जीवित धर्म रहा है । सनातन धर्म की भावना वाला, कण-कण में विष्णु का दर्शन करने वाला, सभी को अपनी आत्मा समझने वाला, तीर्थों की तपस्या से पका हुआ मनुष्य संसार का अलंकार है- ऐसे ही विचारों के कारण संसार विगत भय होता है । गीता, यजुर्वेद- अश्व, हाथी, पीपल, समुद्र, गंगा, पितृ (अर्यमा), दैत्य, सिंह, गरुड, मगर,

श्वान, अन्त्यवर्ण, जुआ, दण्डनीति और अन्न के दानों में भी परमात्मा की शक्ति विभूति देखते हैं । वैदिक ऋषि अधिकतर प्राकृतिक सत्ता में ही देवदृष्टि करते हैं, तात्पर्य है कि प्रकृति के बिना हमारी संरचना और हमारा जीवन असम्भव है । वैदिक ऋषियों के सामने देवों-देवताओं की असाधारण क्षमता गंगा, यमुना, सरस्वती नद-नदियों के रूप में देवभाव को प्राप्त होकर फलवती हो जाती है । देवों की इस विलक्षण शक्ति का मानवीकरण करके समझना मनुष्यों के साधारण मस्तिष्क द्वारा सम्भव नहीं है- केवल फल, लाभ के द्वारा ही इस विचार को समझा जा सकता है । वेदवाक्य, ऋषिवाक्य पर विश्वास करना ही हमारा कार्य है । भगवान् राम, कृष्ण का धराधाम पर जन्म होता है, जन्म लेने मात्र से ही इनमें देवधारणा उत्पन्न नहीं होती, अमूर्तशक्ति जब मूर्त-देह भाव में प्रकट होकर ज्ञानशक्ति-क्रियाशक्ति का आधार बनती है तभी देवत्व पैदा होता है । तीर्थ स्थानों में इस अवस्था का प्रत्यक्ष अनुभव किया जा सकता है । प्राय: यह देखा गया है कि अनन्त बाधाओं से परेशान, उद्वग्नि मनुष्य चित्त की एकाग्रता, मन की शान्ति प्रकृति के निकट ही प्राप्त करता है । मनोहर धरती, बहता नीर, उत्तुंग पर्वत, प्रकृति के श्रृंगार पशु-पक्षी, महानदियों का संगम, ऋषियों के मन में मन्त्रों की सरिता बहा देता है । प्राकृत जगत्, तीर्थादि में देवधारणा साधकों के आत्मकल्याण का एक मात्र ऋषियों द्वारा बताया गया मार्ग है । श्रद्धा ही फलवती होती है ।

तीर्थराज प्रयागः एक दृष्टि में -

भारत के प्राचीन नगरों में प्रयागराज का सर्वोत्तम स्थान है, तीर्थराज के नाम से प्रसिद्ध है । वैदिक काल से आज तक प्रयागराज का धार्मिक महत्त्व यथावत् बना हुआ है । प्रयागराज-इलाहाबाद हर तरह से सम्पन्न और विकसित नगर रहा है । प्रयागराज का माहात्म्य गंगा-यमुना और अन्त:सलिला सरस्वती की कीर्ति, गंगा-यमुना-सरस्वती का संगम प्रयागराज त्रिवेणी, प्रयागमण्डल में स्थित तीर्थ स्थान, प्रतिवर्ष होने वाला माघपर्व और बारह-बारह वर्षों में होने वाले पूर्णकुम्भ-कुम्भपर्व (अर्द्धकुम्भ) के कारण बहुत बढ़ जाता है । यह विश्व प्रसिद्ध महानदियों का संगम स्थल है । प्राचीन शास्त्रों में प्रयागराज का विचार तीन तरह से प्राप्त होता है -

वेणी (त्रिवेणी), संगम क्षेत्र और प्रयाग मण्डल के रूप में । तीनों नदियों के संगम को परमात्मा के नाम ओंकार से सम्बन्धित माना है, ओंकार ब्रह्म का सूचक है । ओम् के तीन भाग हैं- प्रथम अ, द्वितीय-ऊ, तृतीय- म्, तीनों वर्णों की सन्धि होकर ओम् ऐसी ध्वनि प्राप्त होती है जिसे शास्त्रों में अभेद रूप से केवल एक ही ध्वनि माना है । सरस्वती को अकार, यमुना को उकार एवं गंगा को मकार, स्वरूप बताकर त्रिवेणी को वेदबीज ओंकार का स्वरूप बताया गया है, यहाँ का स्नान, यहाँ का दान और यहाँ का मरण परमपद परमात्मभाव को देने वाला है । प्रजापिता भगवान् ब्रह्मा जी द्वारा किये गये यज्ञों के स्थान, यज्ञ वेदी भारतवर्ष में चार हैं - प्रथम- कुरुक्षेत्र, द्वितीय- प्रयाग, तृतीय- गया जी, चौथी- पुष्कर । प्रयागराज ब्रह्मा जी की मध्य वेदी है, भगवान् विष्णु का यहाँ पर नित्य वास और शिव

इस तीर्थ क्षेत्र के रक्षक हैं। प्रयाग शब्द यज् धातु से प्र उपसर्ग लगाकर बना है। प्रयाग का माहात्म्य शास्त्रों में हजारों श्लोकों में वर्णित है। मत्स्य पुराण ने ''प्र'' उपसर्ग पर जोर देते हुये सभी तीर्थों से प्रयाग को प्रभावशाली बताया है, इसलिये यह प्रयागराज तीर्थों का राजा के नाम से प्रसिद्ध है, पद्मपुराण ने हजारों श्लोकों में प्रयागराज की प्रशस्ति गाई है और **''स जयति तीर्थराजो प्रयाग:''** कहकर इसका जयघोष किया है। प्रयागराज में किया गया स्नान-दान, मरण, माघमास में किया गया वास भोग और मोक्ष को देने वाला है, इसके नाम स्मरण और मृत्तिका लेपन से ही मनुष्य पापों से मुक्त हो जाता है, यह पुनीत तीर्थराज है यहाँ त्रिवेणी का संगम है, ये भगवान् माधव का प्रिय स्थान है, यहाँ पर मृत्यु को प्राप्त हुए पुनर्जन्म प्राप्त नहीं करते हैं।

त्रिवेणी (संगम स्थल), प्रयाग और प्रयागमण्डल के अन्तर को समझना आवश्यक है- इन तीनों में प्रथम त्रिवेणी संगम है, पश्चात् प्रयाग और प्रयागमण्डल हैं। त्रिवेणी संगम के स्नान के बिना प्रयाग और प्रयागमण्डल में निवास निरर्थक है, नित्य या कम से कम तीन दिन- मकर संक्रान्ति, रथ सप्तमी एवं अमावस्या या माघ शुक्ल दशमी, एकादशी एवं द्वादशी या माघ मास की शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमा अथवा माघ मास के कोई भी तीन दिन ये सभी विकल्प शास्त्र में स्नानार्थियों की सुविधा के लिये दिये गये हैं। तात्पर्य यही है कि कम से कम तीन दिन का स्नान अवश्य ही करना चाहिये। त्रिवेणी संगम और प्रयाग मण्डल का मध्य भाग प्रयाग नाम से प्रसिद्ध है। प्रयाग मण्डल का विस्तार परिधि (Circumference) पाँच योजन का बताया गया है। स्पष्ट रूप से समझने के लिये संगम के मध्य से डेढ़ योजन का अर्धव्यास (Radius) का वृत्त (Circle) बनाया जाये तो लगभग पाँच योजन का प्रयाग मण्डल होगा। परम्परा के अनुसार एक योजन आठ मील का माना गया है, डेढ़ योजन-लगभग २० किलोमीटर के आस-पास होगा। अर्थ यह है कि संगम-त्रिवेणी के मध्य से बीस कि०मी० तक का लम्बाई क्षेत्र पवित्र और प्रयागमण्डल परिक्रमापथ क्षेत्र (Circumambulation) है। इस प्रयागक्षेत्र की अन्तर्वेदी स्वयं संगम क्षेत्र है, प्रजापतिक्षेत्र की पूर्व सीमा गंगापार प्रतिष्ठानपुर झूसी समुद्रकूप, हंसकूप, सन्ध्यावट आदि तीर्थ स्थान हैं, पश्चिम सीमाक्षेत्र किले के पीछे कम्बल एवं अश्वतरनाग आदि तीर्थ स्थान हैं, ये दोनों तीर्थ स्थान यमुना जी के उत्तर तट पर स्थित हैं, उत्तर सीमा दारागंज गंगा किनारे स्थित वासुकि नाग-वासुकि ह्रद आदि तीर्थ है, दक्षिण सीमा अरैल यमुना पार बहुमूल नाग आदि तीर्थ स्थान है। इन चारों सीमाओं का निर्देश संगम मध्य से लगभग तीन-तीन किलोमीटर पर मानना चाहिये, यह क्षेत्र प्रयाग नाम से प्रसिद्ध है। संगम क्षेत्र के तीर्थ स्थान अन्तर्वेदी, चारों दिशाओं से संगम क्षेत्र तक के तीर्थ स्थान मध्यवेदी और चारों दिशाओं से प्रयागमण्डल की सीमा जो संगम से डेढ़ योजन-लगभग बीस किलोमीटर मानी गई है, ये तीर्थ स्थान बहिर्वेदी के अन्तर्गत आते हैं। प्राचीन समय में वाराणसी की पंचक्रोशी परिक्रमा की तरह ही प्रयागमण्डल की परिक्रमा की जाती थी जो इस समय लुप्त हो गई है। वर्तमान में संगम स्नान और

अन्तर्वेदी में आये हुये-प्रतिष्ठानपुरी समुद्रकूप, खण्डहर किला, अक्षयवट, संध्यावट, हंसकूप, नागवासुकि, दशाश्वमेध घाट, अलोपी देवी, ललिता देवी, कल्याणी देवी, बडे हनुमान् जी, भरद्वाज आश्रम आदि तक ही यह परिक्रमा सीमित है। सभी तीर्थों को जागृत करने की आवश्यकता है। यहाँ विशेष कथन है कि गंगा जी को पृथ्वी की एक जंघा और यमुना जी को पृथ्वी की दूसरी जंघा बताया है, दोनों जंघाओं के बीच के स्थान को पृथ्वी का उपस्थ, योनि स्थान या उत्पत्ति स्थान बताया है। इस त्रिकोण में की गई साधना एवं अन्य धार्मिक कार्य अत्यन्त फलवान् होते हैं। यह त्रिकोण, गंगा-यमुना का मध्य भाग पृथ्वी के समृद्धतम क्षेत्रों में आता है। लाखों स्क्वायर किलोमीटर के इस उर्वरक क्षेत्र में जमीन के अन्दर सौ ग्राम का पत्थर का टुकड़ा भी मुश्किल से ही प्राप्त होगा।

शास्त्रों का कथन है कि प्रयागराज सिद्ध ऋषि-महर्षि, गन्धर्व एवं देवनागों की निवास स्थली है। यहाँ पर भगवान् विष्णु माधव की योगमूर्ति के रूप में विराजते हैं। भगवान् शिव स्वयं अक्षयवट की रक्षा करते हैं, और भगवान् ब्रह्मा संगम में निवास करते हैं। सभी को देवताओं से सेवित प्रयागराज में निवास करना चाहिये। प्रयागराज में दान-धर्म, स्नान, संयम पूर्वक वास की प्रशंसा की गई है। संगमक्षेत्र में कन्या के आर्ष विवाह-वैदिक पद्धति विवाह को सर्वोत्तम माना है। गाय, सोना, रत्न, मोती, माणिक्य, अन्न, तिल, गुड़ आदि के दानों को सर्वोत्तम दान माना है। बताया गया है कि ब्रह्मा जी की यह यज्ञ भूमि देवों द्वारा पूजित है यहाँ पर थोड़ा भी दिया गया दान महादान होता है। प्रयागराज में किया गया वपन (केश मुण्डन कार्य) विशेष महत्त्वपूर्ण है। मुण्डन कार्य की प्रशंसा में कहा गया है कि यदि किसी ने प्रयागराज में मुण्डन करवाया हो तो गया पिण्डदान, काशी में मृत्यु और कुरुक्षेत्र में दानकर्म की भी आवश्यकता नहीं है। मुण्डनकार्य के बारे में ज्ञातव्य है कि सुहागिन (सधवा) महिलायें चोटी के कुछ हिस्से को ही काटे, और अन्य सभी के लिये मुण्डन का विधान किया गया है। विधवा महिलाओं के लिये विशेष रूप से। त्रिस्थली आदि शास्त्रों में प्रयाग के अतिरिक्त महिलाओं के मुण्डन का निषेध भी है।

भारतवर्ष के तीर्थ स्थान और धार्मिक कृत्य और शास्त्र जन्म से ज्यादा मृत्यु पर विचार रखते हैं। महाभारत में सैकड़ों तीर्थों और सैकड़ों पवित्र नदियों का नाम प्राप्त होता है। ये सभी तीर्थ और नदियाँ पुण्य को देने वाली मानी गई है। इनके किनारे पर मृत्यु भी स्वर्गदायक है। काशी और प्रयाग में मरण-मृत्यु पर विशेष विचार किया गया। यहाँ तपस्यारत लोगों की मृत्यु को मुक्ति के समान बताया गया है। दान-धर्म, स्नान करने वालों को अक्षयफल और स्वर्ग की प्राप्ति बतायी गई है। भारतवर्ष के तीर्थों में आत्महत्या का विचार भी प्राप्त होता है। इन विचारों में प्रयागराज और काशी में आत्महत्या से सम्बन्धित विषय प्राप्त है। शास्त्रों में सर्वत्र आत्महत्या को निन्दित माना गया है और आत्महत्यारे के अन्त्येष्टिकर्म का निषेध भी प्राप्त होता है। किन्तु मनु आदि स्मृतियों में महापातकों के लिये प्रायश्चित स्वरूप आत्महत्या की व्यवस्था प्राप्त होती है। तीर्थों में आत्महत्या केवल कुछ ही

कारणों में प्राप्त है- महापातकों में, असाध्य रोगों से पीड़ित होने में, वर्णाश्रम धर्म का पालन न करने में, वानप्रस्थ गमन में (धृतराष्ट्र-गान्धारी), महाप्रस्थान गमन (स्वर्गारोहण-पाण्डवादि) और अत्यन्त जर्जर अवस्था में । मीमांसक आचार्य कुमरिलभट्ट ने प्रयागराज में भगवान् शंकराचार्य जी के सामने तुषानल (धान की भूसी) में अपने शरीर को धीमे-धीमे जलाकर समाप्त किया । धार्मिक स्थानों में आत्महत्याओं का सिलसिला अंग्रेजों के आने के बाद ही बन्द हुआ है । लगभग दो सौ वर्ष पूर्व तीर्थों में मरण- अक्षयवट आदि के नीचे, जगन्नाथ जी के पहिये के नीचे दब कर मर जाना आम बात थी।

प्रयागराज तीर्थों की श्रंखला में तीर्थराज माना गया है । शास्त्रों में स्पष्ट और अस्पष्ट रूप से प्रयाग के ३८ तीर्थों का वर्णन प्राप्त होता है । कालक्रम से प्रयागराज के तीर्थस्थान सुरक्षित नहीं रह सके और अधिकांश लुप्त हो गये हैं । लुप्त होते हुये तीर्थों की इस कड़ी में प्रतिष्ठान पुरी झूसी के तीर्थ- संध्यावट, हंसतीर्थ क्षेत्र, हंसमन्दिर, द्वादश माधवों में संध्यावट के नीचे स्थापित-संकष्टहर माधव, हंस-पुलिन, हंसकूप अतिक्रमण और कब्जे के शिकार हो गये हैं । इन तीर्थों के भू-भाग और संध्यावट पर भू-माफियाओं द्वारा कब्जा कर लिया गया है, यात्रियों को डरा-धमका कर भगा दिया जाता है, ये तीर्थ स्थान पक्की बाउन्ड्री के द्वारा घेर लिये गये हैं और यात्रियों के आने-जाने पर रोक लगा दी गई है । प्रशासन द्वारा इन तीर्थ स्थानों को आम जनता के लिये भू-माफियाओं से तत्काल मुक्त कराना चाहिये । प्रजापतिक्षेत्र प्रयागराज में **संगम त्रिवेणी** के अतिरिक्त उन्नीस मुख्य तीर्थ हैं -

ब्रह्मा जी की पूर्ववेदी प्रतिष्ठानपुरी (झूसी) के तीर्थ -

०१. **समुद्रकूप** - गंगा के पूर्वी तट प्रतिष्ठानपुरी झूसी में समुद्रकूप टीले पर है ।

०२. **सन्ध्यावट** - संध्यावट तीर्थ जो प्रतिष्ठानपुरी झूसी में ही स्थित है ।

०३. **हंसप्रपतन** - हंसप्रपतन तीर्थ प्रतिष्ठानपुर के उत्तर एवं गंगा के पूर्व दिशा की ओर गंगातट स्थित है ।

०४. **हंसतीर्थ** - प्रतिष्ठानपुरी झूसी में सन्ध्यावट के पास ही हंसतीर्थ मन्दिर स्थित है ।

०५. **हंसकूप** - प्रतिष्ठानपुरी झूसी में ही हंसतीर्थ के पास ही हंसकूप तीर्थ स्थित है ।

०६. **उर्वशीपुलिन** - उर्वशी-पुलिन तीर्थ जहाँ पर आत्म-त्याग करने से विभिन्न फलों की प्राप्ति होती है सन्ध्यावट के पास, गंगा किनारे ।

ब्रह्मा जी की पश्चिमवेदी कम्बल एवं अश्वतरनाग (किले के पीछे) के तीर्थ -

०७. **अक्षयवट** - प्रयागराज में संगम तट के पास किले के अन्दर अक्षयवट स्थित है, इस अक्षयवट में भगवान् विष्णु का सदा वास रहता है ।

०८. **कम्बल एवं अश्वतर** - नामक दो नाग तीर्थ, जो किले के पीछे पश्चिम दिशा, यमुना के उत्तर तट में स्थित हैं ।

०९. **ऋणमोचन** - ऋणमोचन तीर्थ यमुना जी के उत्तरी तट तथा किले के पीछे स्थित है ।

१०. **विरज** - विरज तीर्थ यमुना जी के उत्तरी तट पर स्थित है ।

ब्रह्मा जी की उत्तरवेदी वासुकिनाग (दारागंज) के तीर्थ -

११. **कोटितीर्थ** - यह तीर्थ आज-कल शिवकोटि के नाम से नागवासुकि मन्दिर से दक्षिण लगभग २ किलोमीटर दूर स्थित है ।

१२. **भोगवती** - भोगवती तीर्थ जो नाग वासुकि के उत्तर स्थित है और प्रजापति की वेदी कही जाती है।

१३. **दशाश्वमेध** - दशाश्वमेध घाट गङ्गा किनारे ।

१४. **मानस** - गंगा जी के उत्तरी तट पर मानसतीर्थ, मनसईता नदी क्षेत्र है ।

दक्षिणदिशा बहुमूलकनाग (अरैल) के तीर्थ -

१५. **बहुमूलकनाग तीर्थ** - बहुमूलक तीर्थ स्थान यह प्रयाग की दक्षिणी सीमा, यमुना के दक्षिणी तट पर स्थित है ।

१६. **अग्नितीर्थ** - यमुना जी के दक्षिणी तट पर स्थित है ।

१७. **धर्मराजतीर्थ** - यमुना के दक्षिणी दिशा की ओर स्थित है ।

१८. **हरवनतीर्थ** - यमुना के दक्षिणी दिशा एवं धर्मराज के पश्चिम की ओर स्थित है ।

१९. **अनरक/नरक** - अनरक/नरक तीर्थ धर्मराज से पश्चिम तरफ, यमुना के दक्षिणी तट की ओर स्थित है ।

तीर्थराज प्रयाग का माहात्म्य अवर्णनीय है- जो व्यक्ति अपने देश या निवास स्थान से प्रयाग यात्रा का संकल्प करके निकलता है, यदि उसकी कहीं वन में या मार्ग में प्रयाग का स्मरण करते हुये मृत्यु हो जाती है वह भी ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है, वह जहाँ पहुँचता है वहाँ के वृक्ष कामनाओं को पूरा करने वाले, वहाँ की पृथ्वी स्वर्णमयी हो जाती है, वहाँ ऋषि-मुनि, सिद्ध गन्धर्वों का वास रहता है । फल भुक्ति के बाद जब वह पृथ्वीलोक पर आता है तो वह राजा और सम्पन्न लोगों के यहाँ जन्म लेता है । प्रयागराज में कितना दान करना चाहिये इसका नियम नहीं है, यथाशक्ति, या अधिक से अधिक दान करने का विधान है । सभी तीर्थों में श्राद्धकर्म किया जाता है, किन्तु इस श्राद्धकर्म में देवताओं का आवाहन, विसर्जन और अर्घ्य कर्म नहीं किये जाते क्योंकि तीर्थ स्थानों में देवताओं, ऋषि-मुनियों, सिद्ध गन्धर्वों का सदा वास रहता है । यदि प्रयाग आदि तीर्थों में खर्चीले श्राद्ध की विधि का पालन न भी किया जा सके तो केवल यव, अन्न का पिण्डदान, तिलों का दान, घी और दूध से बनी हुई जौ की बनी हुई लप्सी, खीर आदि संयाव, गुड़ आदि का अर्पण किया जा सकता है । तीर्थों में श्राद्ध के लिये दिन, दिनांक, मुहूर्त का विचार नहीं है, तीर्थ में पहुँचकर श्राद्ध आदि कर्म किसी भी समय किये जा सकते हैं । तीर्थों के श्राद्ध से पितृगण को अनन्तकाल तक तृप्ति मिलती है । पार्वण श्राद्ध, पिण्डदान करने के पश्चात् व्यक्ति को अपने अन्य सम्बन्धियों के लिये संकल्पपूर्वक एक पिण्ड दान देना चाहिये, मैं इस पवित्र तीर्थ में अपने माता-पिता, गुरु के सम्बन्धियों को पिण्ड दे रहा हूँ ।

अपने कुल के एवं अन्य अज्ञात लोगों की तृप्ति के लिये मैं यह पिण्डदान कर रहा हूँ । इसके अनन्तर अपने मृतक, सेवक, मित्र, सहायक, पशुओं, वृक्षों और इनके सम्पर्क में जो आया है, कीट-पतंग की शान्ति के लिये मैं यह पिण्ड दान कर रहा हूँ । महाभारत अनुशासन पर्व, कुर्म पुराण, नारदीय पुराण, पद्म पुराण, मत्स्य पुराण, स्कन्द पुराण आदि शास्त्रों में प्रयाग माहात्म्य और माघ माहात्म्य पर ४५०० तक श्लोक प्राप्त होते हैं । सामान्यजन बिना मन्त्रों के भी स्नान आदि कर सकते हैं। माघमास में कम से कम तीन दिन का किया हुआ स्नान अनन्त गौवें के दान के फल के बराबर है । मकर संक्रान्ति, रथसप्तमी, अमावस्या एवं पूर्णिमा आदि पुण्य तिथियों पर अवश्य ही स्नान करना चाहिये । नियम, संयम, शौचाचार और मौन रहकर साधना का और एक समय भोजन का विधान बताया गया है ।

प्रयाग माहात्म्य और अन्य विधान -

प्रयागराज भगवान् विष्णु की प्रत्यक्ष निवास भूमि है, भगवान् का स्मरण और नमस्कार करके प्रयागराज में वास करें, फिर गङ्गा, यमुना, सरस्वती, प्रयागराज का स्मरण कर अन्य कार्यों को करें-

प्रयागराज में भगवान् विष्णु की स्तुति -

त्वद्वार्तां प्रियतो ब्रवीमि यदहं साऽस्तु स्तुतिस्ते प्रभो ,
यद्भुञ्जे तव तन्निवेदनमथो यद्यामि सा प्रेष्यता ।
यच्छान्तः स्वपिमि त्वदङ्घ्रियुगले दण्डप्रणामोऽस्तु नः,
स्वामिन्यच्च करोमि तेन स भवान्विश्वेश्वरः प्रीयताम्।।

- हे भगवन् ! मैं शुद्धभावसे आपके सम्बन्ध में जो कुछ भी चर्चा करता हूँ, वही आपके लिये स्तुति हो । जो कुछ भोजन करता हूँ, वही आपके लिये नैवेद्य का काम दे । जो चलता-फिरता हूँ, वही आपकी सेवा-टहल समझी जाय । जो थककर सो जाता हूँ, वही आपके लिये साष्टाङ्ग प्रणाम हो तथा स्वामिन्! मैं जो कुछ करता हूँ, उससे आप जगदीश्वर श्रीविष्णु प्रसन्न हों ।

प्रयागराज में गंगा स्तुति -

सर्वेशादि प्रशंसामुदमनुभवितुं मज्जनं यत्र चोक्तं ,
स्वर्नार्यो वीक्ष्य हृष्टा विबुधसुरपतिप्राप्तिसंभावनेन ।
नीरे श्रीजह्नुकन्ये यमनियमरताः स्नान्ति ये तावकीने ,
देवत्वं ते लभन्ते स्फुटमशुभकृतोऽप्यत्र वेदाः प्रमाणम् ।।

- जिस गङ्गाजी के जल में किया हुआ स्नान स्वर्ग-लोकके निवास तथा प्रशंसा के आनन्द की अनुभूति का कारण बताया गया है, वहाँ किसी को स्नान करते देख स्वर्गलोक की देवियाँ एक नूतन देवता अथवा इन्द्रके मिलने की संभावना से बहुत प्रसन्न होती हैं, अर्थात् गङ्गा स्नान देवता भाव को प्राप्त कराता है । जह्नुपुत्रि गङ्गे! जो लोग यम-नियमों का पालन करते हुए आपके जल में स्नान करते हैं, वे पहले के पापी होनेपर भी निश्चय ही देवत्व प्राप्त कर लेते हैं- इस विषय में वेद प्रमाण हैं ।

श्रीगङ्गाजी के माहात्म्य के श्रवणमात्र से तत्काल पापों का नाश हो जाता है । जो मनुष्य सैकड़ों योजन दूर से भी 'गङ्गा-गङ्गा' का उच्चारण करता है वह सब पापों से मुक्त होता और अन्त में विष्णुलोक को जाता है । श्रीहरि वामन भगवान् के चरण-कमलों से प्रकट हुई 'गङ्गा' नाम से विख्यात नदी पापों की स्थूल राशियों का भी नाश करनेवाली है । नर्मदा, सरयू, वेत्रवती (बेतवा), तापी, पयोष्णी (मन्दाकिनी), चन्द्रा, विपाशा (व्यास), कर्मनाशिनी सूर्यतनया यमुना, क्षिप्रा, गोदावरी, कावेरी, कृष्णा- इनमें स्नान करने से जो पुण्य होता है, वह सब पुण्य गङ्गा-स्नान से मनुष्य प्राप्त कर लेते हैं । जो मनीषी पुरुष समुद्रसहित पृथ्वी का दान करते हैं, उनको मिलने वाला फल भी गङ्गा-स्नान से प्राप्त हो जाता है। सहस्त्र गोदान, सौ अश्वमेध यज्ञ तथा सहस्त्र वृषभ-दान से जिस अक्षय फल की प्राप्ति होती है, वह गङ्गाजी के दर्शन से क्षणभर में प्राप्त हो जाता है । वह गङ्गा नदी महान् पुण्यदायिनी है, विशेषत: ब्रह्महत्यारों के लिये परम पावन है । वे नरक में पड़ने वाले हों तो भी गङ्गाजी उनके पाप हर लेती है । जैसे सूर्योदय होने पर अन्धकार दूर हो जाता है, उसी प्रकार गङ्गाके प्रभाव से पातक नष्ट हो जाते हैं । माता गङ्गा संसार में सदा पवित्र मानी गयी हैं । इनका स्वरूप परम कल्याणमय है । जाह्नवीका स्वरूप दिव्य है । जैसे देवताओं में श्रीविष्णु श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार नदियों में गङ्गा उत्तम हैं। जहाँ गङ्गा, यमुना और सरस्वती हैं, उन तीर्थों में स्नान और आचमन करके मनुष्य मोक्षका भागी होता है- इसमें संदेह नहीं करना चाहिये । गंगा जी के नाम से ही सभी तीर्थ विशेषता को प्राप्त करते हैं । तीर्थराज प्रयाग में गङ्गा जी को अतिविशिष्ट स्थान प्राप्त है यहाँ भगवान् विष्णु का वेणीमाधव के रूप में नित्य निवास रहता है ।

प्रयागराज में यमुना स्तुति -

तावद् भ्रमन्ति भुवने मनुजा भवोत्थदारिद्र्यरोगमरणव्यसनाभिभूताः ।
यावज्जलं तव महानदि नीलनीलं पश्यन्ति नो दधति मूर्धसु सूर्यपुत्रि ! ।।

- सूर्यपुत्री महानदी यमुना जी ! मनुष्य इस जगत् में प्राप्त होने वाले दरिद्रता, रोग और मृत्यु आदि दु:खों से पीड़ित होकर तभी तक संसार में भटकते रहते हैं, जब तक वे नीलमणिके सदृश आपके नीले जल का दर्शन नहीं करते अथवा उसे अपने मस्तकपर नहीं चढ़ाते ।

प्रयागराज में सरस्वती स्तुति -

ये पिबन्ति नराः पुण्यां प्राचीं देवीं सरस्वतीम् । न ते मनुष्या विज्ञेयाः सत्यं सत्यं वरानने ।।

- जो मनुष्य प्राची (पूर्व दिशा की ओर गमन करने वाली) सरस्वती देवी के जल का पान करते हैं, जल में स्नान करते हैं, ऐसे मनुष्यों को देवता मानना चाहिये । (स्कन्दपु०७/१/३६/५)

पद्मपुराण स्तोत्र- स तीर्थराजो जयति प्रयागः -

नीचे तीर्थराज प्रयाग का मनोहर स्तोत्र दिया गया है, तीर्थ यात्रियों को चाहिये की इसका नित्य

पाठ करें -

श्रीजाह्नवीरविसुतापरमेष्ठिपुत्री - सिन्धुत्रयाभरणतीर्थवरप्रयाग! ।
सर्वेश!मामनुगृहाण नयस्व चोर्ध्वमन्तस्तमो दशविधं दलयस्व धाम्ना ।।१।।

- गङ्गा, यमुना और सरस्वती- इन तीनों नदियों को आभूषण रूप में धारण करनेवाले तीर्थराज प्रयाग! सर्वेश्वर ! मुझपर अनुग्रह करो, मुझे ऊँचे उठाओ तथा मेरे अन्तःकरण के दस प्रकार के अविद्यान्धकार को अपने तेजसे नष्ट करो ।

वागीशविष्ण्वीशपुरन्दराद्याः पापप्रणाशाय विदांविदोऽपि ।
भजन्ति यत्तीरमनीलनीलं स तीर्थराजो जयति प्रयागः ।।२।।

- ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा इन्द्र आदि देवता और विद्वानों में श्रेष्ठ विद्वान् (ऋषि-महर्षि) भी जिसके श्वेत-कृष्णजल से शोभित तटका सेवन करते हैं, उस तीर्थराज प्रयागकी जय हो ।

कलिन्दजासङ्गमवाप्य यत्र प्रत्यग्गता स्वर्गधुनी धुनोति ।
अध्यात्मतापत्रितयं जनस्य स तीर्थराजो जयति प्रयागः।।३।।

- जहाँ आयी हुई गङ्गा कलिन्दनन्दिनी यमुना का सङ्गम पाकर मनुष्यों के आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक- इन तीनों तापों का नाश करती हैं, उस तीर्थराज प्रयाग की जय हो ।

श्यामो वटः श्यामगुणो वृणोति स्वच्छायया श्यामलया जनानाम् ।
श्यामश्रमं कृन्तति यत्र दृष्टः स तीर्थराजो जयति प्रयागः ।।४।।

- जहाँ श्यामवट, अक्षयवट उज्ज्वल गुण धारण करता है तथा दर्शन करने पर अपनी श्यामल छायासे मनुष्यों के जन्म-मरणरूप श्रमका नाश कर डालता है, उस तीर्थराज प्रयाग की जय हो ।

ब्रह्मादयोऽप्यात्मकृतिं विहाय भजन्ति पुण्यात्मकभागधेयम् ।
यत्रोज्झिता दण्डधरः स्वदण्डं स तीर्थराजो जयति प्रयागः ।।५।।

- ब्रह्मा आदि देवता भी अपना काम छोड़कर जिस पुण्यमय सौभाग्य से युक्त तीर्थका सेवन करते हैं तथा जहाँ दण्डधारी यमराज भी अपना दण्ड त्याग देते हैं, उस तीर्थराज प्रयाग की जय हो ।

यत्सेवया देवनृदेवतरादिदेवर्षयः प्रत्यहमामनन्ति ।
स्वर्गं च सर्वोत्तमभूमिराज्यं स तीर्थराजो जयति प्रयागः ।।६।।

- देवता, मनुष्य, ब्राह्मण तथा देवर्षि भी प्रतिदिन जिसके सेवनसे स्वर्ग एवं सर्वोत्तम भूमण्डलका राज्य प्राप्त करते हैं, उस तीर्थराज प्रयाग की जय हो ।

एनांसि हन्तीति प्रसिद्धवार्ता नाम प्रतापेन दिशो द्रवन्ति ।
यस्य त्रिलोकीं प्रतताप गोभिः स तीर्थराजो जयति प्रयागः ।।७।।

- प्रयाग अपने नामके प्रतापसे समस्त पापों का नाश कर डालता है, यह प्रसिद्ध वार्ता सम्पूर्ण दिशाओं में फैली हुई है । जिसके सुयश से सारी त्रिलोकी आच्छादित है, उस तीर्थराज प्रयाग की जय हो।

धत्तेऽभितश्चामरचारुकान्तिसितासिते यत्र सरिद्वरेण्ये ।
आद्यो वटश्छत्रमिवातिभाति स तीर्थराजो जयति प्रयागः ।।८।।

- जहाँ दोनों किनारे श्याम और श्वेत सलिलसे सुशोभित दो श्रेष्ठ सरिताएँ यमुना और गङ्गा चँवरकी मनोहर कान्ति धारण कर रही हैं और आदि वट (अक्षयवट) छत्र के समान सुशोभित होता है, उस तीर्थराज प्रयागकी जय हो ।

ब्राह्मीनपुत्रीत्रिपथास्त्रिवेणीसमागमे साक्षतयागमात्रात् ।
यत्राप्लुतान्ब्रह्मपदं नयन्ति सतीर्थराजो जयति प्रयागः ।।९।।

- सरस्वती, यमुना और गङ्गा- ये तीनों नदियाँ जहाँ डुबकी लगानेवाले मनुष्यों को, जो त्रिवेणी-संगम के सम्पर्क से अक्षत यागफलको प्राप्त हो चुके हैं, ब्रह्मलोक में पहुँचा देती है, उस तीर्थराज प्रयाग की जय हो । (ब्राह्मी=सरस्वती, ईन=सूर्य, ईनपुत्री=यमुना, त्रिपथा=गंगा)

चतुर्णां देवतानां च स्तोत्रं स्वर्गार्थदायकं श्राद्धकाले पठेन्नित्यं स्नानकाले तु यः पठेत् ।
सर्वतीर्थसमं स्नानं श्रवणात्पठनाज्जपात् प्रयागस्य च गङ्गाया यमुनायाः स्तुतेर्द्विज ।।
श्रवणेन विनश्यन्ति दोषाश्चैव तु कर्मजा ।।१०।।

- इस प्रकार यह चारों देवताओं- प्रयागराज, गङ्गा, यमुना, सरस्वती का स्तोत्र स्वर्ग एवं अभीष्ट वस्तु प्रदान करने वाला है । जो मनुष्य श्राद्धकाल में तथा प्रतिदिन स्नान के समय इसका पाठ करता है, उसे सब तीर्थों में स्नान के समान पुण्य होता है। इसके श्रवण, पाठ तथा जप से उक्त फल की सिद्धि होती है । प्रयाग, गङ्गा, यमुना तथा सरस्वती की स्तुति का श्रवण करने से कर्मजन्य दोष नष्ट हो जाते हैं । (पद्मपु०उ०अ०२२)

देवाधिदेव महादेव द्वारा प्रयागतीर्थ प्रशस्ति -

प्रयागतीर्थमाहात्म्यं प्रवक्ष्यामि यथाश्रुतम् । महादानपराः पुण्यकर्माणो यत्र सन्ति हि।।१।।
यत्र गङ्गा च यमुना यत्र चैव सरस्वती । तदेवतीर्थप्रवरं देवानामपि दुर्लभम् ।।२।।

- मैं महादेव वेदों मे कही हुई प्रयागतीर्थ की महिमा का वर्णन करूँगा । जो मनुष्य पुण्य-कर्म करने वाले हैं, वे ही प्रयाग में निवास करते है । जहाँ गङ्गा, यमुना और सरस्वती- तीनों नदियो का संगम है, वही तीर्थप्रवर प्रयाग है, वह देवताओं के लिये भी दुर्लभ है ।

ईदृशं त्रिषु लोकेषु भूतं न च भविष्यति । ग्रहाणां च यथा सूर्यो नक्षत्राणां यथा शशी ।।३।।
तीर्थानामुत्तमं तीर्थ प्रयागाख्यमनुत्तमम् । प्रातःकाले तु भो विद्वन्प्रयागे स्नानमाचरेत् ।।४।।
महापापाद्विनिर्मुक्तः स याति परमं पदम् । देयं किंचिद्यथाशाक्ति दारिद्र्याभावमिच्छता ।।५।।

- इसके समान तीर्थ तीनों लोकों में न कोई हुआ है न होगा, जैसे ग्रहों में सूर्य और नक्षत्रों में चन्द्रमा श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार सब तीर्थों में प्रयाग नामक तीर्थ उत्तम है । विद्वन् ! जो प्रात:काल प्रयाग में स्नान करता है, वह महान् पाप से मुक्त हो परमपद को प्राप्त होता है, जो दरिद्रताको दूर करना चाहता हो, उसे प्रयाग में जाकर कुछ दान करना चाहिये ।

यो नरस्तत्र गत्वा वै प्रयागे स्नानमाचरेत् । धनिको दीर्घजीवी च जायते नात्रसंशयः।।६।।
यत्र वटस्याक्षयस्य दर्शनं कुरुते नरः । तेन दर्शनमात्रेण ब्रह्महत्या विनश्यति ।। ७ ।।

- जो मनुष्य प्रयाग में जाकर वहाँ स्नान करता है, वह धनवान् और दीर्घजीवी होता है । वहाँ जाकर मनुष्य अक्षयवट का दर्शन करता है, उसके दर्शन मात्र से ब्रह्महत्याका पाप नष्ट होता है।

स चाक्षयवटः ख्यातः कल्पान्तेऽपि च दृश्यते । शेते विष्णुर्यस्य पत्रे अतोऽयमव्ययः स्मृतः ।। ८ ।।

- उसे आदिवट कहा गया है । कल्पान्त में भी उसका दर्शन होता है । उसके पत्रपर भगवान् विष्णु शयन करते हैं, इसलिये वह अविनाशी माना गया है ।

तत्र पूजां प्रकुर्वन्ति मानवा विष्णुवल्लभाः । सूत्रेणाच्छादितं कृत्वा पूजां चैव तु कारयेत्।।०९।।
माधवाख्यस्तत्र देवः सुखं तिष्ठति नित्यशः । तस्य वै दर्शनं कार्यं महापापैः प्रमुच्यते ।।१०।।
यत्र देवाश्च ऋषयो मनुष्याश्चापि सर्वशः । स्वस्वस्थानं समाश्रित्य तत्र तिष्ठन्ति नित्यशः ।।११।।

- विष्णुभक्त मनुष्य प्रयाग में अक्षयवट का पूजन करते हैं । उस वृक्ष में सूत लपेटकर उसकी पूजा करनी चाहिये । वहाँ 'माधव' नाम से प्रसिद्ध भगवान् विष्णु नित्य विराजमान रहते हैं, उनका दर्शन अवश्य करना चाहिये । ऐसा करनेवाला पुरुष महापापों से छुटकारा पा जाता है देवता, ऋषि और मनुष्य-सभी वहाँ अपने-अपने योग्य स्थान का आश्रय लेकर नित्य निवास करते हैं ।

गोघ्नो वापि च चाण्डालो दुष्टो वा दुष्टचेतनः । बालघाती तथाऽविद्वान्म्रियते तत्र वै यदा ।।१२।।
स वै चतुर्भुजो भूत्वा वैकुण्ठे वसते चिरम् । प्रयागे तु नरो यस्तु माघस्नानं करोति च ।।१३।।
न तस्य फलसंख्यास्ति श‍ृणु देवर्षिसत्तम । आपो नारा इतिप्रोक्ताः सर्वलोकेषु शुश्रुम ।।१४।।
तेन नारायणः प्रोक्तः स्नातानां भुक्तिमुक्तिदः । ग्रहाणां च यथा सूर्यो नक्षत्राणां यथा शशी ।।१५।।

- गोहत्यारा, चाण्डाल, दुष्ट, दूषितहृदय, बालघाती तथा अज्ञानी मनुष्य भी यदि वहाँ मृत्यु को प्राप्त होता है तो चतुर्भुज रूप धारणकरके सदा ही वैकण्ठ-धाम में निवास करता है । जो मानव प्रयाग में माघ-स्नान करता है उसे प्राप्त होने वाले पुण्यफलकी कोई गणना नहीं है । भगवान् नारायण प्रयाग में स्नान करने वाले पुरुषों को भोग और मोक्ष प्रदान करते हैं । जैसे ग्रहों में सूर्य और नक्षत्रों में चन्द्रमा श्रेष्ठ तीर्थों में श्रेष्ठ प्रयागराज है ।

मासानां हि तथा माघः श्रेष्ठः सर्वेषु कर्मसु । मकरस्थे रवौ माघे प्रातःकाले तथाऽमले ।।१६।।
गोःपदेऽपि जले स्नानं स्वर्गदं पापिनामपि । योगोऽयं दुर्लभो विद्वंस्त्रैलौक्ये सचराचरे ।।१७।।
अस्मिन्यो यत्नमापन्नः स्नायादपि दिनत्रयम् । पञ्च वा सप्तवाप्यत्र स्नानं कुर्वन्प्रयागजम् ।।१८।।
चन्द्रवद्वर्धते सोऽपि कुले वाडवसत्तम । चराचराश्च ये जीवास्तथैव मनुजादयः ।।१९।।
प्रयागं तीर्थमाश्रित्य वैकुण्ठं यान्ति तेऽचिरात् । ये वसिष्ठादयस्तत्र ऋषयः सनकादयः ।।२०।।
तेऽपि प्रयागजं तीर्थं सेवन्ते च पुनः पुनः । यत्र विष्णुश्च रुद्रश्च यत्रेन्द्रश्च तथा पुनः ।।२१।।
तेऽपि सर्वे वसन्तीह प्रयागे तीर्थसत्तमे । दानं तत्र प्रशंसन्ति नियमांश्च तथैव च ।।२२।।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च पुनर्जन्म न विद्यते ।।२३।।

- उसी प्रकार महीनों में माघ मास श्रेष्ठ है यह सभी कर्मों के लिये उत्तम है । विद्वन् ! यह माघ-

मकर का योग चराचर त्रिलोकी के लिये दुर्लभ है । जो इसमें यत्नपूर्वक सात, पाँच अथवा तीन दिन भी प्रयाग-स्नान कर लेता है, उसका उभ्युदय होता है । मनुष्य आदि चराचर जीव प्रयाग तीर्थ का सेवन करके वैकुण्ठलोक को प्राप्त होते हैं । दिव्यलोक में रहने वाले जो वसिष्ठ और सनकादि ऋषि हैं वे भी प्रयागतीर्थ का बारबार सेवन करते हैं । विष्णु, रुद्र और इन्द्र भी तीर्थप्रवर प्रयाग में निवास करते हैं । प्रयाग में दान और नियमों के पालन की प्रशंसा होती है । वहाँ स्नान और जलपान करने से पुनर्जन्म नहीं होता । (पद्मपु०उ०अ० २४)

शङ्खासुर वध एवं प्रयाग में भगवान् विष्णु का वास -

समुद्र का पुत्र शंख अत्यन्त प्रतापी असुर था इस असुर ने सभी देवताओं को परास्त करके स्वर्ग से बाहर कर दिया, देवताओं की शक्ति वेद भगवान् को भी इस असुर ने चुरा लिया- इसने सोचा देवता वेदमन्त्रों के बल से बलवान् हैं, मैं वेदों का ही अपहरण करूँगा । देवताओं की प्रार्थना करने पर भगवान् विष्णु ने कहा मैं शंखासुर का वध करके वेदों को प्राप्त करूँगा । मत्स्यरूप धारी भगवान् विष्णु ने शङ्खासुर का वध किया और उस शङ्खको अपने हाथ में लिये वे बदरीवन में गये । वहाँ सम्पूर्ण ऋषियों को बुलाकर भगवान् ने इस प्रकार आदेश दिया । श्रीविष्णु बोले- महर्षियों ! जल के भीतर बिखरे हुए वेदों की खोज करो और रहस्यों सहित उनका पता लगाकर शीघ्र ही ले आओ । तब तक मैं देवताओं के साथ प्रयाग में ठहरता हूँ । तब तेज और बल से सम्पन्न समस्त मुनियों ने यज्ञ और बीजसहित वेदमन्त्रों का उद्धार किया । जिस वेदके जितने मन्त्र को जिस ऋषि ने उपलब्ध किया, वही उतने भाग का तबसे ऋषि माना जाने लगा । तदनन्तर सब मुनि एकत्रित होकर प्रयाग में गये तथा ब्रह्माजी सहित भगवान् विष्णु को उन्होंने प्राप्त किये हुए वेद अर्पण कर दिये । यज्ञसहित वेदों को पाकर ब्रह्माजी को बड़ा हर्ष हुआ तथा उन्होंने देवताओं और ऋषियों के साथ प्रयाग में अश्वमेध यज्ञ किया । यज्ञ की समाप्ति होने पर देवता, गन्धर्व, यज्ञ, किन्नर तथा गुह्यकों ने पृथ्वीपर साष्टाङ्ग प्रणाम करके यह प्रार्थना की ।

देवाधिदेव जगन्नाथ ! प्रभो! हमारा निवेदन सुनिये । हम लोगों के लिये यह बड़े हर्ष का समय है, अत: आप हमें वरदान दें । रमापते ! इस स्थानपर ब्रह्माजी को खोये हुए वेदों की प्राप्ति हुई है तथा आपकी कृपा से हमें भी यज्ञभाग उपलब्ध हुआ है, अत: यह स्थान पृथ्वीपर सबसे अधिक श्रेष्ठ और पुण्यवर्धक हो । इतना ही नही, आपके प्रसाद से यह भोग और मोक्षका भी दाता हो । साथ ही यह समय भी महान् पुण्यदायक और ब्रह्महत्यारे आदि की भी शुद्धि करने वाला हो । इसमें दिया हुआ सब कुछ अक्षय हो । यही वर हमें दीजिये ।

भगवान् विष्णु ने कहा- देवताओं ! तुमने जो कुछ कहा है, उसमें मेरी भी सम्मति है, अत: तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो, यह स्थान आज से ''ब्रह्मक्षेत्र'' नाम धारण करे । सूर्यवंश में उत्पन्न राजा भगीरथ यहाँ गङ्गा को ले आयेंगे और वह सूर्यकन्या यमुनाजी के साथ यहाँ मिलेगी । ब्रह्माजी सहित तुम सम्पूर्ण

देवता भी मेरे साथ यहाँ निवास करो । आज से यह तीर्थ 'तीर्थराज' के नाम से विख्यात होगा । यहाँ किये हुए दान, व्रत, तप, होम, जप और पूजा आदि कर्म अक्षय फल के दाता और सदा मेरी समीपता की प्राप्ति कराने वाले हों । सात जन्मों में किये हुए ब्रह्महत्या आदि पाप भी इस तीर्थ का दर्शन करने से तत्काल नष्ट हो जायँ । जो धीर पुरुष इस तीर्थ में मेरे समीप मृत्यु को प्राप्त होंगे, वे मुझ में ही प्रवेश कर जायँगे, उनका पुनर्जन्म नहीं होगा । जो यहाँ मेरे आगे पितरों के उद्देश्य से श्राद्ध करेंगे, उनके समस्त पितर मेरे लोक में चले जायँगे । यह काल भी मनुष्यों के लिये महान् पुण्यमय तथा उत्तम फल प्रदान करने वाला होगा । सूर्य के मकर राशि पर स्थित रहते हुए जो लोग यहाँ प्रातःकाल स्नान करेंगे, उनके लिये यह स्थान पापनाशक होगा । मकर राशिपर सूर्य के रहते समय माघ में प्रातःस्नान करने वाले मनुष्यों के दर्शनमात्र से सारे पाप उसी प्रकार भाग जाते हैं, जैसे सूर्योदय से अन्धकार । माघ मास में जब सूर्य मकर राशिपर स्थित हों, उस समय यहाँ प्रातःस्नान करने पर मैं मनुष्यों को क्रमशः सालोक्य, सामीप्य और सारूप्य- तीनों प्रकार की मुक्ति दूँगा । मुनीश्वरों ! तुम सब लोग मेरी बात सुनो। यद्यपि मैं सर्वत्र व्यापक हूँ, अन्यत्र दस वर्षों तक तपस्या करने से जिस फलकी प्राप्ति होती है, वही वहाँ एक दिनकी तपस्यासे तुमलोग प्राप्त कर सकते हो । जो नरश्रेष्ठ उस स्थान का दर्शन करते हैं, वे सदा के लिये जीवन्मुक्त हैं । उनके शरीर में पाप नहीं रहता । जो शुद्ध चित्तवाला श्रेष्ठ पुरुष इस कथा को सुनता या सुनाता है, वह तीर्थराज प्रयाग और बदरीवन की यात्रा करने का फल प्राप्त कर लेता है । (पद्मपु०उ०अ०९०-९१)

प्रयागशताध्यायी तीर्थराज प्रयाग स्तोत्र -

तस्यास्य तीर्थराजस्य चतुर्वर्गप्रदस्य हि । श्रुतिस्मृतिप्रसिद्धस्य महिमानं ब्रवीतु कः ।।

(प्रयागशता०अ० ३/२)

- श्रुति-स्मृति प्रसिद्ध धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को देने वाले तीर्थराज की महिमा को कौन बता सकता है ? अन्य स्थानों में किये गये पाप काशी मे नष्ट हो जाते है परन्तु काशी में किये गये पाप प्रयागराज संगम के स्नान से ही नष्ट हो सकते है । तीर्थराज का माहात्म्य सभी के सामने प्रकट नही किया जा सकता । इस तीर्थराज का माहात्म्य अत्यन्त गूढ है । श्री व्यास जी का वचन है कि विष्णु आदि देवता तथा और भी असंख्य देवता प्रयागराज मे सदा निवास करते हैं । प्रयागराज के प्रधान देवता श्रीमाधव भगवान् विष्णु हैं । किसी समय ब्रह्मा के पुत्र सनक-सनन्दन-सनातन-सनत् कुमार ऋषि–मुनियों के साथ तत्त्वज्ञान को जाने के लिये पाताल लोक गये । वहाँ उन लोगो ने सुन्दर-सुन्दर भवन देखे । शेषराज रत्नजडित् स्वर्ग सिंहासन पर बैठे थे । अनन्त आदि सर्पो का समूह नाग कन्याओं के साथ उनकी सेवा कर रहा था । शेषराज को देख सनकादि मुनियों ने उनको प्रणाम किया।

सनकादि की स्तुति से प्रसन्न हो शेषराज ने कहा- ब्रह्मा के पुत्रों आप लोग क्यों आये हैं कृपा करें । आप लोग ज्ञानी हैं, काम क्रोध आदि विकारों को आप लोगों ने जीत लिया है, चर-अचर समस्त

विश्व को आप विष्णुरूप से देखते हैं । श्री हरि आप के हृदय कमल मे विराजमान हैं । यहाँ आने से मेरे मन में सन्देह हो गया है, कृपया आने का कारण बतायें ।

सनकादि ब्रह्म कुमारों ने कहा- भगवन् उत्तम वस्तु का ज्ञान गुरु से ग्रहण करना चाहिए । कर्म की शृंखला मे बंधे हुए अनेक योनियों में घूमने वाले मनुष्यों का उद्धार ज्ञान के द्वारा ही हो सकता है। कलियुगी मनुष्यों की बुद्धि मन्द होती है, वे भाग्यहीन और निर्धन होते हैं । आत्मज्ञान अत्यन्त दुर्लभ है । क्या ऐसा कोई तीर्थ है जो पिण्ड और ब्रह्माण्ड के ज्ञान को देने वाला हो । जहाँ दर्शन-स्नान-जलपान-दान-वास तथा सेवा भाव से भवपाश को नष्ट करने वाला विज्ञान प्राप्त होता हो, जिसके सेवन से चारों पुरुषार्थ की सिद्धि हो । शेषराज कुछ समय ध्यान करके बोले -

मुनिगण तीर्थ दो प्रकार के हैं, कामनाओं को देने वाले और मोक्ष को देने वाले । जो तीर्थ कामनाओं को देने वाले हैं वे मोक्षद नही है और जो मोक्ष को देने वाले हैं, वे कामद नही हैं । केवल तीर्थराज प्रयाग ही कामनाओं को पूरा करने वाला व मोक्ष को देने वाला है । सभी तीर्थो से श्रेष्ठ होने के कारण ही प्रयाग को तीर्थराज कहा गया है, उसका माहात्म्य आप लोग सुने-

तिस्त्र:कोट्योऽर्धकोटी दिवि भुवि सुतले सन्ति तीर्थानि तेषां
राजा मुख्यप्रयागः स जयति जगतां भुक्तिमुक्तिप्रदाता ।
अक्षय्यं क्षेत्रमेतद्वटविटपिनिभं चामरे श्वेतनीले
गंगे वाग्वादिनी सा कलयति च ततः को वदान्योऽस्ति मान्यः।।१।।

स्वर्ग, मर्त्य और पाताल में साढ़े तीन कोटि तीर्थ हैं, उन सब का राजा प्रयाग है, वह संसार को भुक्ति और मुक्ति देने वाला है । यह क्षेत्र वटवृक्ष के समान अक्षय है । यह गङ्गा, यमुना को श्वेत, नील, चवंर रूप से तथा सरस्वती को धारण करता है । इससे बढ़कर और कौन श्रेष्ठ है ॥१॥

सुरमुनिदितिजेन्द्रैः सेव्यते योऽस्ततन्द्रैर्गुरुतरदूरितानां का कथा मानवानाम् ।।
स भुवि सुकृतकर्तुर्बाधितावाप्तिहेतुर्जयति विजितयागस्तीर्थराजः प्रयागः ।।२।।

- आलस्य छोड कर देवता मुनि और दैत्य इसकी सेवा करते हैं । अनेक पापपूरित मनुष्यों की तो बात ही दूसरी है, मर्त्यलोक में पुण्य करने वालो के बाधित मनोरथों को पूर्ण करने वाला यज्ञविजयी तीर्थराज प्रयाग सबसे श्रेष्ठ है ॥२॥

श्रुतिः प्रमाणं स्मृतयः प्रमाणं पुराणमप्यत्र परं प्रमाणम् ।
यत्रास्ति गङ्गा यमुना प्रमाणं स तीर्थराजो जयति प्रयागः ।।३।।

- श्रुतियाँ प्रमाण है, स्मृतियाँ प्रमाण है और सब से अधिक पुराण शास्त्र प्रमाण हैं, जहाँ गङ्गा और यमुना प्रमाण हैं वह तीर्थराज प्रयाग सब से श्रेष्ठ है ॥३॥

न यत्र योगाचरणप्रतीक्षा न यत्र यज्ञेष्टिविशिष्टदीक्षा ।।
न तारकज्ञानगुरोरपेक्षा स तीर्थराजो जयति प्रयागः ।।४।।

- वहाँ योगसाधन तथा आचरण की पवित्रता की प्रतीक्षा नही करनी पडती और यज्ञ इष्टि

आदि की कोई खास दीक्षा भी नही लेनी पडती, तारकमन्त्र ज्ञान तथा गुरु की भी वहाँ अपेक्षा नही रहती, वह तीर्थराज प्रयाग सब से श्रेष्ठ है ।।४।।

चिरंनिवासेन समीक्षते यो ह्युदारचित्तः प्रददाति कामान् ।।
यः कल्पितार्थाश्च ददाति पुंसां स तीर्थराजो जयति प्रयागः।।५।।

- बहुत दिनों तक अपने यहाँ निवास करने की आवश्यकता जो नहीं समझता, जो उदारतापूर्वक मनुष्यों की कामनाएँ पूर्ण करता है, जो इच्छित पदार्थों को देता है वह तीर्थराज प्रयाग सब से श्रेष्ठ है ।।५।।

तीर्थावली यस्य तु कण्ठभागे दानावली वल्गति पादमूले ।।
व्रतावली दक्षिणबाहुमूले स तीर्थराजो जयति प्रयागः ।।६।।

- तीर्थसमूह जिसके कण्ठ में रहते हैं, दानसमूह जिसके चरणों पर लोटते हैं और व्रतसमूह जिसके दक्षिण बाहुमूल में वर्तमान है वह तीर्थराज प्रयाग सब से श्रेष्ठ है ।।६।।

अज्ञाः सुविज्ञाः प्रभवोऽपि यज्ञाः सप्तस्वपि द्वाः सुकृतानभिज्ञाः ।
विज्ञापयन्तः सततं हि काले स तीर्थराजो जयति प्रयागः ।।७।।

- अज्ञानी, ज्ञानी, महान यज्ञ, अच्छे कर्मों से दूर मनुष्य, सातों पुरियाँ- अयोध्या, मथुरा, माया-हरिद्वार, काशी, काँची, अवन्ति-उज्जैन, द्वारका ये सभी भोग-मोक्ष का द्वार प्रयागराज को बताते हैं, वह तीर्थराज प्रयाग सबसे श्रेष्ठ है ।।७।।

सितासिते यत्र तरङ्गचामरे नद्यौ विभाते मुनिभानुकन्यके ।
नीलातपत्रं वट एव साक्षात् स तीथराजो जयति प्रयागः ।।८।।

- श्वेत और नीली गङ्गा यमुना नदीयाँ जिसके चामर हैं और अक्षयवट साक्षात् नीला आतपत्र है वह तीर्थराज प्रयाग सब से श्रेष्ठ है ।।८।।

पुर्यः सप्त प्रसिद्धाः प्रतिवचनकरीतीर्थराजस्य नार्यो ।
नैकट्येनातिहृद्याः प्रभवति च गुणैः काशते ब्रह्म यस्याम् ।।
सेयं राज्ञी प्रधाना प्रियवचनकरी मुक्तिदानेन युक्ता ।
येन ब्रह्माण्डमध्ये य जयति सुतरां तीर्थराजः प्रयागः ।।९।।

- सात पुरियाँ जिस तीर्थराज की आज्ञा पालन करने वाली स्त्रियाँ हैं, हृदयावहारिणी काशी जिसके समीप होने के कारण वहाँ ब्रह्म प्रकाशित है, वह तीर्थराज की आज्ञा पालन करने वाली प्रधान रानी है। तीर्थराज की वह प्रधान रानी मुक्ति देने वाली है, वह तीर्थराज प्रयाग इस ब्रह्माण्ड में सबसे श्रेष्ठ है ।।९।।

तीर्थराजं समायान्ति ह्यात्मसंशुद्धिहेतवे । मकरस्थे रवौ माघे प्रयागं माधवाज्ञया ।।१०।।

- माधव की आज्ञा से माघमास में जब सूर्य मकरस्थ होता है तब आत्मशुद्धि के लिये लोग प्रयाग मे आते हैं ।।१०।।

प्रयागवासिनां नृणां स्पर्शमात्रेण देहिनः । स्वर्गस्था अपि मुच्यन्ते का कथा भुवि वासिनाम् ।।११।।

- प्रयागवासी मनुष्यों के स्पर्शमात्र से स्वर्गस्थ देवता भी मुक्त हो जाते हैं मनुष्यों की कौन बात ।११।

जगतीत्रयस्थानानां पापकर्मनिवारणे । तत्सामर्थ्यबलेनैव तीर्थानामस्ति पुण्यता ।।१२।।

- सभी तीर्थों को पाप दूर करने की शक्ति तीर्थराज से ही मिलती है ॥१२॥

तमिमं सर्वतीर्थानां जानीध्वमधिपं परम् । परोपकृतये यूयं यदर्थमिह चागताः ।।१३।।

- आप लोग प्रयागराज को सब तीर्थों का राजा समझें, परोपकार की इच्छा से जिसके लिये आप लोग यहाँ आये हैं ॥१३ ॥ (शताध्यायी अ०४)

अग्निदेव द्वारा प्रयागराज तीर्थ वर्णन -

वक्ष्ये प्रयागमाहात्म्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं परम् । प्रयागे ब्रह्मविष्णवाद्या देवा मुनिवराः स्थिताः ।।१।।

- अग्निदेव ने कहा - अब मैं सर्वोत्तम भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले प्रयाग का माहात्म्य बतलाता हूँ । प्रयाग में ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता तथा श्रेष्ठ मुनि निवास करते हैं ॥१॥

सरितः सागराः सिद्धा गन्धर्वाप्सरसस्तथा । तत्र त्रीण्यग्निकुण्डानि तेषां मध्ये तु जाह्नवी ।।२।।

वेगेन समतिक्रान्ता सर्वतीर्थपुस्कृता । तपनस्य सुता तत्र त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ।।३।।

- नदियाँ समुद्र, सिद्ध, अप्सराएँ निवास करती हैं, प्रयाग में तीन अग्निकुण्ड हैं, उनके बीच में सभी तीर्थों को साथ लिए गङ्गा बड़े वेग से प्रवाहित होती है । वहाँ पर त्रैलोक्य विख्यात सूर्यकन्या यमुना हैं ॥२-३॥

गङ्गायमुनयोर्मध्ये पृथिव्यां जघनं स्मृतम् । प्रयागं जघनस्यान्तरुपस्थमृषयो विदुः ।।४।।

- गङ्गा तथा यमुना के मध्यभाग संगम को पृथ्वी की जंघा (योनि) कहा गया है । ऋषियों ने प्रयाग को जघन (जंघों) का अन्तिम भाग उपस्थ (उत्पत्ति का योनि स्थान) माना है ॥४॥

प्रयागं सप्रतिष्ठानं कम्बलाश्वतरावुभौ । तीर्थं भोगवती चैव वेदी प्रोक्ता प्रजापतेः ।।५।।

- प्रतिष्ठानपुरी (झूसी) के साथ प्रयाग, कम्बल तथा अश्वतर ये दोनों तथा भोगवती तीर्थ ये सबके सब ब्रह्मा के यज्ञ की वेदी कहे गए हैं ॥५॥

तत्र वेदाश्च यज्ञाश्च मूर्तिमन्तः प्रयागके । स्तवनादस्य तीर्थस्य नामसंकीर्तनादपि ।।६।।

मृत्तिकालम्भनाद्वाऽपि सर्वपापैः प्रमुच्यते । प्रयागे सङ्गमे दानं श्राद्धं जप्यादि चाक्षयम् ।।७।।

- प्रयाग में वेद तथा यज्ञ मूर्तिमान रूप से रहते हैं । इस तीर्थ की स्तुति करने तथा नाम संकीर्तन करने से भी तथा इसकी मिट्टी को शरीर में लगाने से भी मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है । प्रयाग के संगम स्थल पर, दान, श्राद्ध तथा जप आदि अक्षय होते हैं ॥६-७॥

न वेदवचनाद्विप्र न लोकवचनादपि । मतिरुत्क्रमणीयान्ते प्रयागे मरणं प्रति ।।८।।

- हे ब्रह्मन् ! वसिष्ठ ! वेद अथवा लोक किसी के मना करने पर भी प्रयाग तीर्थ में शरीर त्याग करने का विचार नहीं छोड़ना चाहिए ।।८॥

दशतीर्थसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथाऽपराः । तेषां सांनिध्यमत्रैव प्रयागं परमं ततः ।।९।।

- प्रयाग में साठ करोड़ दस हजार तीर्थों का निवास है, अत एव प्रयाग सभी से महान् तीर्थ है ॥९॥

वासुकेर्भोगवत्यत्र हंसप्रपतनं परम् । गवां कोटिप्रदानाद्यत्त्र्यहं स्नानस्य तत्फलम् ।।१०।।

- यहाँ पर वासुकि, भोगवती तथा हंस प्रपतन तीर्थ हैं । करोड़ गायों के दान करने से जो फल प्राप्त होता है, वही फल यहाँ पर तीन दिन स्नान करने से होता है ॥१०॥

प्रयागे माघमासे तु एवमाहुर्मनीषिणः । सर्वत्र सुलभा गङ्गा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा ।।११।।
गङ्गाद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे । अत्र दानाद्दिवं यान्ति राजेन्द्रो जायतेऽत्र च ।।१२।।

- मनीषियों का कहना है कि माघ मास में गङ्गा सुलभ होती है किन्तु तीन स्थानों पर गङ्गा का मिलना दुर्लभ होता है- हरिद्वार, प्रयाग तथा गङ्गा सागर के संगम स्थल पर इन स्थानों पर दान करके मनुष्य स्वर्गलोक प्राप्त करता है और पुन: इस लोक में वह राजाओं का भी राजा होता है ॥११-१२॥

वटमूले सङ्गमादौ मृतो विष्णुपुरीं व्रजेत् । उर्वशीपुलिनं रम्यं तीर्थं सन्ध्यावटस्तथा ।।१३।।
कोटितीर्थं चाश्वमेधं गङ्गायमुनमुत्तमम् । मानसं रजसा हीनं तीर्थं वासरकं परम् ।।१४।।

- अक्षयवट के मूल में तथा संगम आदि स्थानों पर शरीर त्यागने पर जीव विष्णुलोक में जाता है । प्रयाग के उर्वशी-पुलिन, सन्ध्यावट, कोटितीर्थ, दशाश्वमेघ घाट, उत्तम गङ्गा एवं यमुना का संगम स्थल, जो रजोगुण रहित मानस तीर्थ तथा वासरक तीर्थ, ये सभी तीर्थ मनोहर एवं उत्तम हैं ॥१३-१४॥

(अग्निपु०अ०१११)

महर्षि वशिष्ठ वर्णित प्रजापतिक्षेत्र प्रयागराज माहात्म्य -

धर्मशास्त्रों में धर्मस्थानों के विधिविधान हैं- व्यर्थ वार्तालाप न करना स्थान से बाहर नहीं जाना एक समय भोजन, जप, तप, सत्संग भगवान् के स्मरण में समय बिताना आदि ।

प्रयागवास करते समय प्रतिदिन प्रयागराज, माघमास के माहात्म्य के वर्णनों को सुने और सुनायें -

प्रयागतीर्थ में ब्रह्माजीके साथ साक्षात् भगवान् माधव विराजमान हैं । गङ्गा सब तीर्थों के साथ प्रयाग में आयी हैं और वहाँ तीनों लोकों में विख्यात तथा सम्पूर्ण जगत् को पवित्र करने वाली सूर्यनन्दिनी यमुना गङ्गाजी के साथ मिली हैं । गङ्गा और यमुना के बीचकी भूमि पृथ्वीका जघन (कटि से नीचे का भाग) मानी गयी है, और प्रयाग जघन के बीच का उपस्थ भाग है, ऐसी ऋषियों की मान्यता है । वहाँ प्रयाग, उत्तम प्रतिष्ठानपुर (झूसी), कम्बल और अश्वतर नामक नागों का स्थान, भोगवतीतीर्थ तथा प्रजापतिकी वेदी आदि पवित्र स्थान बताये गये हैं । वहाँ यज्ञ और वेद मूर्तिमान् होकर रहते है। प्रयागसे बढ़कर पवित्र तीर्थ तीनों लोकों में नहीं है । प्रयाग अपने प्रभाव के कारण सब तीर्थों से बढ़कर है । प्रयागतीर्थ के नामको सुनने, कीर्तन करने तथा उसे मस्तक झुकाने से भी मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है । जो उत्तम व्रतका पालन करते हुए संगम में स्नान करता है, उसे महान् पुण्यकी प्राप्ति होती है, क्योंकि प्रयाग देवताओं की भी यज्ञभूमि है । वहाँ थोड़े से दानका भी महान् फल होता है। कुरुनन्दन! प्रयाग से साठ करोड़ और दस हजार तीर्थों का निवास बताया गया है । चारों विद्याओं के अध्ययनसे जो पुण्य होता है तथा सत्यवादी पुरुषों को जिस पुण्यकी प्राप्ति होती है, वह वहाँ गङ्गा-

यमुना-संगम में स्नान करने से ही मिल जाता है । प्रयाग में भोगवती नामक स्थान है जो वासुकि नागका उत्तम स्थान माना गया है । जो वहाँ स्नान करता है, उसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है । वहाँ हंसप्रपतन तथा दशाश्वमेध नामक तीर्थ हैं । गङ्गा में कहीं भी स्नान करनेपर कुरुक्षेत्र में स्नान करने के समान पुण्य होता है ।

गङ्गाजी का जल सारे पापों को उसी प्रकार भस्म कर देता है, जैसे आग रूईके ढेरको जला डालती है। सत्ययुग में सभी तीर्थ, त्रेता में पुष्कर, द्वापर में कुरुक्षेत्र तथा कलियुग में गङ्गा ही सबसे पवित्र तीर्थ मानी गयी हैं । पुष्कर में तपस्या करे, महालय में दान दे और भृगु-तुङ्ग पर उपवास करे तो विशेष पुण्य होता है । किन्तु पुष्कर, कुरुक्षेत्र और गङ्गाके जलमें स्नान करने मात्र से प्राणी अपनी सात पहलेकी तथा सात पीछे की पीढ़ियों को भी तत्काल ही तार देता है । गङ्गाजी नाम लेनेमात्र से पापों को धो देती हैं, दर्शन करनेपर कल्याण प्रदान करती है तथा स्नान करने और जल पीने पर सात पीढ़ियों तक को पवित्र कर देती हैं । राजन् ! जब तक मनुष्यकी हड्डीका गङ्गाजलसे स्पर्श बना रहता है, तब तक वह पुरुष स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित रहता है । ब्रह्माजीका कथन है कि गङ्गा के समान तीर्थ, श्रीविष्णुसे बढ़कर देवता तथा ब्राह्मणों से बढ़कर पूज्य कोई नहीं है । जहाँ गङ्गा बहती है, वहाँ उनके किनारे पर जो-जो देश और तपोवन होते हैं, उन्हे सिद्ध क्षेत्र समझना चाहिये ।

जो मनुष्य प्रतिदिन तीर्थों के इस पुण्य-प्रसङ्ग का श्रवण करता है, वह सदा पवित्र होकर स्वर्गलोकमें आनन्दका अनुभव करता है तथा उसे अनेकों जन्मों की बातें याद आ जाती है। जहाँ की यात्रा की जा सकती है और जहाँ जाना असम्भव है, उन सभी प्रकारके तीर्थों का मैंने वर्णन किया है। यदि प्रत्यक्ष सम्भव न हो तो मानसिक इच्छाके द्वारा भी इन सभी तीर्थों की यात्रा करनी चाहिये । पुण्य की इच्छा रखने वाले देवोपम ऋषियों ने भी इन तीर्थों का आश्रय लिया है ।

वसिष्ठ मुनि बोले– राजा दिलीप ! तुम भी उपर्युक्त विधि के अनुसार मन को वश में करके तीर्थों की यात्रा करो, क्योंकी पुण्य पुण्यसे ही बढ़ता है । पहले के बने हुए कारणों से, आस्तिकतासे और श्रुतियों को देखने से शिष्ट पुरुषों के मार्गपर चलनेवाले सज्जनों को उन तीर्थों की प्राप्ति होती है । नारद जी कहते हैं- राजा युधिष्ठिर ! इस प्रकार दिलीप को तीर्थों की महिमा बताकर मुनि वसिष्ठ उनसे विदा ले प्रात:काल प्रसन्न हृदय से वहीं अन्तर्धान हो गये । राजा दिलीपने शास्त्रों के तात्त्विक अर्थका ज्ञान हो जाने और वसिष्ठजी के कहने से सारी पृथ्वीपर तीर्थ यात्रा के लिये भ्रमण किया । महाभाग ! इस प्रकार सब पापों से छुड़ानेवाली यह परमपुण्यमयी तीर्थयात्रा प्रतिष्ठानपुरी (झूसी) में आकर प्रतिष्ठित-समाप्त होती है । जो मनुष्य इस विधिसे पृथ्वीकी परिक्रमा करेगा, वह मृत्यु के पश्चात् सौ अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त करेगा, युधिष्ठिर! तुम ऋषियों को भी साथ ले जाओगे, इसलिये तुम्हे औरों की अपेक्षा आठगुना फल होगा ।

ऋषि बोले- सूतजी ! हमने माहात्म्यसहित समस्त तीर्थों का श्रवण किया, किन्तु आपने प्रयागकी

महिमाको पहले थोड़े में बताया है, उसे हमलोग विस्तारके साथ सुनना चाहते हैं। अत: आप कृपापूर्वक उसका वर्णन कीजिये।

सूतजी बोले- महर्षियों ! बड़े हर्षकी बात है। मैं अवश्य ही प्रयाग की महिमाका वर्णन करूँगा। पूर्वकाल में महाभारत-युद्ध समाप्त हो जानेपर जब कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर को अपना राज्य प्राप्त हो गया, उस समय मार्कण्डेयजी ने पाण्डुकुमार से प्रयागकी महिमाका जो वर्णन किया था, वही प्रसङ्ग मैं आपलोगों को सुनाता हूँ। राज्य प्राप्त हो जानेपर कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरको बारम्बार चिन्ता होने लगी। उन्होंने सोचा- राजा दुर्योधन ग्यारह अक्षौहिणी सेनाका स्वामी था। उसने हमलोगों को अनेकों बार कष्ट पहुँचाया। किन्तु अब वे सब-के-सब मौत के मुँह में चल गये। भगवान् वासुदेवका आश्रय लेने के कारण हम पाँच पाण्डव शेष रह गये हैं। द्रोणाचार्य, भीष्म, महाबली कर्ण, भ्राता और पुत्रों सहित राजा दुर्योधन तथा अन्यान्य जितने वीर राजा मारे गये हैं उन सबके बिना यह राज्य, भोग अथवा जीवन लेकर क्या करना है। हाय! धिक्कार है, इस सुखको, मेरे लिये यह प्रसङ्ग बड़ा कष्टदायक है। यह विचारकर राजा व्याकुल हो उठे। वे उत्साहहीन होकर नीचे मुँह किये बैठे रहते थे। उन्हें बारम्बार इस बातकी चिन्ता होने लगी कि अब मैं किस योग, नियम एवं तीर्थ का सेवन करूँ, जिससे महापातकों की राशिसे मुझे शीघ्र ही छुटकारा मिले। कौन-सा ऐसा तीर्थ है, जहाँ स्नान करके मनुष्य परम उत्तम विष्णुलोकको प्राप्त होता है? इस प्रकार सोचते हुए धर्मपुत्र युधिष्ठिर अत्यन्त विकल हो गये।

उस समय महातपस्वी मार्कण्डेयजी काशी में थे। उन्हें युधिष्ठिर की अवस्थाका ज्ञान हो गया, इसलिये वे तुरन्त ही हस्तिनापुर में जा पहुँचे और राजमहलके द्वारपर खड़े हो गये। द्वारपालने जब उन्हें देखा तो शीघ्र ही महाराज के पास जाकर कहा- 'राजन् ! मार्कण्डेय मुनि आपसे मिलने के लिये आये हैं और द्वारपर खड़े हैं।' यह समाचार सुनते ही धर्मपुत्र युधिष्ठिर तुरन्त राजद्वार पर आ पहुँचे और उनके शरणागत होकर बोले- 'महामुने ! आपका स्वागत है। महाप्राज्ञ ! आपका स्वागत है। आज मेरा जन्म सफल हुआ। आज मेरा कुल पवित्र हो गया। आज आपका दर्शन होने से पितर तृप्त हो गये। 'कहकर युधिष्ठिर ने मुनिको सिंहासन पर बिठाया और पैर धोकर पूजन-सामग्रियों से उनकी पूजा की। तब मार्कण्डेयजीने कहा- 'राजन् ! तुम व्याकुल क्यों हो रहे हो? मेरे सामने अपना मनोभाव प्रकट करो।' युधिष्ठिर बोले- महामुने! राज्य के लिये हमलोगोंकी ओरसे जो बर्ताव हुआ है, उस सारे प्रसङ्ग को जानकर ही आप यहाँ पधारे हैं (फिर आपसे क्या कहना है)।

महर्षि मार्कण्डेय युधिष्ठिर संवाद प्रयाग महिमा -

मार्कण्डेय जी ने कहा- महाबाहो! सुनो- जहाँ धर्मकी व्यवस्था है, उस शास्त्र में संग्राम में युद्ध करने वाले किसी भी बुद्धिमान् पुरुष के लिये पापकी बात नहीं देखी गयी है। फिर विशेषत: क्षत्रिय के लिये जो राजधर्मके अनुसार युद्ध में प्रवृत्त हुआ है, पापकी आशङ्का कैसे हो सकती है। अत: इस बात को हृदयमें रखकर पापकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। महाभाग युधिष्ठिर ! तुम तीर्थकी बात

जानना चाहते हो तो सुनो- पुण्य-कर्म करनेवाले मनुष्यों के लिये प्रयागकी यात्रा करना सर्वश्रेष्ठ है ।

युधिष्ठिर ने पूछा- भगवन् ! मैं यह सुनना चाहता हूँ कि प्रयागकी यात्रा कैसे की जाती है, वहाँ कैसा पुण्य होता है, प्रयागमें जिनकी मृत्यु होती है, उनकी क्या गति होती है तथा जो वहाँ स्नान और निवास करते हैं, उन्हें किस फलकी प्राप्ति होती है। ये सब बातें बताइये । मेरे मनमें इन्हें सुननेके लिये बड़ी उत्कण्ठा है ।

मार्कण्डेयजी ने कहा- वत्स! पूर्वकाल में ऋषियों और ब्राह्मणों के मुँहसे जो कुछ मैंने सुना है, वह प्रयाग का फल तुम्हें बताता हूँ । प्रयाग से लेकर प्रतिष्ठानपुरी (झूसी), तक धर्म की ह्रदसे लेकर वासुकी-ह्रदतक तथा कम्बल और अश्वतर नागों के स्थान एवं बहुमूलिक नामवाले नागों का स्थान- यह सब प्रजापति का क्षेत्र है, जो तीनों लोकों में विख्यात है । वहाँ स्नान करने से मनुष्य स्वर्गलोक में जाते हैं और जिनकी वहाँ मृत्यु होती है, वे फिर जन्म नहीं लेते । प्रयाग में ब्रह्मा आदि देवता एकत्रित होकर प्राणियों की रक्षा करते हैं । वहाँ और भी बहुत से तीर्थ हैं, जो सब पापों को हरने वाले तथा कल्याणकारी है । उनका कई सौ वर्षों में भी वर्णन नहीं किया जा सकता । स्वयं इन्द्र विशेषरूपसे प्रयागतीर्थ की रक्षा करते हैं तथा भगवान् विष्णु देवताओं के साथ प्रयागके सर्वमान्य मण्डलकी रक्षा करते हैं । हाथ में शूल लिये हुए भगवान् महेश्वर प्रतिदिन वहाँके वटवृक्ष (अक्षयवट) की रक्षा करते हैं तथा देवता समूचे तीर्थस्थान की रक्षा में रहते हैं । वह स्थान सब पापों को हरने वाला और शुभ है। जो प्रयागका स्मरण करता है, उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं । उस तीर्थ के दर्शन और नाम-कीर्तनसे तथा वहाँकी मिट्‌टी प्राप्त करने से भी मनुष्य पापमुक्त हो जाता है । महाराज ! प्रयागमें पाँच कुण्ड हैं, जिनके बीच से होकर गङ्गाजी बहती है। प्रयाग प्रवेश करने वाले मनुष्य का पाप तत्काल नष्ट हो जाता है । जो मनुष्य सहस्रों योजन दूरसे भी गङ्गाजी का स्मरण करता है, वह पापाचारी होनेपर भी परमगति को प्राप्त होता है, दर्शन करने से कल्याण का दर्शन करता है तथा स्नान करने और जल पीने से अपने कुल की सात पीढ़ियों को पवित्र कर देता है। जो सत्यवादी, क्रोधजयी, अहिंसा-धर्म में स्थित, धर्मानुगामी, तत्त्वज्ञ तथा गौ और ब्राह्मणों के हित में तत्पर होकर गङ्गा-यमुना के बीच में स्नान करता है, वह सारे पापों से छूट जाता है तथा समस्त भोगों को पूर्णरूपसे प्राप्त कर लेता है ।

तत्पश्चात् सम्पूर्ण देवताओं से रक्षित प्रयाग में जाकर ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए एक मासतक निवास करे और देवताओं तथा पितरों का तर्पण करे । इससे मनुष्य मनोवाञ्छित पदार्थों को प्राप्त करता है। युधिष्ठिर ! प्रयाग में साक्षात् भगवान् महेश्वर सदा निवास करते हैं । वह परम पावन तीर्थ मनुष्यों के लिये दुर्लभ है । राजेन्द्र ! देवता, दानव, गन्धर्व, ऋषि, सिद्ध और चारण वहाँ स्नान करके स्वर्गलोक में जा सुख भोगते हैं । प्रयाग में जानेवाला मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है । मनुष्य अपने देशमें हो या वन में, विदेश में हो या घर में, जो प्रयाग का स्मरण करते हुए मृत्यु को प्राप्त होता है, वह ब्रह्मलोक में जाता है- यह श्रेष्ठ ऋषियों का कथन है ।

जो मन, वाणी तथा क्रियाद्वारा सत्यधर्म में स्थित हो गङ्गा-यमुना के बीच की भूमि में दान देता है, वह सद्‌गतिको प्राप्त होता है । जो अपने कार्य के लिये या पितृकार्य के लिये अथवा देवता की पूजा के लिये प्रयाग में सुवर्ण, मणि, मोती अथवा धान्यका दान ग्रहण करता है, उसका तीर्थ-सेवन व्यर्थ होता है, वह जब तक दूसरे का द्रव्य भोगता है, तब तक उसके तीर्थ-सेवन का कोई फल नहीं है । अत: इस प्रकार तीर्थ अथवा पवित्र मन्दिरों में जाकर किसी से कुछ ग्रहण न करे । कोई भी निमित्त हो, द्विज को प्रतिग्रह से सावधान रहना चाहिये ।

प्रयाग में भूरी अथवा लाल रंग की गाय के, जो दूध देनेवाली हो, सींगों को सोने से ओर खुरों को चाँदी से मढ़ा दे, फिर उसके गले में वस्त्र लपेटकर श्वेतवस्त्रधारी, शान्त धर्मज्ञ, वेदों के पारगामी तथा साधु श्रोत्रिय ब्राह्मण को बुलाकर गङ्गा-यमुना के संगम में वह गौ उसे विधिपूर्वक दान कर दे । साथ ही बहुमूल्य वस्त्र तथा नाना प्रकार के रत्न भी देने चाहिये । इससे उस गौ के शरीर में जितनें रोएँ होते हैं उतने हजार वर्षों तक मनुष्य स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित होता है । वह उस पुण्यकर्म के प्रभाव से भयङ्कर नरकका दर्शन नहीं करता । लाख गौओं की अपेक्षा वहाँ एक ही दूध देने वाली गौ उत्तम है। वह एक ही पुत्र, स्त्री तथा भृत्यों तक का उद्धार कर देती है । इसलिये सब दानों में गोदान ही सबसे बढ़कर है । महापातक के कारण मिलने वाले दुर्गम, विषम तथा भयङ्कर नरक में गौ ही मनुष्य की रक्षा करती है । इसलिये ब्राह्मण को गोदान करना चाहिये । कुरुश्रेष्ठ ! जो देवताओं के द्वारा सेवित प्रयागतीर्थ में बैल अथवा बैलगाड़ी पर चढ़कर जाता है, वह पुरुष गौओं पर भयङ्कर क्रोध करने के कारण घोर नरक में निवास करता है तथा उसके पितर उसका दिया जल तक नहीं ग्रहण करते । जो ऐश्वर्य के लोभसे अथवा मोहवश सवारी से तीर्थयात्रा करता है, उसके तीर्थसेवन का कोई फल नहीं होता, इसलिये सवारी को त्याग देना चाहिये ।

गङ्गा-यमुना के बीच में ऋषियों की बतायी हुई विधि तथा अपनी सामर्थ्य के अनुसार कन्यादान करता है, वह उस कर्म के प्रभाव से यमराज तथा भयङ्कर नरक को नहीं देखता । जिस मनुष्य की अक्षयवट के नीचे मृत्यु होती है, वह सब लोकों को लाँघकर रुद्रलोक में जाता है । वहाँ रुद्रका आश्रय लेकर बारह सूर्य तपते हैं और सारे जगत् को जला डालते हैं । परन्तु वटकी जड़ नहीं जला पाते । जब सूर्य, चन्द्रमा और वायु का विनाश हो जाता है और सारा जगत् एकार्णव में मग्न दिखायी देता है, उस समय भगवान् विष्णु यहीं अक्षयवट पर शयन करते हैं । देवता, दानव, गन्धर्व, ऋषि, सिद्ध और चारण-सभी गङ्गा-यमुना के संगम में स्थित तीर्थ का सेवन करते हैं । वहाँ ब्रह्मा आदि देवता, दिशाएँ, दिक्पाल, लोकपाल, साध्य, पितर, सनत्कुमार आदि परमर्षि, अङ्गिरा आदि ब्रह्मर्षि, नाग, सुपर्ण (गरुड) पक्षी, नदियाँ, समुद्र, पर्वत, विद्याधर तथा साक्षात् भगवान् विष्णु प्रजापति को आगे रखकर निवास करते हैं । उस तीर्थ का नाम सुनने, नाम लेने तथा वहाँ की मिट्‌टी का स्पर्श करने से भी मनुष्य पापमुक्त हो जाता है । जो वहाँ कठोर व्रतका पालन करते हुए संगम में स्नान करता है, वह

राजसूय एवं अश्वमेध यज्ञों के समान फल पाता है । योगयुक्त विद्वान् पुरुष को जिस गतिकी प्राप्ति होती है, वह गति गङ्गा और यमुना के संगम में मृत्यु को प्राप्त होने वाले प्राणियों की भी होती है ।

इस प्रकार परमपदके साधनभूत प्रयागतीर्थ का दर्शन करके यमुना के दक्षिण किनारे, जहाँ कम्बल और अश्वतर नागों के स्थान हैं, जाना चाहिये । वहाँ स्नान और जलपान करने से मनुष्य सब पातकों से छुटकारा पा जाता है । वह परम बुद्धिमान् महादेवजी का स्थान है । वहाँ की यात्रा करने से मनुष्य अपने कुल की दस पहले की और दस पीछे की पीढ़ियों का उद्धार कर देता है । जो मनुष्य वहाँ स्नान करता है, उसे अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है तथा वह प्रलयकालतक स्वर्गलोक में स्थान पाता है । भारत ! गङ्गा के पूर्वतटपर तीनों लोकों में विख्यात समुद्रकूप और प्रतिष्ठानपुर (झूसी) है। यदि कोई ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए क्रोधको जीतकर तीन रात वहाँ निवास करता है, तो वह सब पापों से शुद्ध होकर अश्वमेध यज्ञ का फल पाता है । प्रतिष्ठान से उत्तर और भागीरथी से पूर्व हंसप्रपतन नामक तीर्थ है, उसमें स्नान करने मात्र से मनुष्य को अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है तथा जब तक सूर्य और चन्द्रमा की स्थिति है, तब तक वह स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित होता है ।

रमणीय अक्षयवटके नीचे ब्रह्मचारी, जितेन्द्रिय एवं योगयुक्त होकर उपवास करने वाला मनुष्य ब्रह्मज्ञान को प्राप्त होता है । कोटितीर्थ में जाकर जिनकी मृत्यु होती है, वह करोड़ों वर्षतक स्वर्गलोक में सम्मानित होता है । चारों वेदों के अध्ययनसे जो पुण्य होता है, सत्य बोलने से जो फल होता है तथा अहिंसा के पालन से जो धर्म होता है, वह दशाश्वमेध घाटकी यात्रा करने से ही प्राप्त हो जाता है। गङ्गा में जहाँ कहीं भी स्नान किया जाय, वे कुरुक्षेत्र के समान फल देनेवाली है, किन्तु जहाँ वे समुद्र से मिली हैं, वहाँ उनका माहात्म्य कुरुक्षेत्र से दसगुना है । महाभागा गङ्गा जहाँ कहीं भी बहती हैं, वहाँ बहुत-से तीर्थ और तपस्वी रहते है । उस स्थान को सिद्धक्षेत्र समझना चाहिये । इसमें अन्यथा विचार करने की आवश्यकता नहीं है । गङ्गा पृथ्वीपर मनुष्यों को, पाताल में नागों को और स्वर्ग में देवताओं को तारती है, इसलिये वे त्रिपथगा कहलाती है । किसी भी जीव की हड्डियाँ जितने समय तक गङ्गा में रहती है, उतने हजार वर्षो तक वह स्वर्गलोक में सम्मानित होता है । गङ्गा तीर्थों में श्रेष्ठ तीर्थ, नदियों में उत्तम नदी तथा सम्पूर्ण भूतों- महापातकियों को भी मोक्ष देने वाली है । गङ्गा सर्वत्र सुलभ हैं, केवल तीन स्थानों में वे दुर्लभ मानी गयी हैं - गङ्गाद्वार, प्रयाग तथा गङ्गा-सागर में । वहाँ स्नान करके मनुष्य स्वर्ग को जाते हैं तथा जितनी वहाँ मृत्यु होती है, वे फिर कभी जन्म नहीं लेते । जिनका चित्त पाप से दूषित है, ऐसे समस्त प्राणियों और मनुष्यों की गङ्गा के सिवा अन्यत्र गति नहीं है । गङ्गा के सिवा दूसरी कोई गति है ही नहीं । भगवान् शङ्कर के मस्तक से निकली हुई गङ्गा सब पापों को हरने वाली और शुभकारिणी हैं । वे पवित्रों को भी पवित्र करने वाली और मङ्गलमय पदार्थों के लिये भी मङ्गलकारिणी है ।

प्रयागराजमें वास से पापों का क्षय -

राजन् ! पुन: प्रयागका माहात्म्य सुनो, जिसे सुनकर मनुष्य सब पापों से नि:संदेह मुक्त हो जाता है । गङ्गा के उत्तर-तटपर मानस तीर्थ है । वहाँ तीन रात उपवास करने से समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती है । मनुष्य गौ, भूमि और सुवर्ण का दान करने से जिस फलको पाता है, वह उस तीर्थ का बारंबार स्मरण करने से ही मिल जाता है । जो गङ्गा में मृत्यु को प्राप्त होता है, वह मृत व्यक्ति स्वर्ग में जाता है । उसे नरक नहीं देखना पड़ता । माघ मास में गङ्गा और यमुना के संगमतट पर छाछठ हजार तीर्थों का समाग होता है । विधिपूर्वक एक लाख गौओं का दान करने से जो फल मिलता है, वह माघ मास में प्रयाग के भीतर तीन दिन स्नान करने से ही प्राप्त हो जाता है। जो गङ्गा-यमुना के बीच में पञ्चाग्निसेवन की साधना करता है, वह किसी अङ्ग से हीन नहीं होता, उसका रोग दूर हो जाता है तथा उसकी पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ सबल रहती हैं । इतना ही नहीं, उस मनुष्य के शरीर में जितने रोमकूप होते हैं, उतने ही हजार वर्षो तक वह स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित होता है । यमुना के उत्तर-तटपर और प्रयाग के दक्षिण भाग में ऋणप्रमोचन नामक तीर्थ है, जो अत्यन्त श्रेष्ठ माना गया है । वहाँ एक रात निवास करने से मनुष्य समस्त ऋणों से मुक्त हो जाता है । उसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है तथा वह सदा के लिये ऋण से छूट जाता है प्रयाग का मण्डल पाँच योजन विस्तृत है, उसमें प्रवेश करने वाले पुरुष को पग-पगपर अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। जिस मनुष्य की वहाँ मृत्यु होती है, वह अपनी पिछली सात पीढ़ियों को और आगे आने वाली चौदह पीढ़ियों को तार देता है । महाराज ! यह जानकर प्रयाग के प्रति सदा श्रद्धा रखनी चाहिये । जिनका चित्त पाप से दूषित है, वे अश्रद्धालु पुरुष उस स्थान को- देवनिर्मित प्रयाग को नहीं पा सकते ।

राजन् ! अब मैं अत्यन्त गोपनीय रहस्य की बात बताता हूँ, जो सब पापों का नाश करने वाली है, सुनो । जो प्रयाग में इन्द्रिय-संयमपूर्वक एक मासतक निवास करता है, वह सब पापों से मुक्त हो जाता है- ऐसा ब्रह्मा जी का कथन है । वहाँ रहने से मनुष्य पवित्र, जितेन्द्रिय, अहिंसक और श्रद्धालु होकर सब पापों से छूट जाता और परमपद को प्राप्त होता है । वहाँ तीनों काल स्नान और भिक्षाका आहार करना चाहिये, इस प्रकार तीन महीनों तक प्रयाग का सेवन करने से वे मुक्त हो जाते हैं- इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है । तत्त्वके ज्ञाता युधिष्ठिर ! तुम्हारी प्रसन्नता के लिये मैंने इस धर्मानुसारी सनातन गुह्य रहस्यका वर्णन किया है ।

युधिष्ठिर बोले- धर्मात्मन् ! आज मेरा जन्म सफल हुआ, आज मेरा कुल कृतार्थ हो गया । आज आपके दर्शन से मैं प्रसन्न हूँ, अनुगृहीत हूँ तथा सब पातकों से मुक्त हो गया हूँ । महामुने ! यमुना में स्नान करने से क्या पुण्य होता है, कौन-सा फल मिलता है? ये सब बातें आप अपने प्रत्यक्ष अनुभव एवं श्रवण के आधारपर बताइये । मार्कण्डेय जी ने कहा- राजन् ! सूर्य-कन्या यमुना देवी तीनों लोकों में विख्यात हैं । जिस हिमालय से गङ्गा प्रकट हुई हैं, उसी से यमुना का भी आगमन हुआ है। सहस्त्रों

योजन दूर से भी नामोच्चारण करने पर वे पापों का नाश कर देती है । युधिष्ठिर ! यमुना में नहाने, जल पीने और उनके नामका कीर्तन करने से मनुष्य पुण्यका भागी होकर कल्याण दर्शन करता है । यमुना में गोता लगाने और उनका जल पीने से कुल की सात पीढ़ियाँ पवित्र हो जाती है । जिसकी वहाँ मृत्यु होती है, वह परमगति को प्राप्त होता है । यमुना के दक्षिण किनारे विख्यात अग्नितीर्थ है, उसके पश्चिम धर्मराज का तीर्थ है, जिसे हरवरतीर्थ भी कहते हैं । वहाँ स्नान करने से मनुष्य स्वर्ग में जाते हैं तथा जो वहाँ मृत्यु को प्राप्त होते हैं, वे फिर जन्म नहीं लेते । इसी प्रकार यमुना के दक्षिण-तटपर हजारों तीर्थ हैं ।

अब मैं उत्तर-तट के तीर्थों का वर्णन करता हूँ । युधिष्ठिर ! उत्तर में महात्मा सूर्य का विरज नामक तीर्थ है, जहाँ इन्द्र आदि देवता प्रतिदिन सन्ध्योपासन करते हैं । देवता तथा विद्वान् पुरुष उस तीर्थ का सेवन करते हैं । तुम भी श्रद्धापूर्वक दान में प्रवृत्त होकर उस तीर्थ में स्नान करो । वहाँ और भी बहुत से तीर्थ हैं, जो सब पापों को हरने वाले और शुभ हैं । उनमें स्नान करके मनुष्य स्वर्ग में जाते हैं तथा जिनकी वहाँ मृत्यु होती है, वे मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं । गङ्गा और यमुना- दोनों ही समान फल देने वाली मानी गयी हैं, केवल श्रेष्ठता के कारण गङ्गा सर्वत्र पूजित होती हैं । कुन्तीनन्दन ! तुम भी इसी प्रकार सब तीर्थों में स्नान करो, इससे जीवनभर का पाप तत्काल नष्ट हो जाता है। जो मनुष्य सबेरे उठकर इस प्रसङ्ग का पाठ या श्रवण करता है, वह भी सब पापों से मुक्त होकर स्वर्गलोक को जाता है।

युधिष्ठिर बोले- मुने ! मैंने ब्रह्माजी के कहे हुए पुण्यमय पुराणका श्रवण किया है, उसमें सैकड़ों, हजारों और लाखों तीर्थों का वर्णन आया है । सभी तीर्थ पुण्यजनक और पवित्र बताये गये हैं तथा सबके द्वारा उत्तम गतिकी प्राप्ति बतायी गयी है । पृथ्वीपर नैमिषारण्य और आकाश में पुष्करतीर्थ पवित्र है । लोक में प्रयाग और कुरुक्षेत्र दोनों को ही विशेष स्थान दिया गया है । आप उन सबको छोड़कर केवल एक की प्रशंसा क्यों कर रहे हैं? आप प्रयाग से परम दिव्य गति तथा मनोवाञ्छित भोगों की प्राप्ति बताते हैं । थोड़े से अनुष्ठान के द्वारा अधिक धर्म की प्राप्ति बताते हुए प्रयागकी ही अधिक प्रशंसा क्यों कर रहे हैं ? यह मेरा संशय है । इस सम्बन्ध में आपने जैसे देखा और सुना हो, उसके अनुसार इस संशय का निवारण कीजिये ।

मार्कण्डेयजी ने कहा- राजन् ! मैंने जैसा देखा और सुना है, उसके अनुसार प्रयागका माहात्म्य बतलाता हूँ, सुनो । प्रत्यक्षरूपसे, परोक्ष तथा और जिस प्रकार सम्भव होगा, मैं उसका वर्णन करूँगा। शास्त्र को प्रमाण मानकर आत्माका परमात्मा के साथ जो योग किया जाता है, उस योग की प्रशंसा की जाती है । हजारों जन्मों के पश्चात् मनुष्यों को उस योग की प्राप्ति होती है । इसी प्रकार सहस्त्रों युगों में योग की उपलब्धि होती है । ब्राह्मणों को सब प्रकार के रत्न दान करने से मानवों को योग की उपलब्धि होती है । प्रयाग में मृत्यु होने पर यह सब कुछ स्वत: सुलभ हो जाता है । जैसे सम्पूर्ण भूतों में वयापक ब्रह्म की सर्वत्र पूजा होती है, उसी प्रकार सम्पूर्ण लोकों में विद्वानों द्वारा प्रयाग पूजित होता

है। नैमिषारण्य, पुष्कर, गोतीर्थ, सिन्धु-सागर संगम, कुरुक्षेत्र, गया और गङ्गासागर तथा और भी बहुत से तीर्थ एवं पवित्र पर्वत- कुल मिलाकर तीस करोड़ दस हजार तीर्थ प्रयाग में सदा निवास करते हैं। ऐसा विद्वानों का कथन हैं । वहाँ तीन अग्निकुण्ड हैं, जिनके बीच होकर गङ्गा प्रयाग से निकलती हैं। वे सब तीर्थों से युक्त हैं । वायु देवताने देवलोक, भूलोक तथा अन्तरिक्ष में साढ़े तीन करोड़ तीर्थ बतलाये हैं । गङ्गा को उन सबका स्वरूप माना गया है । प्रयाग, प्रतिष्ठानपुर (झूसी), कम्बल, और अश्वतर नागों के स्थान तथा भोगवती- ये प्रजापतिकी वेदियाँ हैं । युधिष्ठिर ! वहाँ देवता, मूर्तिमान् यज्ञ तथा तपस्वी ॠषि रहते और प्रयाग की पूजा करते हैं । प्रयागका यह माहात्म्य धन्य है, यही स्वर्ग प्रदान करने वाला है, यही सेवन करने योग्य है, यही सुखरूप है, यही पुण्यमय है, यही सुन्दर है और यही परम उत्तम, धर्मानुकूल एवं पावन है । यह महर्षियों का गोपनीय रहस्य है, जो सब पापों का नाश करनेवाला है । इस प्रसङ्ग का पाठ करने वाला द्विज सब प्रकार के पापों से रहित हो जाता है । कुरुनन्दन! तुम प्रयाग के तीर्थों में स्नान करो । राजन् ! तुमने विधिपूर्वक प्रश्न किया था, इसलिये मैंने तुमसे प्रयाग-माहात्म्यका वर्णन किया है । इसे सुनकर तुमने अपने समस्त पितरों और पितामहों का उद्धार कर दिया । युधिष्ठिर बोले- महामुन ! आपने प्रयाग-माहात्म्य की यह सारी कथा सुनायी, इसी प्रकार और सब बातें भी बताइये, जिससे मेरा उद्धार हो सके । मार्कण्डेयजी ने कहा- राजन् ! सुनो, बताता हूँ । ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेवजी- ये तीनों देवता सबके प्रभु और अविनाशी हैं । ब्रह्मा इस सम्पूर्ण जगत् की, यहाँ के चराचर प्राणियों की सृष्टि करते हैं और परमेश्वर विष्णु उन सबका, समस्त प्रजाओं का पालन करते हैं । फिर जब कल्पका अन्त उपस्थित होता है, तब भगवान् रुद्र सम्पूर्ण जगत् का संहार करते हैं । ये ब्रह्मा, विष्णु और महादेवजी प्रयाग में सदा निवास करते हैं । प्रयागमण्डलका विस्तार पाँच योजन (बीस कोस) है । उपयुक्त देवता पापकर्मो का निवारण करते हुए उस मण्डल की रक्षा के लिये वहाँ मौजूद रहते हैं । अत: प्रयाग में किया हुआ थोड़ा सा भी पाप नरक में गिराने वाला होता है । सूत जी कहते हैं- तदनन्तर, धर्मपर विश्श्वास करनेवाले समस्त पाण्डवों ने भाइयों सहित ब्राह्मणों को नमस्कार करके गुरुजनों और देवताओं को तृप्त किया । उसी समय भगवान् वासुदेव भी वहाँ आ पहुँचे । फिर समस्त पाण्डवों ने मिलकर भगवान् श्रीकृष्णका पूजन किया । तत्पश्चात् कृष्णसहित सब महात्माओं ने धर्मपुत्र युधिष्ठिर को स्वराज्यपर अभिषिक्त किया । इसके बाद भाइयों सहित धर्मात्मा युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों को बड़े-बड़े दान दिये । जो सबेरे उठकर इस प्रसङ्ग का पाठ अथवा श्रवण करता है, वह सब पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक में जाता है ।

तत्पश्चात् भगवान् वासुदेव बोले- राजा युधिष्ठिर! मैं आपके स्नेहवश कुछ निवेदन करता हूँ, आपको मेरी बात माननी चाहिये । महाराज! आप प्रतिदिन हमारे साथ प्रयागका स्मरण करने से स्वयं सनातन लोक को प्राप्त होंगे । जो मनुष्य प्रयाग को जाता अथवा वहाँ निवास करता है, वह सभी पापों से शुद्ध होकर दिव्यलोक को जाता है । जो किसी का दिया हुआ दान नहीं लेता, संतुष्ट रहता, मन

और इन्द्रियों को संयम में रखता, पवित्र रहता और अहङ्कार का त्याग कर देता है, उसी को तीर्थ का पूरा फल मिलता है। राजेन्द्र! जो क्रोधहीन, सत्यवादी, दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रत का पालन करने वाला तथा सम्पूर्ण भूतों में आत्मभाव रखने वाला है, वही तीर्थके फलका उपभोग करता है। ऋषियों और देवताओं ने भी क्रमश: यज्ञों का वर्णन किया है, किन्तु महाराज! दरिद्र मनुष्य यज्ञ नहीं कर सकते । यज्ञ में बहुत सामग्री की आवश्यकता होती है । नाना प्रकारकी तैयारियाँ और समारोह करने पड़ते हैं। कहीं कोई धनवान् मनुष्य ही भाँति-भाँति के द्रव्यों का उपयोग करके यज्ञ कर सकता है । नरेश्वर! जिसे विद्वान् पुरुष दरिद्र होने पर भी कर सकें तथा जो पुण्य और फल में यज्ञ की समानता करता हो, वह उपाय बताता हूँ, सुनिये । भरतश्रेष्ठ! यह ऋषियों का गोपनीय रहस्य है, तीर्थयात्रा का पुण्य यज्ञों से भी बढ़कर होता है। एक खरब, तीस करोड़ से भी अधिक तीर्थ माघमास में गङ्गाजी के भीतर आकर स्थित होते हैं । (अत: माघ में गङ्गा-स्नान परम पुण्य का साधक होता है) । महाराज! अब आप निश्चिन्त होकर अकण्टक राज्य भोगिये । अब फिर अश्वमेध यज्ञ के समय मुझ से आपकी भेंट होगी ।

(पद्मपुराण, गीताप्रेस स्व०ख०अ०४०/४९)

मार्कण्डेय ऋषि द्वारा प्रयागवास-विधि तथा फल का उपदेश -

महाभारत युद्ध के बाद युधिष्ठिर बहुत दु:खी हो गये उनके दु:ख को देखकर काशी में वास करने वाले मार्कण्डेय महर्षि युधिष्ठिर के सामने प्रकट हुये और उनको सान्त्वना देते हुये बोले हे राजन्! आपके कष्टों और पापों का दु:ख प्रयागराज ही दूर कर सकते हैं ।

युधिष्ठिर ने कहा - प्रयाग का माहात्म्य वहाँ की विधि और वहाँ के जाने का फल यह सब सुनने की इच्छा है यदि मेरे उपर कृपा है तो वर्णन कीजिये । वहाँ किस प्रकार से स्नान ध्यान दान और किस प्रकार नियम करना होता है किस प्रकार वहां रहना चाहिये और वहां मरने से क्या गति होती है । वहाँ स्नान तथा दान करने से और स्थिति करने से क्या फल कहा है सो विस्तार सहित कहो । आपने ब्रह्मा और विष्णु के निकट जिस प्रकार सुना है कृपाकर यह मेरे प्रति कहिये । मार्कंडेय बोले- हे राजेन्द्र! मैनें पहले जिस भांति सुना है उसी के अनुसार प्रयाग प्रतिष्ठान से वासुकि ह्रद पर्यन्त सब वर्णन करता हूँ, इसी स्थान में कम्बल अश्वतर और बहुमूलक सांप रहते हैं । यह प्रजापति क्षेत्र त्रिलोकी में विख्यात है। इस स्थान में स्नान करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है और जो मरता है वह दूसरा जन्म धारण नहीं करता है । इस स्थान में ब्रह्मादि देवता एकत्रित होकर रक्षा करते हैं । हे राजन् ! सब तीर्थों का आश्रय स्वरूप उस तीर्थराज प्रयाग धाम में कितने तीर्थ हैं, इसको कोई नहीं कह सकता है । हे नृप ! मैं सौ वर्ष में भी उसको तुम्हारे निकट रहकर समाप्त नहीं कर सकता । तथापि संक्षेप से उस प्रयागराज का माहात्म्य वर्णन करता हूँ । वहाँ सात हजार अनुचर श्रीगंगामहारानी की रक्षा करते हैं, सत्यवाहन सूर्य निरंतर यमुना की रक्षा करते हैं विशेष करके ब्रह्मा सम्पूर्ण प्रयाग की रक्षा करते हैं । भगवान् हरि देवताओं से युक्त होकर मण्डल की और शूल पाणि महादेव वट की रक्षा करते हैं । देवता उन सम्पूर्ण पापों के

रहने वाले तथा कल्याण के देने वाले स्थान की रक्षा करते हैं। अधर्मी मनुष्य वहां नहीं जा सकते। हे राजन्! जो मनुष्य थोड़ा अथवा उससे भी थोड़ा पाप करता है प्रयाग तीर्थ के स्मरण मात्र से उसके पाप नष्ट हो जाते हैं। प्रयाग तीर्थ के दर्शन से, उसका नाम लेने से तथा उस स्थान की मिट्टी मलने से मनुष्य पाप से छूट जाता है। हे राजेन्द्र ! उस स्थान में जो पांच कुण्ड हैं उनके मध्य श्रीगङ्गा जी विराजमान हैं। प्रयाग क्षेत्र का दर्शन करने से सम्पूर्ण पाप छूट जाते हैं। हे राजन् ! जो मनुष्य हजार योजन (४०० कोस) से गङ्गा नामका स्मरण करता है वह पाप करने वाला भी परम पद को प्राप्त होता है। गङ्गा नाम का कीर्तन करने से पातकसे रक्षा होती है और दर्शन करने से उसी समय कल्याण होता है। मनुष्य इस जल में स्नान करने से सत्य बोलने वाला, जित क्रोधी (क्रोध को जिसने वस में कर लिया है) हत्या से बचा हुआ, ईर्ष्या रहित, धर्म के अनुसार कार्य करने वाला, तत्व का जानने वाला गौ और ब्राह्मण का उपकार करने वाला होता है और पीने से सात कुल पवित्र होते हैं। गङ्गा यमुना के मेल में प्रवेश मात्र से मनुष्य पापकारी होने पर भी शीघ्र ही पापरहित हो जाता है और प्रसन्नचित्त से सब इच्छित प्राप्त कर सकता है। इस कारण सम्पूर्ण देवताओं से रक्षित प्रयाग में जाकर ब्रह्मचारी रूप से निवास करता हुआ एक मास तक पितरों और देवताओं के उद्देश्य से तर्पण और गंगा यमुना के संगम में स्नान करें। विद्वान् मनुष्य नित्य कर्मनिष्ठ, पवित्र आत्मा और नियतेन्द्रिय होकर वहां के देवताओं की और अपने अभिष्ट देव की पूजा करें। जो नित्य ब्राह्मणों की पूजा करता हो दीन और अनाथों का उपकार करने वाला हो दयायुक्त, अक्रोधी, मनुष्य पूजा से प्रसन्न होकर, इच्छित विषय प्राप्त कर सकता है, जिस स्थान में त्रिभुवन में विख्यात तपननन्दिनी महाभागा यमुना नदी आई है साक्षात् शिवलोक जिस तीर्थ के निकट है, हे युधिष्ठिर ! मनुष्य को उस प्रयाग धाम में पुण्य प्राप्त होता है। हे नृप ! देवता, दानव, गंधर्व, ऋिषि, सिद्ध, चारण आदि सबही उस तीर्थ में स्नान करके स्वर्ग धाम में प्राप्त होते हैं। हे राजन् ! वह सब पापी मनुष्य दुःख भागी इस तीर्थ के दर्शन मात्र से सुखी होते हैं। पृथ्वी में जो मनुष्य सदा घूमकर भी अतिकष्ट से बिन्दु मात्र कल्याण प्राप्त नहीं कर सकते, प्रयाग क्षेत्र में वेणी के दर्शन मात्र से वह सुखी होते हैं।

हे राजन् ! भूत प्रेत और पिशाचगण भी वेणी जल को छूकर मुक्ति को प्राप्त होते हैं और दिव्य देहधारी पापरहित और शुद्ध चित्त होकर स्वर्गलोक में जाते हैं। जो यमराज के शासनाधीन होकर नरक में पच्यमान हो अपने किये हुए कर्मों के वशसे मोहित होकर सदा रोते हैं, यदि सहसा उनके वंशके वेणी जल में स्नान करके तर्पण करें तौ शीघ्र ही वह मुक्त होकर स्वर्गधाम में चले जाते हैं। जो देवता शून्य अथवा स्वर्ग में रहते हैं उनको भी दुर्लभ मनुष्य जन्म प्राप्त होकर तीर्थराज प्रयाग क्षेत्र में वास करें इस पृथ्वी में जन्म धारण की इच्छा करते हैं। इस तीर्थराज प्रयाग में स्नान कर जो मनुष्य पितरों के नाम से तर्पण करता है तो उसके पितर चाहे जिस योनि में हों शीघ्र मुक्त हो जाते हैं। जिन पितरों का नाम लेकर तर्पण आदि क्रिया की जाती है वे (पशु) पक्षी आदि किसी भी योनि में होंगे किन्तु पाप

से मुक्त हो जायेंगे। अपने पाप के कारण अनेकों प्रकार से दुःख पाते हों परन्तु क्षणमात्र में निष्पाप होकर समस्त सुख के अधिकारी हो जाते हैं जिस प्रकार वायु क्षण भरमें फूलों की गन्ध भर देती है।

मार्कण्डेयजी बोले-अब मैं तुमको प्रयागमाहात्म्य और सुनाता हूं उसके सुनने से मनुष्य निःसन्देह सब पापों से छूट जाता है। दुःखी दरिद्री मनुष्यों के लिये प्रयाग से बढकर और कुछ है ऐसा कभी नहीं कहना चाहिये। रोगी दीन या क्रोधी मनुष्य भी गंगा यमुना संगम प्रयाग में यदि मृत्यु को प्राप्त होता है तो वह भी जिस स्वर्ग में चमकते हुए स्वर्ग की आभावाले और सूर्य की तरह प्रकाश वाले अनेक विमान हैं तथा गन्धर्व और अप्सराएं हैं उसमें जाकर चिरकाल तक आनन्द भोगता है। वह उसकी सब इच्छायें पूर्ण होती हैं ऐसा मुनि लोग कहते हैं, दिव्यरत्नों से युक्त सुन्दर स्त्रियों से घिरे हुए कल्याणकारी पदार्थों द्वारा सुख प्राप्त करता है और उत्तम गाने बजाने से प्रातःकाल उसकी आंख खुलती है। जब तक उसे अपने जन्म का स्मरण नहीं होता तब तक वह स्वर्ग का भोग करता है, जन्म का स्मरण होते ही वह स्वर्ग से पृथ्वी पर किसी भी धनवान् कुल में उत्पन्न होता है और फिर उसे तीर्थराज प्रयाग का स्मरण आता है। फिर यदि वह प्रयाग में जाकर शरीर छोड़ता है तो उसको ब्रह्म लोक की प्राप्ति होती है। प्रलयकाल में चैतन्यरूप रहने वाले ब्रह्म में मिल जाने पर उसका मोक्ष हो जाता है और फिर उसका जन्म नहीं होता। कोई प्रयाग में रहने वाला अपने कर्म में लगा हुआ धीर अच्छी बुद्धि वाला और जितेन्द्रिय मनुष्य किसी और देश में जाकर मर जाता है तो वह ऐसे देश में उत्पन्न होता है जहां के वृक्ष फलों से लदे रहते हैं और जहां की पृथ्वी स्वर्णवाली है।

ऋषि मुनि और सिद्धों के लोक में वह जाता है जहां मन्दाकिनी तट पर हजारों स्त्रियां विचरती हैं। अपने अच्छे कर्म से वह ऋषियों के साथ आनन्द प्राप्त करता है यदि कोई पुरुष देश विदेश घर या जंगल में प्रयाग का स्मरण करता हुआ अपने प्राणों का त्याग करता है तो उसे अपने इस स्मरणरूप कर्म द्वारा ही ब्रह्मलोक की प्राप्ति हो जाती है। जिसके हाथ पांव और मन ठीक हैं उसे तीर्थराज जाकर दान नहीं लेना चाहिये, जो वहां जाकर दान नहीं लेता उसे विद्या-तप-कीर्ति और तीर्थफल की प्राप्ति होती है। जहां किसी जीव होने की संभावना न हो ऐसे स्थान पर भी आंख से देखकर पांव रखना चाहिये तप और तीर्थ के आशय को ठीक जानने वाले मनुष्यों ने यह नियम बताया है। तीर्थ में जाकर गायत्री आदि मंत्रों का जाप और एकादशी आदि उपवास करने चाहिये और अभक्ष्य पदार्थों का त्याग करना चाहिये। तीर्थ में जाकर बिना स्नान किये भोजन नहीं करना और स्नान करने के लिये नंगे पांव और नंगे शिर जान चाहिये। तेल नहीं मलना चाहिये और ब्रह्मचर्य से रहना चाहिये इस रीति से जो तीर्थवास करते हैं उनको तीर्थ का फल प्राप्त होता है। अपने धन की रक्षा करते हुये यथाशक्ति दान करने से तीर्थ में कीर्ति और फल प्राप्त होता है। जो दान लेने का सामर्थ्य रखते हुए दान नहीं लेते और क्रोधरहित होकर तीर्थवास करते हैं उनको तीर्थवास का फल प्राप्त होता है। वेद के पाठ और जप से दान लेने का दोष दूर हो जाता है इसलिये सदा जप करना चाहिये। किन्तु जो समर्थ होते हुए

भी दान नहीं लेते उनकी मनोवांछा पूर्ण होती है । सोना-मणि-मोती तथा अन्य वस्तु देवता और पितरों के कार्यों में जो ग्रहण करते हैं उनको तीर्थ का फल कम प्राप्त होता है इसलिये तीर्थ और पुण्य स्नानों में दान लेने से बचना चाहिये । ब्राह्मणों को सब कार्यों में सावधान होना चाहिये तीर्थपर लाल वर्ण की कपिला गाय जिसके सींगों में स्वर्ण, खुरों में चांदी, कंठ में वस्त्र, पूंछ में रत्न, पीठ पर तांबा बांधा हुआ हो, कांसी के पात्र और बछड़े सहित दूध देती हुई ऐसी उस कपिला गाय को जो मनुष्य किसी सुशील तपस्वी वेद के जानने वाले ब्राह्मण की पूजा करके उसके निमित्त वस्त्र, अलंकार और दक्षिणा के साथ भक्तिपूर्वक त्रिवेणी के ऊपर दान करता है उसे अनन्त फल की प्राप्ति होती है । गाय को रोमों की संख्या के अनुसार दाता वस्त्र और मणि प्राप्त करता है और उतने ही हजार वर्ष तक स्वर्ग में वास करता है और जहां वह जन्म लेता है वहां ही उसे वही गौ प्राप्त होती है, उसे कभी नरक देखना नहीं पड़ता वह पुण्यात्मा स्वर्ग से गिरकर जम्बूद्वीप का स्वामी होता है और उत्तर कुरुदेशों में बहुत कालतक सुख भोगता है इसलिये दूध देने वाली गाय का भी दान करना चाहिये, दान करने वाले के पुत्र, स्त्री, दास, नौकर तक भी उस गौ दान से तर जाते हैं इसलिये सब दानों में गोदान विशेष है । दुर्गम विषम घोर पातक या संकट में सत्पात्र को दी हुई गाय रक्षा करती है । कुपात्रों को देने से दाता को नरक होता है इसलिये जहां पात्र न मिल सके वहां मन में पात्र का ध्यान करके संकल्प का जल जल में या शालिग्राम के समीप छोड़ दे । फिर घर जाकर गौ को उस ब्राह्मण के लिये देदे, ऐसा करने से भी पूरा फल प्राप्त होता है । इस प्रकार दान लेने से तीर्थ पर दान लेने के दोष से दान लेने वाला भी बच जाता है और दाता बड़ी कठिनाई से तरने योग्य इस संसार से तर जाता है ।

युधिष्ठिर बोले जैसे जैसे प्रयाग की महिमा सुनता हूं तैसे तैसे मेरे मन की शुद्धि होती जाती है अब हे भगवन् ! तीर्थ को और विशेषकर प्रयाग को किस विधि से जानना चाहिये सो आप मेरे प्रति कहिये । मार्कण्डेय बोले, अब मैं तुमसे तीर्थयात्रा की विधि कहता हूं जो ऋषियों ने बहुत विचार कर निश्चित की है । यात्रा से एक दिन पहले क्षौर बनवाना चाहिये और व्रत रखना चाहिये और हे नृपसत्तम! फिर घी से श्राद्ध करना चाहिये । पहले पड़ाव पर केवल घी खाना चाहिये, आगे ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय होकर नित्य स्नान करता हुआ । अपने पांव से चलकर, जूता न पहनकर, नंगा शिर रख कर, सवारी में न बैठकर, बिना भोजन किये हुए और हरि का स्मरण करते हुए नरक में ले जाने वाली बैलों की सवारी का त्याग करके यात्रा करनी चाहिये । बैलों पर सवारी करना बुरा है, बैलों के क्रोध से उत्पन्न हुए पापों के कारण पितर उसके दिये हुए जल को ग्रहण नहीं करते । ऐश्वर्य के अहंकार में भरकर जो लोग बैलों की सवारी में यात्रा करते हैं उनकी यात्रा निष्फल हो जाती है । सवारी में चढ़ने से यात्रा का आधा फल नष्ट हो जाता है, जूता पहन कर यात्रा करने से चौथाई फल नष्ट हो जाता है। अशक्त होने पर यथाशक्ति भगवान् का स्मरण करते हुये (यान आदि में भी) यात्रा कर सकता है, इस दशा में यात्रा का फल नष्ट नहीं होता, जो पुरुष अपनी स्त्री पुत्रों के साथ स्नान करके यथाशक्ति ब्राह्मणों

को दान देकर सबके साथ यात्रा करता है वह उत्तर कुरुदेश में जाकर अनेक भोगों को भोगता है और गुणवान् होता है । गंगा यमुना के संगम पर ऋषियों के बताये विधान से यथाशक्ति सामग्री के साथ जो कन्या का दान करता है वह नरक को नहीं देखता और उत्तर कुरु देशों में बहुत काल तक सुख भोगता है । वहाँ यथा शक्ति दान करने से धार्मिक रूपयुक्त पुत्र और स्त्री प्राप्त होती है । तीर्थपर पहुँचकर स्नान करके मुण्डन करना चाहिये और फिर स्नान करके देवता और पितरों का तर्पण तथा तीर्थ के देवताओं का पूजन करना चाहिये और विधिपूर्वक तीर्थश्राद्ध करना चाहिये फिर ब्राह्मण की आज्ञा लेकर स्वयं भोजन करना चाहिये । हे महाबाहो ! जो दीन अनाथों का तीर्थपर तर्पण करता है, वह धर्मात्मा कल्पतक स्वर्ग में वास करता है और वहां सूर्य के समान चमकने वाले विमान में बैठकर क्रीडा करता है और देवताओं के वनों का आनन्द लेता है । जो तीर्थपर वटवृक्ष (अक्षयवट) के मूल में प्राणों का त्याग करता है वह सब लोकों को लांघकर शिवलोक को प्राप्त होता है । जहां पर शिव के आश्रय में रहने वाले बारह सूर्य सब जगत् को जला देते हैं उस समय भी वटका मूल नहीं जलता है । जिस समय चन्द्रमा सूर्य और वायु नष्ट हो जायेंगे और सारा जगत् प्रलयकाल के जल से भर जायेगा उस समय बार बार अवतार लेनेवाले विष्णु उसी वट मूल में सोयेंगे । देव, दानव, गन्धर्व, ऋषि, सिद्ध चारण गङ्गा, यमुना, संगम रूप प्रयाग तीर्थ का सदा सेवन करते हैं । ब्रह्मा विष्णु शिव और दश दिशाएँ और उनके स्वामी सब देवता और ऋषि त्रिवेणी के जल में निवास करते हैं । जिस तीर्थ में वेणीमाधव रूप से भगवान् विष्णु निवास करते हैं वहां सब तीर्थ, साध्य, पितर, नाग, सातों समुद्र, सनकादि सप्तऋषि, अंगिरादि ब्रह्मर्षि, कपिल आदि सिद्ध, मरुतों के गण सुपर्ण, विद्याधर और चक्रधर आदि भी निवास करते हैं । वहाँ स्वयं भगवान् शंकर शूलटंकेश्वर रूप में विराजमान हैं, ब्रह्मा ने जहां अनेक यज्ञ किये हैं लोकों पर अनुग्रह करनेके लिये वह स्वयं वहाँ पर रहता है, गङ्गा यमुना का मध्यभाग पृथ्वी की जंघा है । हे राजशार्दूल ! तीनों लोकों में प्रसिद्ध प्रयाग से बढ़कर दूसरा कोई तीर्थ नहीं है । इस तीर्थराज के नाम को कहने से, सुनने से और वहां की मिट्टी के ग्रहण करने से भी मनुष्य पापों से छूट जाता है । जो व्रतधारी मनुष्य संगम में अभिषेक करता है उसको राजसूय और अश्वमेध यज्ञ के बराबर फल प्राप्त होता है । वेद के वचन से या लोक के वचन से प्रयाग में मरने की इच्छा नहीं छोड़नी चाहिये।

दश हजार प्रधान तीर्थ और ६० करोड़ साधारण तीर्थ प्रयाग में सदा निवास करते हैं । योगी और सात्त्विक साधुकी जो गति होती है गङ्गा यमुना के संगम में प्राण त्याग करने वाले की भी वही गति होती है । जो प्रयाग नहीं गये वे धन स्त्री-पुत्रवान् होते हुये और अनेक भोगों को भोगते हुये भी व्यर्थ जीते हैं । जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध प्रयाग में नहीं पहुँच पाते वे वंचित हैं और जो दीन होते हुये भी देवताओं के प्रिय प्रयाग में पहुँच जाते हैं उनका जन्म सफल हो जाता है और उसका दर्शन करते ही उनके सब पाप क्षणभर में नष्ट हो जाते हैं । उस स्वर्ग से क्या लाभ है जहां से लौटना पड़ता है प्रयाग दर्शन करने से तो समस्त पातक नष्ट हो जाता है और वहां मरने से देवताओं के लिये भी जो मोक्ष

दुर्लभ है वह उन्हें प्राप्त हो जाता है। यमुना के दक्षिण तट पर रहने वाले कम्बल और अश्वतर नाम के नागों को जिस तरह वह प्राप्त हुआ। मनुष्य वहां स्नान करके जल पीकर और भगवान् शूल टंकेश्वर के दर्शन कर सब पापों से छूट जाता है। और जो भगवान् शंकर का वहां पूजन करता है उसके दश पिछली और दश अगली पीढ़ियां तर जाती हैं और उसको अश्वमेध का फल प्राप्त होता है। पंचामृत से अभिषेक करने का जो फल है उससे हजार गुना अधिक फल त्रिवेणी के जल से अभिषेक करने से प्राप्त होता है इसमें कुछ संशय नहीं है। वहां पर शिवपर केवल पुष्प चढ़ाने का वह फल है जो दूसरी जगह सौ स्वर्ण के फूलों के चढ़ाने से मिलता है और वहां बिल्वपत्र चढ़ाने से अनन्तफल की प्राप्ति होती है। हे नृपोत्तम ! गंगा के पूर्व भाग की ओर तीनों लोकों में प्रसिद्ध जो सामुद्र नामका कूप (समुद्रकूप झूसी) है। कोई पुरुष ब्रह्मचारी होकर क्रोध को जीत कर यदि तीन रात्रि उस कूप के पास निवास करे तो उसे अश्वमेध के फल की प्राप्ति होती है। भागीरथी की पूर्व से उत्तर की ओर जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध हंसपतन नामका तीर्थ है उसमें स्नान करने से ही अश्वमेध का फल प्राप्त होता है और स्नान करने वाला हंस के समान निर्मल हो जाता है इसमें कोई संशय नहीं है और जब तक चन्द्रमा और सूर्य हैं वह स्वर्ग में निवास करता है जिसमें उर्वशी आदि अप्सराओं और अनेक हंसों से नदी के किनारे शोभित हैं। जो जानकर प्राणों को त्यागता है या जो मरता है उसको भी वही फल प्राप्त होता है और वह साठ हजार साठ सौ वर्ष स्वर्ग में निवास करता है और उर्वशी उसको सदा देखती रहती है और ऋषि गन्धर्व और किन्नर उसकी पूजा करते हैं वह स्वर्ग से गिरकर पृथ्वी पर जन्म लेता है तो उर्वशी जैसी हजारों स्त्रियों का पति बनता है। हजारों गायों का स्वामी होता है स्त्रियों के आभूषण के शब्द से उसकी नींद खुलती है। अनेक भोगों को भोग कर फिर वह तीर्थ पर जाता है और वहां सफेद वस्त्र पहनकर और इन्द्रियों का संयम करके दिन में एक बार भोजन करता हुआ एक मास तक वास करता है ऐसा करने से सुवर्ण के आभूषण धारण करने वाली सैकड़ों स्त्रियाँ उसको प्राप्त होती हैं और वहां दान करने से सागरान्त पृथ्वी के धन धान्य युक्त महाभोग उसे प्राप्त होते हैं फिर वह अनेक भोगों को भोग कर तीर्थ को प्राप्त होता है और ब्रह्मचर्य से युक्त जितेन्द्रिय होकर संध्यावट के नीचे जहाँ करोड़ों तीर्थों का निवास है वह यदि प्राण त्याग करता है तो उसे करोड़ों वर्षतक स्वर्गलोक में वास मिलता है फिर जब वह स्वर्ग में गिरता है स्वर्ण मणि और मोतियों से भरे हुए कुल में वासुकि के उत्तर की ओर भोगावती नगरी में रूपवान् होकर जन्म लेता है। वहां दशाश्वमेघ नाम का एक दूसरा तीर्थ है उसमें अभिषेक करने से अश्वमेघ का फल प्राप्त होता है। वहां दान करने से मनुष्य धनवान् रूपवान् दक्ष और धार्मिक होता है। चारों वेदों में जो पुण्य है, सत्य बोलने में, अहिंसा करने में जो फल है वहां जाने से प्राप्त होता है गंगा में कहीं भी स्नान किया जाय तो कुरुक्षेत्र के बराबर फल मिलता है। विन्ध्याचल में स्नान करने से कुरुक्षेत्र से दशगुना फल मिलता है विन्ध्याचल से दशगुना फल काशी में उत्तर वाहिनी गङ्गा में स्नान करने से मिलता है। उससे सौ गुना फल गंगासागर में स्नान करने से मिलता है उससे

हजार गुना फल कालिन्दी में स्नान करने से मिलता है और हे राजन् ! प्रयाग में जहां गङ्गा पश्चिम की ओर को बहती है वहाँ स्नान करने से तो अनन्त गुण की प्राप्ति होती है और उसके दर्शन करने से ही महापापों का नाश हो जाता है । मकर के सूर्य में तो वहाँ की गङ्गा में स्नान करना बड़े भाग्य से प्राप्त होता है, माघमास में उसकी प्राप्ति बड़ी दुर्लभ है । वहाँ स्नान, दान, जप, होम और पूजन करने से अनन्त और अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है यह सत्य है । तिल, घी, शहद और उसपर सुवर्ण की दक्षिणा रखकर वेद के जानने वाले श्रोत्रिय और कुटुम्बी ब्राह्मणों को उसकी पूजा करके जो दान करते हैं उनको अनन्त पुण्य की प्राप्ति होती है, उस पुण्य का कल्पके अन्त में भी नाश नहीं होता । महाभागा गङ्गा के होने से उसे सिद्ध क्षेत्र कहते हैं । वहां पर सब तीर्थों का निवास है इसमें शंका नहीं करनी चाहिये वह पृथ्वी पर मनुष्यों को नीचे के लोकों में नागों को स्वर्ग में देवताओं को तारती है इसलिये गङ्गा का नाम त्रिपथगा है गङ्गा में जिसकी हड्डी जब तक पड़ी रहती है उतने हजार युग तक वह स्वर्ग में निवास करता है, तीर्थों में वह परम तीर्थ है और नदियों में वह परम नदी है । सम्पूर्ण भूतों को और महापातकियों को भी वह मोक्ष देने वाली है वह गङ्गा और जगह तो सुलभ है किन्तु तीन स्थानों में दुर्लभ है । हरिद्वार, प्रयाग और गङ्गा सागर में इन तीनों स्थानों में स्नान करने से स्वर्ग मिलता है और मरने से मोक्ष की प्राप्ति होती है । पापों से जिनका चित्त नष्ट हो गया है और जिनको गति की इच्छा है ऐसे जीवों के लिये गङ्गा से बढ़ कर कोई गति नहीं है । भगवान् शंकर के शिर से गिरने वाली गङ्गा सबसे अधिक पवित्र, सबसे अधिक मंगल-कारिणी शुभ और सब पापों के नाश करने वाली है ।

मार्कण्डेयजी बोले- हे राजन् ! अब मैं तुमको प्रयाग का माहात्म्य और सुनाता हूं जिसके सुनने से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है । गङ्गा के उत्तर तट पर मानस नाम का जो तीर्थ है उसमें स्नान करने से और तीनरात वहां निवास करने से मनुष्य की सब वासनाएं पूर्ण हो जाती हैं, गोदान-पृथ्वीदान स्वर्णदान करने से जो फल प्राप्त होता है प्रयाग के स्मरणमात्र से भी वही फल प्राप्त होता है । इच्छा या अनिच्छा से गङ्गा के तट पर जो मनुष्य मृत्यु को प्राप्त होता है ब्राह्मण के लोक को जाता है जबतक स्वयं ब्रह्मा रहता है और ब्रह्मा के साथ फिर परम ब्रह्म को प्राप्त होता है जहां घुंघरू पहने अनेक हंस और सारस हैं और अनेक अप्सरायें और गन्धर्व हैं, उस ब्रह्मलोक में इच्छा से मरने पर वह रमण करता है, फिर पृथ्वी पर राजा होकर वह अनेक भोगों को भोगता है और फिर ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है वहां मुक्त होकर फिर परम ब्रह्म को प्राप्त होता है एक लाख गौओं के दान का जो फल है प्रयाग में माघ के महीने में तीन दिन के स्नान का भी वही फल है, गङ्गा यमुना के संगम पर जो करीषाग्नि (उपलोंकी अग्नि का) साधन करता है वह रोग रहित और सब अंगों से पूर्ण और पाँचों इन्द्रियों से युक्त होता है उसके शरीर में जितने रोंगटे होते हैं । उतने हजार वर्ष वह स्वर्ग में वास करता है और फिर जम्बूद्वीप का स्वामी होता है । उस जीवन में बड़े-बड़े भोगों को भोग कर फिर उसे तीर्थ की प्राप्ति होती है और फिर वहाँ मृत्यु को प्राप्त होकर पुण्य-लोक को जाता है । गङ्गा, यमुना के संसार प्रसिद्ध संगम के जल

में जो प्रवेश करता है वह सब पापों से ऐसे छूट जाता है जैसे राहु के मुंह से चन्द्रमा। और चन्द्रलोक को प्राप्त होकर ६० हजार ६० सौ वर्ष चन्द्रमा के साथ आनन्द करता है। गन्धर्व और अप्सराओं वाले स्वर्ग को प्राप्त होता है फिर वहां से गिरकर अग्निहोत्री होता है। वह वहां अनेक भोगों को भोगकर फिर उस तीर्थ को जाता है जो अपने शरीर को काटकर पक्षियों को खिला देता है उसके फलों को सुनो- एक लाख वर्ष तक वह सोम-लोक में रहता है। और स्वर्ग से गिरकर वह जम्बूद्वीप का स्वामी होता है विद्या गुण और रूप से युक्त होता है और मीठे वचन बोलता है अनेक बड़े-बड़े भोगों को भोगकर फिर वह तीर्थ को प्राप्त होता है नीचे को सिर करके जो धूम्रपान करता है अर्थात धुएँ पर ही रहता है और भोजनादि छोड़ देता है वह एक लाख वर्ष स्वर्ग में निवास करता है और अनेक बड़े-बड़े भोगों को भोगता है। प्रयाग के दक्षिण में यमुना के उत्तर तट पर ऋणप्रमोचन नाम का एक परम तीर्थ है जो वहां स्नान करता है और एक रात निवास करता है वह सब प्रकार के ऋणों से छूट जाता है और सूर्य लोक को प्राप्त होता है फिर वह किसी का ऋणी नहीं होता।

युधिष्ठिरजी बोले- आपके कहे प्रयाग के माहात्म्य को सुन-कर मेरा हृदय शुद्ध हो गया, अब भगवान्! यह बताइये कि किस फल का नाश नहीं होता और सब पापों से छूटकर मनुष्य किस लोक को प्राप्त होता है। मार्कण्डेयजी बोले- प्रयाग के नाश होने वाले फलों को मैं तुमसे कहता हूं जिसे बुद्धिमान श्रद्धालु और जितेन्द्रिय पुरूष प्राप्त करता है। स्वर्ग में जितने लोक हैं उन सबके नाना प्रकार के भोगों को भोगकर वह पृथ्वी लोक का स्वामी होता है। रत्न और धन से युक्त सातों द्वीपों का स्वामित्व भी उसे प्राप्त होता है फिर पहली वासना से वह तीर्थराज में जाकर स्नान करता है। और वहां मृत्यु को प्राप्त होकर भगवान् के निकट वैकुण्ठ लोक को प्राप्त करता है, जहां से फिर वह नहीं लौटता, इसलिये हे राजन्! तीर्थराज का फल कभी नाश नहीं होता, उसमें चलने वाले को सम्पूर्ण अंगों का पूर्णत्व, निरोगता, इंद्रियों का अवैकल्य और अश्वमेघ का फल पद पद पर प्राप्त होता है। उसके दश अगले दश पिछले पुरुष तर जाते हैं और वह स्वयं भी सब पापों से मुक्त होकर परम पद को प्राप्त कर लेता है। युधिष्ठिरजी बोले हे प्रभो! यह बड़े भाग्य की बात है जो थोड़े परिश्रम करने से भी बहुत बड़े धर्म की प्राप्ति हो जाती है। अनेक पुण्यों के उदय होने पर अश्वमेघ यज्ञ बन पड़ता है और यहां जाने मात्र से ही अश्वमेघ का फल प्राप्त हो जाता है। मेरे इस संशय को दूर कीजिये। मार्कण्डेयजी बोले! हे राजन्! यह बड़ी गुप्त बात है प्रयाग में जो मनुष्य एक मास तक स्नान करता है उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं और वह पवित्र हो जाता है तथा उसमें श्रद्धा और अहिंसा की प्रतिष्ठा हो जाती है। जो प्रयाग में केवल तिल या हविष्य का भोजन करता है और पृथ्वी में सोता है तथा भगवान् का ध्यान करता है वह उस स्थान को प्राप्त करता है जहां शोक नहीं है। विश्वासघाती भी प्रयाग में जाकर भिक्षा का अन्न खाने से और तीन मास तक गंगा स्नान करने से ब्राह्मणों की कृपा से शुद्ध हो जाता है जो अनजान में भी प्रयाग पहुंच जाते हैं उनको भी स्वर्ग की प्राप्ति होती है और संसार में

धन धान्य से भरा स्थान मिलता है । जो जानकर प्रयाग का सेवन करते हैं उनको समस्त भोग मिलते हैं और उनके प्रपितामह आदि सब नरक से तर जाते हैं। हे राजन् ! तुम्हारे पूछने पर यह बहुत गुप्त बात मैंने तुमसे कही है । हे महाप्राज्ञ ! ब्रह्मा ने ऋषियों से इसे कहा था और मैंने उनसे सुना है । प्रयाग के मंडल का पांच योजन का विस्तार है उसमें प्रवेश करते ही पद पद पर अश्वमेघ यज्ञ का फल प्राप्त होता है । जो पुरुष वहां अपने प्राणों का त्याग करता है उसके सात पिछले और १४ आने वाले पुरुष तर जाते हैं। इसलिये हे राजन् ! मनुष्य को सदा श्रद्धालु होना चाहिये, जिसमें श्रद्धा नहीं है उसका मन पाप से नष्ट हो जाता है और वह देवताओं से रक्षा किये प्रयाग को कभी नहीं प्राप्त कर सकता । युधिष्ठिर बोले-हे भगवन् ! स्नेह के वश या द्रव्य के लोभ से या कामवश जो सब वस्तुओं का तीर्थराज में विक्रय करते हैं उनको तीर्थ का फल प्राप्त होता है या नहीं ! और उनकी क्या गति होती है वह कृपा करके कहिये । मार्कण्डेयजी बोले-किसी अनुबंध से प्रयाग में गमन करने से चौथा अंश यात्रा का फल प्राप्त होता है । अजितेन्द्रिय विकर्मनिष्ठ मनुष्य संपूर्ण पापकर के भी प्रयाग में प्रवेश मात्र से शीघ्र ही निष्पाप हो जाता है । इस विषय में एक पुरातन इतिहास है सुनो- पश्चिम समुद्र के किनारे पर रत्नपाल नामक शान्तचित्त, व्यापार में चतुर बहुत धनवान् एक बनिया था । वह चतुर महा बुद्धिमान् बनिया सांयात्रिक विधि (समुद्र व्यापार) से बेच खरीदकर बहुत से द्वीपों से रत्न लाकर विविध उपाय से इकट्ठा करता हुआ । उसके घर में जितना वस्त्र और धन था सुमेरु पर्वत पर भी इतना है कि नहीं, यह संदेह करके कोई कुछ स्थिर नहीं कर सकता । वह धर्मयुक्त, ज्ञातिजनों के आश्रय, संयतेन्द्रिय, महाबुद्धिमान् रत्नपाल संपूर्ण महादान का आचरण करता था । वह वाग्मी, दानशील, यशस्वी और साधुजनों का एकमात्र आश्रय, किन्तु ऐसा होने पर भी पुत्रचिन्ता में व्याकुल था, इसीसे वह गृहस्थियों के सुख को नहीं प्राप्त कर सकता था । फिर (एक समय) कोई पथिक (मुसाफिर) ब्राह्मण थक कर उसके घर पर आया । तब बनिये ने नम्रभाव से ब्राह्मण के चरणों में गिरकर दुःख सन्तप्त चित्त से अपने संतान न होने का कारण पूंछा । ब्राह्मण श्रेष्ठ ने वैश्य को दुःखित देखकर दुःखित और कृपायुक्त होकर विचार कर कहा । हे वैश्य ! लेने देने के निमित्त से ही कुटुंबियों के साथ संबंध होता है, और इन संपूर्ण कारणों से ही दूसरे के साथ पुत्र संबंध होता है, परंतु इस संसार में किसी के साथ भी तुम्हारा लेना और देना कुछ नहीं है। इस कारण हे विट्पते ! किस सम्बन्ध से तुम्हारे पुत्र उत्पन्न हो, किस मोहसे दुखित हो रहे हो और क्यों चिन्ता को प्राप्त हो रहे हो ! हा कष्ट! निश्चय ही मनुष्य किसी की ममता के वश होकर मोहित हो जाता है इस कारण इस संसार में जीव अपने कर्मों के फल से (दिनरात) फिरता है। कौन किसका पिता, कौन किसका भाई! और कौन किसका पुत्र है, इस अनादि संसार में जीव अपने कर्मों के फल से (रातदिन) विचरते हैं । भगवान् की मोहिनी माया से पार होने को कौन समर्थ है! कौन बलपूर्वक सब प्रकार से उस तीव्र माया को अतिक्रम (उलंघन) कर सकता है । उस विधाता वासुदेव जनार्दन को प्रणाम है । जिनकी कृपा से और प्रसन्नता से संसार से तर जाता है । हे वैश्यकुल भूषण! मेरा परम वचन सुन । हे धर्मात्मन् ! यदि पुत्र फल के प्राप्त करने की इच्छा है तो प्रयाग में जाओ।

जिसके प्रसाद से मनुष्यों के संपूर्ण मनोरथ सिद्ध होते हैं अब वह माघमास भी दूर नहीं है अर्थात् सूर्य भी शीघ्र मकर राशि पर स्थित होगा। जो मनुष्य संपूर्ण माघ मास प्रयाग में स्नान करता है उसके मोक्ष तक निकट रहती है, फिर उसके मनोरथ सिद्ध होने में क्या संदेह है। मैं भी उस स्थान में जाने की इच्छा करता हूँ, इस कारण इस समय तुम भी चलो। जगदीश्वर के प्रसाद से अवश्य तुमको पुत्र प्राप्त होगा। रत्नपाल ब्राह्मण को प्रणाम करके फिर बोला- हे द्विजसत्तम ! तो मुझको भी अपने साथ ले चलो, मेरा उद्धार करो। हे राजर्षे ! फिर वह वैश्य अपनी यात्रा का विधान करके शुभदिन और शुभलग्न में प्रयाग की यात्रा के लिये चल पड़ा। हे राजन् ! वह दुःखी मनुष्यों की रक्षा करने वाला वैश्य स्वयं सार्थवाह (काफिले का नेता, अगुवा) होकर आधे महीने में प्रयाग पहुँच गया। हे सुव्रत! वह ब्राह्मण श्रेष्ठ पुत्र की इच्छा करने वाले वैश्य की यात्रा, स्नान और दानादि की विधि से अच्छी तरह कराता हुआ। ब्राह्मण ने वैश्य के ऊपर केवल कृपा करके ही माघस्नान विधि युक्त कराया।

फिर वैश्य स्नान के अन्त में माघ संकल्प करके देवपूजा पूर्वक ब्राह्मणों को भोजन कराता हुआ और दक्षिणा से उनको प्रसन्न किया। फिर ब्राह्मण की आज्ञा लेकर अपने अभिलषित देश में प्रस्थान किया। तीर्थराज के प्रभाव से वैश्य की शुचिव्रत (बड़ी) पत्नी ने गर्भ धारण करके पति को प्रसन्न किया। वह गर्भ शुक्लपक्ष के चन्द्रमा के समान बढ़ने लगा फिर समय पर (दसवें महीने में) 'दशमे मासि जायते' इति श्रुतेः। वैश्य के एक आनन्ददायक पुत्र उत्पन्न हुआ। रत्नपाल ने भी प्रसन्न होकर बुद्धिमान् सुव्रत, वेद के जानने वाले, कर्मकांडी पंडितों को बुलवाया, फिर जातकर्म समाप्त होने पर गौ रत्न धन देकर उनका आशीर्वाद लेकर, वैश्य दीन, अनाथ लंगड़े आदि को भी अन्नादि से प्रसन्न करता हुआ, नामकरणादि तथा दूसरी क्रियाओंको कराके (योग्य समय में) पुत्र का विवाह भी किया।

मार्कण्डेय जी बोले- हे युधिष्ठिर ! ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर ये प्रयाग ही में रहते हैं। मैं उसका कारण तत्त्व बताता हूं, उसे सुनो। प्रयाग का मण्डल पांच योजन में फैला हुआ है। पापकर्म का निवारण करने के लिये यह देवगण उसकी रक्षार्थ उसमें सदा निवास करते हैं। उत्तर में जो सेमलका वृक्ष है, उस सेमल के वृक्ष के रूप में ब्रह्मा प्रजा की रक्षा करते हैं। स्वयं परमेश्वर, महेश्वर अक्षयवट के रूप में निवास करते हैं, विष्णु माधव के रूप में प्रयाग की रक्षा करते हैं। इसके सिवा देवगण, गन्धर्व, सिद्ध और पापकर्म-निवारक ऋषि लोग भी प्रयागमण्डल की रक्षा करते हैं। इस तीर्थ-मण्डल में अपने शरीर का परित्याग करने वाला मनुष्य नरक को नहीं पाता। इस प्रयाग में ब्रह्मा, विष्णु, महेश निवास करते हैं। सप्तद्वीप, समुद्र, पर्वत इन सबको वे, जब तक प्रलय होता है, तब तक बराबर धारण किये रहते है, और भी जो बहुत सी शक्तियां हैं, हे युधिष्ठिर ! वे भी सब तीनों-देवताओं द्वारा निर्मित पृथ्वीतल को आश्रित करके ठहरती हैं। हे युधिष्ठिर ! प्रजापति का यह क्षेत्र होने से प्रयाग के नाम से प्रसिद्ध है। यह प्रयाग पुण्य और पवित्र है। इसलिये हे युधिष्ठिर ! परम पूजित प्रयाग में जाओ। हे महाभाग ! वहां स्नानकर, हवन कर, विविध दान देकर, हे पार्थ ! तुम भाइयों के सहित गुरु, मित्र और बन्धुओं के वध-जनित समस्त पापों से छूट जाओगे। जिन मोह के मूल पापों से तुम आशंकित

हो रहे हो और दुःख पा रहे हो इसमें कोई सन्देह नहीं कि वे सब शीघ्र ही नष्ट हो जायेंगे । हे महाराज! आप राज्य कीजिये क्योंकि आप क्षत्रिय हैं। आपके हृदय में जो संशय है वह नित्य बदलता रहेगा । हृदय के प्रसन्न होने से शीघ्र ही शोक भी चला जायेगा । हे राजन् ! प्रयाग के प्रभाव से संशय का विनाश होता है ।

शौनकजी बोले- राज्य पाने के बाद वह धर्मात्मा राजा भाइयों के और किन-किन के साथ प्रयाग को गये, यह मुझे बताइये और हे धर्मज्ञ ! उनका मन कैसे सन्तुष्ट हुआ यह भी कहिये । श्रीसूतजी बोले- राजा युधिष्ठिर सब तरह की सुख समृद्धि से भरे शून्य उस राज्य को पाकर और संपत्ति मित्र आदि से पूर्ण हुये । फिर उन्होंने अपने कुटुम्बियों को भले प्रकार से सान्त्वना दी, इसके उपरान्त द्विजों से शुभ मुहूर्त और सुदिन दिखलाकर स्वस्तिवाचन के साथ वह महात्मा अपनी माता कुन्ती, स्त्री द्रौपदी, भीम, अर्जुनादि भाई और भगवान् कृष्ण मार्कण्डेय तथा अपने सेवकों के साथ यात्रा का अनुकूल सामान करके प्रयाग को चले । प्रयाग के समीप पहुँचने पर मार्कण्डेयजी ने धर्मराज से कहा- इस ब्रह्मादि सेवित तीर्थराज प्रयाग को आदर के साथ देखो । इसे सदैव देवता, गन्धर्व, सिद्ध, तथा मुनि लोग पूजते हैं। जिनके गंगा यमुना रूपी दो नेत्र हैं तीसरा सरस्वती रूपी नेत्र है और अक्षयवटरूपी जिनके जटाजूट हैं ऐसा यह रूद्ररूपी प्रयाग है, इसके स्मरण करने से सब पाप भाग जाते हैं । अथवा मुनिवर जह्नु और सूर्यदेव की कन्या गंगा यमुना रूपी नदियों का तरंग रूपी चमर जिसपर ढुलता रहता है और अक्षयवट रूपी छत्र शोभा देता है, उस साक्षात् तीर्थराज प्रयाग की जय हो । धर्म, अर्थ, काम से सुन्दरता के साथ गुथी हुई चोटी के समान इस मोक्ष लक्ष्मी के प्रान्त भागरूपी छोर में यह अक्षयवट चोटी के फुंदनों की तरह शोभा दे रहा है । वैकुण्ठ निवासी हरि और कैलासवासी हर के उपासकों को अत्यन्त दूर होने से उन्हें सुखपूर्वक वहां पहुँचाने के लिये विधाता द्वारा यह त्रिवेणी मुनिश्रेणी के रूप में बनी हुई दिखाई देती है । यह तीर्थराज रूपी माधव श्रेष्ठ मुनियों के समूहों और देवताओं द्वारा सेवा पाते हुये अन्यत्र कहीं भी नहीं दिखाई पड़ते, सो यहाँ बिना परिश्रम ही भक्तों को दर्शन देते हैं । जिनका दर्शन कहीं भी सुलभ नहीं है, वे देवगण यहां मनुष्यों के समान घूमने फिरते हैं। हे राजन् ! इसे देखिये । यह इच्छित तीर्थराज एकमात्र पुण्य से ही प्राप्त होता है और यहां इष्टसिद्धि अत्यन्त सुलभ है । इस प्रकार महान् तपस्वी मार्कण्डेय ने इस तीर्थराज का बहुतसा वर्णन कर राजा युधिष्ठिर को व्यासादि विप्रों के साथ स्नान कराया । उन्हीं के साथ उनके भाई द्रौपदी आदि स्त्री और कृष्ण आदि बन्धुओं ने भी प्रसन्नता के साथ स्नान किया । इसके बाद उस धर्मात्मा राजा ने विधि के साथ देवता, ऋषि, पितर और पितामहों का तर्पण किया ।

बहुत सी दक्षिणाओं का दीन और अनाथों को यथान्याय दान देकर संतुष्ट किया और वहीं उस शुद्धात्मा ने परम-भक्ति से उन सबको भोजन कराया । गौ, पृथ्वी, सुवर्ण, रत्न, हाथी, घोड़े इन सबसे पूजनीय को अत्यन्त मान के साथ पूजा । उन्होंने वहां नमस्कारपूर्वक जताया कि यदि इस अवसर पर अश्वमेध यज्ञ किया जाय तो बहुत अच्छा हो । व्यासादि मुनि, नारदादि ऋषि तथा मार्कण्डेय ने भी इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया । तब बड़ी भुजाओं वाले भगवान् कृष्ण राजा युधिष्ठिर को प्रसन्नता प्रदान

करते हुये उन समस्त मुनियों के सामने हर्ष के साथ बोले-आपको यदि धन-सम्पत्ति, प्रभुत्व आदि की सहायता की आवश्यकता हो तो वे सब चीज यहां मौजूद हैं । प्रसन्नता के साथ यज्ञ कीजिये । इस प्रकार अनुमति पाकर समस्त साधनों के साथ उस राजा ने अश्वमेध यज्ञ द्वारा यज्ञेश पुरुषोत्तम को पूजा । वहाँ यज्ञों के फलदायक प्रत्यक्ष भगवान् उपस्थित थे । यज्ञ विधि के जानने वाले व्यासादि ने राजा को दीक्षा दी और स्वयं मार्कण्डेयजी ने यज्ञ के समस्त कर्म कराये । इस प्रकार प्रयाग में आकर वह बहुत से अन्न और बहुत सी दक्षिणावाला यज्ञ मुनिप्रसाद से सम्पन्न हुआ । इसके बाद वे सब मुनि राजा की आज्ञा लेकर हर्षित हो भगवान् वासुदेव को प्रणाम करके अपने आश्रम को गये । भगवान् वासुदेव भी समस्त मनोरथों को सम्पादित कर राजा से आज्ञा ले द्वारका को प्रस्थान कर गये । सूतजी बोले-इस प्रकार भगवान् और महातपस्वी मार्कण्डेय ने उन राजा के जातिवध से उत्पन्न हुये शोकरूपी महा अज्ञान को, जो अत्यन्त उग्र होकर महान् पाप भरे संशय से उनको धैर्य से गिरा रहा था, प्रयाग में ले जाकर दूर कर दिया । तीर्थराज के प्रभाव से उनका मन भी शुद्ध हो गया । इस तरह वह मुनियों का प्रिय प्रयाग समस्त तीर्थों से अधिक प्रभाव रखता है । हे शौनक ! इस प्रकार मैंने तुमसे प्रयाग का माहात्म्य संक्षेप में कहा । विस्तार के साथ इसका वर्णन करने में भला कौन समर्थ है! यहाँ थोड़े से प्रयास से ही चारों पुरुषार्थ सुलभ हैं । यह बात ब्रह्मवादी ब्रह्मा, कपिल, मार्कण्डेय, नारद, सनत्कुमार इत्यादि पौराणिकों ने कही है । इस प्रयागमाहात्म्य को जो सुनता है वा सुनाता है उस परम भक्तिमान् को प्रयाग स्नान से और यज्ञ, दान, तप, व्रत तथा नियमों से जो फल प्राप्त होता है वह सब ही पुण्य प्राप्त हो जाता है। जो विष्णु भक्तिपरायण विद्वान् इसे सुनायें उसे तीर्थगामी धर्मात्मा आदर के साथ पूजें, वस्त्रालंकार और दक्षिणाओं से सन्तुष्ट करें । उस विप्र के सन्तुष्ट होने से यात्री के सारे मनोरथ पूर्ण होते हैं ।

(मत्स्य पुराण, बम्बई प्रेस अ०१०३-११२)

प्रयागकीर्ति -

राजकुमारी अम्बा द्वारा प्रयाग में तपस्या - सत्य प्रतिज्ञ भीष्म अपने सौतेले भाई राजा विचित्रवीर्य को राजगद्दी पर बैठाकर इसके विवाह की चिन्ता करने लगे । काशिराज की तीन कन्याओं अम्बा, अंबिका, अंबालिका के स्वयंवर का समाचार सुन भीष्म वहाँ पहुँचे, राजाओं के सामने तीन कन्याओं को बलात् ले आये । उपस्थित राजा, भीष्म को रोक नहीं सके । अम्बा ने कहा भीष्म आप धर्म को जानने वाले हैं, मैंने राजकुमार शाल्व को अपना पति बनाने का निश्चय कर लिया है- आप मुझे छोड़ दें, भीष्म ने अम्बा को शाल्व के पास पहुँचा दिया किन्तु शाल्व ने अम्बा को पत्नी बनाना स्वीकार नहीं किया, अम्बा अब कहीं की नहीं रही । दु:खी होकर अम्बा अपने नाना सृञ्जय होत्रवाहन के पास गयी । नाना ने अम्बा को अपने मित्र परशुराम के पास सहायता के लिये भेजा । भगवान् परशुराम ने कहा मैं केवल ब्राह्मणों पर हुए अत्याचार के लिये क्षत्रियों पर शस्त्र उठाता हूँ, मैं तुम्हारी सहायता नहीं कर सकता। अम्बा के ऊपर आयी मुसीबत को देखकर परशुराम अपने शिष्य भीष्म को समझाने के लिये तैयार हो गये, परन्तु भीष्म अपनी प्रतिज्ञा पर डटे रहे । क्रोधमूर्ति परशुराम ने भीष्म को युद्ध के लिये ललकार

दिया- दोनों योद्धा तैयार हो गये, तीनों लोकों में हाहाकार मच गया । भीष्म की माता गङ्गा ने दोनों को समझाया परन्तु कोई भी रुकने को तैयार नहीं हुआ, दोनों का कुरुक्षेत्र में युद्ध आरम्भ हो गया । चार दिन तक घनघोर युद्ध चला- देवताओं ने कहा आप दोनों में से कोई किसी का वध नहीं कर सकता है । गङ्गा माता और सभी के समझाने पर दोनों ने युद्ध समाप्त कर दिया । शिष्य भीष्म की वीरता को देखकर परशुराम ने भीष्म को गले से लगाकर प्रशंसा की । परशुराम ने कहा सुमुखि अम्बे मैंने तुम्हारे लिये यह भयंकर युद्ध किया परन्तु भीष्म को पराजित नहीं कर सका ऐसा कहकर भगवान् परशुराम महेन्द्र पर्वत पर चले गये। दु:खी होकर अम्बा ने भीष्म के वध के लिये भगवान् शंकर की आराधना की, भगवान् ने वरदान दिया की तुम राजा द्रुपद के यहाँ शिखण्डिनी बालिका होकर फिर उसी जन्म में शिखण्डी पूर्ण पुरुष बनकर भीष्म का वध करोगी, यह सुनकर काशिराज की पुत्री अम्बा ने प्रयागराज यमुना में रहकर कठोर तप किया । गङ्गा जी भीष्म की माता है, यह जानकर अम्बा गङ्गा से दूर ही रहती थी । गङ्गा जी ने अम्बा को समझाया कि पुत्रि ! तुम्हारी इस दशा में भीष्म का कोई हाथ नहीं है, फिर भी अम्बा ने भीष्मवध के लिये प्रयागराज में तथा अन्य तीर्थो में भ्रमण करके कठोर तप किया।

तत्र पुण्येषु तीर्थेषु साऽऽप्लुताङ्गी दिवानिशम् । व्यचरत् काशिकन्या सा यथाकामचारिणी ।
प्रयागे देवयजने देवारण्ये चैव हि ।।

(म०भा०उ०पर्व१८६/२५-२७)

प्रयागराज प्रजापति ब्रह्मा जी की यज्ञ भूमि है, संगम में प्रधान तीन कुण्ड हैं, कुण्डों में या संगम में स्नान का अक्षय फल बताया गया है -

हरिश्च भगवानास्ते प्रजापतिपुरस्कृतः । तत्र त्रीण्यग्निकुण्डानि येषां मध्येन जाह्नवी ।।७३।।

(म०भा०वन०८५/७३)

दस हजार प्रधान तीर्थ तथा तीस करोड़ अन्य तीर्थ प्रयागराज में निवास करते हैं -

दशतीर्थसहस्राणि त्रिंशत्कोट्यस्तथापराः । प्रयागे संस्थितानि स्युरेवमाहुर्मनीषिणः ।।

(कूर्मपु० १/३७/६)

प्रयागराज में अनन्त तीर्थों का, देवताओं का वास रहता है, प्रयागराज की महिमा को सुनने और तीर्थों के गमन, स्नानादि से पूर्व जन्म की स्मृति भी प्राप्त हो जाती है -

यश्चेदं शृणुयान्नित्यं तीर्थं पुण्यं सदा शुचिः । जातिस्मरणत्वं लभते नाकपृष्ठे च मोदते।।

(कूर्मपु० १/३७/१३)

प्रयागमण्डल की रक्षा भगवान् विष्णु सभी देवताओं के साथ करते हैं -

मण्डलं रक्षति हरिः सर्वदेवैश्च सम्मितम् ।

(कूर्मपु० १/३४/२४)

तीर्थराज प्रयाग संगम क्षेत्र प्रजापति की यज्ञ भूमि है.तीनों लोकों में विख्यात है यहाँ किया गया स्नान स्वर्ग को देने वाला है प्रयागराज में मृतकों का पुनर्जन्म नहीं होता -

एतत् प्रजापतिक्षेत्रं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् । अत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः ।।

(कूर्मपु० १/३४/२०)

प्रयागराज में जाने के लिये, निवास के लिये माता-पिता, लोक सगे सम्बन्धी भी यदि मना करते हों तो उनकी आज्ञा का उलंघन कर प्रयाग जाना चाहिये, यह प्रयागराज की महिमा है -

न मातृवचनात् तात न लोकवचनादपि । मतिरुत्क्रमणीया ते प्रयागगमनं प्रति ।।

(कूर्मपु० १/३५/१३)

प्रयागराज देवताओं की यज्ञभूमि है इस संगम में देवताओं ने स्नान किया है और तपस्वीजनों ने यहाँ तप किया है, इस प्रयागराज के संगम में स्नान का फल अग्निष्टोम याग बताया है -

प्रयागे देवयजने देवानां पृथिवीपते । अत्राप्लुत्य गात्राणि तपश्चातस्थुरुत्तमम् ।।४।।
गङ्गायमुनयोश्चैव संगमे सत्यसंगराः ।।५।।
विपाप्मानो महात्मानो विप्रेभ्यः प्रददुर्वसुः । तपस्विजनजुष्टां च ततो वेदी प्रजापते ।।६।।
प्रयागं नाम तीर्थं तु देवानामपि दुर्लभम् । यस्मिन् स्नातो नरो देवि! अग्निष्टोमफलं लभेत् ।।७।।

(वाराहपु० १५०/३५)

तीर्थराज प्रयाग ब्रह्मतीर्थ (ब्रह्मा जी का) स्थान है -

प्रयागे ब्रह्मतीर्थे - (वाराहपु० २/५/१२)

प्रयागराज सभी भोगों को देने वाले, मुक्ति को देने वाले हैं, प्रयाग में भगवान् विष्णु, सभी सरितायें, सभी सागर, देवी-देवता, सिद्ध गन्धर्व का वास है, संगम के तीन पवित्र कुण्डों में गङ्गा जी का गमन है -

वक्ष्ये प्रयागमाहात्म्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं परम् । प्रयागे ब्रह्मविष्णवाद्या देवा मुनिवराः स्थिता ।।
सरितः सागराः सिद्धाः गन्धर्वाप्सरसस्तथा । तत्र त्रीण्यग्निकुण्डानि तेषां मध्ये तु जाह्नवी ।।

(अग्निपु० १११/१-२)

प्रयागराज में प्रतिष्ठानपुरी (झूसी), कम्बल, अश्वतर, भोगवती प्रधान तीर्थ स्थान हैं, इन तीर्थ स्थानों के नाम, स्मरण और मिट्टी के लेपन से अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है-

प्रयागं स प्रतिष्ठानं कम्बलाश्वतरावुभौ । तीर्थं भोगवती चैव वेदी प्रोक्ता प्रजापते ।।
तत्र वेदाश्च यज्ञाश्च मूर्तिमन्तः प्रयागके । स्तवनादस्य तीर्थस्य नामसंकीर्तनादपि ।।
मृत्तिकालम्भनाद्वापि सर्वपापः प्रमुच्यते ।।

(अग्निपु० १११/५-६-७)

प्रयागराज सिता (श्वेत-गङ्गा), असिता (श्यामा-यमुना) और विदर्भित (अदृश्य प्राची) सरस्वती के जल का संगम स्थान है, भगवान् ब्रह्मा जी ने प्राणियों की हित कामना के लिये इस स्थान को बनाया है -

पापौघैर्भुवि भारस्य दहायेमं प्रजापतिः ।।
प्रयागं विदधे देवि प्रजानां हितकाम्यया ।। स्नानस्थानमिदं सम्यक् सितासितजलं किल ।।

पापरूपपशूनां हि ब्रह्मणा निर्मितं पुरा । सितासिता तु या धारा सरस्वत्या विदर्भिता ।।

(नारदपु०उ०ख०६३/२१- २३)

प्रयागराज का विस्तार पांच योजन (अर्धव्यास १३ कि०मी० लगभग ७५ कि०मी० वृत्तपरिधि) दिया गया है, इस भूमि में प्रवेश मात्र से ही अश्वमेध फल की प्राप्ति होती है-

पंचयोजनविस्तीर्णं प्रयागस्य तु मण्डलम् । प्रवेशादस्य भूमौ तु अश्वमेधः पदे पदे ।।

(नारदपु०उ०खं० ६३/४४)

प्रयागराज प्रजापति क्षेत्र है बहुमूलक आदि प्रमुख तीर्थ स्थान हैं । इसके मुख्य तीर्थों में प्रतिष्ठानपुरी झूसी, वासुकी ह्रद (कुण्ड), कम्बल, अश्वतर, बहुमूलक आदि प्रमुख हैं, यदि कोई प्रयाग का स्मरण करता हुआ अपने प्राणों को त्यागता है तो उसे ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है -

आ प्रयागात्प्रतिष्ठानान्मत्पुरो वासुकेर्ह्रदात् ।।

कम्बलाश्वतरौ नामौ नागादबहुमूलकात् । एतत्प्रजापतेः क्षेत्रं त्रिषुलोकेषु विश्रुतम् ।।

(नारदपु०उ०ख०६३/१२९-१३०)

ब्रह्मा, विष्णु, महेश, प्रयागराज में ही वास करते हैं-

प्रयागे निवसन्त्येते ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।

(पद्मपु०स्वर्ग०४८/९)

युधिष्ठिर उन लोगों का जन्म सफल नहीं है जिन्होंने तीनों लोकों में विख्यात प्रयागराज की यात्रा नहीं की है -

न ते जीवन्ति लोकेऽस्मिन् यत्र तत्र युधिष्ठिर । ते प्रयागं न सम्प्राप्तास्त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।।

(कूर्मपु०१/३५/१६)

तीर्थ स्थान में कपिला गौ के दान का माहात्म्य है -

कपिलां पाटलावर्णां यस्तु धेनुं प्रयच्छति । स्वर्णश्रृंगीं रौप्यखुरां चैलकण्ठां पयस्विनीम् ।।

(कूर्मपु०१/३४/४५)

तीर्थ स्थानों में किसी से भी भूमि, धन, स्वर्ण, मणि, माणिक्य आदि मांगने का सर्वथा निषेध है-

गंगायमुनयोर्मध्ये यस्तु ग्रामं प्रतीच्छति । सुवर्णमथ मुक्तां वा तथैवान्यान् प्रतिगृहान् ।।
स्वकार्ये पितृकार्ये वा देवताभ्यर्चनेऽपि वा । निष्फलं तस्य तत् कार्यं यावत् तत्फलमश्नुते ।।

(कूर्मपु०१/३४/४२-४३)

गङ्गा और यमुना के मध्य में जो कन्यादान करता है उसे अनन्त फलों की प्राप्ति होती है -

गंगायमुनयोर्मध्ये यस्तु कन्यां प्रयच्छति । आर्षेण तु विवाहेन यथाविभवविस्तरम्।।

(कूर्मपु०१/३५/६)

तीर्थ स्थानों में दिये गये दान से स्वर्गलोकों की प्राप्ति होती है -

अत्र दानाद्दिवं यान्ति राजेन्द्रो जायतेऽत्र च ।।

(अग्नि०पु०१११/१२)

गङ्गादि तीर्थों पर पहुँचकर मुण्डनकर्म आवश्यक है, अन्यथा तीर्थ के आगमन का उचित फल प्राप्त नहीं होता है और पाप ही लगता है -

गङ्गां सम्प्राप्य यो देवि मुण्डनं नैव कारयेत् । क्रिया तस्याक्रिया सर्वा तीर्थद्रोही भवेत्तथा ।।

(नारदपु०उ०खं०६२/४९)

प्रयागराज में मुण्डन कर्म अत्यावश्यक है -

प्रयागव्यतिरेके तु गंगायां मुण्डनं नहि ।।

(नारदपु०उ०खं०६२/५३)

प्रयागराज में मुण्डन कराने का अत्यन्त माहात्म्य है, यदि प्रयाग में मुण्डन किया गया हो तो गया में पिण्डदान, काशी में शरीर त्याग, कुरुक्षेत्र में दान करने की आवश्यकता नहीं है -

किं गया पिंडदानेन काश्यां वा मरणेन किम् । किंकुरुक्षेत्रदानेन प्रयागे मुण्डनं यदि ।।

(नारदपु०६३/१०६)

तीर्थस्थान में आये हुये यात्रियों के पाप केशों में (बालों में) आ जाते हैं, इसलिये अवश्य ही मुण्डन कराना चाहिये -

केशमूलान्युपाश्रित्य सर्वपापानि देहिनाम् । तिष्ठन्ति तीर्थस्नानेन तस्मात्तान्यत्र वापयेत् ।।

(नारदपु०उ०खं०६३/१०९)

प्रयागराज में सामर्थ्यानुसार दान का माहात्म्य है -

दानं प्रयागे कर्तव्यं यथाविभवविस्तरम् ।

(नारदपु०६३/११३)

गङ्गा-यमुना के संगम में गौ का दान अवश्य करें -

गङ्गायमुनयोर्मध्ये यस्तु गां वै प्रयच्छति । सा च गौस्तस्य दातव्य गंगायमुनसंगमे ।।

(नारदपु०६३/११४-११७)

गङ्गा-यमुना के मध्य में कन्यादान प्रशस्त माना गया है -

गंगायमुनयोर्मध्ये यस्तु कन्यां प्रयच्छति ।।

(नारदपु०६३/१२५)

कम्बल-अश्वतर, वासुकि नाग, प्रतिष्ठानपुरी और बहुमूलक नाग इन चारों क्षेत्रों के मध्य संगम भाग, प्रजापति क्षेत्र है -

कम्बलाश्वतरौ नागौ नागाच्च बहुमूलकात् । एतत्प्रजापतेः क्षेत्रं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।।५।।

(मत्स्यपु०१०४/५)

●

त्रिवेणी संगम महिमा - ६

प्रयागराज, इलाहाबाद का सर्व प्रसिद्ध तीर्थ स्थान त्रिवेणी है । यहाँ दृश्य भगवती गङ्गा-यमुना का और अदृश्य सरस्वती का संगम हैं । जैसे तीन वेणी (बालों की लटा) गूंथने पर दो दी दिखाई देती है, तीसरी वेणी लुप्त हो जाती है वैसे ही तीसरी वेणी सरस्वती भी यहाँ अदृश्य है । त्रिवेणी के संगम में अनेक तीर्थ स्थान है । शास्त्रों में करोड़ों तीर्थों का वर्णन है । त्रिवेणी प्रयाग मण्डल की हृदय स्थली है । यहाँ मुण्डन-वेणीदान, स्नान, दान, मरण, अस्थि विसर्जन, श्राद्ध का बड़ा महत्त्व है । स्त्रियों का मुण्डन-वेणीदान का भी विधान है, सधवा स्त्रियाँ अपनी वेणी का कुछ हिस्सा ही दान करें । शास्त्रों के अनुसार मूल वेणी, अन्तर्वेणी अक्षयवट के पास संगम स्थल, मध्यवेदी संगम स्थल से नाग वासुकि ह्रद, प्रतिष्ठानपुरी झूसी, बहुमूलक, कम्बल-अश्वतर- चारों दिशाओं तक लगभग तीन किलोमीटर अर्धव्यास का क्षेत्र, प्रयागमण्डल- संगम स्थल से लगभग तेरह किलोमीटर बहिर्वेदी है । गङ्गा जी का धवल जल, यमुना जी के श्यामल जल से जहाँ मिलता है वह स्थान संगम के नाम से विश्व प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है । एक प्रमाण के अनुसार संगम क्षेत्र बीस धनुष माना गया है, एक धनुष् की लम्बाई चार हाथ लगभग छह फीट होती है, इस तरह संगम क्षेत्र मध्य संगम से एक सौ बीस फीट का अर्धव्यास होता है । धनुष् से बाण का विस्तार भी समझा जाता हैं । एक बाण के सन्धान की दूरी लगभग दो सौ फीट मानी गई है, सावन, भादौ के समय संगम क्षेत्र लगभग डेढ़ किलोमीटर का हो जाता है । श्वेत और श्याम जल का दर्शन संगम स्थल पर साफ-साफ देखा जाता है । प्राचीन काल में प्रयागराज में सरस्वती नदी (प्राची सरस्वती) थी इसके प्रमाण शास्त्रों में प्राप्त होते हैं, जैसे पश्चिम वाहिनी सरस्वती लुप्त हो गई, वैसे ही पूर्व वाहिनी सरस्वती भी लुप्त हो गई । यह माना जाता है कि सभी नदियाँ ऊपर से सूख जातीं है परन्तु उनका जल अन्दर ही अन्दर बहता रहता है, इसलिये प्रयागराज संगम, गङ्गा, यमुना, सरस्वती तीन नदियों के मिलने के कारण त्रिवेणी संगम के नाम से विश्व प्रसिद्ध है ।

तीर्थाभिगमनं पुण्यं यज्ञैरपि विशिष्यते ।।
अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्ट्वा विपुलदक्षिणैः। न तत्फलमाप्नोति तीर्थाभिगमनेन यत् ।।
अज्ञानेनापि यस्येह तीर्थाभिगमनं भवेत् । सर्वकामसमृद्धः स स्वर्गलोके महीयते ।।
नृणां पापकृतां तीर्थे पापस्य शमनं भवेत् ।।
यथोक्तफलदं तीर्थं भवेच्छुद्धात्मनां नृणाम् ।।
भावं ततो हृत्कमले निधाय तीर्थानि सेवेत समाहितात्मा ।।

- तीर्थों की यात्रा, तीर्थों में स्नान, जप, तप महायज्ञों से भी बढ़कर है । तीर्थ सभी पापों को नष्ट कर मनुष्य की आत्मा को निर्मल बनाते हैं- ऐसे विचारों को रख कर तीर्थ यात्रा और तीर्थों में वास करना चाहिये । (नारदीयपु०उ०खं०६२/७-२०-२१)

प्रयागराज (संगम स्थान) गङ्गा-यमुना के मध्यभाग को प्रकृति की योनि कहा गया है- यहाँ गङ्गा

और यमुना के मध्य में की गई साधना तत्काल फलवती होती है -

गंगायमुनयोर्मध्ये पृथिव्यां जघनं स्मृतम् ।।
प्रयागं जघनस्थानमुपस्थमृषयो विदुः ।।

(म०भा०वन ८५/७५-७६)

सूर्यपुत्री यमुना और गङ्गा का संगम तीनों लोकों में विख्यात है -

वेगेन समतिक्रान्ता सर्वतीर्थपुरस्कृता । तपनस्य सुतादेवी त्रिषु लोकेषु विश्रुता ।।
यमुना गंगया सा सार्धं संगता लोकपावनी ।।

(म०भा०वन ८५/७४-७५)

तीर्थराज में निवास स्वर्ण के तुल्य, यज्ञ करने के तुल्य और सभी धर्मों को करने के तुल्य है-

इदं धन्यमिदं स्वर्ग्यमिदं मेध्यमिदं सुखम् । इदं पुण्यमिदं रम्यं पावनं धर्म्यमुत्तमम् ।।

(कूर्मपु०१/३७/११)

भगवान् विष्णु प्रयागराज में त्रिवेणी, संध्यावट, अक्षयवट, सुतीर्थ, तीर्थकारी, तीथराज, व्रती और व्रत हैं -

प्रयागे वेणुमान्वेणी न्यग्रोधश्चाक्षयो वटः । सुतीर्थस्तीर्थकारी च तीर्थराजो व्रती व्रतः ।।

(स्कन्दपु०५/१/६३/६५)

तीर्थराज में किया गया स्नान सभी तीर्थों के फल को देता है -

तीर्थराजकृतस्नानः सर्वतीर्थफलं लभेत् ।।४८।।

(स्कन्दपु०५/२/३०/४८)

प्रयागराज संगम में भगवान् का अभिषेक-पूजन, राजसूय-अश्वमेधयज्ञ के बराबर फल है, गङ्गा-यमुना के संगम में शरीर छूटने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है -

तत्राभिषेकं यः कुर्यात् संगमे संशितव्रतः । तुल्यं फलमवाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः ।।
या गतिर्योगयुक्तस्य सत्त्वास्थस्य मनीषिणः । सा गतिस्त्यजतः प्राणान् गंगायमुने संगमे ।।

(कूर्मपु०१/३५/१२-१५)

पश्चिम मुखी गङ्गा का कालिंदी (यमुना) के साथ प्रयागराज में संगम होता है । माघ मास में त्रिवेणी संगम में स्नान से सभी प्रकार के पापों का नाश हो जाता है, अमृतफल की प्राप्ति होती है जो देवताओं को भी दुर्लभ है -

पश्चिमाभिमुखी गंगा कालिंद्या सह संगता । हन्ति कल्पशतं पापं माघाद्ये देवि दुर्लभा ।।५।।
अमृतं कथ्यते भद्रं सावेणी भुवि संगता ।

(बृ०नारदीयपु०६३/५-६)

युधिष्ठिर गङ्गा यमुना का पवित्र संगम लोक प्रसिद्ध और ऋषियों से सेवित है -

पवित्रमृषिजुष्टं पुण्यं पावनमुत्तमम् । गङ्गायमुनयोर्वीर संगमं लोकविश्रुतम् ।।

(म०भा०वन ८७/१८)

संगम क्षेत्र प्रमाण- बीस धनुष् - एक धनुष् चार हाथ लगभग छह फीट का माना जाता है, अतः संगम क्षेत्र का प्रमाण लगभग एक सौ बीस फीट अर्धव्यास है। (धनुष् से धनुष्- बाण भी माने जाते हैं, एक बाण का सन्धान लगभग दो सौ फीट दूर माना गया है, इस प्रमाण के अनुसार सावन-भादौ में संगम क्षेत्र लगभग डेढ़ किलोमीटर अर्ध व्यास का हो जाता है) गङ्गा और यमुना दोनों समान फल को देने वाली पवित्र नदियाँ हैं -

धनुर्विंशतिविस्तीर्णे सितनीलाम्बुसंगमे ।

(नारदपु०उ०ख०६३/९०)

त्रिवेणी में किया गया स्नान वैकुण्ठ लोक की प्राप्ति कराता है, जैसे सूर्य अन्धकार को नष्ट करता है वैसे ही मनुष्य के सभी पाप त्रिवेणी में स्नान करते ही समाप्त हो जाते हैं -

वेण्यां स्नानं प्रकुर्वाणो वैकुण्ठं प्रति गच्छति ।।

उदिते च तथा सूर्ये विलयं यान्ति वै तमः । तथैव तस्यां पापानि नश्यन्ति स्नानमात्रतः।।

(पद्मपु०८१/३८-३९)

गङ्गा-यमुना-सरस्वती (प्राची सरस्वती) के संगम की प्रशंसा ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी करते हैं-

गंगायाः यमुनायाश्च सारस्वत्याश्च संगमे । प्रशंसन्ति सुराः सर्वे ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।।

(पद्मपु०क्रिया ४/५)

प्रयाग संगम में किया गया दान, श्राद्ध, जपादि अक्षय फलों को देते हैं -

प्रयागे संगमे दानं श्राद्धं जप्यादि चाक्षयम् ।।७।।

(अग्निपु०१११/७)

महाकवि कालिदास गङ्गा-यमुना के संगम में किये गये स्नान से मुक्ति बताते हैं -

समुद्रपत्न्योर्जलसन्निपाते पूतात्मनामत्र किलाभिषेकात् ।

तत्त्वावबोधने विनाऽपि भूयस्तनुत्यजां नास्ति शरीरबन्धः।।

(रघुवंश १३/५८)

●

प्रयागराज के प्रमुख तीर्थ - ७

ब्रह्मा जी की पूर्ववेदी प्रतिष्ठानपुरी (झूसी) के तीर्थ -

प्रतिष्ठानपुरी (झूसी) -

पूर्वपार्श्वे तु गंगायास्त्रैलोक्ये ख्यातिमान् नृपः । अवटः सर्वसामुद्रः प्रतिष्ठानं च विश्रुतम् ।।
ब्रह्मचारी जितक्रोधस्त्रिरात्रं यदि तिष्ठति । सर्वपापविशुद्धात्मा सोऽश्वमेधफलं लभेत् ।।
(कूर्मपु० १/३५/२१-२२)

एवमेषा महाभाग प्रतिष्ठाने प्रतिष्ठिता । तीर्थयात्रा महापुण्या सर्वपापप्रमोचनी ।।
(पद्मपु०स्व० ३९/११०)

ईश्वरः सर्वभूतानां यः पश्यति स पश्यति । उत्तरेण प्रतिष्ठानादिदानीं ब्रह्म तिष्ठति ।।
(पद्मपु०स्व०४८/५)

आप्रयागं प्रतिष्ठानादापुराद्वासुके ह्रदात् । (मत्स्यपु० १०४/५)

उत्तरेण प्रतिष्ठानाच्छद्मना ब्रह्म तिष्ठति । वेणीमाधवरूपी तु भगवांस्तत्र तिष्ठति ।।

प्रतिष्ठानपुरी (झूसी) - बहुत ही पुरानी नगरी है । आधुनिक खनन वेत्ताओं के अनुसार झूसी का इतिहास छः हजार से १२ हजार वर्ष प्राचीन है । यह प्रतिष्ठानपुरी झूसी हडप्पा, मोहनजोदड़ो, संस्कृति से भी प्राचीन है । प्रतिष्ठानपुरी (झूसी) का नाम और माहात्म्य शास्त्रों में प्रयागराज के समानान्तर प्राप्त होता है । चन्द्रवंशीय राजा पुरूरवा-उर्वशी (अप्सरा) की राजधानी यहीं पर थी । महाकवि कालिदास प्रतिष्ठानपुरी का उल्लेख करते हैं । महाभारत में वन पर्व के अनुसार यह प्रजापति ब्रह्मा की पूर्व वेदी के अन्तर्गत है । यहाँ राजा ययाति की राजधानी थी, यहाँ गालव और गरुड आये थे । विष्णु पुराण के अनुसार यहाँ पहले राजा मनु का अधिकार था, मुनि वशिष्ठ के कहने पर मनु ने सुद्युम्न को प्रतिष्ठान नामक नगर दे दिया । सुद्युम्न ने पुरुरवा को दिया, यह स्थान उर्वशी अप्सरा और चन्द्रवंशीय महाराज पुरूरवा की लीला भूमि है ।

इस समय प्रतिष्ठानपुरी, झूसी के नाम से जानी जाती है, परम्परा से सन्ध्यावट, प्रतिष्ठापुरी-झूसी भगवान् गोरखनाथ तथा उनके गुरु भगवान् मत्स्येन्द्रनाथ आदि नाथों की तपस्थली मानी जाती है । प्रसिद्धि है कि भगवान् गोरखनाथ एवं उनके गुरु भगवान् मत्स्येन्द्रनाथ (मच्छन्दरनाथ) ने रुष्ट होकर शाप दिया था, जिससे झूसी उलट गयी और यह झुलस गयी, इसी का अपभ्रंश झूसी शब्द है । यहाँ प्राचीन गौरव के अवशेष अभी भी देखे जा सकते हैं । समुद्रकूप के पास आज भी प्राचीन किले के अवशेष प्राप्त होते हैं । सैकड़ों वर्ष पूर्व ही इस किले को खजाने और बहुमूल्य वस्तुओं के लालच में एक-एक इञ्च खोद-खोद कर खण्डहर कर दिया गया, ईंट-पत्थर उठाकर लोग ले गये । किले का कुछ भाग पुरातत्त्व मंत्रालय भारत सरकार के अधीन है । यह किला गंगा और यमुना के संगम की ओर दक्षिण-पश्चिम दिशा की तरफ मुंह किये हुये है । यदि इस किले पर चढ़कर दाहिनी तरफ छः

किलोमीटर और बाँयी तरफ छ: किलोमीटर देखेंगे तो जमीन धनुष् की तरह ढ़ाल वाली दिखेगी। यह किला वर्तमान में भी संगम के जलस्तर से लगभग २०० फीट ऊँचा है। कहने का तात्पर्य यह है कि गंगा-यमुना की बाढ़ को रोकने के लिये लगभग १०० किलोमीटर स्क्वायरफीट मिट्टी का भराव करके किले के रूप में प्रतिष्ठानपुरी नगर को सुरक्षा दी गई थी। मिट्टी के भराव के चिह्न गंगा किनारे खड़े होकर देखने से समझ में आ सकते हैं। यह मालुम होता है कि प्रतिष्ठानपुरी झूसी लगभग १०० स्क्वायर किलोमीटर में विकसित प्राचीन नगर था। सन् १९७५ में झूसी से निकलने वाले राष्ट्रिय राजमार्ग-२ का भराव और ऊठान प्रतिष्ठानपुरी के टीलों और मिट्टी से ही किया गया था। आज से बीस वर्ष पूर्व तक प्रतिष्ठानपुरी झूसी, सन्ध्यावट के आस-पास सैकड़ों की संख्या में बड़े-बड़े टीले (Mounds) थे। जिनकी खुदाई और समतलीकरण सत्यम् क्रियायोग द्वारा कुछ वर्ष पूर्व किया गया है।

यह प्रसिद्धि है कि गंगा-यमुना के बीच, पाट में सम्राट् अकबर के द्वारा बनाये गये सैकड़ों एकड़ क्षेत्रफल के किले का भराव और उठान झूसी के ही मलबे से किया गया था। प्राचीन और नवीन झूसी के मध्य हंसकूप नामक पवित्र कूप है। यह पवित्र कूप तीर्थयात्रियों की आस्था का केन्द्र था। कुछ ही वर्ष पूर्व तक यात्री इस कूप के जल से स्नान और पीने का जल प्राप्त करते थे। हंसकूप के पूर्व संध्यावट है, यह गङ्गाजी के पूर्वभाग में स्थित संध्यावट अक्षयवट की तरह ही महत्त्वपूर्ण है, प्रयागराज की परिक्रमा में संध्यावट के नीचे रात्रिविश्राम किया जाता था तथा द्वादश माधवों में संकष्टहर माधव का मन्दिर भी १५ वर्ष पूर्व तक था, जिसके छायाचित्र कल्याण के तीर्थाङ्क पृष्ठ १७५ पर प्राप्त हैं। भगवान् संकष्टहर माधव के मन्दिर एवं अन्य मन्दिरों को सत्यम् क्रियायोग द्वारा वर्ष- २००९ में तोड़ दिया गया है। सत्यम् क्रियायोग की रजिस्ट्री में ''एक मन्दिर'' के होने का उल्लेख भी है। संध्यावट तीर्थ और हंसमन्दिर तीर्थ इस समय सत्यम् क्रियायोग के कब्जे में है, राजस्व के अभिलेख में संध्यावट का भूखण्ड **कदीमी** (कदीमी का तात्पर्य है- ऐसा स्थान जिस पर किसी का भी व्यक्तिगत कब्जा न हो और वह सार्वजनिक उपयोग में आता हो) इन स्थानों पर यात्रियों का आवागमन प्रतिबन्धित कर रखा है। प्रतिष्ठानपुरी झूसी के मुख्य तीर्थों में गंगा का किनारा- उर्वशी-पुलिन, हंसकूप, संध्यावट, उर्वशी-ह्रद, हंसप्रपतन, समुद्रकूप आदि प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है, ये सभी तीर्थ स्थान संकट में हैं और अधिकांश कब्जे में हैं। प्रशासन को अविलम्ब तीर्थस्थानों को कब्जे से मुक्त कराना चाहिये।

हंसप्रपतन -

हंसप्रपतनं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।। (पद्मपु०स्व०४३/३१-३३)

प्रयागं जघनस्यान्तमुपस्थमृषयो विदुः । उत्तरेण प्रतिष्ठानाद्भागीरथ्यास्तु पूर्वतः ।

हंसप्रपतनं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।। (मत्स्यपु०१०६/३२)

उत्तरेण प्रतिष्ठानं भागीरथ्यास्तु सव्यतः । हंसप्रपतनं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।।

(कूर्मपु०३५/२३)

यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च तावत् स्वर्गे महीयते ।।

(कूर्मपु० १/३५/२४), (नारदपु०उ०खं० ६३/९६)

प्रतिष्ठान पुरी झूसी का किनारा उर्वशी-पुलिन के नाम से प्रसिद्ध है यहीं पर हंसप्रपतन नाम का तीर्थ भी है । हंसप्रपतन का शाब्दिक अर्थ है कि हंसों के उतरने का, रहने का स्थान । आज से ४० वर्ष पूर्व तक इस हंसप्रपतन, गंगा किनारे झूसी क्षेत्र में सर्दियों के मौसम में हंसों के जोड़े आया करते थे । आबादी और कोलाहल के कारण इनका आना इस समय बन्द हो गया है । हंसप्रपतन, हंसतीर्थ और उर्वशी-पुलिन, उर्वशी कुण्ड, संध्यावट ये सभी तीर्थ प्रतिष्ठानपुरी झूसी, गंगा के किनारे के आस-पास के तीर्थ स्थान वर्तमान में सत्यम् क्रियायोग के कब्जे में हैं और अवैध निर्माणों से भरे हुये हैं । प्रशासन द्वारा अवैध निर्माण हटाकर तीर्थों का उद्धार किया जाना बहुत आवश्यक है । जिससे मेले का फैलाव और तीर्थयात्रियों को सुविधा के साथ ही धार्मिक स्थलों के दर्शन, आवास का पुण्य प्राप्त हो सके । हंसप्रपतन तीर्थक्षेत्र गङ्गाजी का किनारा, मौनी आश्रम के नीचे ब्रह्म बाबा पीपल के पेड़ के नीचे है । इस गङ्गा के किनारे पर सत्यम् क्रियायोग ने अवैध निर्माण और कब्जा कर रखा है । यह किनारा राजस्व भूखण्ड संख्या- ३७-३८ में आता है । अवैध निर्माण तत्काल हटाना चाहिये ।

उर्वशी पुलिन -

उर्वशीपुलिने रम्ये विमले हंसपाण्डुरे । परित्यजति यः प्राणान् शृणु तस्यापि यत् फलम् ।।
षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च । आस्ते स पितृभिः सार्धं स्वर्गलोके नराधिप ।।

(कूर्मपु० १/३५/२५-२६)

उर्वशीपुलिने रम्ये विपुले हंसपाण्डुरे । सलिलैस्तर्पयेद्यस्तु पितॄंस्तत्र विमत्सरः ।।

(पद्मपु०स्व०४३/३५)

उर्वशीसदृशीनां तु कन्यानां लभते शतम् । काञ्चीनूपुरशब्देन सुप्तोऽसौ प्रतिबुध्यते ।।

(पद्मपु०स्व०४३/३९)

सुवर्णालङ्कृतानां तु नारीणां लभते शतम् ।
उर्वशीपुलिने रम्ये विपुले हंसपाण्डुरे । (बृ.नारदीयपु. १४२/१४९)
परित्यजति यः प्राणान् शृणु तस्यापि यत्फलम् ।।

(मत्स्यपु. १०६/३४)

उर्वशी पुलिन- यह प्रसिद्ध स्थान झूसी के ही समीप गंगा जी के किनारे को कहते हैं । इसे उर्वशी तीर्थ भी कहा गया है । यहाँ उर्वशी कुण्ड भी था जो अतिक्रमण के कारण सत्यम् क्रियायोग द्वारा भराव करके पाट दिया गया है । इस तीर्थ स्थान का अत्यन्त माहात्म्य शास्त्रों में बताया गया है- इस तीर्थ में किया गया स्नान, पितरों को दिया गया श्राद्ध, तर्पण, पितृगणों को अनन्तकाल तक शान्ति देता है । इसमें स्नान करने से सौभाग्यशाली पत्नी की प्राप्ति होती है । उर्वशी-पुलिन तीर्थक्षेत्र गङ्गाजी का किनारा, मौनी आश्रम के नीचे ब्रह्म बाबा पीपल के पेड़ के नीचे है । इस गङ्गा के किनारे

पर सत्यम् क्रियायोग ने अवैध निर्माण और कब्जा कर रखा है। यह किनारा राजस्व भूखण्ड संख्या-३७-३८ में आता है। अवैध निर्माण तत्काल हटाना चाहिये।

हंसकूप / हंस मन्दिर -

हंसप्रपतनं नाम तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।। (नारदीयपु० ६३/९५)

कूपं चैव तु तत्रास्ति प्रतिष्ठानेऽतिविश्रुतम् । तत्र स्नात्वा पितृन्देवान्संतर्प्य यतमानसः ।।
(नारदपु०उ०खं०६३/९३)

प्राचीन और नवीन झूसी के मध्य गंगा किनारे हंसकूप नामक खण्डहरनुमा पवित्र कूप स्थित है। झूसी में स्थित हंसतीर्थ या हंसकूप का उल्लेख वराह पुराण व मत्स्य पुराण में भी मिलता है। यह धार्मिक महत्व का पक्का कुआं है। इस पर लिखा है कि इसका पानी पीने व स्नान करने से मोक्ष प्राप्त होता है। इसके दक्षिण पूर्वी कोने पर एक हंस मन्दिर नाम का स्थान है, जिसका जीर्णोद्धार विक्रम सम्वत् १९२९ में जिला भागलपुर के शाहपुर सोनवरसा के निवासी क्षत्रिय जमीनदार ठाकुर प्रसाद जी ने साधुत्व धारण करने के बाद किया था। यह स्थान हठ योगियों के लिए विशेष महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसके द्वारा मानव शरीर के आन्तरिक रूप का दर्शन कराया गया है। इस तीर्थ का आकार पान के समान है। इसको सहस्त्रदल कमल भी कहते हैं। योगियों के मुक्ति हेतु निराकार योगाभ्यास समझाने के लिए हंसतीर्थ में योग की सारी क्रियाएं साकार रूप में दर्शायी गयी हैं। ऐसा मन्दिर अन्यत्र कहीं भी नहीं है। विशेष विवरण एवं चित्र के लिये ''प्रयाग प्रदीप'' देखें। इस मन्दिर पर सत्यम् क्रियायोग द्वारा सन् २०१५ में कब्जा कर लिया गया है और मन्दिर के अधिकांश भाग को तोड़ दिया है और मूर्तियों को इधर-उधर कर दिया है। यात्रियों का आना-जाना भी निषिद्ध है। यह तीर्थ स्थान कब्जों से तत्काल मुक्त होना चाहिये। पौराणिक हंसकूप राजस्व अभिलेख में भूखण्ड संख्या-१९ नं० नाले के पास स्थित है। हंसकूप जर्जर हालत में है और उपेक्षित अवस्था में है। इसका पुनरुद्धार होना चाहिये और धार्मिक महत्त्व स्थापित होना चाहिये।

सन्ध्यावट -

- संध्यावट के नीचे रहकर ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये उपवास पूर्वक शुद्धता से निवास किया जाये तो ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। भगवान् शंकर साक्षात् संध्यावट के रूप में देवताओं, गन्धर्वों, सिद्धों और महर्षियों के साथ निवास करते हैं। संध्यावट का स्मरण सभी प्रकार की इच्छाओं को पूरा करने वाला है। संयम पूर्वक इसके नीचे वास करने से मनोकामनायें पूर्ण होती है। संध्यावट का माहात्म्य भी अक्षयवट की तरह ही शास्त्रों में वर्णित है।

अथ सन्ध्यावटे रम्ये ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः । उपवासी शुचिः सन्ध्यां ब्रह्मलोकमाप्नुयात् ।।
(मत्स्यपु० १०६/४३

अथ सन्ध्यावटे रम्ये ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः । नरः शुचिरुपासीत ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ।।
(कूर्मपु० ३५/२७)

स भुक्त्वा विपुलान्भोगाँस्तत्तीर्थं स्मरति पुनः । अथ तस्मिन्वटे रम्ये ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ।।
(पद्मपु०स्व०४३/४३)

उर्वशीपुलिनं रम्यं तीर्थं संध्यावटस्तथा ।। (अग्निपु०१११/१३)

तथापि वर्तते संध्यावटाधस्तस्य चाश्रमः। तस्मिन्वसति धर्मात्मा संकष्टहरमाधवः ।।३८।।
तस्माद्विजवराः सर्वे गत्वा सन्ध्यावटान्तिके । सन्ध्यामुपास्य विधिवत्पूजयन्ति च माधवम् ।।४२।।
एवं सन्ध्यावटं प्रार्थ्य मुच्यन्ते लोपपातकात् । प्रसन्नश्चाभवत्तेषां संकष्टहरमाधवः ।।४४।।
(प्रयागशताध्यायी अ०७५/३८,४२,४४)

सन्ध्यावट- जैसे गंगा के दक्षिण-पश्चिम भाग में अक्षयवट का माहात्म्य है वैसे ही गंगा के पूर्व-उत्तर भाग में संध्यावट का माहात्म्य शास्त्रों में वर्णित है । पूर्वोत्तर भारत के तीर्थयात्रियों का संध्यावट और उसके आस-पास बसेरा, विश्राम हुआ करता था । परिक्रमापथ में रात्रिविश्राम यहीं होता था, इसीलिये इस वट के साथ सन्ध्या शब्द जुड़ा है । संध्यावट के आस-पास कई ऐतिहासिक, पौराणिक मन्दिर थे इन मन्दिरों में विशेष रूप से प्रयाग के द्वादश माधवों में प्रसिद्ध संकष्टहरण माधव का मन्दिर भी था जिसका उल्लेख एवं छायाचित्र कल्याण के तीर्थाङ्क पृष्ठ १७५ में भी है । संध्यावट, हंसतीर्थ और उर्वशीपुलिन यह सभी एक दूसरे के आस-पास के तीर्थ स्थान हैं । संध्यावट ऐतिहासिक और पौराणिक तीर्थ स्थान माना गया है । इस संध्यावट के चारों तरफ भूमि के ऊँचे-ऊँचे टीले थे । यह प्रसिद्धि थी की तीर्थ यात्रा में आने-वाले राजा-महाराजा, सेठ-साहूकार अपनी मनौती के लिये सोने, चाँदी की मुद्रा संध्यावट के नीचे और आस-पास गाड़ते हैं । संध्यावट का क्षेत्र एवं भूखण्ड राजस्व अभिलेखों में **कदीमी** (जिस पर किसी का अधिकार न हो और सार्वजनिक जनहित में आता हो) ऐसा लेख है । फिर भी झूसी निवासी सत्यम् क्रियायोग ने इस पर कब्जा कर लिया है और वर्तमान में यात्रियों के आने-जाने, ठहराव और दर्शन पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है । जनहित याचिका में माननीय उच्च न्यायालय इलाहाबाद एवं डी०एम० इलाहाबाद का स्पष्ट आदेश है कि संध्यावट पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं होना चाहिये परन्तु न्यायालय एवं माननीय डी०एम० इलाहाबाद के आदेशों की अवमानना करके भी यह स्थान सत्यम् क्रियायोग के कब्जे में आज भी है । सत्यम् क्रियायोग द्वारा की गई रजिस्ट्री में एक मन्दिर (संकष्टहर माधव) का लिखा होना उपलब्ध है और यह मन्दिर कल्याण के तीर्थाङ्क पृष्ठ १७५ में भी दर्शाया गया है । सत्यम् क्रियायोग द्वारा संकष्टहर माधव के मन्दिर सहित अन्य मन्दिरों को वर्ष- २००९ में बुलडोजर से गिराकर समाप्त कर दिया गया है । सत्यम् क्रियायोग द्वारा संध्यावट के आस-पास कई वर्षो तक खननकार्य भी किया गया है और खननकार्य के द्वारा संध्यावट, हंसतीर्थ, उर्वशी-पुलिन के अस्तित्व को या तो समाप्त कर दिया गया है या किया जा रहा है । संध्यावट की बहुत दूर तक फैली हुई जड़ों और शाखाओं को भी काट दिया गया है । वर्तमान में तीर्थयात्रियों के आने-जाने, दर्शन पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा है और बन्दूकधारी गार्ड यात्रियों को डराते-

धमकाते रहते हैं और आने से मना करते हैं । संध्यावट, हंसतीर्थ, उर्वशीपुलिन तीर्थक्षेत्र का सरकार द्वारा आम यात्रियों के लिये युद्धस्तर पर विकास होना चाहिये । गंगा जी के किनारे स्थित यह प्राचीन, पौराणिक तीर्थ स्थान अवैध निर्माणों से भरा हुआ है । विकास प्राधिकरण इलाहाबाद द्वारा आठ वर्ष पूर्व ध्वस्तीकरण का आदेश भी पारित हो गया है परन्तु जोड़-तोड़ और इच्छाशक्ति के कारण आदेश क्रियान्वित नहीं हो रहा है ।

समुद्रकूप / प्रतिष्ठानकूप / अवट (कूप) - सर्वसामुद्र -

- गंगा जी के पूर्व भाग में स्थित प्रतिष्ठानपुरी झूसी में शास्त्र प्रसिद्ध कई स्थान हैं जिसमें समुद्रकूप भी प्रसिद्ध कूप है, यह कूप संगम के पास गंगा जी के किनारे खण्डहर किले में स्थित है । गंगा जी के जलस्तर से लगभग २०० फीट ऊपर इस कुएँ की स्थिति है, हजारों वर्ष प्राचीन, पौराणिक यह कूप बहुत ही सुन्दर और मजबूत हालत में आज भी बना हुआ है, प्रयागराज के प्रसिद्ध दर्शनीय स्थानों में इसका नाम है, प्राय: सभी तीर्थयात्री इसका दर्शन करने आते हैं । इस समुद्रकूप से जुड़ी हुई बहुत सी कथायें हैं । यहाँ पर संयम पूर्वक साधना करने से अश्वमेध के फल की प्राप्ति बताई गई है । इस कुएँ के जल से स्नान पितृगणों का तर्पण अत्यन्त अच्छे फलों को देने वाला है, किले के खण्डहर आज भी हैं, टीले पर खड़े होकर संगम, गंगा-यमुना का दृश्य, कुम्भमेले-माघमेले का दिन में और रात में दृश्य अत्यन्त मनोहर लगता है ।

श्लोक में अवट: सर्वसामुद्र: पाठ है- अवट: के अनेक अर्थ हैं, कूप भी एक अर्थ है, यदि अवट: का अर्थ कूप किया जाये तो श्लोकार्थ पूरा हो जाता है - **सर्वसामुद्रः अवटः -** सभी समुद्रों के जल वाला कुँआ, क्योंकि अवट नाम का कहीं तीर्थ नहीं है ।

पूर्वपार्श्वे तु गंगायास्त्रैलोक्ये ख्यातिमान् नृपः । अवटः सर्वसामुद्रः प्रतिष्ठानं च विश्रुतम् ।।
ब्रह्मचारी जितक्रोधस्त्रिरात्रं यदि तिष्ठति । सर्वपापविशुद्धात्मा सोऽश्वमेधफलं लभेत् ।।

(कूर्मपू० १/३५/२१-२२)

पूर्वपार्श्वे तु गङ्गायास्त्रिषु लोकेषु भारत । कूपं चैव तु सामुद्रं प्रतिष्ठानं च विश्रुतम् ।।

(मत्स्यपु० १०६/३०)

महाभारत में भी प्रयागराज संगम के आस-पास के तीर्थों के वर्णन में समुद्रकूप का वर्णन प्राप्त है, जिसमें चारों समुद्र (चारों दिशाओं के समुद्र) वास करते हैं- इसमें स्नान करके, पूजन करके मनुष्य पवित्र होकर परमगति को पाता है -

तत्र कूपे महाराज विश्रुता भरतर्षभः । समुद्रास्तत्र चत्वारो निवसन्ति युधिष्ठिर ।।
तत्रोपस्पृश्य राजेन्द्र पितृदेवार्चने रतः । नियतात्मा नरः पूतो गच्छेत परमां गतिम् ।।

(म०भा०वन ८५/६३-६४)

ब्रह्मा जी की पश्चिम वेदी के तीर्थ स्थान -

अक्षयवट -

प्रयागराज में संगम तट के पास किले के अन्दर अक्षयवट स्थित है, इस अक्षयवट में भगवान् विष्णु का सदा वास रहता है, भगवान् शिव और पार्वती यहाँ नित्य स्थित रहते हैं, शूलपाणि महेश्वर इस अक्षयवट की रक्षा करते हैं, इस वटवृक्ष के नीचे प्राणों का त्याग विष्णु लोक को देता है -

स्नात्वा सन्निहिते तीर्थे यामुने लोकविश्रुते । दृष्ट्वा वटेश्वरं रुद्रं माधवं योगशायिनम् ।।

(वामनपु० ८३/२८)

यत्र देवो महादेवो देव्या सह महेश्वरः । आस्ते वटेश्वरो नित्यं तत् तीर्थं तत् तपोवनम् ।।

(कूर्मपु० १/३७/९)

न्यग्रोधं रक्षते नित्यं शूलपाणिर्महेश्वरः । (कूर्मपु० १/३४/२५)

वटमूले संगमादौ मृतो विष्णुपुरीं व्रजेत् । (अग्निपु० १११/१३)

प्रयाग के सभी तीर्थो में अक्षयवट का सर्वोच्च स्थान है । गङ्गा जी के पश्चिम तट पर अक्षयवट इसका प्रलयकाल में भी नाश नहीं होता इसीलिए इसे अक्षयवट कहते हैं और पूर्वीतट झूसी पर सन्ध्यावट स्थित है । मत्स्यपुराण में आया है कि प्रलयकाल में (कल्पान्त के समय) प्रयाग का नाश ही नहीं होता यहाँ त्रिदेव वास करते हैं इसमें भगवान् ब्रह्मा, विष्णु, शंकर का वास इसी पवित्र अक्षयवट में ही रहता है, पुराणों में दिव्य अक्षयवट का अद्भुत वर्णन किया गया है । वर्तमान में किले में अक्षयवट का दर्शन होता है । किले के नीचे हनुमान् जी के पास पातालपुरी मन्दिर में प्राचीन अक्षयवट का तना प्राप्त होता है । यह पेड़ बहुत बड़ा था, किले को बनाने में और पालातापुरी मन्दिर के बनने में समाप्त हो गया । पातालपुरी मन्दिर में इस अक्षयवट के तने का और अक्षयवट माधव का दर्शन होता है ।

कम्बल-अश्वतर -

कम्बलाश्वतरौ नागौ यमुनादक्षिणे तटे । तत्र स्नात्वा च पीत्वा च मुच्यते सर्वपातकैः ।।

(कूर्मपु० १/३५/१८)

प्रयागं सुप्रतिष्ठानं कम्बलाश्वतरावुभौ ।। (पद्मपु०स्व० ३९/७२)

आप्रयागात्प्रतिष्ठानाद्धर्मकीवासुकीह्रदात् । कम्बलाश्वतरौ नागौ नागाश्च बहुमूलिकाः ।।
प्रयागं सप्रतिष्ठानं कम्बलाश्वतरावुभौ । भोगवत्यथ या चैषा वेदिरेषा प्रजापतेः ।।

(मत्स्यपु० ११०/८)

प्रयागं सप्रतिष्ठानं कम्बलाश्वतरावुभौ । तीर्थं भोगवती चैव वेदी प्रोक्ता प्रजापतेः ।।

(अग्निपु० १११/५)

प्रयागं सप्रतिष्ठानं कम्बलाश्वतरौ तथा ।।

(म०भा०वन ८५/७६)

- कम्बल एवं अश्वतर ये दोनों नागों के नाम हैं, महाभारत आदिपर्व में इनका उल्लेख मिलता है, यह कश्यप के वंशज हैं एवं वरुण की सभा में विराजमान होते हैं। महाभारत वनपर्व के अनुसार इनका स्थान प्रयाग तीर्थ में बताया गया है जो ब्रह्मा जी की पश्चिम वेदी के अन्तर्गत हैं जिसे कम्बल-अश्वतर तीर्थ कहते हैं। यह स्थान प्रयाग की पश्चिमी सीमा का निर्देश करता है। यहाँ पर कम्बल और अश्वतर नागों का कोई मन्दिर नहीं है। जैसा कि वासुकि नाग का मन्दिर बना हुआ है, यमुना जी के पश्चिमी किनारे पर स्नान करके ही श्रद्धालु कम्बल-अश्वतर तीर्थ का लाभ प्राप्त करते हैं। कम्बल एवं अश्वतर नाग तीर्थों का मन्दिर निर्माण होना चाहिये।

मनकामेश्वर मन्दिर / सरस्वती कूप -

किले के पीछे परेड़ ग्राउण्ड रोड़, शिव जी का प्रसिद्ध मनकामेश्वर मन्दिर है। सरस्वती घाट पर यमुना जी के किनारे यह मन्दिर है, यहाँ पर सरस्वती कूप भी है। स्थान दर्शनीय है, काले बन्दर भी यहाँ देख सकते हैं।

विरज -

यमुना के उत्तर तट पर भगवान् सूर्य का विरज नामक तीर्थ स्थान है -

उत्तरेण प्रवक्ष्यामि आदित्यस्य महात्मनः । तीर्थं तु विरजं नाम यत्र देवाः स वासवाः ।।

(पद्मपु०स्व०४५/२९)

इस स्थान का निर्णय कठिन है - शास्त्रों के विवेचन से यह स्थान यमुना जी के उत्तर किनारे वर्तमान बलुआघाट होना चाहिये। सूर्य भगवान् का मन्दिर और विरज तीर्थ का निर्माण होना चाहिये।

ऋणमोचन / ऋणमोचक -

उत्तरे यमुनातीरे प्रयागस्य तु दक्षिणे । ऋणमोचनं नाम तीर्थं तु परमं स्मृतम् ।।
एकरात्रोषितः स्नात्वा ऋणैस्तत्र प्रमुच्यते । सूर्यलोकमवाप्नोति अनृणश्च सदा भवेत् ।।

- प्रयाग के दक्षिण यमुना के उत्तरी तट पर ऋणमोचन तीर्थ है। यह किले के समीप है। इसमें स्नान तथा मार्जन का विशेष महत्व है। एक रात्रि यहाँ रहकर और यमुना में स्नान करके व्यक्ति ऋण से मुक्त हो जाता है और सूर्यलोक को प्राप्त करता है। श्रद्धालु यमुना स्नान कर पुण्य प्राप्त करते हैं। यह तीर्थ भगवान् सूर्य को समर्पित है, सूर्य भगवान् का मन्दिर और तीर्थ का निर्माण होना चाहिये।

(कूर्मपु०१/३६/१४-१५), शब्दान्तरेण, नारदपु०६३/१००)

निरुजक / निरञ्जन -

उत्तरेण प्रवक्ष्यामि आदित्यस्य महात्मनः । तीर्थं नीरुजकं नाम यत्र देवा सवासवाः ।।

- प्रयागराज में यमुना जी के उत्तर तट पर भगवान् सूर्य का निरुजक /निरञ्जन नामक तीर्थ स्थान है। यहाँ किसी प्रकार का मन्दिर नहीं है, तीर्थ और मन्दिर का निर्माण होना चाहिये।

(मत्स्यपु०१०८/३०) पाठान्तरं- निरञ्जनं – पद्मपु०४५/२९)

ललिता देवी -

तन्त्र चूड़ामणि के अनुसार ५१ शक्ति पीठों में से एक शक्ति पीठ प्रयागराज में है। जहाँ सती की हस्ताङ्गुलि गिरी थी। यह शक्तिपीठ ही 'ललिता देवी' है। त्रिपुरा रहस्य में भी भारत स्थित बारह प्रधान देवी विग्रह एवं उनके स्थान वर्णित है। जिसके अनुसार भी ललिता देवी का स्थान प्रयाग में है -

'प्रयागे ललिता विन्ध्ये विन्ध्यनिवासिनी'' (त्रिपुरा०मा०ख०४८/७२,देवीभा०७/३०/५६)

प्रयाग में ललिता देवी का प्रसिद्ध मन्दिर मीरापुर मुहल्ले में स्थित है। यहीं पर कल्याणी देवी का भी मन्दिर है। ललिता देवी, अलोपी देवी, कल्याणी देवी और मिर्जापुर विन्ध्याचल ये चारों ही मन्दिर परम्परा में शक्तिपीठ माने जाते हैं।

कल्याणी देवी -

प्रयागान्तर्गत मालवीय नगर मुहल्ले के पास कल्याणी देवी नाम से प्रसिद्ध एवं मान्य शक्ति पीठ है - (इसी नाम से यह मुहल्ला भी है) यह स्थान बहुत प्राचीन है। इस स्थान को भी ललिता देवी का सिद्ध पीठ कहा जाता है।

ब्रह्मा जी की उत्तर वेदी के तीर्थ स्थान -

नागवासुकि / वासुकीह्रद -

प्रयागराज के प्रमुख तीर्थों में भोगवती, वासुकि नाग, दशाश्वमेध तीर्थ मुख्य हैं -

ततो भोगवतीं गत्वा वासुकेरुत्तरेण तु। दशाश्वमेधकं नाम तीर्थं तत्रापरं भवेत्॥

(मत्स्यपु०१०६/४६)

वासुकि नाग क्षेत्र में भोगवती नाम का तीर्थ भी है, वासुकि नाग और भोगवती तीर्थ में किया गया अभिषेक अश्वमेध फलों को देने वाला होता है -

तत्र भोगवती नाम वासुकेस्तीर्थमुत्तमम्। तत्राभिषेकं यः कुर्यात् सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥

(म०भा०वन८५/८६)

प्रयागराज के प्रमुख तीर्थों में प्रतिष्ठानपुरी, वासुकिनाग, वासुकिह्रद, भोगवती, दशाश्वमेध तीर्थ मुख्य हैं, यहाँ किये गये सभी धार्मिक कार्य अक्षय फल को देते हैं -

आप्रयागं प्रतिष्ठानात्पुराद् वासुकेर्ह्रदात्।
ततो भोगवतीं गत्वा वासुकेरुत्तरेण तु। दशाश्वमेधकं तत्र तीर्थं तत्रापरं भवेत्॥

(पद्मपु०स्वर्ग०४३/४६)

प्रयागराज में प्रतिष्ठानपुरी, वासुकि ह्रद, कम्बल नाग, अश्वतर नाग और बहुमूल नाग तीर्थ क्षेत्र प्रसिद्ध हैं, प्रजापति क्षेत्र उत्तरवेदी, प्रयागराज के ये सभी तीर्थ तीनों लोकों में विख्यात हैं -

आप्रयागं प्रतिष्ठानादापुराद् वासुकेर्ह्रदात्।
कम्बलाश्वतरौ नागौ नागाच्च बहुमूलकात्। एतत्प्रजापतेः क्षेत्रं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्॥५॥

(मत्स्यपु०१०४/५) (पद्मपु०४१/४-५), नारदेऽपि तथैव – (६३/१२९-१३०)

राजा जन्मेजय ने सर्पदंश के कारण अपने पिता राजा परीक्षित् की मृत्यु का प्रतिशोध लेने के लिये बहुत बडा सर्पयज्ञ किया । इस यज्ञ में वासुकि कुल के पन्द्रह वंशों के सर्प भस्म हो गये । वासुकि के प्राणों पर भी संकट आ गया । यह देख वासुकि नाग अत्यन्त दु:खी हो मन ही मन संतप्त होने लगे, अत: वे अपनी बहन जरत्कारु से बोले कि तुम्हारा पुत्र आस्तीक ऋषि ही सर्पयज्ञ को बंद करवा सकता है ।

वासुकि एक प्रसिद्ध नागराज है, जो आस्तीक के मामा तथा कश्यप और कद्रु के पुत्रों में एक थे । इनकी पत्नी का नाम शतशीर्षा था । देवताओं और असुरों द्वारा किये गये प्रसिद्ध समुद्र मंथन में डोरी के रूप में इनका ही प्रयोग किया गया था । म०भा०शल्य ३७/३०-३२ के अनुसार नाग धन्वातीर्थ इनका निवास स्थान है, वहीं देवताओं ने इनका नागराज के पद पर अभिषेक किया था । म०भा०वन८५-८६ के अनुसार तीर्थराज प्रयाग में भी इनका स्थान है, धृतराष्ट्र नामक नाग ने वासुकि जी को विष्णुपुराण सुनाया था । ये शिव भक्त थे शिव के गले में दिखने वाले नाग वासुकिनाग ही है। त्रिपुरदाह के समय शिव के धनुष् की डोरी थे । कहा गया है कि प्रयाग में नागवासुकि या भोगवती नामक उत्तम तीर्थ है जिसमें स्नान करने से अश्वमेध यज्ञ का उत्तम फल प्राप्त होता है । आजकल यह मन्दिर दारागंज के पास गंगा तट पर है । दारागंज में बिन्दु माधव जी के दर्शन करके वहाँ से आगे लगभग डेढ़ किलोमीटर जाने पर गंगा तट पर ही स्थित बक्सी बांध (वासुकि बांध) नाम के मुहल्ले में नागवासुकि जी का मन्दिर है । यहाँ नागपंचमी को बड़ा मेला लगता है । यह प्रयाग की उत्तरी सीमा है । भगवान् बलराम शेषनाग के अवतार थे इसलिये इस स्थान को शेष जी का स्थान भी कहा जाता है । मन्दिर में नागवासुकि की नागरूप में दर्शनीय मूर्ति है । नागपञ्चमी यहाँ का प्रसिद्ध उत्सव है, इस तीर्थ की यात्रा के बिना प्रयाग की यात्रा का फल नहीं मिलता । वासुकिह्रद / तालाब के प्राचीन चित्र प्राप्त होते हैं, वर्तमान में तालाब की स्थिति उपलब्ध नहीं है ।

दशाश्वमेधिक -

प्रयागराज की उत्तरसीमा पर गंगा जी के किनारे दशाश्वमेध नामक प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है, यहाँ पर किया गया अभिषेक अश्वमेध यज्ञ के बराबर फल देने वाला है, इसमें स्नान करने वाला व्यक्ति धार्मिक, धनाढ्य, रूपवान्, कुशल और दान देने वाला होता है -

दशाश्वमेधिकं नाम तत्तीर्थं परमं स्मृतम् ।।
तत्र कृत्वाऽभिषेकं तु वाजिमेधफलं लभेत् । धनाढ्यो रूपवान् दक्षो दाता भवति धार्मिकः।।
चतुर्वेदेषु यत्पुण्यं सत्यवादिषु यत्फलम् । अहिंसाया तु यो धर्मो गमनात्तस्य फलम् ।।

(नारदपु०उ०खं०६३/९७-९९)

शब्दान्तरेण- (पद्मपु०स्व०३- ४३/४७, ३९/८३)

ततो भोगवतीं गत्वा वासुकेरुत्तरेण तु । दशाश्वमेधकं नाम तीर्थं तत्रापरं भवेत् ।।

(मत्स्यपु०१०६/४६)

गंगा तट पर दशाश्वमेधक तीर्थ होने का उल्लेख है। पितामह ब्रह्मा के दश अश्वमेध यज्ञों का स्थल होने से ही यह दशाश्वमेधिक कहलाता है। इसी के नाम पर यहाँ स्थित घाट का नाम दशाश्वमेध घाट है जो दारागंज के पास स्थित है। इसका शास्त्रों में भी प्रचुर उल्लेख मिलता है। दशाश्वमेध घाट पर गङ्गा जी के स्नान का महात्म्य है एवं दशाश्वमेध महादेव मन्दिर में दर्शन-पूजन, मन्दिर दर्शनीय है।

श्री बड़े गणेश-ओंकार गणपति -

दारागंज क्षेत्र, गङ्गातट के पास श्री बड़े गणेश-ओंकार गणपति जी का प्रसिद्ध मन्दिर है। मूर्ति भव्य और दर्शनीय है।

कोटितीर्थ -

कोटितीर्थं समाश्रित्य यस्तु प्राणान् परित्यजेत् । कोटिवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ।।

(मत्स्यपु० १०६-४४)

कोटितीर्थं चाश्वमेधम् ।। (अग्निपु.- १११/१४) (नारदपु.– ६३/१५२)

कोटितीर्थं समासाद्य यस्तु प्राणान् परित्यजेत् । कोटिवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ।।

(पद्मपु० ४३/४४-४५)

- कोटि तीर्थ नामक प्रसिद्ध पवित्र तीर्थ ही आज कल प्रयाग में शिवकोटी के नाम से जाना जाता है। यहाँ आश्रम, शिव मन्दिर, धर्मशाला, गोशाला एवं कूपादि पवित्र स्थल हैं। यह बलदेव जी, नागवासुकि से दो मील आगे गङ्गातट पर स्थित है, गङ्गा जी का भव्य दृश्य दिखता है। श्रावण के महीने में यहाँ विशाल मेला लगता है। श्रद्धालुओं का आना-जाना लगा रहता है, परिसर बड़ा है, स्थान दर्शनीय है।

भोगवती -

प्रयागराज में भोगवती तीर्थ, वासुकि ह्रद, दशाश्वमेध तीर्थ स्थान उत्तर दिशा के स्थान हैं, यह प्रजापति की उत्तरवेदी है, भोगवती में किये गये सत्कार्य अक्षयफल देने वाले होते हैं, यहाँ पर वेद और यज्ञ भी मूर्तिमान् होकर विराजते हैं -

तीर्थं भोगवती चैव ।। (अग्निपु०१११/५)

ततो भोगवतीं गत्वा वासुकेरुत्तरेण तु । दशाश्वमेधकं नाम तीर्थं तत्रापरं भवेत् ।।

(मत्स्यपु०१०६/४६)

भोगवत्यथ या चैव वेदिरेषा प्रजापतेः ।।

(पद्म०स्व०४७/८)

तीर्थं भोगवती चैव वेदिरेषा प्रजायते। तत्र वेदाश्च यज्ञाश्च मूर्तिमन्तो युधिष्ठिर ।।

(म०भा०वन ८५/७७)

वासुकि नाग के उत्तर दिशा स्थित यह प्रजापति ब्रह्मा की प्रसिद्ध वेदी है । इसका उल्लेख पुराणों में भी मिलता है । नागवासुकि और भोगवती को एक साथ ही समझा जाता है । वैसे तीर्थचिन्तामणि 'भोगवतीनदीस्नाने' से भोगवती तीर्थ को गङ्गा जी के स्नान से उल्लेख करती है । भोगवती और नागवासुकि वर्तमान में एक ही तीर्थ है ।

मानस तीर्थ -

मानसतीर्थ गंगा जी के उत्तर तट उत्तर दिशा में स्थित है । मानसतीर्थ / कुण्ड से वर्तमान की मनसईता नदी निकली है- इस नदी की धारा झूसी में गङ्गा से मिलती है । अतिक्रमण से मनसईता की मुख्य धारा अवरुद्ध, अव्यवस्थित और प्रदूषित हो गयी है, मानसतीर्थ भी लुप्त है । मानस तीर्थ मन्दिर का निर्माण और मनसईता (मानस नदी) का जीर्णोद्धार और प्रवाह सुरक्षित होना चाहिये ।

मानसं रजसा हीनम् ।। (अग्निपु०१११/१४)

मानसं नाम तीर्थं तु गङ्गायामुत्तरे तटे । त्रिरात्रोपोषितो स्नात्वा सर्वकामानवाप्नुयात् ।।

(पद्मपु०स्व० ४४/२, मत्स्यपु०१०७/२)

- मानसिक धरातल से सम्बन्धित पावनतम सद्‌वृत्तियों का ही नाम मानस तीर्थ हैं, यथा- सत्य, क्षमा, इन्द्रिय निग्रह, दया, सरलता, मृदुभाषण, ब्रह्मचर्य, दान, ज्ञान, दम, धृति, पुण्य आदि मानस तीर्थ हैं । मन की शुद्धि तो सर्वोत्तम मानस तीर्थ हैं, मानस तीर्थों का अन्यान्य शास्त्रों में वर्णन है । स्कन्द पुराण काशी खण्ड अध्याय ६ के कुछ उद्धरण यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं -

सत्यतीर्थं क्षमातीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः । सर्वं भूतदयातीर्थं तीर्थमार्जवमेव च ।।
दानं तीर्थं दमस्तीर्थं संतोषतीर्थमुच्यते । ब्रह्मचर्यं परं तीर्थं तीर्थं च प्रियवादिता ।।
ज्ञानं तीर्थं धृतिस्तीर्थं तपस्तीर्थमुदाहृतम् । तीर्थानामपि तत्तीर्थं विशुद्धिर्मनसः परा ।।
यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम् ।

अर्थात् सत्य तीर्थ है, क्षमा तीर्थ है, इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना भी तो तीर्थ है, सब प्राणियों पर दया करना तीर्थ है, और सरलता भी तीर्थ है । दान तीर्थ है, मन का संयम तीर्थ है, संतोष भी तीर्थ कहा जाता है । ब्रह्मचर्य परम तीर्थ है और प्रिय वचन बोलना भी तीर्थ है । ज्ञान तीर्थ है, धैर्य तीर्थ है, संतोष भी तीर्थ कहा गया है । तीर्थों में भी सबसे श्रेष्ठ तीर्थ है अन्त:करण की आत्यन्तिक विशुद्धि, जो मानसतीर्थ में स्नान करता है, परमगति को प्राप्त करता है । (स्कन्दपु०काशीखण्ड अ०६)

अलोपी देवी -

प्रसिद्ध अलोपी देवी मन्दिर की गणना देवी के सिद्धपीठों में की जाती है । यह प्रसिद्ध मन्दिर प्रयागराज के अलोपीबाग मुहल्ले में स्थित है । तन्त्र चूड़ामणि के अनुसार ५१ शक्ति पीठों में से एक शक्ति पीठ प्रयागराज में है । जहाँ सती की हस्ताङ्गुलि गिरी थी । यह शक्तिपीठ ही 'ललिता देवी' है। त्रिपुरा रहस्य में भी भारत स्थित बारह प्रधान देवी विग्रह एवं उनके स्थान वर्णित है । जिसके अनुसार

भी ललिता देवी का स्थान प्रयाग में है -

'प्रयागे ललिता विन्ध्ये विन्ध्यनिवासिनी '' (त्रिपुरा०मा०ख०४८/७२,देवीभा०७/३०/५६)

प्रयाग में अलोपी देवी, ललिता देवी, कल्याणी देवी और मिर्जापुर विन्ध्याचल ये चारों ही मन्दिर परम्परा में शक्तिपीठ माने जाते हैं ।

भरद्वाजाश्रम -

सीतातृतीयाः काकुत्स्थः परिश्रान्तः सुखोचितः । भरद्वाजाश्रमे रम्ये तां रात्रिमवसत् सुखम् ।।

(वा०रा०२/५४/३५)

महर्षि भरद्वाज सुविख्यात वैदिक ऋषि सूक्तद्रष्टा, इनको ऋग्वेद के छठवें मण्डल के अनेक सूक्तों के प्रणयन का श्रेय प्राप्त हैं । वाल्मीकि रामायण में भरद्वाज को वाल्मीकि का शिष्य बताया गया है ।

भरद्वाजस्ततः शिष्यो विनीतः श्रुतवान् गुरोः । कलशं पूर्णमादाय पृष्ठतोऽनुजगाम ह ।।२१।।

(वा०रा०१/२/२१)

भरद्वाज आश्रम- यह अति महत्वपूर्ण विख्यात प्राचीनतम पवित्र स्थल है । प्राचीन भारत में यह शिक्षा का प्रधान केन्द्र था । यह इस समय प्रयाग नगर के कर्नलगंज मुहल्ले के पास स्थित है । यहाँ पर भरद्वाज मुनि का आश्रम था । इस समय यहाँ पर कई मन्दिर हैं- जिनमें भरद्वाजेश्वर शिवलिंग, प्रयाग मन्दिर है । प्राचीनकाल में यहाँ तक गङ्गा जी बहती थीं । यात्रियों का आवागमन लगा रहता है ।

रामायण एवं पुराणों में इसका उल्लेख मिलता है । यहाँ पर महामुनि भरद्वाज जी के समय में प्रतिवर्ष माघ मास में हजारों ऋषि-मुनि राजा एवं जिज्ञासु ज्ञानोपदेश ग्रहण करते थे । भगवान् श्री राम ने भी वनवास के समय यहाँ विश्राम किया था और भरद्वाज मुनि से शिक्षा ग्रहण की थी । इसका अध्यात्म रामायण में बड़ा मनोहारी वर्णन है । भरद्वाज सप्तर्षियों में से एक थे । इनकी योग शक्ति का अद्भुत वर्णन वाली वा०रा०अयोध्या का० सर्ग - ९१ में किया गया है ।

दक्षिण दिशा के तीर्थ स्थान -

नाग बहुमूलक -

कर्दमश्च महानागो नागश्च बहुमूलकः । (म०भा०आदि ३५/१६)

आप्रयागात्प्रतिष्ठानाद्धर्मकी वासुकिह्रदात् । कम्बलाश्वतरौ नागौ नागाश्च बहुमूलिकाः ।।

(पद्मपु०स्व० ४१/४)

आप्रयागात्प्रतिष्ठानाद्धर्मकी वासुकी ह्रदात् ।।

कम्बलाश्वतरौ नागौ नागाच्च बहुमूलकात् । एतत्प्रजापतेः क्षेत्रं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।।

(मत्स्यपु०१०४/५) (नारदपु०२/६३/१२९-१३०)

बहुमूलक तीर्थ स्थान यह प्रयाग की दक्षिणी सीमा का निर्देशक है, बहुमूलकनाग, शेषनाग के

परिवार के नाग का ही नाम है, जिसका जन्म कश्यप और कद्रु के गर्भ से हुआ था, महाभारत आदि पर्व (३५/१६) मे इसका उल्लेख है। संगम पार यमुना अरैल क्षेत्र बहुमूलक नाग तीर्थ क्षेत्र है। यह स्थान प्रजापतिक्षेत्र का दक्षिण भाग है। कुछ परिक्रमावासी यमुना स्नान से ही इस तीर्थ का पुण्य अर्जित करते हैं, इस तीर्थ के नाम से मन्दिर का निर्माण और जीर्णोद्धार होना चाहिये। नाग बहुमूलक क्षेत्र में पीपल के पेड़ के नीचे खण्डहरनुमा मन्दिर है, जिसमें अत्यन्त प्राचीन नाग की एक मूर्ति विद्यमान है।

अग्नितीर्थ -

यमुना जी के दक्षिण तट पर मोक्ष को देने वाला प्रसिद्ध अग्नितीर्थ है- यह तीर्थ अरैल क्षेत्र / अर्क (सूर्य) तीर्थ है, सोमेश्वर धाम के पास है। यमुना जी के दक्षिण तट पर हजारों तीर्थ हैं -

अग्नितीर्थमिति ख्यातं यमुनादक्षिणे तटे । पश्चिमे धर्मराजस्य तीर्थं तु नरकं स्मृतम् ।।
तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः ।

(मत्स्यपु० १०८/२८, नारदपु० ६३/१६४-१६५)

अग्नितीर्थमिति ख्यातं यमुनादक्षिणे तटे । पश्चिमे धर्मराजस्य तीर्थं हरवरं स्मृतम् ।।

(पद्मपु०स्व० ४५/२७)

एवं तीर्थसहस्राणि यमुनादक्षिणे तटे । (पद्मपु० ४५/२८)

धर्मराजतीर्थ -

यमुना जी के दक्षिण तट स्थित धर्मराज तीर्थ में कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी या सभी चतुर्दशियों को यमुना स्नान कर धर्मराज का पूजन करने से सभी पापों से मुक्ति होती है -

कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां स्नात्वा संतर्पयेच्छुचिः । धर्मराजं महापापैर्मुच्यते नात्र संशयः ।।

(कूर्मपु० १/३७/५)

सर्वां चतुर्दशीं नदीजले स्नात्वा धर्मराजानं पूजयित्वा सर्वपापेभ्यः पूतो भवति ।।

(विष्णुधर्मसू० ९०/२८)

धर्मराज नाम का कोई मन्दिर यमुना किनारे नहीं है, धर्मराज (युधिष्ठिर) के मन्दिर का निर्माण होना चाहिये।

हरवनतीर्थ -

यमुना जी के दक्षिण तट स्थित धर्मराज तीर्थ से पश्चिम दिशा की तरफ हरवन तीर्थ स्थित है-

पश्चिमे धर्मराजस्य तीर्थं हरवरं स्मृतम् ।।

(पद्मपु० ४५/२७)

हर (भगवान् शंकर) के नाम का कोई मन्दिर यमुना किनारे नहीं है, हरवन शिव मन्दिर का निर्माण होना चाहिये।

अनरक/नरक तीर्थ -

यमुना जी के दक्षिण तट स्थित धर्मराज तीर्थ से पश्चिम दिशा की तरफ अनरकतीर्थ या

नरकतीर्थ स्थापित है, इस तीर्थ में किया गया स्नान स्वर्ग को प्राप्त कराने वाला है और मुक्ति को देने वाला है, श्रद्धालु यमुना स्नान से ही तीर्थ का पुण्य प्राप्त करते हैं । किसी प्रकार का मन्दिर नहीं है, मन्दिर का निर्माण होना चाहिये ।

पश्चिमे धर्मराजस्य तीर्थं त्वनरकं स्मृतम् । तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः ।।

(कूर्मपु० १/३७/४)

पश्चिमे धर्मराजस्य तीर्थं तु नरकं स्मृतम् ।।
तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः ।।

(नारदपु०उ०खं०६३/१६४-१६५)

अग्नितीर्थमिति ख्यातं यमुनादक्षिणे तटे । पश्चिमे धर्मराजस्य तीर्थं हरवरं स्मृतम् ।।

(पद्मपु०४५/२७)

सोमतीर्थ / सोमेश्वर नाथ -

सोमतीर्थं महापुण्यं महापातकनाशनम् ।
स्नानमात्रेण राजेन्द्र पुरुषांस्तारयेच्छतम् । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तत्र स्नानं समाचरेत् ।।२।।

- यमुना पार अरैल ग्राम में सोमनाथ तीर्थ एवं सोमनाथ या सोमेश्वर महादेव का मन्दिर है, यहीं पर पास में ही बिन्दु माधव का मन्दिर भी है । मन्दिर दर्शनीय है, श्रद्धालुओं का आवागमन लगा रहता है । (मत्स्यपु०१०९/२)

वासरक -

तीर्थं वासरकं परम् ।।

- प्रयागराज में वासरक नामक तीर्थ स्थल है, वासरक तीर्थ स्थान भी यमुना के दक्षिण किनारे पर होना चाहिये । श्रद्धालु यमुना स्नान से ही तीर्थ का पुण्य प्राप्त करते हैं । किसी प्रकार का मन्दिर नहीं है, मन्दिर का निर्माण होना चाहिये । (अग्निपु०१११/१४)

●

प्रयागराज के द्वादश माधव - ०८

वेणीमाधवनामाहं गंगायमुनसंगमे । मुख्यो वसामि भक्तानां धर्मकामार्थमोक्षदः ।।२२।

- भगवान् विष्णु कहते हैं कि मैं वेणीमाधव मुख्य नाम से गङ्गा और यमुना के संगम में निवास करता हूँ, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को देने वाला हूँ, मैं सब विघ्नों के नाश करने के लिए भक्तों की कार्यसिद्धि के लिए दिशा-विदिशाओं में बारह माधव के भिन्न-भिन्न नामों को धारण कर मैं प्रयागक्षेत्र (प्रयागमण्डल) में निवास करता हूँ - (प्रयागशताध्यायीअ०७२)

प्रयागं वैष्णवं क्षेत्रं वैकुण्ठादधिकं मम । वृक्षोऽक्षयवटस्तत्र मदाधारो विराजते।।१६।।

मूले यः पुरुषो दृष्टः सोहमक्षयमाधवः । वटमाधवनामापि मूलमाधव इत्यपि ।।१७।।

- भगवान् विष्णु कहते हैं कि - प्रयाग मेरा क्षेत्र है वह वैकुण्ठ से भी अधिक है वहाँ अक्षयवट मेरा आश्रय है, अक्षयवट वृक्ष में मैं अक्षय माधव, वटमाधव और मूलमाधव द्वादश माधवों के क्रम में दसवें, ग्यारहवें और बारहवें माधव के रूप में रहता हूँ, इस प्रकार तीन नाम धारण करके मैं अक्षयवट में निवास करता हूँ। (प्रयागशताध्यायीअ०७२)

शंखचक्रगदापद्मानन्तबिन्दुमनोहराः । असिमाधव इत्यष्टौ मन्नामानि निबोधत ।।२०।।

संकष्टहररूपेण भक्तसंकष्टनाशने । सर्वत्र सर्वदा तिष्ठे यथाकार्यं भ्रमन्नहम् ।।२१।।

- मेरे अन्य नौ माधव के नाम- शंखमाधव, चक्रमाधव, गदामाधव, पद्ममाधव, अनन्तमाधव, बिन्दुमाधव, मनोहरमाधव, असिमाधव और संकष्टहरमाधव- (प्रयागशताध्यायीअ०७२)

१. शंख माधव -

अथान्यमाधवं वक्ष्ये इन्द्रस्योपवनान्तिके । क्षेत्रस्य पूर्वदिग्भागे वर्तते शंखमाधवः ।।१०।।

- इन्द्र / मुंशी के बगीचा छतनाग के पास शङ्खमाधव हैं।

प्रतिष्ठानपुर (झूसी) के छतनाग गङ्गा के किनारे, मुंशी के बगीचे में प्रसिद्ध है। पहले यह इन्द्र का बगीचा था जहाँ माघ या वैशाख मास में दर्शन पूजन का अनन्त फल बताया गया है। ये माया-पाश नष्ट करने वाले हैं। इन्हें माया तट का राजा कहा गया है। जब सभी भूतों का प्रलय होने लगता है तब वे शंख के जल से इस क्षेत्र को घेर देते हैं। आठों सिद्धियाँ इनकी सेवा करती हैं। यह भगवान् माधव की प्रथम पीठ है। (प्रयागशताध्यायीअ०७३)

२. चक्र माधव-

क्षेत्रस्याग्नेयदिग्भागे बह्न्याश्रम समीपतः । चतुर्भुजश्चक्रधारी वर्तते चक्रमाधव ।।२४।।

- अग्नि आश्रम-अग्नितीर्थ, अरैल यमुनापार के समीप चक्रधारी चतुर्भुज चक्रमाधव का स्थान है।

प्रयाग के अग्निकोण में अरैल (अलर्कपुर) स्थित है। भगवान् सोमेश्वर के मन्दिर से लगा हुआ स्थल है। पहले अग्निदेव का आश्रम था, ये चक्र द्वारा आपत्तियों का नाश करते हैं। इनके दर्शन पूजन से चौदह महाविद्याएँ प्राप्त होती हैं। यहाँ आकर अग्निकुण्ड में जो स्नान करता है और चक्र माधव

की प्रसन्नता के लिए पूजन करता है, उसे अक्षय बुद्धि प्राप्त होती है। चौदह महाविद्याएँ चक्र माधव के अधीन हैं। जो भी चक्र माधव का दर्शन पूजन करता है, महाविद्याएँ उन पर प्रसन्न होकर उनकी कामनाओं की पूर्ति करती हैं। यह भगवान् माधव की द्वितीय पीठ है। (प्रयागशताध्यायीअ०७३)

३. गदामाधव-

वक्ष्याम्यथ मुनिश्रेष्ठाः क्षेत्रयाम्ये यमांतिके । गदामाधवनामास्ते हरिः पीठे तृतीयके ।।४०।।

- यमुना पार दक्षिण भाग में गदामाधव है।

नैनी, छिंवकी स्टेशन के समीप यह मन्दिर स्थित है। ये चित्त को व्याकुल करने वाले दुष्टों को अपनी गदा से भयभीत करते हैं और अपने भक्तो को धर्म की ओर प्रेरित करते हैं। वैशाख मास में इनकी पूजा का विशेष महत्व है। इनकी पूजा करने से काल का भी भय नहीं होता। सभी चौसठ कलाएँ गदा माधव के अधीन होती हैं। यह भगवान् माधव की तृतीय पीठ है। (प्रयागशताध्यायीअ०७३)

४. पद्ममाधव-

क्षेत्रस्य नैऋते भागे वर्तते पद्ममाधवः । चतुर्थे वैष्णवे पीठे योगिनां सिद्धिदायके ।।१।।

- नैर्ऋत्य कोण में पद्ममाधव हैं योगियों को सिद्धि देने वाला है।

घूरपुर से भीटा की ओर जाने वाले मार्ग पर वीकर देवरिया ग्राम में मन्दिर जो योगियों को सिद्धि देते हैं। पद्ममाधव को लक्ष्मी जी हजार कमल पत्रों से प्रतिदिन पूजती हैं। पद्ममाधव की आँखे कमल की तरह लाल हैं और वे कमलों की माला से सुशोभित हैं। सभी प्रकार के भय से वे इस क्षेत्र की रक्षा करते हैं। यह क्षेत्र पद्ममाधव को वैकुण्ठ से भी अधिक प्रिय है। यहाँ पद्ममाधव की भक्तिपूर्वक पूजा करने से सौभाग्य, अचल संपत्ति, पुत्र-पौत्रादि की प्राप्ति होती है। विष्णु भक्ति और उत्तम गति प्राप्त होती है। यह भगवान् माधव की चौथी पीठ है। (प्रयागशताध्यायीअ०७४)

५. अनन्तमाधव-

क्षेत्रस्य पश्चिमे भागे द्योततेऽनन्तमाधवः । पञ्चमे वैष्णवे पीठे वरुणारमसन्निधौ ।।१६।।

- पश्चिम भाग में अनन्त माधव रहते हैं। वरुण उद्यान आश्रम के समीप है।

दारागंज में स्थित है। यह पहले वरुण आश्रम था। यह भगवान् विष्णु की पांचवीं पीठ है। सूर्य आदि देवता इनके आधीन हैं, जो यहाँ आने वालों की मनोकामना पूरी करते हैं। (प्रयागशताध्यायीअ०७४)

६. बिन्दुमाधव-

अथ वायव्यदिग्भागे षाष्ठे वैष्णवपीठके । वायुमण्डलमाश्रित्य वर्तते बिन्दुमाधवः ।।२८।।

- क्षेत्र के वायव्य कोण में वायु मण्डल के समीप बिन्दुमाधव रहते हैं।

शहर के वायव्य कोण में द्रौपदी घाट के पास बिन्दु माधव का निवास है जो वायु मण्डल के समीप है। कल्पद्रुम के पुष्प से वायु प्रतिदिन उनकी पूजा करते हैं। यहाँ देवगण और भरद्वाज आदि सातों ब्रह्मर्षि निवास करते हैं। बिन्दु माधव की आज्ञा से यहाँ आने वाले यात्रियों की कामनाएँ पूरी होती

हैं। बिन्दु माधव की आज्ञा है कि जो यात्री उनका दर्शन करने वहाँ पहुँचे, वे देवतागण तथा सातों ब्रह्मर्षियों का पूजन भी करें। यहाँ पूजन, हवन, दान, जप, यज्ञ, स्वाध्याय और ब्रह्म यज्ञ करने वाले विष्णु स्वरूप हो जाते हैं। यह भगवान् माधव की छठी पीठ है। (प्रयागशताध्यायीअ०७४)

७. मनोहर माधव-

अथ क्षेत्रोत्तरे भागे कुबेराश्रम सन्निधौ। सप्तमे वैष्णवे पीठे श्रीमनोहरमाधवः ।।१।।

- उत्तर भाग में कुबेर के आश्रम के समीप मनोहरमाधव हैं।

जानसेनगंज चौक में द्रव्येश्वर नाथ महादेव के मन्दिर में लक्ष्मी युक्त मनोहर माधव विराजमान हैं। यहाँ पर कुबेर का आश्रम था। गन्धर्व, किन्नर, अप्सराएँ गान करती थीं, दर्शन पूजन से धन धान्य की वृद्धि होती है। इन्हीं मनोहर माधव ने कामदेव का गर्व चूर किया था। यह भगवान् माधव की सातवीं पीठ है। (प्रयागशताध्यायीअ०७५)

८. असिमाधव -

क्षेत्रस्येशानदिग्भागे शंकराश्रममण्डले। अष्टमे वैष्णवे पीठे वरीवर्त्यसिमाधवः ।।१९।।

- ईशान भाग में शिव के आश्रम के समीप असिमाधव का स्थान है।

शहर के ईशान कोण में नागवासुकि के पास उनके नाम का पत्थर गड़ा है। इनका रंग अलसी पुष्प की तरह है। ये युवा हैं, पीत अम्बर पहने हैं, घुंघराले बाल हैं और भयानक आकृति वाले हैं। म्यान में तलवार धारण किए हुए सदा कमरपट्टा बाँधे ये शिव के समीप रहते हैं। ये तीर्थ में विघ्न उत्पन्न करने वाले देवों, दानवों, गंधर्वों, राक्षसों आदि का शमन करते हैं। ये शिव की स्तुति करते हैं क्योंकि शिव परम वैष्णव हैं और नाग और नाग कन्याएँ असि माधव की सेवा में तत्पर रहती हैं और उनकी आज्ञा से भक्तों को अभीष्ट वरदान देती हैं। यह भगवान् माधव की आठवीं पीठ है। (प्रयागशताध्यायीअ०७५)

९. संकष्टहर माधव -

तथापि वर्तते संध्यावटाधस्तस्य चाश्रमः। तस्मिन्वसति धर्मात्मा संकष्टहरमाधवः ।।३८।।

- सन्ध्यावट (प्रतिष्ठानपुरी झूसी) के नीचे इनका आश्रम है, वहीं धर्मात्मा संकष्टहर माधव रहते हैं। यह भगवान् माधव की नवीं पीठ है। (प्रयागशताध्यायीअ०७५)

प्रयाग के वटवृक्षों की चर्चा अक्षयवट के बाद सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण वटवृक्ष गंगा के पूर्वी तट के प्रतिष्ठानपुर झूसी में स्थित सन्ध्यावट है। जो आज भी सुरक्षित है। सन्ध्यावट का वर्णन शास्त्रों में प्राप्त है। कल्याण के तीर्थाङ्क पृष्ठ १७५ पर संकटहर / संकष्टहर माधव के मन्दिर का चित्र दिया गया है। ये सब प्रकार के पापों का शमन करते हैं। यहाँ दर्शनमात्र से ही सन्ध्योपासना न करने का पाप नष्ट होता है। वेदी की परिक्रमा में यहाँ सन्ध्यावट के नीचे रात्रि विश्राम का विधान है।

वर्तमान में यहाँ कोई मन्दिर नहीं है, संकष्टहर माधव मन्दिर को एवं अन्य मन्दिरों को सत्यम् क्रियायोग द्वारा २००९ में तोड़कर सन्ध्यावट पर कब्जा कर लिया गया है, यहाँ यात्रियों के आने-

जाने को रोक दिया गया है । सन्ध्यावट को भी छति पहुँचाई गई है, इसकी जड़ों को काट भी दिया गया है । राजस्व अभिलेखों में सन्ध्यावट **कदीमी** (जो सार्वजनिक उपयोग में आता हो, किसी का कब्जा न हो) दर्ज है ।

दसवीं, ग्यारवीं और बारवीं पीठ के माधव -

१०. अक्षय माधव -

११. वट माधव -

१२. मूल माधव -

प्रयागं वैष्णवं क्षेत्रं वैकुण्ठादधिकं मम । वृक्षोऽक्षयवटस्तत्र मदाधारो विराजते।।१६।।
मूले यः पुरुषो दृष्टः सोहमक्षयमाधवः । वटमाधवनामापि मूलमाधव इत्यपि ।।१७।।

- भगवान् विष्णु कहते हैं कि - प्रयाग मेरा क्षेत्र है वह वैकुण्ठ से भी अधिक है वहाँ अक्षयवट मेरा आश्रय है, अक्षयवट वृक्ष में मैं अक्षय माधव, वटमाधव और मूलमाधव द्वादश माधवों के क्रम में दसवें, ग्यारहवें और बारहवें माधव के रूप में रहता हूँ, इस प्रकार तीन नाम धारण करके मैं अक्षयवट में निवास करता हूँ । (प्रयागशताध्यायीअ०७२)

परम्परा से प्राप्त माधवों की शृंखला में निम्नलिखित माधवों का स्थान निर्देश भी प्राप्त होता है-

वेणी माधव मन्दिर -

झूसी में - सैकड़ों वर्ष प्राचीन श्रीपरमानन्द आश्रम, झूसी वेद विद्यालय में ज्योतिष एवं धर्मशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् श्री स्वामी नरोत्तमानन्द गिरि जी महाराज द्वारा श्री वेणीमाधव जी के मन्दिर की स्थापना की गई । जिसमें भगवान् वेणीमाधव और श्रीलक्ष्मी जी की भव्यमूर्ति विराजमान है । मन्दिर दर्शनीय है ।

दारागंज में - दारागंज का वेणीमाधव मन्दिर प्राचीनतम मन्दिरों में है जो आज भी सुरक्षित है। वेणी माधव की प्रतिष्ठा अति प्राचीन है । वर्ष १९८८ में मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया गया । तदन्तर वेणीमाधव जन सेवा संस्थान की ओर से मन्दिर की देखरेख की जा रही है । उसमें चतुर्भुजी भगवान् विष्णु के भव्य दर्शन होते हैं ।

आदि-वेणी माधव -

संगम (त्रिवेणी) के मध्य जल रूप में विराजते हैं । इनका बीस धनुष् विस्तार है । कामना वालों को चारों फल तथा निष्काम को मोक्ष देते हैं । वर्तमान में इनका स्थान यमुना के दक्षिण तट पर सच्चा आश्रम के बगल जहाँ पर नरसिंह मन्दिर है उसी के समीप है ।

किसी आधुनिक कवि ने प्रयागराज के द्वादश माधवों के नाम, स्थान का निर्देश किया है-

त्रिवेण्यां वटमूले च वेणीवटमाधवौ । नागवासुकिदेशे च माधवोऽसिर्विराजते ।।
मनोहरमाधवोऽसौ द्रव्येश्वरसुसन्निधौ । विधते माधवोऽनन्तोऽक्षयवटसमीपतः ।।

गंगायाः द्रोपदीघट्टे विधते बिन्दुमाधवः । त्रिवेण्याः दक्षिणेऽलर्के राजते चक्रमाधवः ।।
नृसिंहमन्दिरेऽलर्के शोभते चादिमाधवः ।
नैनीक्षेत्रनिवासिभ्यः सदासौख्यप्रदायकः । राजते ददटीग्रामे गदामाधवदेवता ।।
शुभे देवडियाग्रामे भुक्तिमुक्तिप्रदायकः । भक्तवत्सलदेवोऽयं शोभते पद्ममाधवः ।।
छतनागे प्रतिष्ठाने नगरे शंखमाधवः । सन्ध्यावटसमीपेऽस्ति संकटहरमाधवः ।।

अर्थात् त्रिवेणी तथा वट मूल में क्रमशः वेणीमाधव वटमाधव है । नागवासुकि समीप असि माधव, द्रव्येश्वर समीप मनोहर माधव, अक्षय वट समीप अनन्त माधव, द्रौपदी घाट में बिन्दुमाधव, अरैल में चक्रमाधव नरसिंह मन्दिर समीप आदि माधव, ददरी नैनी में गदामाधव, देवरिया में पद्ममाधव छतनाग झूसी में शंखमाधव तथा सन्ध्यावट झूसी में संकटहर माधव है ।

वाराणसी, काशी में केशव / माधव के मन्दिरों का वर्णन मिलता है -

मोक्षपुरी काशीनगरी में भगवान् विष्णु का बिन्दुमाधव के रूप में पञ्चनदतीर्थ (पञ्चगङ्गाघाट) पर तीन सौ वर्ष पूर्व भगवान् बिन्दुमाधव का बड़ा भव्य मन्दिर था, वर्तमान में वहाँ मस्जिद बनी है । भगवान् बिन्दु माधव की स्मृति में एक छोटा सा मन्दिर है । प्रसिद्धि है कि प्राचीन मन्दिर के शिखर से दिल्ली का दिया (दीपक) दिखता था । वर्तमान में यह पञ्चगङ्गा घाट माधवसिंह का घरौरा नाम से प्रसिद्ध है । यहाँ से गङ्गा जी का धनुषाकार दृश्य बड़ा भव्य दिखता है । कमजोर कलेजे वालों को चक्कर आ जाता है, मस्जिद के बुर्ज से सैकड़ों किलो मीटर का दृश्य दिखता था । बुर्ज का ऊँचा भाग खण्डित हो गया है । काशी जी का दृश्य यहाँ से अवश्य देखना चाहिये । पञ्चनदतीर्थ पञ्चगङ्गाघाट पर भगवान् बिन्दुमाधव ने स्थायी निवास किया । भगवान् केशव-माधव का काशी में अपने स्वरूपों का वर्णन यहाँ केवल नामनिर्देश से ही किया जा रहा है, विस्तार के लिये काशी खण्ड देखें- आदि केशव, ज्ञान केशव, ताक्ष्र्य केशव, नारद केशव, प्रह्लाद केशव, आदित्य केशव, भृगु केशव, वामन केशव, शेष माधव, शंख माधव, हयग्रीव केशव, भीम केशव, निर्वाण केशव, श्वेत माधव, प्रयाग माधव, वैकुण्ठ माधव, वीर माधव, काल माधव- काशी में भगवान् विष्णु का माधवों के रूप में वास।

(स्कन्दपु० काशीखण्डअ०५९-६१)

●

प्रयागराज परिक्रमा - ०९
अन्तर्वेदी, मध्यवेदी, बर्हिवेदी परिक्रमा

पंचयोजनविस्तीर्णे प्रयागस्य तु मंडले । (नारदपु०६३/१६२)

भारतवर्ष में प्रधान तीर्थों, पर्वतों, नदियों की परिक्रमा करने की शास्त्रीय परम्परा रही है, वाराणसी-काशी, अयोध्या, चित्रकूट, मथुरा-वृन्दावन, नर्मदा, गिरनार आदि स्थानों पर वर्तमानकाल में भी परिक्रमा की परम्परा जीवित है और लाखों यात्री इस परिक्रमा को पूर्ण करते हैं । परिक्रमा में वाहनों के उपयोग का निषेध है, परिक्रमा पैदल ही करना चाहिये । परिक्रमा का पथ-वृत्त (Circumambulation) तीर्थों के अनुसार छोटा-बड़ा होता है । प्रयागराज में परिक्रमाओं को तीन भाग- अन्तर्वेदी, मध्यवेदी, बहिर्वेदी में बाँटने की प्रथा रही है -

अन्तर्वेदी -

वेदी का शाब्दिक अर्थ यज्ञस्थली होता है, भगवान् ब्रह्मा ने कुरुक्षेत्र, प्रयागराज, गया और पुष्कर को वेदी मानकर याग किये थे । प्रयागराज भी भगवान् ब्रह्मा की यज्ञ वेदी है । ब्रह्मा जी ने प्रयागराज में भी प्रतिष्ठानपुरी (झूसी) वेदी, नागवासुकि वेदी और कम्बल-अश्वतर वेदी पर यज्ञ किये। मुख्य देवस्थान त्रिवेणी-संगम को केन्द्र मानकर आस-पास के देवस्थानों का दर्शन-पूजन, प्रथम परिक्रमापथ अन्तर्वेदी माना जाता है ।

प्रयाग नगर की, संगम से यमुना किनारे-२ अटाले तक, ललिता देवी, पाण्डव कूप (गड़वी की सराय), चौक, भरद्वाज आश्रम, नागवासुकि दारागंज होते हुए फिर संगम– अन्तर्वेदी ।

अन्य विधान से दो दिन में पूर्ण होने वाली प्रयाग अन्तर्वेदी परिक्रमा का क्रम इस प्रकार है- प्रयाग मण्डल केन्द्र त्रिवेणी में स्नान करके त्रिवेणी के अधिष्ठाता देवता, जलरूप में विराजमान वेणीमाधव का अर्चन पूजन करें, अक्षयवट का दर्शन-पूजन के पश्चात् परिक्रमा प्रारम्भ करें । मार्ग में क्रमशः यमुना जी में मधुकुल्या, घृतकुल्या, निरञ्जन तीर्थ, आदित्य तीर्थ और ऋणमोचन तीर्थ - किले तक हैं, इसमें स्नान तथा मार्जन करने का विधान है । कम्बलाश्वतर तीर्थ किले के पीछे स्थित है । आगे यमुनातट पर ही पापमोचन तीर्थ, परशुराम तीर्थ (सरस्वती कुण्ड के समीप) गोघट्टन तीर्थ, पिशाच मोचन तीर्थ, कामेश्वर तीर्थ, (मनकामेश्वर मन्दिर तीर्थ) कपिल तीर्थ, इन्द्रेश्वर शिव, तक्षककुण्ड, तक्षकेश्वर शिव या बलुआघाट के आगे दरियाबाद मुहल्ले में यमुना किनारे स्थित है यहाँ होते हुए कालियह्रद, चक्र तीर्थ, सिन्धु सागर तीर्थ (ककरहा घाट के पास) होते हुए सड़क से पाण्डव कूप, वरुण कूप, (गढ़ई की सराय में) होते हुए कश्यप तीर्थ, नव्येश्वरनाभि शिव (चौक) होते हुए सूर्य कुण्ड होकर कर्नलगंज स्थित भरद्वाज आश्रम में पहुँच कर विश्राम करें । प्रातः काल वहाँ से भरद्वाजेश्वर, सीतारामाश्रम, विश्वामित्राश्रम, गौतमाश्रम, जमदग्नि आश्रम, वशिष्ठाश्रम, वायु आश्रम (यह सब

भरद्वाज आश्रम में ही हैं) के दर्शन करते हुए उच्चै:श्रवा स्थान, नाग वासुकि, ब्रह्मकुण्ड, दशाश्वमेधेश्वर, लक्ष्मीतीर्थ, महोदधि तीर्थ, मलापह तीर्थ, शक्रतीर्थ, विश्वामित्र तीर्थ, बृहस्पति तीर्थ, अत्रि तीर्थ दत्तात्रेय तीर्थ, दुर्वासा तीर्थ, सोम तीर्थ, सारस्वत तीर्थ (अधिकांश तीर्थ गङ्गाजी में ही हैं), अलोपी देवी, कल्याणी देवी, ललिता देवी को प्रणाम करें पश्चात् हनुमान् जी के दर्शन करता हुआ अन्तर्वेदी परिक्रमा त्रिवेणी पहुँच कर समाप्त करें ।

अर्न्तवेदी के सात माधव - संगम में विराजमान वेणी माधव- वेणी माधव के द्वादश स्वरूप में से सात अन्तर्वेदी के माधव -

अक्षयवट माधव, वट माधव, मूल माधव ये तीन माधव अक्षयवट में निवास करते हैं ।

अनन्त माधव- पश्चिम भाग में वरुण आश्रम के समीप है । दारागंज में स्थित है ।

असि माधव- शहर के ईशान कोण में नागवासुकि के पास शिव के आश्रम के समीप स्थान है ।

मनोहर माधव- उत्तर भाग में कुबेर आश्रम के समीप जानसेनगंज चौक में स्थित हैं।

बिन्दु माधव - शहर के वायव्य कोण में द्रौपदी घाट के पास बिन्दु माधव का निवास है ।

मध्यवेदी -

प्रथम परिक्रमापथ-वृत्त और उसके ऊपर का द्वितीय परिक्रमापथ-वृत्त (Concentric circle) का मध्यभाग, लगभग तीन किलोमीटर द्वितीय परिक्रमापथ माना जाता है ।

यमुना पार करके, सोमेश्वर, नैनी होकर देवरिया और नीमाघाट होते हुए शिवकोटि में समाप्त। मध्यवेदी के तीर्थ - नागबहुमूलक स्थान - प्रजापतिक्षेत्र का दक्षिण भाग, विकरक्षेत्र से उत्तर में । सोमतीर्थ, सोमेश्वर शिव - अरैल में । सूर्य तीर्थ - सोम तीर्थ से पश्चिम में । धर्मराजतीर्थ यमुना जी के दक्षिण तट पर, हरवनतीर्थ धर्मराजतीर्थ से पश्चिम, यमुना जी के दक्षिण तट पर । कुबेर तीर्थ, वायुतीर्थ, अग्नि तीर्थ - सूर्य तीर्थ से पश्चिम में । वीरतीर्थ, चक्रमाधव तीर्थ, यमतीर्थ वरुण तीर्थ, रामतीर्थ, सीतातीर्थ, हनुमान तीर्थ, सोमेश्वर के मन्दिर से आदिवेणी माधव के मन्दिर तक गंगा-यमुना की जलधारा में । शूलकण्टेश्वर से आगे । सुधारस तीर्थ - शूलकण्टकेश्वर से आगे । सुधारस के दक्षिण यमुना तट नैनी में, विकर क्षेत्र - बीकर गाँव में । भार्गव, गालव, चामर आदि ऋषि स्थान- कोटितीर्थ- शिवकोटि, गंगा जी के दक्षिण तट पर ।

मध्यवेदी के तीन माधव -

चक्र माधव- अग्नितीर्थ, अरैल यमुनापार के समीप चक्रमाधव का स्थान है ।

गदा माधव - यमुना पार दक्षिण भाग में नैना-छिंवकी स्टेशन के समीप यह मन्दिर स्थित है।

पद्ममाधव - घूरपुर से भीटा की ओर जाने वाले मार्ग पर वीकर देवरिया ग्राम में पद्ममाधव मन्दिर स्थित है ।

बर्हिवेदी -

द्वितीय परिक्रमापथ-वृत्त और उसके ऊपर का तृतीय परिक्रमापथ-वृत्त का मध्यभाग, तृतीय परिक्रमापथ माना जाता है । प्राय: परिक्रमापथों के देवस्थान परम्परा निश्चित होते हैं । परिक्रमा में धर्मशास्त्रों द्वारा गिनाये गये देवालयों के अतिरिक्त प्रसिद्ध धर्मस्थल भी आ जाते हैं । प्रयागराज मण्डल का बहिर्वेदी परिक्रमापथ लगभग ७० किलोमीटर का माना गया है, कुछ समय पूर्व तक प्रयाग मण्डल की परिक्रमा की जाती थी । वर्तमान में यह परिक्रमा समाप्त हो गई है, इस समय संगम क्षेत्र से तीन किलोमीटर तक गङ्गा, यमुना के मध्य में आये हुये कुछ ही तीर्थों का यात्री दर्शन या भ्रमण करते हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि प्रयागराज के अधिकांश प्राचीन तीर्थ लुप्त हो गये हैं या हो रहे हैं । इसी कड़ी में अक्षयवट की तरह ही प्रसिद्ध संध्यावट प्रतिष्ठानपुरी झूसी पर भू-माफियाओं द्वारा अभी-अभी कब्जा कर लिया गया है और यात्रियों का आवागमन, दर्शन-पूजन, ठहराव बन्द कर दिया गया है । प्रयाग मण्डल के परिक्रमापथ में आये हुये तीर्थ स्थानों का जीर्णोद्धार और भू-माफियाओं के कब्जे से मुक्ति बहुत ही आवश्यक है । सरकार और जनसहयोग से इस कार्य को तत्काल आरम्भ करना चाहिये अन्यथा तीर्थों का अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा । वाराणसी में सरकार और जनसंस्थाओं द्वारा काशी पंचक्रोशी के तीर्थस्थानों, धर्मशालाओं से भूमाफियाओं को हटा दिया गया है ।

बहिर्वेदी के दो माधव -

शङ्ख माधव- प्रतिष्ठानपुर (झूसी) के छतनाग गङ्गा के किनारे, मुंशी के बगीचे (पहले इन्द्र का बगीचा) में स्थित हैं ।

संकष्टहर माधव- सन्ध्यावट (प्रतिष्ठानपुरी झूसी) के नीचे इनका प्रसिद्ध मन्दिर था । कल्याण के तीर्थाङ्क पृष्ट १७५ पर सन्ध्यावट और इसके नीचे संकष्टहर माधव के मन्दिर का चित्र है । वर्तमान में सन्ध्यावट तीर्थ स्थान पर सत्यम् क्रियायोग द्वारा कब्जा कर लिया गया है और संकष्टहर माधव के मन्दिर का अस्तित्व खत्म कर दिया गया है । सन्ध्यावट पर यात्रियों का दर्शन, ठहराव पर रोक लगा दी गई है। संकष्टहर माधव मन्दिर का पुन: निर्माण और सन्ध्यावट से कब्जा हटाने की अविलम्ब आवश्यकता है ।

प्रयागमण्डल दस दिन परिक्रमा पथ यात्रा -

प्रथम दिन - सर्वप्रथम त्रिवेणी स्नान पूजन करके, अक्षयवट दर्शन करते हुए किले के नीचे से यमुना पार करे, उस पार शूलटङ्केश्वर, सुधारस तीर्थ, उर्वशीकुण्ड (यमुना जी) में एवं आदि बिन्दुमाधव का दर्शन करके किनारे-किनारे हनुमान् तीर्थ, सीता कुण्ड, राम तीर्थ, वरुण तीर्थ एवं चक्र माधव को प्रणाम करते हुए सोमेश्वर नाथ पहुँच कर दर्शन करे एवं रात्रि विश्राम करें ।

द्वितीय दिन - यमुना के किनारे चले एवं सोमतीर्थ, सूर्यतीर्थ, कुबेरतीर्थ, वायुतीर्थ एवं अग्नितीर्थ को धारा में स्थित होने के कारण इन्हें स्मरण एवं प्रणाम कर ले, पश्चात् देवरिख गाँव में पहुँच कर महाप्रभु श्री वल्लभचार्य जी की बैठक का तथा नैनी पहुँच कर वहाँ गदामाधव का दर्शन करे, फिर छिउकी

स्टेशन के पास कम्बलाश्वतर नागों का दर्शन करते हुए रामसागर पर रात्रि विश्राम ।

तृतीय दिन - तीसरे दिन वीकर देवरिया पहुँच कर यमुना तट पर श्राद्ध करें यहाँ श्राद्ध का विशेष फल है यहीं पर यमुना जी के मध्य एक पहाड़ी है जिस पर महादेव जी है उनका भी दर्शन करे । यहीं रात्रि विश्राम करें ।

चतुर्थ दिन - वीकर से ही यमुना पार करके करहदा गाँव के पास वन महादेव का दर्शन करे एवं यहीं रात निवास करें ।

पञ्चम दिन - बेगम सराय से आगे नीमघाट होते हुए द्रोपदी घाट पहुँच कर रात्रि विश्राम करें ।

षष्ठ दिन - यहाँ से शिवकोटि तीर्थ तक की यात्रा करें वहीं रात्रि विश्राम करें ।

सप्तम दिन - पड़िला महादेव के दर्शन करते हुए मानसतीर्थ पहुँच कर रात्रि निवास करें ।

अष्टम दिन - झूसी होते हुए नागेश्वर क्षेत्र में नागतीर्थ के दर्शन करके शङ्खमाधव पर रात्रि विश्राम करें।

नवम दिन - व्यासाश्रम, समुद्रकूप, ऐलतीर्थ, संकष्टहरमाधव, हंसतीर्थ, संध्यावट, हंसकूप, जलकुण्ड-उर्वशीतीर्थ, उर्वशी-पुलीन एवं अरुन्धती होते हुए पुन: प्रतिष्ठानपुर (झूसी) सन्ध्यावट पहुँच कर रात्रि विश्राम करें ।

दशम दिन - दसवें दिन झूसी से त्रिवेणी आकर परिक्रमा समाप्त करनी चाहिये ।

विशेष - बहिर्वेदी परिक्रमा करने वालों को चाहिये कि दसवें दिन त्रिवेणी तट पर बहिर्वेदी परिक्रमा समाप्त करने के पश्चात् अन्तर्वेदी परिक्रमा कर लें ।

प्रयागराज के तीर्थों एवं परिक्रमापथ (Circumambulation) का अन्वेषण- अनुसन्धान की बहुत आवश्यकता है । अधिकांश तीर्थों का स्पष्ट रूप से निर्धारण नहीं हुआ है, बहुत से स्थान, देवस्थान, माधव स्थान लुप्त हो गये हैं । सरकार और अनुसन्धान संस्थाओं एवं जन सहयोग से यह कार्य सम्भव है ।

नोट - उत्तर प्रदेश के वर्तमान मुख्यमंत्री माननीय श्री योगी आदित्यनाथ जी की दिनाङ्क १८ मई २०१८ की पहल पर सरकार द्वारा प्रयागराज मण्डल स्थित द्वादश माधवों एवं परिक्रमा मार्ग में आने वाले सभी प्राचीन मन्दिरों, देवस्थानों को चिह्नित कर उनका जीर्णोद्धार, बिजली, पानी, शौचालय, यात्री विश्रामालय और मार्ग आदि की सुव्यवस्था करने का निर्णय लिया गया । माननीय मुख्यमंत्री जी की पहल के अनुसार दिनाङ्क २० मई २०१८ को माननीय मंडलायुक्त श्री आशीष कुमार गोयल, कुम्भ मेलाधिकारी श्री विजय किरन आनन्द आदि प्रशासनिक अधिकारियों एवं अखाड़ा परिषद के अध्यक्ष महंत श्री स्वामी नरेन्द्र गिरि जी महाराज एवं अन्य सन्तगण के द्वारा गङ्गा पूजन के उपरान्त द्वादश माधव, परिक्रमा मार्ग के मन्दिरों की पहचान कर इनको पुनर्जीवित, जीर्णोद्धार और सुन्दरीकरण करने के लिये परिक्रमा मार्ग का निरीक्षण किया गया । (समाचार-अमर उजाला १८-०५-१८)

●

कल्पवास / माघप्रवास - १०

युगं द्वादशसाहस्त्रं कल्पं विद्धि चतुर्युगम् । दशकल्पशतावृत्तमहस्तद्ब्राह्मुच्यते ।।

- देवताओं के बारह हजार वर्षों का एक चतुर्युग होता है । इसी को कल्प अर्थात् महायुग समझें। ऐसे एक हजार महायुगों को ब्रह्मा का एक दिन और उतने परिमाण की रात्रि बतायी गयी है । (म०भा०शान्ति ३०२/१४)

विश्व की आयु की नाप - युग, कल्प और मन्वन्तर (मनु+अन्तर) शब्दों से की जाती है । वैदिक सनातनी विश्व-सृष्टि की चार-चार सीमायें मानते हैं, जिन्हें युग कहते हैं, कल्प और युग वैदिक शब्द है । ये हैं- कृत, त्रेता, द्वापर, कलियुग -

विश्व के विलय (समाप्ति) को प्रलय कहा गया है । यह प्रलय चार प्रकार का होता है-

१. नित्य- प्रतिदिन लोगों का जन्म और मरण

२. नैमित्तिक - जब ब्रह्मा का एक दिन समाप्त हो जाता है- प्रलय हो जाता है । ब्रह्मा का एक दिन १००० महायुगों- कृत, त्रेता, द्वापर, कलियुग के बराबर होता है । उतनी ही रात्रि भी होती है ।

३. प्राकृतिक - इस प्रलय में प्रकृति के साथ सभी वस्तुएँ सम्पूर्ण जगत् परमात्मा में समाहित हो जाता है ।

४. आत्यन्तिक- यह प्रलय मुक्ति के समकक्ष है । सत्यज्ञान की प्राप्ति के बाद जीवात्मा और परमात्मा का एकीभाव हो जाता है । तात्पर्य यह है कि सभी भूतों की उत्पत्ति परमात्मा ब्रह्म से होती है, उसी में यह सृष्टि समा जाती है । प्रलय का क्रम सृष्टि से ठीक विपरीत है ।

जुआड़ी और रमल खेलने वाले अपने पासों पर कुछ चिह्न बिन्दु बना देते हैं एक दिशा में चार, तीसरी में तीन, दूसरी में दो चौथी में एक- कृतयुग, सत्य सबसे अच्छा चार अंको वाला, त्रेता-तीन अंको वाला, दूसरा दो अंकों वाला और चौथा कलयुग एक अंक-कमजोर माना गया है ।

कृत-सतयुग से कलयुग आते प्रकृति, प्राणिओं का व्यवहार, आयु, बल, वीर्य औजस में कमी आ जाती है- जिन्दगी में धोखा खाने पर-कलयुग है भाई क्या करें- कहते हैं । रामायण, महाभारत, पुराण वैदिकग्रन्थ में विस्तार से युगों के गुणधर्म बतायें हैं । कृत-सतयुग के गुणधर्मों की एक छोटी सी कथा लिखते हैं- महर्षि मनु, याज्ञवल्क्य की तरह ही महर्षि शंख और लिखित की स्मृतियों का प्रामाण्य माना जाता है, ये सगे भाई थे । छोटा भाई लिखित बड़े भाई के घर गया और बिना अनुमति के बगीचे से पके आम तोड़ लिये, बड़े भाई शंख ने कहा- ये आम किसने तोड़े? लिखित ने अपना नाम बताया। शंख ने कहा अभी तो कलयुग आने में लाखों करोंड़ों वर्ष बाकी हैं तुम ने इस अधम काम से आज ही कलयुग बुला लिया है- जाओ जिस हाथ से तुमने आम तोड़े, उसे काट दो, लिखित ने कृतयुग-सतयुग की रक्षा के लिये अपने हाथ को काट दिया । एक अन्य कथा कलयुग की भगवान्

शंकराचार्य के समय की भी है जिसमें गुरुद्रोह करने के कारण जगद्विख्यात महापण्डित मीमांसक कुमारिल भट्ट ने प्रयागराज में प्रतिष्ठान पुरी (झूसी) में अपने को धान की भूसी (जो धीरे-धीरे जलती है) में जलाकर प्राणों को समाप्त कर दिया । भारतीय परम्परा में युगों के धर्मों का सम्मान रहा है ।

कृत की आयु ४८००० दिव्य वर्ष है । त्रेता की ३६००, द्वापर की २४०० कलि की १२०० दिव्य वर्ष । एक दिव्य वर्ष १२०० मानव वर्ष के बराबर है । बारह मानव वर्ष का देवताओं का एक दिन मनुष्यों के बारह वर्ष का होता है । देव-दानवों की अमृतघट के लिये भागदौड़ देवताओं के एक दिन या मनुष्यों के बारह वर्ष चली थी । इसीलिये कुम्भ बारह वर्ष बाद आता है । आज भी समय का परिणाम तीन वर्ष के गुणकों में माना जाता है - ३ वर्ष में अक्षरारम्भ, ६ वर्ष में प्रथमकक्षा, २४ वर्ष में पोस्ट ग्रेजूएशन, विवाहादि । चारों युगों को लेकर एक प्राचीन रोचक श्लोक भी है -

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः । उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतः सम्पद्यते चरन् ।

- सोने वाले के लिये कलियुग, अंगड़ाई के लिये द्वापर, उठने वाले के लिये त्रेता और चलने वाले के लिये कृतयुग (सत्ययुग) होता है । युगधर्मों का पुराणादि शास्त्रों में विस्तार से वर्णन है।

कृपू-सामर्थ्ये धातु से उत्पन्न कल्प शब्द वैदिक शब्द है ।

शास्त्र कर्म-विधान के अनुसार अपना जीवन जीने वाला और यथा सम्भव सत्कर्म करने वाला मनुष्य इस आयु को क्षणभंगुर और पानी के बुल-बुले के समान मानता है । जीवन, जीवित रहने को विकृति और मरण को शाश्वत माना है- धर्म-दर्शन का यह बीज जीवन के प्रति मोह को दूर करते हुये सनातन शास्त्रों की सदा चलने वाली और जीवन को ओजस्वी बनाने वाली प्रक्रिया है । जीवन में श्वांसों के अनिश्चय पर शास्त्र विचार भी हुए हैं । योगवशिष्ठ, माण्डूक्य कारिका आदि शास्त्र जीव-जगत् का न होना भी प्रतिपादित करते हैं । महाकवि कालिदास ने भारतीय मरण की धारणा को एक श्लोक में बहुत अच्छी तरह से प्रतिबिम्बित किया है -

मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधैः । क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन्यदि जन्तुर्ननु लाभवानसौ ।।

(रघु० ८/८७)

- शरीरधारी जीवों का मरना स्वभाव है और जीना विकार कहा जाता है, हमें इसे मानने में भय संकोच भी नहीं है, इसलिये प्राणी जितने क्षण भी जी जाये-उतना ही समय सन्तोष का है - ऐसे अद्भुत वचन-विचार भारतीय सनातन वैदिक चतुर्वर्ण व्यवस्था में जीने वाले का बल रहे हैं, यहाँ भय या भीति न होकर मृत्यु के प्रति अभय है ।

ब्रह्म-परमात्मा का अरबों वर्ष का सृष्टिक्रम एक धर्मभीरु के लिये बहुत बड़ी बात है । ब्रह्मा के अनन्तवर्षों की प्रलय और सृष्टि यात्रा की कल्पना उसके लिये बहुत कठिन है । किसी धार्मिक के लिये जीवन - मृत्यु का विचार उसकी अपनी पकड़, सामर्थ्य का विचार है वह उसे प्रतिक्षण देखता है कि मृत्यु सामने बाल पकड़े खडी है । इसी विचार से उसके जीवन का युग आरम्भ होता है और वह इसे

किसी भी क्षण समाप्त होता देखता है । तीर्थ का तप, तीर्थों की यात्रा ही उसकी शक्ति बन जाती है- वह विगतभय हो जाता है । वर्ष १९८० में पूर्ण सूर्य ग्रहण हुआ था । नगरों में कर्फ्यू जैसा दृश्य हो गया था- लोग डरकर दुबक गये थे, केवल पुष्कर, कुरुक्षेत्र, काशी, गंगा-यमुना-संगम जैसे स्थानों पर ही लाखों की भीड़ स्नान-ध्यान-दान-पुण्य कर रही थी । परम्परा में इसी जीवन में कल्प का आदि और कल्प का अन्त माना है । शास्त्रों के विधि विधान इसमें नियामक है, आज्ञा मानने वाला श्रद्धालु है । प्रतिवर्ष माघ आदि मासों में कल्पवास का यही रहस्य है । वैसे तो जगत् में तीन तरह की ताकत से दुनियाँ चलाई जाती है- रामनाम, रुपया और लाठी- 'बुढ़ापे के तीन साथी- रामनाम, रुपया और लाठी' समय पर सभी कुछ छूट जाता है या छुड़ा लिया जाता है, केवल राम का नाम ही सहारा रहता है- ऐसे स्पष्ट विचार धार्मिक व्यक्ति के रहते हैं । उसको परमात्मा में, अपने धर्म-कर्म में ही ज्यादा विश्वास होता है । जीवन क्षण भंगुर है, तीर्थयात्राओं, कल्पवास करने का भी यही विचार है ।

आनन्दं ब्रह्मणो रूपं श्रुत्यैवं यन्निगद्यते । तत्तथैवेह मन्तव्यं मिथ्यानानात्वकल्पना ।।

- वेद ने जो आनन्द को ही ब्रह्म का स्वरूप कहा है, वही ठीक और मानने के योग्य है और यह अनेक जन्म इत्यादि की कल्पना तो सर्वथा मिथ्या ही है ।

यावत्स्वस्थमिदं वर्ष्म यावन्नेन्द्रियविक्लवः । यावज्जरा च दूरेऽस्ति तावत्सौख्यं प्रसाधयेत् ।।

- जब तक यह शरीर स्वस्थ रहे और इन्द्रियाँ शिथिल नहीं पड़ जाती एवं बुढ़ापा पास में न पहुँच सके, तभी तक सुखों का साधन कर लेना चाहिए ।

अस्वास्थ्येन्द्रियवैकल्ये वार्धके तु कुतः सुखम् । शरीरमपि दातव्यमर्थिभ्योऽतः सुखेप्सुभिः ।।

- शरीर के अस्वस्थ, शिथिलेन्द्रिय और जराग्रस्त हो जाने पर फिर सुख कहाँ से मिल सकता है । इस शरीर को अच्छे कार्यों में समर्पित कर देना चाहिये ।

याचमानमनोवृत्तिप्रीणने यस्य नो जनिः । तेन भूर्भारवत्येषा समुद्रागद्रुमैर्न हि ।।

- जिन्होंने जन्म लेकर याचकों का मनोऽभिलाष पूर्ण नहीं किया, उन्हीं से इस भूमि पर भार होता है । समुद्र, पर्वत अथवा वृक्षों का कुछ भी बोझ नहीं होता ।

नैषधकाव्य में यही श्लोक अन्य छन्द में लिखा गया है -

याचमानजनमानसवृत्तेः पूरणाय बत जन्म न यस्य । तेन भूमिरतिभारवतीयं न द्रुमैर्न गिरिभिर्न समुद्रैः ।।

सत्वरोगत्वरो देहः संचयाः सपरिरक्षयाः । इति विज्ञाय विज्ञाता देहे सौख्यं प्रसाधयेत् ।।

- शरीर का कोई ठिकाना नहीं है कि कब चला जाये और संचयों का भी समाप्त होना निश्चित ही है । यह समझकर विज्ञजन शारीरिक सुखसम्पादन कर लें

श्ववायसकृमीणां च प्रान्ते भोज्यमिदं वपुः । भस्मान्तं तच्छरीरं च वेदे सत्यं प्रपद्यते ।।

- यह देह अन्त में, काक, कुत्ता और कृमियों का भोजन ही होता है, अथवा इस शरीर का परिणाम भस्म ही होता है । यह बात वेद में सत्यरूप से प्रतिपादित है, वेदवाक्य- वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तं शरीरम् । (स्कन्दपु० काशीखण्डअ०५८/११४-११९)

माघमास-कार्तिक आदि मास में तीर्थों में किये गये कल्पवास, स्नान अक्षय पुण्य को देने वाले स्वर्ग सुख के दाता तो हैं ही, किन्तु भौतिक रूप से इनका अनुभव तो प्राय: कष्टों से ही भरा है, फिर भी यह दु:ख श्रद्धालु को अनन्त सुख और शारीरिक-मानसिक सामर्थ्य को जन्म देता है, वर्गसंघर्ष को समाप्त करता है, समभाव से समाज प्रकृति को देखने की नेत्र ज्योति देता है । गरीब-अमीर की खायी को मिटाकर एक ही झोपड़े में बैठा देता है । एक ही हांडी में बना दाल-भात खिलाता है । हमारा जीवन एक कल्प है और श्रद्धा और विश्वास कल्पवास की शक्ति है ।

माघमास / कल्पवास का समय -

विधि-१- पौष शुक्ल अष्टमी मकर संक्रान्ति से कुम्भ संक्रान्ति तक लगभग चालीस दिन का कल्पवास।

विधि-२- पौष पूर्णिमा से माघ पूर्णिमा तक लगभग तीस दिन का कल्पवास ।

विधि-३- पौषमास की शुक्ल एकादशी से आरम्भ कर माघ मास की शुक्ल द्वादशी अथवा पूर्णिमा को माघमास / कल्पवास का समापन ।

चान्द्रसावनसौराख्यैः प्रमाणैर्माघमज्जनम् । यथासंभवमेकेन प्रोक्तं कुर्वीत मानवः ।।
अमां वा पूर्णमासीं वा स्नायादारभ्य भक्तितः । पक्षद्वयमिदं चान्द्रं विन्ध्यभागाद्विकल्पितम्।।
तैषीमेकादशीं शुद्धामारभ्य स्नानमारभेत् । तस्यां माघस्य शुक्लायां सावनेन समापयेत्।।
झषसंक्रममारभ्य यावत्कलशसंक्रमम् । स्नायान्नियममाश्रित्य सौरमानेन भक्तितः ।।
एतेष्वन्यतमं पक्षमाश्रित्य प्रयतो नरः । विधिना मज्जनं कुर्यान्माधवप्रीतिकृद्भवेत् ।।

चान्द्रमास, सावनमास और सौरमास इन तीन मासों के प्रमाण से माघ स्नान किया जाता है इनमें से किसी एकमास के प्रमाण से स्नान करना चाहिये । अमावस्या या पूर्णमासी से प्रारम्भ करके भक्तिपूर्वक स्नान करना चाहिए, ये दोनों पक्ष चान्द्र कहे जाते हैं विन्ध्य के दक्षिण उत्तर भेद के अनुसार ऐसी व्यवस्था है । पूस की शुक्ल एकादशी से भी स्नान प्रारम्भ किया जाता है और माघ की शुक्ल एकादशी को वह समाप्त किया जाता है यह सावन मास के अनुसार स्नान है । मकर संक्रान्ति से लेकर जब तक कुम्भ की संक्रान्ति हो तब तक नियम पूर्वक स्नान करे, यह सौर मान के अनुसार स्नान कहा जाता है । इनमें से किसी एक पक्ष के अनुसार विधि पूर्वक स्नान करने से माधव प्रसन्न होते हैं । माघमास में कम से कम तीन दिन स्नान अवश्य करना चाहिये । (शताध्यायी अ०४९/१-६)

माघमास / कल्पवास के प्रमुख व्रत-त्योहार -

१. पौष शुक्ल मकर संक्रान्ति एवं शाही स्नान - मेष, वृष आदि बारह राशियाँ होती हैं, संक्रान्ति का अर्थ है- सूर्य का एक राशि से दूसरी राशि में जाना । जिस राशि में सूर्य प्रवेश करता है वह उस राशि की संक्रान्ति होती है, जब सूर्य धनु राशि को छोड़कर मकर राशि में प्रवेश करता है तो मकर संक्रान्ति होती है । संक्रान्ति, ग्रह नक्षत्र की भी होती है परन्तु सूर्य को ही प्राथमिकता दी गई है, मकर संक्रान्ति का पर्व भगवान् सूर्य को समर्पित आराधना का पर्व है । सूर्य से सम्बन्धित त्यौहार सम्पूर्ण भारत वर्ष

में अलग-अलग नामों से मनाये जाते हैं। चाँद्रव्रत-त्योहार क्षेत्रीय भी हो सकते हैं। मत्स्य पुराण का अध्याय ९८ मकर सूर्य संक्रान्ति को समर्पित है। इस दिन का व्रत सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला होता है। तिलों से स्नान, तिलों को दान और गुड़ आदि का दान प्रमुख है, इसी सामग्री से सूर्य भगवान् की पूजा की जाती है, यथाशक्ति अन्य वस्तुओं का भी दान दिया जा सकता है, मकर संक्रान्ति से उत्तरायण का आरम्भ माना गया है।

२- माघ कृष्ण चतुर्थी - तिल चतुर्थी - ढुण्ढिराज गणेशका तिलों के लड्डुओं से पूजन का विधान है।

३- माघ कृष्ण षट्तिला एकादशी - १. तिल युक्त जल स्नान, २. तिल का उबटन, ३. तिल का होम, ४. तिल के जल का ग्रहण, ५. तिल का भोजन, ६. तिल के दान का माहात्म्य है। ऐसा व्यक्ति कभी भी कष्ट को प्राप्त नहीं होता-

तिलोदवर्ती तिलस्नायी शुचिर्नित्यं तिलोदकी। होता दाता च भोक्ता च षट्तिली नावसीदपि ।।

(शातातप)

४. माघ कृष्ण द्वादशी - माघ कृष्ण द्वादशी को यमराज ने तिलों को उत्पन्न किया था। महाराज दशरथ ने तिलों की खेती की, देवों ने भगवान् विष्णु को तिलों का स्वामी बनाया। इस दिन तिलों से विष्णु पूजन और तिलों का दान, आहार में उपयोग बताया गया है।

५- माघी अमावस्या एवं शाही स्नान - सोमवती अमावस्या, मौनी अमावस्या - प्रयागराज संगम स्नान का माहात्म्य दान, पुण्य। सुहागिनी स्त्रियाँ सौभाग्य वृद्धि के लिये पीपल वृक्ष के नीचे भगवान् विष्णु की प्रतिमा की स्थापना करके विधान पूर्वक पूजन करें। पीपल वृक्ष की यथा शक्ति १०८ या ५१ या २१ परिक्रमा अवश्य करें। मौनी अमावस्या को मौन भाव से रहकर भगवान् शिव के पूजन का विधान है, जिससे सर्वार्थ सिद्धि, संतति की प्राप्ति, मनोकामना की सिद्धि होती है।

६- माघशुक्ल चतुर्थी - इसी को वरदा चतुर्थी, उमा चतुर्थी भी कहते हैं - श्वेत फूल, गुड़, नमक से गौरी पूजन और कुमारी, सुहागिन-सधवा महिलाओं का वस्त्र, अलंकार आदि से सम्मान किया जाता है।

७- माघ शुक्ल वसंत पंचमी एवं शाही स्नान - गंगा, यमुना, सरस्वती त्रिवेणी का पूजन, सरस्वती का विशेष रूप से पूजन, तक्षक नाग वासुकि आदि नागों का पूजन।

८- माघ शुक्ल सप्तमी - अचला सप्तमी, आरोग्य सप्तमी, रथ सप्तमी, विजया सप्तमी के नाम से प्रसिद्ध है। षष्ठी को एक समय भोजन करें और सप्तमी को प्रात:काल स्नान- इस दिन बदर (बैर) की सात पत्तियाँ सरपर रखकर स्नान करना चाहिये- बैर की पत्तियाँ, अर्क (आक) पुष्प, चावल, तिल, दूब, चन्दन से सूर्य पूजन करना चाहिये।

९. माघ शुक्ल अष्टमी-भीष्माष्टमी - माघ शुक्ल को भीष्म पितामह जो कुंवारे ही मृत हुए थे, इनके प्रति जलाञ्जलि - श्राद्ध कर्म किया जाता है - वह एक वर्ष में पापों से मुक्त हो सन्तान प्राप्त करता

है । निर्णयसिन्धु, वर्षक्रियाकौमुदी, महाभारत में इसका उल्लेख है । ब्राह्मण भी सत्यप्रतिज्ञ भीष्म पितामह को तर्पण कर सकते हैं - यह भी विधान है ।

१०- माघ शुक्ल द्वादशी - तिल द्वादशी, सन्तान द्वादशी, वराह द्वादशी, भीष्मद्वादशी-भीष्मपितामह को श्राद्ध तर्पण, वेदारम्भ का दिन ।

११- माघ पूर्णिमा - प्रात: स्नान कर- तिल, पात्र, वस्त्र, कम्बल आदि का दान कर ब्राह्मण भोजन से कल्पवास व्रत का समापन करें ।

माघस्नान - माघ माहात्म्य शास्त्रों में ३५०० श्लोकों में प्राप्त है । २८०० श्लोकों का माहात्म्य पद्मपुराण में ही प्राप्त है । पवित्र नदियों-जलाशयों में प्रात:काल माघमास में स्नान अनन्तपुण्य को देने वाला है । सबसे पुण्यकारी गंगा-यमुना के संगम में स्नान (प्रतिदिन) माना है । माघ मास संगम की प्रसिद्धि वैदिक काल से ही है । उपलब्ध शास्त्रीय साक्ष्य में, चीनीयात्री, महाराजा हर्षवर्धन की जीवन यात्रा में भी संगम माघ की विशेषता बतायी गयी है । प्रतिवर्ष संगम तट पर माघमास का मेला लगता है जिसमें करोंड़ों यात्री स्नान करते हैं ।

कल्पवास -

अयनस्योत्तरस्यादौ मकरं याति भास्करः । (विष्णुपु० २/८/२८)

माघमास में गंगा तट पर संयम के साथ रहना-स्नान तप, स्वाध्याय, दानपुण्य करना श्रेयस्कर माने गये हैं । मकर संक्रान्ति से कल्पवास का आरम्भ होता है ।

माघ स्नान फल -

गंगायमुनयोस्तीर्थे तथा कालाञ्जरे गिरौ । दशाश्वमेधानाप्नोति तत्र मासं कृतोदकः ।।
दशतीर्थसहस्राणि तिस्रः कोट्यस्तथा पराः । समागच्छन्ति माघ्यां तु प्रयागे भारतर्षभ ।।
माघमासं प्रयागे तु नियतः संशितव्रतः । स्नात्वा तु भरतश्रेष्ठः निर्मलः स्वर्गमाप्नुयात् ।।

- गंगा और यमुना के संगमतीर्थ में तथा कालञ्जर तीर्थ (बांदा / हमीरपुर जिला) में जो एक मास स्थान और तर्पण करता है उसे दश अश्वमेध यज्ञों का फलप्राप्त होता है । माघमास की अमावस्या/पूर्णिमा को प्रयागराज में तीन करोड़ दस हजार अन्य तीर्थों का समागम होता है । जो नियमपूर्वक उत्तम व्रतों का पालन करते हुए माघ मास के महीने में प्रयाग में स्नान करता है वह सब पापों से मुक्त होकर स्वर्ग में जाता है । (म०भा०अनु०२५/३६,३७,३८)

तिलदान -

तिलाश्च सम्प्रदातव्या यथाशक्ति द्विजर्षभ । नित्यदानात् सर्वकामांस्तिला निर्वर्तयन्त्युत ।।

- यमराजवचन- अपनी शक्ति के अनुसार तिलों का दान अवश्य करना चाहिये, नित्यदान करने से तिल दाता की सभी कामनायें पूर्ण हो जाती है । (म०भा०अनु०६८/१७)

मासमेकं निराहारस्त्रिकालं स्नानमाचर । त्रिकालमर्चयन्विष्णुं त्यक्तभोगो जितेन्द्रियः ।

- माघमास में निराहार, फलाहारी होकर, जितेन्द्रिय, संयम पूर्वक, तीनों कालों में स्नान, विष्णुपूजन अक्षय्य सुख को देने वाला है । (पद्मपु०उ०१२५-१४६)

माघस्नानं दहेत्पापं पावकः समिधो यथा । प्रामादिकं च यत्पापं ज्ञानाज्ञानकृतञ्च यत् ।।

- प्रमाद से, ज्ञान-अज्ञान से किया हुआ पाप माघस्नान से भस्म हो जाता है ।

(पद्मपु०उ०१२६-३४)

माघे तपोदानजपप्रसेवनं स्थानं हरेः पूजनमक्षयं नृप । तस्माद्ययाथक्ति नरैः प्रयत्नतः स्नात्वा प्रदेयं वसनान्नकाञ्चनम्।।

- माघ में तप, दान, जप, सत्संग, स्वाध्याय, स्नान का अत्यन्त माहात्म्य है । माघ में यथाशक्ति दिया हुआ दान दाता को अनन्तगुना फल देता है । (पद्मपु०उ०१२८-७)

अहोरात्रेण द्वादश्यां माघमासे तु माधवम् । राजसूयमवाप्नोति सोमलोकं च गच्छति ।।

- माघमास की द्वादशी तिथि को दिन-रात का उपवास करके भगवान् माधव की पूजा करने से राजसूय यज्ञ का फल मिलता है और साधक मृत्यु के बाद सोमलोक जाता है ।

(म०भा०अनु०१०९/५)

माघमास में ब्राह्मण भोजन -

तस्य नित्यं सदाऽऽषाढ्यां माघ्यां च बहवो द्विजाः। ईप्सितं भोजनवरं लभन्ते सत्कृतं सदा ।

(म०भा०शान्ति१७१/१७)

- माघ की अमावस्या और पूर्णिमा को सत्कारपूर्वक ब्राह्मण भोजन का विधान है ।

माघ शुक्ला अष्टमी को भीष्म पितामह का प्राणत्याग -

माघोऽयं समनुप्राप्तो मासः सौम्यो युधिष्ठिरः । त्रिभागशेषः पक्षोऽयं शुक्लो भवितुमर्हति ।।

(म०भा०अनु०१६७/२८)

- पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर ! इस समय चान्द्रमास के अनुसार माघ का महीना प्राप्त है । यह शुक्लपक्ष चल रहा है जिसका एक भाग बीत चुका है और तीन भाग बाकी हैं । (शुक्ल पक्ष से मास का आरम्भ मानने पर आज माघ शुक्ला अष्टमी है- इस पवित्र दिन मेरे प्राणत्यागने का समय आ गया है

भीष्मपितामह के प्राणत्यागने के समय के अन्तिम वाक्य -

ब्राह्मणाश्चैव ते नित्यं प्राज्ञाश्चैव विशेषतः । आचार्या ऋत्विजश्चैव पूजनीया जनाधिपः ।।

महोल्केव च भीष्मस्य मूर्धदेशाज्जनाधिपा । निःसृत्याकाशमाविश्य क्षणेनान्तरधीयत ।

- युधिष्ठिर तुम्हें सामान्यतः सभी ब्राह्मणों का और विशेषतः विद्वानों , आचार्यों, ऋत्विजों की सदा पूजा करना चाहिये । इस वाक्य के अनन्तर भीष्मपितामह का प्राण उनके ब्रह्मरन्ध्र से निकल बड़ी भारी उल्का की तरह आकाश में उड़ा और अन्तर्धान हो गया । (म०भा०अनु०१६८/८)

ब्राह्मण-ऋत्विज् -वैदिकों के सम्मान के प्रति भगवान् राम का वन गमन के समय दिया गया आदेश-

ये चेमे कठकालापा बहवो दण्डमाणवाः । नित्यस्वाध्यायशीलत्वान्नान्यत् कुर्वन्ति किंचन ।।

(वा०रा० अयोध्या-सर्ग २/३२/१८)

लक्ष्मण ! चारों वेदों की रक्षा के लिये ब्राह्मण अपना जीवन वेदों के स्वाध्याय में ही लगाये रखते हैं, अन्य कर्म वैदिकों के लिये वर्जित है- अतः सभी ब्राह्मण, वैदिक, वैदिक ब्रह्मचारियों को भोजन, गौओं का दान कर प्रसन्न रखें ।

भगवान् शंकराचार्य भी वेदों की रक्षा के लिये, ब्राह्मणों की रक्षा के प्रति चिन्ता प्रकट करते हैं ।

ब्राह्मणत्वस्य हि रक्षणेन रक्षितः स्याद् वैदिको धर्मः　(शांकरगीताप्रारम्भे)

माघमास माहात्म्य-

समस्तानि च तीर्थानि सकलादेव जातयः। सस्त्रीका ऋषयो माघे सर्वे यान्ति प्रयागके ।।

(शत०४८/८)

योऽशक्तोऽस्मिन्महायोगे देशकालगदादिना । सोऽनुकल्पे न कुर्वीत श्रद्धया माघमज्जनम् ।।
पक्षपक्षार्द्धपञ्चत्रिदिनेष्वेक दिनेऽथवा । प्रयागे माघमासे तु मज्जतां फलमश्नुते ।।

- रोगादि से माघस्नान करने में अशक्त जितने भी दिन स्नान करेगा उसको पूर्णफल मिलेगा

(शत०४८/२८-२९)

एक समय भोजन-

माघं तु नियतो मासमेकभक्तेन यः क्षिपेत् । श्रीमत्कुले ज्ञातिमध्ये स महत्त्वं प्रपद्यते ।।

- जो माघमास में एक समय भोजन करता हुआ निवास करता है, वह धनवान् कुल में जन्म लेकर सम्बन्धियाँ में महत्त्व पाता है ।　(म०भा०अनु१०६/२१)

द्वादशीतिथि को माधव (श्रीविष्णु) पूजन -

अहोरात्रेण द्वादश्यां माघमासे तु माधवम् । राजसूयमवाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत् ।।

(म०भा०अनु०१०९/५)

षष्टिस्तीर्थसहस्राणि षष्टिस्तीर्थशतानि च । माघमासे गमिष्यन्ति गङ्गायमुनसंगमम् ।।
गवां शतसहस्रस्य सम्यग् दत्तस्य यत् फलम् । प्रयागे माघमासे तु त्र्यहं स्नातस्य तत् फलम् ।।

(कूर्मपु०१/३६/१-२)

गवां कोटिप्रदानात्त्र्यहं स्नानस्य तत्फलम् ।।
प्रयागे माघमासे तु एवमाहुर्मनीषिणः ।।

(अग्निपु०१११/१०-११)

यस्यां माघे मुहूर्तं तु देवानामपि दुर्लभम् ।।
पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुर्यः पुण्यास्तथा सति । स्नातुमायान्ति ता वेण्यां माघे मकरभास्करे ।।

- माघमास में तो इस संगम पर स्नान का एक क्षण का भी अवसर प्राप्त होना देवगण हेतु भी दुर्लभ है । माघ में जब सूर्य मकर राशिस्थ हो, तब पृथिवी के सभी तीर्थ तथा पुण्यमयी पुरियाँ वे

वेणी संगम पर स्नानार्थ चली आती हैं। (नारदपु०उ०ख०६३/६-७)

माघस्नानमन्त्र -

प्रयागराज संगम में माघमास-कल्पवास में निम्नलिखित मन्त्र को बोल कर स्नान करें -

मकरस्थे रवौ माघे गोविन्दाच्युत माधव । स्नानेनानेन मे देव यथोक्तफलदो भव ।।

- मकरस्थ सूर्य तथा माघमास में "हे गोविन्द, अच्युत, माधव हे देव ! इस स्नान द्वारा यथोक्तफल प्रदान करें।" (नारदपु०उ०ख०६३/१३-१४)

माघस्तु प्राप्यते धन्यैः प्रयागे विधिनन्दिनि । अपुनर्भवदं तत्र सितासितजलं यतः।।

गायन्ति देवाः सततं दिविष्ठा माघः प्रयागे किल नो भविष्यति ।
स्नाता नरा यत्र न गर्भवेदनां पश्यन्ति तिष्ठन्ति च विष्णुसन्निधौ ।।
तीर्थैर्व्रतैर्दानतपोभिरध्वरैः सार्द्धं विधात्रा तुलया धृतं पुरा ।
माघः प्रयागश्च तयोर्द्वयोरभून्माघो गरीयांश्चतुराननात्मजे ।।
स्नाता हि ये माकरभास्करोदये तीर्थे प्रयागे सुरसिंधुसंगमे ।
तेषां गृहद्वारमलंकरोति भृंगावली कुंजरकर्णताडिता ।।

- हे ब्रह्मपुत्रि ! प्रयाग में माघस्नान का सौभाग्य परम पुण्यात्मा ही प्राप्त करते हैं। वहाँ का शुक्लवर्ण गङ्गा जल तथा कृष्णवर्ण यमुना जल मोक्ष देने वाला है। स्वर्गस्थ देवता सदा गायन करते हैं कि हमें प्रयाग तीर्थ में माघमास में जाने का अवसर मिले। क्योंकि माघमास में प्रयाग में गङ्गा-यमुना जल में स्नात व्यक्ति अब पुन: गर्भवेदना का दर्शन ही नहीं करेंगे तथा उनको विष्णुदेव का सामीप्य मिलकर रहेगा। हे ब्रह्मपुत्रि ! ब्रह्मा ने समस्त तीर्थ, व्रत-दान-तप-यज्ञ को तुला में एक ओर रखा, दूसरी ओर उन्होंने प्रयाग के माघस्नान को रखा। इस तुलाकार्य में माघमास ही सर्वाधिक श्रेष्ठ पाया गया। जो कोई वायु-जल तथा पर्ण (जमीन पर गिरे पत्ते) भक्षण द्वारा जीवन निर्वाह करता दीर्घकाल तक देहशोषक योग तथा उग्रतप करता है, उस यति को जो गति मिलती है, वही गति माघ में प्रयाग स्नानमात्र से मिल जाती है। जब सूर्य मकरस्थ हो, तब जो मनुष्य प्रयागस्थ गङ्गा-यमुना संगम पर स्नान करते हें, उनका जो घर का द्वार है, वहाँ हाथी रहते हैं अर्थात् सम्पन्नता के प्रतीक हाथी, लक्ष्मी प्रभृति ऐश्वर्य उनको प्राप्त रहता है तथा उनके कानों के हिलने से भगाये जाते भ्रमरवृन्द वहाँ शोभायमान रहते हैं। (नारदपु०उ०खं०६३/३६-४०)

माघः प्रयागश्च तयोर्द्वयोरभून्माघो गरीयांश्चतुराननात्मजे ।।

- ब्रह्मपुत्रि ! प्रयाग और माघ की तुलना में देवों ने माघमास को अधिक श्रेष्ठ पाया।

(नारदपु०उ०खं०६३/३८)

मासमेकं नरः स्नात्वा प्रयागे नियतेन्द्रियः । मुच्यते सर्वपापेभ्यो यथादृष्टं स्वयंभुवा ।।

- जो इन्द्रियों को संयमित रखकर एक मास (माघमास) में प्रयाग स्नान करते हैं, वे पापरहित हो जाते हैं। (नारदपु०उ०खं०६३/४६)

कल्पवास -

सितासिते तु यो मज्जेदपि पापशतावृत्तः ।।
मकरस्थे रवौ माघे न स भूयस्तु गर्भगः ।।

- सैकड़ों पापों से आक्रान्त व्यक्ति भी यहाँ आकर मकरस्थ सूर्य की स्थिति युक्त माघमास में यदि इस श्वेत-श्याम (गङ्गा-यमुना) जल में स्नान करता है, वह पापों से मुक्त हो जाता है। उसे पुनः गर्भाशय में प्रवेश नहीं करना पड़ता। (नारदपु०उ०खं०६३/६०-६१)

यस्य यस्य च यः कामस्तस्य तस्य भवेद्धि सः ।।

- यह कामनापूरक तीर्थ है। वहाँ भक्तिभाव से स्नान करे। वहाँ जो जिस कामना के साथ स्नान करता है, उसकी वह कामना पूरी हो जाती है। (नारदपु०उ०ख०६३/६७)

प्रयागे माघमासे तु त्र्यहं स्नातस्य यत्फलम्। नाश्वमेधसहस्रेण तत्फलं लभते सति ।।

- प्रयाग में माघमास में त्रिवेणी स्नान का जो फल है, वह फल सहस्त्र अश्वमेध यज्ञानुष्ठान से भी नहीं मिलता। (नारदपु०उ०खं०६३/७६)

माघादपुनरावृत्ती राजसूयात्पुनर्भवेत् ।।

- माघसेवी का पुनर्जन्म नहीं होता, राजसूय यज्ञ के अनन्तर पुनर्जन्म भी हो जाता है।
(नारदपु०उ०खं०६३/९०)

मकरस्थे रवौ माघे न स्नात्यनुदिते रवौ। कथं पापं प्रमुच्येत कथं वा त्रिदिवं व्रजेत ।।१०४।।

- माघमास में जब सूर्य मकरराशिस्थ हो, तब जो मनुष्य धूप निकलने के पूर्व स्नान ही नहीं करता, उसे मुक्ति कैसे प्राप्त होगी तथा वह स्वर्गगामी कैसे होगा ? नहीं हो सकता।
(नारदपु०उ०खं०६३/१०४)

माघे स्नात्वा प्रयागे तु तस्यात्कोटिगुणं भवेत्। तस्मात्समस्ततीर्थानां प्रयागः परमः स्मृतः ।।
(पद्मपु०क्रिया ४/९)

वेदागमपुराणोक्तं यत्पुण्यमक्षयं भवेत्। माघे स्नात्वा प्रयागे तु तत्पुण्यं नात्र संशयः ।।
(पद्मपु०क्रिया ४/११)

माघे सर्वाणि तीर्थानि प्रयागमधियान्ति हि ।

- माघमास में सभी तीर्थ प्रयागराज में आते हैं, सूर्य के मकर राशि में आने पर माघ मास में गंगा-यमुना, त्रिवेणीसंगम में स्नान करने से सभी तीर्थों का पुण्यफल प्राप्त होता है, पृथ्वी पर संगम तीर्थ से बड़ा कोई तीर्थ नहीं है। (स्कन्दपु० ४/६१/४१)

●

श्राद्ध विचार - ११

वैदिक सनातन धर्म में जन्म से मृत्यु तक की यात्रा को इहलोक या प्रत्यक्षलोक तथा मृत्यु के बाद के लोक को परलोक कहा जाता है। प्रत्यक्षज्ञान के लिये बहुत कम साधन और विवेक - श्रम, शक्ति की आवश्यकता होती है परन्तु अप्रत्यक्षलोक परलोक का विचार और इस पर आस्था एक जटिल प्रक्रिया है। वर्षा के गिरते पानी का अनुभव सहज अनुभव है परन्तु जल के बनने और समाप्त होने की प्रक्रिया एक विज्ञान सम्मत प्रक्रिया है, जिसे दीर्घकालीन अध्ययन और अनुसन्धान से ही समझा और समझाया जा सकता है। वैदिक प्रज्ञा ने लोक-परलोक के अनुसन्धान को अपने जीवन के सर्वश्रेष्ठ समय, श्रम और शक्ति को देकर प्राप्त किया है और सर्वांग सृष्टि के विचार के अंकुर को जन्म देकर विचारों की ऊँचाई को छुआ है। वैदिक धर्म, दर्शन, संस्कृति का यह महावृक्ष सभी सुखों के त्याग द्वारा सींचा गया है। ऐसे ऋषि, ऋषि पुत्रों को कड़कड़ाती ठण्ड में गुदड़ी में पड़े रहने का मोह छू नहीं सका। रात्रि को बिदाकर सवितृ देव का स्वागत प्रातः सन्ध्या करती थी। अस्ताचलगामी सवितृदेव को बिदाकर निशा समय का चिन्तन सायं सन्ध्या करती थी। वैदिक दिनचर्या में काल के अस्तित्व का ही साम्राज्य है। अस्तित्वहीनता का कहीं भी विचार नहीं है। वैदिक चिन्तन और कर्मधारा ऊर्जा को उत्पन्न करने वाली धारा है, इसका वेग जंग लगी, कबाड़ और मुर्दा मशीन में तत्काल प्राण फूंक सकता है- यह वैज्ञानिक सत्य है। सृष्टि के किसी भी बिगड़े स्वरूप में यह जीवन का सञ्चार कर सकती है- यह वैज्ञानिक सत्य है। हम वैदिक विज्ञान की उपेक्षा लगभग तीन सौ वर्षों से करते आ रहे हैं जिसके परिणाम अच्छे नहीं हुये हैं।

पारलौकिक सत्य, अस्तित्व और श्रद्धा की इस त्रिवेणी का संगम, वेद संस्कार पोषित पंचवर्षीय वैदिक हृदय बालक नचिकेता में पैदा होता है। वैदिक ऋषि वाजश्रवस् ने विश्वजीत नामक सर्ववेदस् यज्ञ किया- ऐसा एकदिवसीय यज्ञ जिसमें यज्ञकर्ता अपनी सभी प्रकार की सम्पत्ति का दानकर दे देता है। यहाँ यह स्मरणीय है कि वैदिक परम्परा में ऋषि-महर्षि, धनी-मानी मनुष्य नहीं माने जाते थे, इनका जीवन अत्यन्त सादगी से भरा हुआ था, साधन-सम्पत्ति का होना सम्भव नहीं था, यदि यज्ञादि में दक्षिणा के रूप में कुछ धन प्राप्त हो भी जाता था तो इस धन (सोना, चाँदी, गौ, जमीन) को **सर्ववेदस्** - एक दिन में सम्पन्न होने वाला यज्ञ जिसमें यज्ञकर्ता अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति का दान कर देता है- ऐसे यज्ञ के द्वारा ऋषि-मुनि अपनी धरोहर या सम्पत्ति को दान दे देते थे। ऋषि वाजश्रवस् ने ऐसे यज्ञ का संकल्प किया। ऋषि का पाँच वर्ष का बालक वैदिक यज्ञ की पूरी प्रक्रिया को देख रहा था। पिता ने यज्ञान्त दक्षिणा में कुछ स्वस्थ और दुधारू गायों को लोभ से अलग रख लिया और उनका दान नहीं किया। यह घटना देखकर बालक में श्रद्धा का उदय हुआ- **'श्रद्धा आविवेश'।** प्रस्तुत वेद आख्यान की इस कथा में एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण शब्द 'श्रद्धा' का प्रयोग हुआ है। पिता द्वारा बुड्ढी

गायों को दान देते हुए देख बालक नचिकेता के मन में श्रद्धा उत्पन्न हुयी । 'श्रद्धा' का अर्थ 'आस्तिक्य बुद्धि'- अस्ति अस्ति- यह है, यह है, ऐसा विचार अस्ति का अर्थ होता है, इससे उत्पन्न भाव को आस्तिक्य भाव कहते हैं । बालक नचिकेता के सच्चे हृदय में दान और दान से प्राप्त सद्गति का स्पष्ट विचार था, इस विचार में बालक के मन में किसी प्रकार संदेह नहीं था । पिता की हित कामना के लिये शास्त्रीयकर्म द्वारा की जाने वाली आस्तिक्य बुद्धि- श्रद्धा ऐसा अर्थ प्राप्त होता है- श्रद्धा का यही अर्थ है । जैसा दान देता है वैसे ही लोकों में दान देने वाला जाता है- यह शास्त्र प्रमाण है ।

बुड्ढी गायों को दान करते हुए देख निर्मल बालक नचिकेता का मन दुःखी हो गया कि इस प्रकार के दान से मेरे पिता का हित नहीं होगा, अत्यन्त परेशान होकर वह अपने पिता से बार-बार बोलने लगा- पिता जी 'मैं आपका प्रिय पुत्र हूँ, आप मुझे किसको दान में देंगे'? बालक के ऐसा कई बार कहने पर नाराज होकर पिता ने कहा- 'मैं तुम्हे यमराज को दूँगा'। पाँच साल का बालक पिता को याद दिलाता है कि पिता जी- हमारे पूर्वजों ने जैसा आचरण किया है वैसा ही आप भी कीजिये, उन्हीं के आचरण का पालन करना चाहिये । उनमें किसी का भी आचरण अपने कथन को मिथ्या नहीं करता था और हमारी परम्परा में इस समय भी कोई मिथ्यावादी नहीं है । जीवन खेती की तरह है- यह पकती है और नष्ट हो जाती । इस अनित्य जीवन में असत्य आचरण से क्या लाभ है । पुत्र के इस प्रकार कहने पर पिता ने सत्यता की रक्षा के लिये पुत्र नचिकेता को मृत्यु-यमराज के पास भेज दिया । पञ्चवर्षीय बालक पिता के वचन और कुल मर्यादा की रक्षा के लिये, परलोक में पिता के उज्ज्वल मार्ग के लिये, सहर्ष मृत्यु को प्राप्त हो जाता है ।

भारतीय वैदिक सनातन धर्म परम्परा में कुछ शब्द सरल और लोक प्रसिद्ध होने पर भी शब्दों की जीवन यात्रा में कठिन और न समझे हुए से हैं । जैसे आकाश में हजारों क्वींटल वजन लेकर हवाई जहाज उड़ता है, पानी में पनडुब्बी (Submarine) चलती है, यह अन्तरिक्षयान है- सामान्य भाषा में इन शब्द को प्रतिदिन सुनते और सुनाते हैं परन्तु इनके होने में आधुनिक विज्ञान की उन्नति की एक अत्यन्त जटिल प्रक्रिया है । आधुनिक विज्ञान उपभोक्ता और उपभोग्य व्यवस्था के आस-पास घूमता रहता है । प्राचीन भारती वैदिक दृष्टि ठीक इससे विपरीत है । इस वैदिक दृष्टि में जड-प्रकृति, चेतन और देवत्व से पूर्ण है । पञ्चतत्त्वों से बने इस संसार और सांसारिकों को चलाने के लिये संस्कृत की दो हजार धातुओं में से लगभग सौ धातु और उनसे बने शब्दों की विकास यात्रा सृष्टिक्रम को समझने के लिये बहुत ही अनिवार्य है, जैसे किसी देश को चलाने के लिये उसका संविधान आवश्यक होता है वैसे ही विश्व सृष्टि की रचना को समझने के लिये ऋषियों द्वारा निर्मित संस्कृत भाषा का कुछ ज्ञान और इस पर गौरव आवश्यक है । प्राचीन वैदिक पौराणिक ग्रन्थों की उपेक्षा के कारण हम भारतवर्ष के ६०% भौगोलिक भूभाग को खो चुके हैं- कारण अपनी परम्परा में अश्रद्धा, शास्त्रों में अश्रद्धा इत्यादि । बाहरी लोगों द्वारा बनाई गयी सीमारेखा के सर्टिफिकेट को हम लोगों ने मढ़वाकर टाँग रखा

है और मनमाना भौगोलिक सीमांकन कर रहे हैं। वेद-शास्त्र, पुराण प्रसिद्ध तीर्थ स्थानों को दूसरों के हाथों में सौंप कर अपने ही तीर्थों के लिये दूसरों से रास्ता मांगा जा रहा है । यह हास्यास्पद खेल छोटे-छोटे लाभ लेने के लिये राजा राममोहन राय से आरम्भ होकर आज तक चल रहा है । यदि प्रतिवर्ष केवल चार वर्ण बनाने वाले मनु को जूते की माला पहनाते हैं और उनकी पोथी (मनुस्मृति) को जलाया जाता है तो हजारों वर्ण-जाति में भारत को विभाजित करने वाले आधुनिक मनु कहाँ इस देश को पहुँचायेंगे यह उत्तर अभी बाकी है । यह सब हमारी समृद्ध परम्परा में अश्रद्धा को बताता है । अश्रद्धा का तात्पर्य शायद अपने अस्तित्व को नकारना, स्वीकार न करना ही माना जायेगा ।

संस्कृत भाषा को और संस्कृत के ग्रन्थों को ब्राह्मणों की भाषा से जोड़कर देखा गया है । इसी तरह के गलत विचारों के कारण राष्ट्ररक्षा का भार केवल सैनिकों से, साफ-सफाई का भार सफाई कर्मचारियों से जोडकर देखा जा रहा है, यह एक बहुत ही गलत परम्परा की शुरूवात है । समाज, व्यक्ति और प्रकृति का विभाजन वैदिक दृष्टि का कभी आदर्श नहीं रहा है । किसी गलत मार्ग का निर्देश बहुत से संकटों को पैदा कर देता है । इस समय जाने-अन्जाने या योजनाओं के द्वारा एक संकट को हटाने के लिये बीसों प्रकार की परेशानियाँ खड़ी की जा रही है, यह प्रकृति का दोहन भी इसी में आता है । प्राचीन परम्परा में लाभ लेने की भावना, उपभोग की भावना नगण्य ही थी, इस व्यवस्था का कारण श्रद्धा की बहुलता रहा है, जिसका वर्तमान समय में सर्वथा ह्रास हो गया है । संस्कृत भाषा और संस्कृत ग्रन्थों की उपेक्षा विश्वधरोहर और उसके वैज्ञानिक ग्रन्थों की ही उपेक्षा है, जिसका परिणाम भविष्य में उचित नहीं होगा । किसी राजा के तख्ता पलटने (Coup) जैसे विचारों से रहित, नंग-धडंग रहने वाले, सदाचार और सृष्टि व्यवस्था की नाव खेने वाले, ऋषि-महर्षियों के सार्वभौम विचारों पर अविकसित विचारों के आरोप लगते आ रहे हैं । विश्वधरोहर संस्कृत एवं शास्त्रों की परम्परा को सुरक्षित रखने वाले हजारों ब्राह्मण कुंवारे ही मर जाते हैं- ऐसे ब्राह्मणों को किसी ने अपनी कन्या का हाथ भी नहीं दिया । हमें पीछे जाकर अमूल्य धरोहर की ओर श्रद्धा से देखना चाहिये भंवर में फसी विश्व की नाव को बाहर निकालने का यही रास्ता और कुञ्जी है ।

आज हम दो सौ वर्षों में बहुत सी बाधाओं से बाहर आ गये है या विकसित हो गये हैं, परन्तु इस विकास क्रम ने हजारों समस्याओं को भी पैदाकर दिया है, जिसके नुकसान को पूरा करने के लिये हमारे पास कोई व्यवस्था नहीं है । ढ़ोंग में जीना और ढ़ोंग पर विश्वास कराना आधुनिक जीवन पद्धति बनती जा रही है । महर्षि अगस्त्य ने तो समुद्र का ही पान किया था परन्तु आधुनिक विज्ञान (Modern science) ने कुछ ही समय में आकाश-वायु-जल-थल सभी प्राणियों (Flora and fauna) को अपना शिकार बना लिया है । लाखों-करोंड़ो वर्षों से स्वस्थ्य प्रकृति रोगी और टूटी-फूटी दिखाई दे रही है- यह सार्वभौम वैदिक दृष्टि नहीं है । वैदिक दृष्टि साफ-साफ दो भागों में विभाजित है- धर्म-कर्म-मार्ग और दूसरा ब्रह्म-आत्ममार्ग । सनातन धर्म व्यवस्था किसी भी समय विज्ञान की विरोधी नहीं रही

है, सनातन धर्म को किसी भी धार्मिक चोट से अपने अस्तित्त्व के समाप्त होने का डर नहीं सताता है- वह वट वृक्ष की तरह अमर है यही इसका सनातन (सदा बने रहने) का भाव है । क्योंकि सनातन व्यवस्था सम्पूर्ण विश्व में आत्मा के तादात्म्य का अनुभव करती है, विश्व को अपने से अलग नहीं समझती, इसके ह्रास या विकास से अपने को स्पन्दित मानती है, इसीलिये सनातन धर्म किसी के विरोध में खड़ा हुआ धर्म नहीं है, क्योंकि यह धर्म है, धर्म सार्वभौम होता है, सभी के हित के लिये होता है । सनातन धर्म व्यवस्था के विरोध में खड़े हुए हाथों से दुनिया का चेतन-अचेतन, प्रकृति का भला नहीं हुआ है ।

कुछ सैकड़ों संस्कृत भाषा के शब्दों में अति महत्त्वपूर्ण शब्द 'श्राद्ध-श्रद्धा' भी है, यदि हम इस शब्द की गहराई में, इससे उपजे धार्मिक ताने-बाने में जाते हैं तो पितृगणों की स्मृति में दी गयी तिलाञ्जलि-आटे के पिण्ड से आगे हजारों विचार और उनसे उपजे परिणाम प्राप्त होते हैं । श्रद्धा-श्राद्ध की पारलौकिक दृष्टि के अतिरिक्त भी भौतिक-सामाजिक दृष्टि के अनन्त, अच्छे और प्रत्यक्ष परिणाम हैं । जिस प्रकार जगत् को बदल देने के सकाम कर्म बिना कामना के सम्भव नहीं है, उसी प्रकार निष्काम कर्मों की धारणा बिना श्रद्धा के सम्भव नहीं है, चाहे यह श्रद्धा का भाव राष्ट्र का विचार हो या धर्म का। किसी भी अस्तित्व में विश्वास श्रद्धा कही जाती है । वैदिक ऋषियों का सांसारिक जीवन और इनकी दृष्टि संसार के दोहन में नहीं थी । श्रद्धा को ऋग्वेद (१०/१५) में देवी रूप से कहा गया है- ''**श्रद्धां प्रातर्हवामहे - हे श्रद्धेऽस्मान् लोके कर्माणि श्रद्धावान् कुरु**''- प्रात:काल, मध्याह्नकाल, सायंकाल और सर्वकाल की श्रद्धा हमें श्रद्धावान् बनाये । श्रद्धा सूक्त में - श्रद्धा को सभी प्रकार की विभूतियों, उच्चस्थान दिया गया है, ''**श्रद्धया विन्दते वसु**'' श्रद्धा से सकल ऐश्वर्य की प्राप्ति भी बतायी गयी है। श्रद्धा और विश्वास को वाक्-अर्थ की तरह एक साथ निरूपित किया गया है । ''**भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ**'' श्रद्धा और विश्वास से रहित लोगों के लिये न यह लोक है और न ही परलोक। ''आस्तिक्यबुद्धि - ऐसा है ही'' यह विश्वास श्रद्धा कहा जाता है । जब व्यक्ति में श्रद्धा पैदा हो जाती है तो यह कर्म और धर्म में सही विवेक उत्पन्न कर देती है । सनातन धर्म की परम्परा में धर्म से अलग किसी भी प्रकार के कर्म को नहीं माना गया है और धर्मभावना से विहीन कर्म उच्छ्रंखलता, मानसिक उद्वेग ही है । हमारे भोजन के ग्रास में किसी का हिस्सा है यह हमारी परम्परा का प्रथम विश्वास रहा है, इसलिये घरों में प्रथम ग्रास- रोटी देवताओं, पशु-पक्षियों के लिये मानी गयी है । श्रद्धा का अर्थ कभी भी अन्धविश्वास नहीं होता, यह भी हो सकता है कि श्रद्धा में विश्वास का न होना ही अन्धविश्वास हो। कर्ममार्ग फल की उत्पत्तियों में विश्वास करता है और श्रद्धा जाने अनजाने में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से फल को उत्पन्न करती है । संसार में दया, करुणा, सेवा, असहाय प्राणियों की सेवा, जीव-जन्तुओं, प्रकृति के प्रति प्रेम, श्रद्धा से ही उपजते हैं । श्रद्धा का यह आन्तरिक भाव संसार को जीवित और

सुन्दर, आलङ्कारिक रूप प्रदान करता है । किसी पर श्रद्धा करना, कृपा करने की तरह नहीं है। जैसे अदृश्य X-Rays अपनी प्रक्रिया से छवि बना देती है उसी तरह अदृश्य श्रद्धा का विचार अनन्त, प्रत्यक्ष फलों को उत्पन्न करता है, समाज और प्रकृति की यात्रा को सुखद-सुगम बनाता है । श्रद्धा की प्रशंसा में साम जैमिनीय ब्राह्मण- माता के गर्भ से प्रथम जन्म, दीक्षा से दूसरा जन्म और शिक्षा से प्राप्त श्रद्धा द्वारा आत्मकल्याण को बताता है । प्रस्तुत शास्त्रवाक्य में श्रद्धा और अन्धविश्वास को एक-दूसरे से विपरीत बताया है । यजुर्वेद - ''**श्रद्धया सत्यमाप्यते**'' - श्रद्धा से सत्य को प्राप्त करता है- ऐसी दिशा देता है। शास्त्रों के प्रति उपेक्षा के कारण श्रद्धा-श्राद्ध जैसी जीवित प्रक्रिया पर अविश्वास का भाव पैदा किया जा रहा है । अधिसंख्य आधुनिक बालक दुकानों की शीशे की अल्मारियों को देखकर लोभित होकर अपने लिये चड्ढी-बनियान छाटते नजर आते हैं । पाँच वर्षीय वैदिक बालक नचिकेता धर्म और श्रद्धा के विचार से अपने पिता को लोभ-मोह से दूर कर सत्य का मार्ग दिखाता है । कुश-लव बाल्यावस्था में अनन्तविद्याओं को सीखकर भगवान् राम के दरबार में ऋषि-मुनि-विद्वानों के सामने विश्व के प्रथम अमर महाकाव्य रामायण का गान करते हैं- ऐसी अद्भुत शक्ति, श्रद्धा-भक्ति से ही पैदा हो सकती है। हमारी बाह्य और आन्तर समस्याओं का समाधान, विश्व में आयी हुयी हिंसक गतिविधियों का निराकरण, हमारी जड़ों में, वेद-पुराण-स्मृति शास्त्रों के अवलोकन में और इन के प्रति श्रद्धा में ही है। संस्कृत वाङ्मय के विशेष शब्दों में 'श्रद्धा' शब्द मोर मुकुट की तरह सर्वोच्च और बहुआयामी है । प्राचीन आलोक से आधुनिक समस्याओं को दूर करने का, नये नये अन्वेषणों का यह उचित समय हम खो रहे हैं ।

श्रद्धा, श्राद्ध एक ही परिवार के शब्द हैं । बाजार में सामान खरीदते समय हमारी निगाहें बांट और सामान को देखकर कांटे पर टिक जाती है । कुछ ऐसा ही परिणाम 'विश्वास' शब्द के जोड़ देने से होता है । शिव-शक्ति का अभेद मानकर इनको ''श्रद्धाविश्वासरूपिणौ'' कहा है । श्रद्धा और विश्वासरूपी दोनों पलड़ों की एकता के बिना व्यापार-विनिमय का फल प्राप्त नहीं होता । इहलोक और परलोक में श्रद्धा और विश्वास की अवधारणा वैदिक मनीषा का परम विकास है । इसके बिना व्यक्ति और समाज का कर्तव्य भी पूरा नहीं होता । जो व्यवस्था मानव जीवन या सृष्टि को अकारण ही उत्पन्न और अकारण ही नष्ट होने वाली मानती है- ऐसी सोच कभी जीवन के उद्देश्य का पूरा समाधान उपस्थित नहीं करती । श्राद्ध, पुनर्जन्म की अवधारणा आदि का बीज परलोक का विचार है । शब्दों के बड़बोलेपन और अपरिपक्वता के कारण परलोक की मान्यता को अन्ध-विश्वास कह देते हैं परन्तु वास्तविकता तो यह है कि परलोक में अविश्वास ही अन्धविश्वास है । विज्ञान, शक्ति (Energy quantum) या परमाणु को अविनाशी मानता है । विराट् मानव संसार, इसकी अनन्त अभिलाषायें, इसके कर्म और इससे उपजा फल अस्तित्वहीन होंगे- यह विचार हास्यास्पद है और इससे सावधान होने का भी समय है ।

परलोक की अवधारणा और इसके अस्तित्त्व की संगति कैसे बैठायी जाये यह प्रश्न तो हो सकता है परन्तु इसकी अस्तित्वहीनता का प्रश्न पैदा नहीं होता। इहलोक और परलोक का चिन्तन और सामञ्जस्य भगवान् श्री कृष्ण ने गीता में किया है। भगवान् का अर्जुन को उपदेश- स्वकर्म और पुनर्जन्म की दृढ धारणा पर श्रद्धापूर्वक किया गया है। यह बात महत्त्वपूर्ण है कि सम्पूर्ण गीता में परलोक की धारणा के विचार को गौण, स्वकर्म और अध्यात्म धारणा को मुख्य कर्म माना है। रण से शरण में आये वीर अर्जुन को भगवान् ने स्वीकार नहीं किया। अर्जुन के विचारों का शोधन कर उसे उचितमार्ग पर नियुक्त किया। ऋषि मुनियों की तरह ही भगवान् के सामने भी इहलोक और परलोक का विचार स्पष्ट था। वैदिक दृष्टि का आग्रह इस लोक की जीवन पद्धति को जी-जान लगाकर जड़ से उखाड़ने में और परलोक की अवधारणा की स्थापना में कभी नहीं रहा है। ऐसा विचार हो तो वर्ग संघर्ष को ही जन्म देगा। इतिहास के उपलब्ध पत्रों में यह स्पष्ट है कि भारतीय सनातन वैदिक परम्परा में कभी भी वर्ग संघर्ष उत्पन्न नहीं हुआ है। भगवान् श्री कृष्ण कर्म और कर्मफल के चक्र को स्पष्ट समझाते हुए निष्काम भाव की ही स्थापना करते हैं। भगवान् की दृष्टि में ज्ञानहीन का इहलोक भी व्यर्थ है और परलोक भी। इहलोक की गन्दगी को साथ लिये हुए अनन्त एषणाओं के साथ परलोक में मलिन मन का गमन भगवान् को इष्ट नहीं है। वास्तव में वैदिक सनातन धर्मशास्त्र का विशाल वाङ्मय अत्यन्त वैज्ञानिक सोच का परिणाम है। इस लोक की सत्ता और परलोक की असत्यता का विचार बौद्धिक विचार नहीं माना जा सकता है। श्रद्धा, श्राद्ध और विश्वास जैसे शब्दों के योग से लोक परलोक में आस्था की मीमांसा सनातन शास्त्रों का मुख्य वैज्ञानिक विचार है जिसके परिप्रेक्ष्य में समाज को उचित दिशा दी गयी थी और आज दी जा सकती है।

इदं पितृभ्यो नमोऽस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयुः। ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु दिक्षु।।

(ऋग्-१०-१५-२

ऋग्वेद के दशम मण्डल पितृसूक्त में स्वर्गस्थ पितृगणों को प्रार्थना पूर्वक श्राद्ध हवि अर्पित की गयी है। वेद आदि शास्त्रों में जितना बल श्राद्ध पर दिया गया है उतना किसी अन्य पर नहीं। वैदिक वाङ्मय में श्रद्धा-श्राद्ध शब्द सनातन धर्म-दर्शन के विचारों की भूमि है। वजीराबाद दिल्ली के विद्वानों में श्राद्ध पर हुए विवाद के लिये वेद विद्वान् मैक्समूलर के पास निर्णय के लिये पत्र भेजा गया, अपनी सम्मति में मैक्समूलर ने लिखा कि- ''वेदों में जितना बल श्राद्ध पर दिया गया है उतना अन्य किसी पर नहीं। कहाँ तक कहें कि वेद विश्वासी कभी श्राद्ध को अस्वीकृत नहीं कर सकता''। श्राद्ध पर वेद, वैदिक परम्परा के ग्रन्थ- पुराण, स्मृतियों में भी पर्याप्त सामग्री दी गयी है। वास्तव में वैदिक विचार सामाजिक समानता, गरीब-अमीर की खायी को मिटाने, पर्यावरण को जीवित रखने की व्यवस्था है। जीवित प्राणियों, मृतजनों, वृद्ध, पर्वत, पेड़-पौधे, थलचर, जलचर, नभश्चर प्राणियों के प्रति श्रद्धा

अत्यन्त वैज्ञानिक विचार और आस्था है, यह सनातन धर्म में ही जीवित है ।

हजारों लाखों वर्षो से प्राचीन भारत अत्यन्त समृद्ध रहा है । विगत दौ सौ वर्षो पूर्व तक भारत वर्ष की पशु-पक्षी-वनस्पति-जलचर आदि की किसी भी जातिका आमूल-चूल खात्मा नहीं हुआ था- कारण था यहाँ की वैदिक-पौराणिक व्यवस्था का ताना-बाना । उदाहरण है- कुछ शताब्दी पूर्व न्यूजीलैण्ड, आस्ट्रेलिया आदि जगहों पर आये हुए लोगों द्वारा ''डोडो'' जैसे बड़े पक्षी की जाति का पूरी तरह से सफाया । यही हालत बायसन, अमेरिकन कबूतरों (पिजन) का भी हुआ । लाखों, करोंड़ों अमेरिकन पिजन के उड़ने से छह घन्टे तक दिन में अंधेरा छा जाता था ऐसा इतिहास कुछ ही वर्ष पहले का है । भारत भी इस व्याधि और पर्यावरण दूषण से पीड़ित हो गया है । यहाँ के लाखों सालों से जीवित रहे- नहर-नदी-तालाबा-पोखरे-कुँए-झरने इस समय अन्तिम स्वाँस ले रहे हैं, यहाँ तक की समुद्र भी इस समय नहाने लायक नहीं रहा । वैदिक विचार परम्परायें अत्यन्त वैज्ञानिक है । कुछ हजार-लाख लीटर पानी को साफ करने के लिये S T P (Sewage Treatment Plant) लगाकर हमें नये भगीरथ बनने के धोखे से बचना चाहिये । देवनदी यमुना जी की दुर्दशा पर आंसू न बहाने वाले और इस समय गङ्गा जल को मंगाकर पीने वाले लोगों की, गङ्गा जी को शुद्ध करने की धोखे वाली योजना से बचना चाहिये, यह तभी सम्भव होगा जब हम अपनी परम्परा की वैज्ञानिकता में श्रद्धा रखें, जल, थल, नभ से जुड़ी समस्याओं से सभी परेशान हैं । किसी भी आधुनिक Lab (Laboratry-प्रयोगशाला) में ताला नहीं लगाया जा सकता । यह आधुनिक युग है इसे किसी भी तरह से नकारा भी नहीं जा सकता है । सरकार और विज्ञान सर्कस के जोकर की तरह एक पहिये की गाड़ी चला रहा है, परन्तु यह करतब पूरी तरह से सही नहीं है । इसे आवश्यकता है- वैदिक दृष्टि की, हमें अपने इतिहास, अपने शास्त्रों के पन्नों को पलटनें की । ये आज भी उतने ही जीवित हैं जितने लाखों वर्ष पूर्व थे। महर्षि मनु ने प्रलय काल में जीवन देने के लिये बीजों को सुरक्षित रखा था । वैसे ही ये शास्त्र आज भी वेद-संस्कृत की परम्परा में सुरक्षित हैं । आवश्यकता है- श्रद्धा और विज्ञान के प्रकाश में अन्वेषण की और अविलम्ब कदम उठाने की ।

श्राद्ध शब्दार्थ -

श्रद्धा, श्राद्ध, श्रद्धालु आदि एक ही परिवार के सदस्य हैं । श्रत् + धा+ अङ् + टाप - श्रद्धा- आस्था, निष्ठा, विश्वास । श्रद्धा हेतुत्वेनास्त्यस्य अण् - श्राद्ध - मृतकों के प्रति श्रद्धा, विश्वास से जो कर्मानुष्ठान किये जाते हैं वे कर्म श्राद्ध नाम से प्रसिद्ध हैं, श्राद्ध, श्रद्धा शब्द वैदिक हैं ।

श्रद्धया पितृन् उद्दिश्य विधिना क्रियते यत्कर्म तच्छ्राद्धम् ।

पितृनुदिश्य विप्रेभ्यो दत्तं श्राद्धमुदाहृतम् । पितृनुदिश्यं द्रव्यत्यागो ब्राह्मणस्वीकरणपर्यन्तं श्राद्धस्वरूपम् ।।

- पितरों के कल्याण के उद्देश्य के लिये देश, काल पात्र के अनुसार उचित विधि द्वारा शास्त्रीय कर्म करके ब्राह्मणों को श्रद्धा पूर्वक जो दिया जाता है उसे श्राद्ध कहते हैं ।

श्राद्धकर्म अत्यन्त खर्च से भी सम्पन्न किये जा सकते हैं और सरलता से भी । शास्त्रों में कुछ ही रुपयों में पूर्ण होने वाली विधियाँ बतायी गयी है । जल, तिल, कुश कुछ आटा- संयाव आदि ही इसकी मुख्य सामग्री है । पितर लोग यथा- वसु, रुद्र, आदित्य जो श्राद्ध के देवता हैं, श्राद्ध से सन्तुष्ट होकर मानवों के पूर्व पुरुषों कों सन्तुष्टि देते हैं -

वसून्वदन्ति तु पितॄन् रुद्राँश्चैव पितामहान् । प्रपितामहाँस्तथादित्यान् श्रुतिरेषा सनातनी ।।

- पितामह पितर लोग श्राद्धमें दिये गये पिण्डों से स्वयं सन्तुष्ट होकर अपने वंशजों को जीवन, संतति, सम्पत्ति, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष, सभी सुख एवं राज्य देते हैं ।

परलोक, कर्म, पुनर्जन्म, अदृष्ट के सिद्धान्त पर अटल विश्वास रखने वालों के लिये परलोक का विषय परेशानी का नहीं है । इस लोक में सभी के लिये कर्म का सिद्धान्त तो निश्चित ही है और कर्म का अधिकार भी दिया गया है । श्राद्धकर्म हो या अन्य कर्म मनुष्य को कर्म करना ही चाहिये । जीवन को विशाल कर्मो की शृंखला में श्राद्धकर्म को बहुत बड़ा और आफत का कर्म नहीं माना गया है । यह श्रद्धा और ऋण के रूप में पूर्वजों के प्रति, ऋषियों के प्रति, देवताओं के प्रति प्रतिकर्म-उऋण की व्यवस्था है । समाज चाहे आस्तिक हो या नास्तिक मृतकों के प्रति सम्मान मनुष्य का कर्तव्य है और इसी किसी न किसी तरह निभाया भी जाता है । यह श्राद्धकर्म प्रतिवर्ष किसी न किसी तरह समाज के सभी क्षेत्रों में श्रद्धाञ्जलि के रूप में मनाया जाता है । वास्तव में किसी सिद्धान्त की स्वीकृति हमारी योग्यता और जवाबदारी को बताती है और अस्वीकृति हमारी अकर्मण्यता और लापरवाही को । अस्वीकृति का विचार हरे भरे कानन में दावानल की तरह है । किसी सोच, श्रद्धा की स्वीकृति को हम धरोहर की तरह आनेवाली पीढी को चिन्तन के रूप में दे सकते हैं परन्तु अस्वीकृति किसी उद्देश्य को नहीं बताती - परम्पराओं का सूपड़ा साफ करके जाना बुद्धिमत्ता का लक्षण नहीं है, आधुनिक समाज सुधारकों ने सूपड़ा साफ जैसी पद्धति को अपनाया है ।

अमरशहीदों की स्मृति में २४ घन्टे निरन्तर ज्योति का जलना, गैस और तेल की बरबादी नहीं मानी जा सकती, इस पर आपत्ति करना देश के लिये प्राणों को न्यौछावर करने वाले हुतात्माओं के लिये सम्मान की बात नहीं होगी । सम्मान और श्रद्धा का प्रश्न सीधे-सीधे ऋण से जुड़ा हुआ है । श्राद्ध पूर्वजों के प्रति ऋण भावना का समर्पण है । विश्वास चाहे लौकिक हो या पारलौकिक, सनातन धर्म की परम्परा में अकड़ से ज्यादा पकड़ को महत्त्व दिया गया है । श्रद्धा से सम्पन्न श्राद्ध, यह महावट वृक्ष की तरह हजारों विचारों का आश्रय है ।

श्राद्ध पितृगणों को कैसे प्राप्त होता है -

मत्स्य पुराण में एक प्रसंग है- ऋषियों ने अविवेकियों की शंका को दूर करने के लिये परमज्ञानी सूत जी से प्रश्न किया कि- वह भोजन, जिसे श्राद्ध में आमन्त्रित ब्राह्मण खाता है या जो अग्नि में डाला जाता है या श्राद्ध पिण्डों को जल में प्रवाहित किया जाता है, क्या इनसे मृतात्माओं

को शान्ति की प्राप्ति होती है, जो मृत्यु के बाद अच्छे या बुरे शरीर धारण कर चुके होंगें ।

कथं क्रव्यानि देयानि हव्यानि च जनैरिह । गच्छन्ति पितृलोकस्थान् प्रापकः कोऽत्र गद्यते ।।

यदि मर्त्यो द्विजो भुङ्क्ते हूयते यदि वानले । शुभाशुभात्मकैः प्रेतैर्दत्तं तद्भुज्यते कथम् ।।

उत्तर दिया गया कि पिता, पितामह एवं प्रपितामह, वैदिक आदेशों के अनुसार, क्रम से वसुओं, रुद्रों एवं आदित्यों के समानरूप वाले माने गये हैं, श्राद्ध के समय उच्चरित मन्त्र आहुतियों को पितरों के पास ले जाते हैं । यदि किसी के सम्बन्धी अपने शुभकर्मों के कारण देवता हो गये हैं तो श्राद्ध में दिया गया भोजन अमृत बनकर देवत्व की स्थिति में उनका अनुसरण करता है अन्य योनियों में अन्य भोजन बनकर उनका अनुसरण करता है और मृतात्माओं को तृप्त करता है ।

(मत्स्यपु०अ०१९)

श्राद्धकल्पलताकार ने अनेकों उदाहरणों से श्राद्ध का औचित्य सिद्ध किया है । श्राद्ध सम्बन्धी साहित्य बहुत विशाल है । वैदिक संहिताओं से लेकर आधुनिक धर्मशास्त्र निबन्धों तक में श्राद्ध के बारे में विशद विवरण प्राप्त होता है ।

आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च । प्रयच्छन्ति तथा राज्यं पितरः श्राद्धतर्पिताः ।।

- श्राद्ध से प्रसन्न पितृगण आयु, संतति, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष सुखों को देते हैं, यदि पितृगण प्रसन्न नहीं होगें तो इनके अप्रसन्नता से परिवार में कई प्रकार की बाधायें पैदा होती है, ऐसे विवरण भी शास्त्रों में प्राप्त होते हैं । (मार्कण्डेयपु० २९/३८)

उपनिषद् में भी कहा गया है कि **'देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्'** (तै०उप०१/११/१)

- देवता तथा पितरों के कार्यों में मनुष्य को कदापि प्रमाद नहीं करना चाहिये । प्रमाद से दोष होता है, क्योंकि हमारे ऊपर पितृऋण, ऋषिऋण और देवऋण परम्परा से प्राप्त है । इस ऋण को चुकाना हमारा कर्तव्य है ।

लोकान्तरेषु ये तोयं लभन्ते नान्नमेव च । दत्तं न वंशजैर्येषां ते व्यथां यान्ति दारुणाम् ।।

- पितृगणों को वंशजों के द्वारा यदि अन्न और जल प्राप्त नहीं होता है तो पितृगणों को अत्यन्त कष्ट का अनुभव होता है । (सुमन्तु)

ब्राह्मण भोजन से श्राद्ध की पूर्णता -

- वेद का आदेश है कि ब्राह्मणों को भोजन कराने से वह पितरों को प्राप्त हो जाता है-

इदमोदनं नि दधे ब्राह्मणेषु विष्टारिणं लोकजितं स्वर्गम् ।

(अथर्ववेद ४/३४/८)

- मैं भोजन को ब्राह्मणों के सामने उपस्थित कर रहा हूँ । यह भोजन विविधता से युक्त है और स्वर्ग लोक को जीतने वाला है ।

धन के अभाव में भी श्राद्ध करना चाहिये -

तस्माच्छ्राद्धं नरो भक्त्या शाकैरपि यथाविधि । तृणकाष्ठार्जनं कृत्वा प्रार्थयित्वा वराटकम्।
करोति पितृकार्याणि ततो लक्षगुणं भवेत् ।

- यदि श्राद्ध कर्म में शाक खरीदने के लिये पैसे न हों तो भी घास, भूसा, तृण, काष्ठ आदि को बेचकर पैसा इकठ्ठा करके श्राद्ध करें । ऐसे श्राद्ध का फल लाख गुना होता है ।

(पद्मपु०सृष्टि०५३/३१०)

श्राद्ध के भेद -

पिण्डपितृयाग- वैदिक श्राद्ध है । एकोदिष्ट, पार्वण तथा तीर्थ श्राद्ध से लेकर मरण कार्य तक के श्राद्ध स्मार्त श्राद्ध हैं । श्राद्ध का विस्तार बहुत बड़ा है, जो वैदिक विद्वान् इस कार्य को कराते हैं उन्हीं से श्राद्ध कर्म कराना चाहिये, इसलिये विधानों पर यहाँ ज्यादा नहीं लिखा जायेगा ।

श्राद्ध के अन्य भेद -

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं श्राद्धमुच्यते ।

- नित्य, नैमित्तिक और काम्य- भेद से श्राद्ध तीन प्रकार के होते हैं । यमस्मृति में पाँच प्रकार के श्राद्धों का उल्लेख मिलता है- नित्य, नैमित्तिक, काम्य, वृद्धि और पार्वण ।

श्राद्धदेश के लिये पवित्र स्थान -

गया, पुष्कर, प्रयाग, कुशावर्त (हरिद्वार) आदि तीर्थों की विशेष महिमा है । सामान्यत: घरमें, गोशाला में, देवालय, गंगा, यमुना, नर्मदा आदि पवित्र नदियों के तटपर श्राद्ध करने का अत्यधिक महत्त्व है । श्राद्ध-स्थान को गोबर-मिट्टी से लेपनकर शुद्ध कर लेना चाहिये । दक्षिण दिशा की ओर ढालवाली श्राद्धभूमि प्रशस्त मानी गयी है ।

गंगा जी के किनारे किया गया श्राद्ध अक्षय होता है -

गंगायामक्षयं श्राद्धं, गंगाद्वारे प्रभासे तु बिल्वके नीलपर्वते, नर्मदायां कुशावर्ते ।

- गंगाद्वार, बिल्वतीर्थ, नीलपर्वत, हरिद्वार आदि तीर्थों में किया गया श्राद्ध अक्षय फलवाला गया है।

(कूर्मपु०उत्तरार्ध२०/२९/३३-३५)

श्राद्धस्य पूजितो देशो गया गङ्गा सरस्वती । कुरुक्षेत्रं प्रयागश्च नैमिषं पुष्कराणि च ।।
नदीतटेषु तीर्थेषु शैलेषु पुलिनेषु च । विविक्तेष्वेव तुष्यन्ति दत्तेनेह पितामहा:।।

- पवित्र नद, नदियाँ, सरोवरों, पर्वतों, किसी भी नदी, सरोवर के किनारे, शान्त और शुद्ध जगह पर श्राद्ध किया जा सकता है । (वीरमित्रोदय श्राद्धप्रकाश)

प्रयागे संगमे दानं श्राद्धं जप्यादि चाक्षयम् ।।

- प्रयाग संगम में किया गया दान, श्राद्ध, जपादि अक्षय फलों को देते हैं -

(अग्निपु०१११/७)

श्राद्धं तु तैर्थिकं प्रोक्तं पितृणां तृप्तिकारकम् । अकालेऽप्यथवा काले तीर्थश्राद्धं तथा नरै: ।।

- तीर्थों में किया गया श्राद्ध पितृगणों को तृप्त करता है, काल हो दुष्काल सदा ही श्राद्ध करना चाहिये । (नारदीयपु०उ०खं०६२/४२)

प्रयागे वपनं कुर्याद्‌गंगायां पिंडपातनम् ।।

- प्रयागराज में अवश्य ही मुण्डन करायें, और गंगा किनारे श्राद्ध करें ।

(नारदपु०उ०खं०६३/१०५)

श्राद्धधर्मः सनातनः ।। श्राद्धे प्रतिष्ठिता लोकाः ।।

- श्राद्धकर्म सनातन धर्मी का मुख्य कर्तव्य है, श्राद्ध में ही लोक की प्रतिष्ठा है ।

(स्कन्दपु०५/१/५८/२७, ३२)

श्राद्धे प्रकल्पिता लोकाः श्राद्धे धर्मः प्रतिष्ठितः । श्राद्धे यज्ञा हि तिष्ठन्ति सर्वकर्मफलप्रदाः ।।५।।
श्रद्धया दीयते किञ्चिद्दैवं ब्रह्माग्नितर्पणम् । श्राद्धं तु तद्विजानीयात्पुरा प्रोक्तं महर्षिणा ।।६।।

- श्राद्ध में ही सभी की प्रतिष्ठा है, श्राद्ध में ही धर्म स्थापित है, श्राद्धकर्मों से ही यज्ञों की महत्ता है । श्रद्धापूर्वक पितृगणों को, देवताओं को दी गयी आहुति अक्षयफल को देने वाली होती है ऐसा महर्षियों का आदेश है । (स्कन्दपु०५/१/५८/५-६)

कुछ विचार -

- दो वर्ष के पूर्व के बालक का कोई श्राद्ध, जलाञ्जलि, क्रिया करने की आवश्यकता नहीं है।
- दो वर्ष से छह वर्ष तक मलीनषोडशी तक ही श्राद्ध सम्पन्न करें ।
- छह वर्ष के ऊपर के बालक के लिये मलीनषोडशी, एकादशाह तथा सपिण्डन सामान्य क्रियायें सम्पन्न करें । किसी तरह का विस्तार न करें ।
- अविवाहित कन्या के लिये केवल मलीनषोडशी ही करें ।
- यदि कन्या का विवाह दस वर्ष की उम्र के बाद हो गया हो तो श्राद्ध की सभी क्रियायें आवश्यक हैं ।
- वृद्धावस्था में मृत्यु पर श्राद्ध की सभी क्रियायें आवश्यक हैं ।

- अशास्त्रीय और लोभ-लालच की परम्परा के श्राद्ध परिवार को बरबाद कर देते हैं । जमीन-मकान, सोना, चाँदी, पशु तक परिवार के बिक जाते हैं । कई वर्षों तक नाक बचाने के लिये ऐसे श्राद्ध किये जाते हैं । श्राद्ध, श्रद्धा और शास्त्र का विचार है, नाक ऊँची करने का विचार नहीं है। सामर्थ्य के अनुसार ही श्राद्ध में व्यय, दानादि करना चाहिये । श्राद्ध की सामग्री- जल, कुश, तिल, आटा आदि बहुत ही साधारण और सस्ती सामग्री है, इन्हीं से श्राद्ध सम्पन्न होता है । यदि सामर्थ्य और इच्छा हो तो ही सोना, चाँदी, जमीन दान देना चाहिये । श्राद्ध में किसी भी तरह के दिखावे का पूर्ण निषेध है। श्राद्ध को त्योहार के रूप में कभी न मनायें । श्राद्धकर्म श्रेष्ठ विद्वान् ब्राह्मणों से ही कराना चाहिये । संस्कृत के धर्मशास्त्रों का बहुत बड़ा भाग श्राद्धविचारों को समर्पित है ।

●

कुम्भ प्रमाण विचार - १२

व्रत, पर्व, उत्सव -

व्रत, पर्व, उत्सव, त्यौहार जैसे - शब्दों के मूल में धार्मिक विधि- आदेशों का होना आवश्यक है। कभी - कभी स्वतन्त्रता दिवस जैसे शब्दों के साथ भी पर्व शब्द का प्रयोग होता है। संकल्प की पूर्ति होने के कारण स्वतन्त्रता दिवस को भी पर्व के रूप में मनाया जाता है। घर का सूनापन सन्तान के आने से जन्म पर्व में बदल जाता है। इसलिये राष्ट्र की स्वतन्त्रता प्राप्ति, सन्तान की प्राप्ति के लिये लिया गया व्रत भी पर्व कहलाता है। व्रत /संकल्प एक मानसी क्रिया है जिसका अनुमोदन शास्त्र और व्यक्ति के स्वयं के विचार से पैदा होता है। संकल्प के लेने में आस्तिकता का होना आवश्यक नहीं है, परन्तु हिन्दू सनातन वैदिक धर्म में व्रत, पर्व और उत्सव- धर्म के ताने-बाने से जुड़े शब्द हैं - जिनमें आस्तिकता होनी ही चाहिये। व्रत, पर्व, उत्सव, त्योहार और संकल्प में विभाजन रेखा खींचना या इनको अलग-अलग परिभाषित करना असम्भव है। शास्त्रों में विश्वास हो ऐसा भी आवश्यक नहीं है। सनातन धर्म से विमुख अन्य विदेशी जातियों को भी शास्त्रों ने व्रत करने की व्यवस्था दी है- यदि ये श्रद्धालु और व्रत, धर्म-कर्म, परलोक में विश्वास रखते हों तो -

पर्व, व्रत और उत्सव का आधार शास्त्रीय होने पर भी सनातन धर्म की उदार दृष्टि सर्वसामान्य को इनके आयोजन में कोई अवरोध नहीं खड़ा करती। यह विषय इन्द्र और मान्धाता के संवाद के प्रसंग में स्पष्ट हो जाता है -

यवनाः किराता गान्धाराश्चीनाः शबरबर्बराः । शकास्तुषाराः कङ्काश्च पह्लवाश्चान्ध्रमद्रकाः ।।१३।।
पौण्ड्राः पुलिन्दा रमठाः काम्बोजाश्चैव सर्वशः । ब्रह्मक्षत्रप्रसूताश्च वैश्याः शूद्राश्च मानवाः ।।१४।।
कथं धर्मांश्चरिष्यन्ति सर्वे विषयवासिनः । मद्विधैश्च कथं स्थाप्याः सर्वे वै दस्युजीविनः ।।१५।।

मान्धाता बोले - भगवन् ! मेरे राज्य में यवन, किरात, गान्धार, चीन, शबर, बर्बर, शक, तुषार, कङ्क, पह्लव, आन्ध्र, मद्रक, पौंड्र, पुलिन्द, रमठ और काम्बोज देशों के निवासी म्लेच्छगण सब ओर निवास करते हैं, कुछ ब्राह्मणों और क्षत्रियों की भी संतानें हैं, कुछ वैश्य और शूद्र भी हैं, जो धर्म से गिर गये हैं। ये सब के सब चोरी और डकैती से जीविका चलाते हैं। ऐसे लोग किस प्रकार धर्मों का आचरण करेंगे ? मेरे जैसे राजाओं को इन्हें किस तरह मर्यादा के भीतर स्थापित करना चाहिये।

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं भगवंस्तद् ब्रवीहि मे । त्वं बन्धुभूतो ह्यस्माकं क्षत्रियाणां सुरेश्वर ।।१६।।

भगवन् ! सुरेश्वर ! यह मैं सुनना चाहता हूँ। आप मुझे यह सब बताइये, क्योंकि आप ही हम क्षत्रियों के बन्धु हैं। इन्द्र ने कहा - राजन् ! जो लोग दस्यु-वृत्तिसे जीवन निर्वाह करते हैं, उन सबको अपने माता-पिता, आचार्य, गुरु तथा आश्रमवासी मुनियों की सेवा करनी चाहिये। भूमिपालों की सेवा करना भी समस्त दस्युओं का कर्तव्य है। वेदोक्त धर्म-कर्मों का अनुष्ठान भी उनके लिये शास्त्रविहित

धर्म है । पितरों का श्राद्ध करना, कुआँ खुदवाना, जलक्षेत्र चलाना और लोगों के ठहरने के लिये धर्मशालाएँ बनवाना भी उनका कर्तव्य है । उन्हें यथा समय ब्राह्मणों को दान देते रहना चाहिये । अहिंसा, सत्यभाषण, क्रोधशून्य बर्ताव, दूसरों की आजीविका तथा बँटवारे में मिली हुई पैतृक सम्पत्तिकी रक्षा, स्त्री-पुत्रों का भरण-पोषण, बाहर-भीतर की शुद्धि रखना तथा द्रोहभावका त्याग करना यह उन सबका धर्म है । कल्याण की इच्छा रखने वाले पुरुष को सब प्रकार के यज्ञों का अनुष्ठान करके ब्राह्मणों को भरपूर दक्षिणा देनी चाहिये । सभी दस्युओं को अधिक खर्चवाला पाकयज्ञ (बड़े-बड़े विशाल भोज) करना और उसके लिये धन देना चाहिये । (म०भा०शान्ति अ०६५)

व्रतोपवासनियमैः शरीरोत्तापनैस्तथा । वर्णाः सर्वेऽपि मुच्यन्ते पातकेभ्यो न संशयः ।

- व्रत, उपवास, नियमादि से शारीरिक-मानसिक तप द्वारा सभी वर्ण पापों से दूर हो जाते हैं।

(देवल-हेमाद्रिव्रतखण्डे)

जिसका वेदादि शास्त्रविधि में अधिकार नहीं है, वह ब्राह्मणद्वारा होमादि धार्मिक कृत्य करा सकता है - ऐसे विधान शास्त्रों में प्राप्त होते हैं । व्रत, पर्व, उत्सव का आधार तो शास्त्रीय है, परन्तु क्रियाविधि में वैदिक या स्मार्त कर्मों की तरह अत्यन्त वैधानिकता या पूर्ण शास्त्रीयता नहीं होती है । इस तरह से सनातन धर्म की व्यवस्था, सनातन धर्म को लचिला और महासागर की तरह उदार बनाती है, जिसमें सभी तरह की नदियाँ मिल सकती है । सनातन धर्म में जन्म से जाति और विवादास्पद कर्म से जाति मानने का भी यही आधार है, कर्म से विद्वान् सूत जी ऋषि-मुनियों के सामने ऊँचे व्यासपीठ पर बैठते हैं ।

वैदिक सनातन धर्म के विधि-विधान तीन भागों में विभाजित हैं- वैदिक (वेद द्वारा बताये गये) स्मार्त (स्मृतियों, पुराण, महाभारत, रामायणादि द्वारा बताये गये), लोकाचार- परिवार की परम्परा में आये हुए धार्मिककृत्य, चतुर्थविभाग- व्रत, पर्व, त्यौहार और उत्सव का है, इसमें आधार और विधान तो शास्त्रों के हो सकते हैं, परन्तु इनको मनाने में व्यक्ति और समाज को स्वतन्त्रता भी दी गयी है, कदम-कदम पर संड़सी की तरह पकड़ या शास्त्रीय मीन-मेख का विचार नहीं रहता, शास्त्रों प्रमाणों की भी आवश्यकता नहीं रहती । यह विभाजन है- नित्य, नैमित्तिक, काम्य- किसी अभिप्राय या वस्तु की प्राप्ति के लिये किया गया कर्म । इस विभाजन में भी व्रत, पर्व, उत्सव छूट जाते हैं या इनको स्वतन्त्र ही रहने दिया गया है । पूरी तरह शास्त्रीय विधानों के द्वारा कस दिये जाने पर व्रत-पर्व-उत्सव का उल्लास समाप्त हो सकता है, इस बात को शास्त्रकार जानते थे । इसीलिये व्रत में शास्त्रीयता, पर्व में व्यक्ति की स्वतन्त्रता और उत्सव में आमोद-प्रमोद का भाव रहता है । कुम्भ आदि भी व्रत न होकर शास्त्रीय छायामें पर्व और उत्सव की श्रेणी में आते हैं । इसे कुम्भ पर्व और कुम्भ महोत्सव ही कहा जाता है, कुम्भपर्व, व्रत की परिभाषा में नहीं आता । इस पर्व का आधार कुम्भ, घट या कलश शब्द ही है । ये शब्द ही सनातन परम्परा में अत्यन्त धार्मिक महत्त्व रखते हैं, इन शब्दों की धार्मिकता का

विधान शास्त्रों में प्राप्त होता है । बाजार में बिकने वाले मिट्टी के घड़े को हाथ से तो छू सकते हैं परन्तु पैर या पैर का अंगुठा नहीं लगा सकते हैं । कुम्भ (घट) और जल का पर्व उत्सव के साथ महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध है । कुम्भ की शोभा, तो जल से ही होती है । पर्व-उत्सव-त्यौहार का सम्बन्ध धर्म मर्यादा से जुड़ा हुआ हो तो उसका सामाजिक, धार्मिक मूल्य बहुत ज्यादा हो जाता है । व्यवहार में आये हुये शास्त्रीय शब्द यदि वेदमन्त्रों में भी पाये जाते हैं तो उस शब्द के कारण वेदमन्त्रों का उस कर्म में विनियोग हो सकता है- ऐसी व्यवस्था मीमांसा शास्त्र में मानी जाती है । कुम्भ (कलश) शब्द का प्रयोग वेदों में प्राप्त होता है । कुम्भ और इससे जुड़ी हुई धर्म-मर्यादा या जीवन पद्धति वेदों की तरह ही अनादि है, ऐसे व्रत, त्यौहार, उत्सव, पर्व परम्पराओं, शास्त्रों की व्यावहारिकता और गतिशीलता को बनाये रखते हैं । कुम्भ आदि पर्व वैदिक परम्परा के अनुसार ही हैं ।

भारतीय परम्परा पर्व-उत्सव-त्यौहार को पूर्व स्वतन्त्रता नहीं देती है, कहीं न कहीं इसमें शास्त्रीयता का पक्ष जुड़ा रहता है । समाज को आमोद-प्रमोद के लिये स्वतन्त्रता चाहिये इस व्यवस्था को पर्व-उत्सव पूरा करते हैं परन्तु मर्यादा के साथ । ये पर्व-उत्सव सभी वर्ग भेद, जाति भेद आदि से अलग होते हैं, इस भीड़ में गरीब सम्पन्न के सम्पर्क में आता है और सम्पन्न गरीब के सम्पर्क में। कुम्भपर्व प्रारम्भ से ही विश्व का सबसे बड़ा जनसमूह है और कई दिनों तक एक साथ रहने वाला समूह भी है । ऐसे उत्सवों के अनन्त लाभ हैं, समाज के सभी भेदों को मिटाकर एक साथ रहना यह पर्व सिखाता है । बारह वर्षों में चार स्थानों पर तीन-तीन वर्षों में कुम्भ सम्पन्न होते हैं । सामान्यजन के मानस को देखने, उसके साथ रहने का इससे अच्छा कोई स्थान नहीं है । यह कुम्भपर्व भारत वर्ष की छवि देखने के लिये दर्पण की तरह है । सभी प्रकार के वाग्जाल का मन्थन करने के बाद यही निष्कर्ष निकलता है कि परोपकार से बढकर कोई धर्म नहीं है और हानि करने से बड़ा कोई पाप नहीं है -

परिनिर्मथ्य वाग्जालं निर्णीतमिदमेव हि । नोपकारात्परो धर्मो नापकारादघं परम् ।।

(स्कन्द काशीखण्ड-६/७)

उनका जीवन सफल है जो दूसरों का कल्याण करता है, अग्नि, जल, सूर्य, पृथिवी एवं विविध प्रकार के धान आदि परोपकार के लिये ही पैदा होते हैं । सज्जन दूसरों के कल्याण के लिये ही जीते है-

जीवितं सफलं तस्य यः परार्थोद्यतः सदा । अग्निरापो रविः पृथ्वी धान्यानि विविधानि च ।।
परार्थं वर्तनं तेषां सतां चापि विशेषतः ।।

(ब्रह्मपु० १२५/३६-३७)

मतिमान् को विचारकर शब्द एवं कर्म से वही कहना चाहिये, जो प्राणियों के लिये यहाँ और परलोक में हितकर हो -

प्राणिनामुपकाराय यथैवेह परत्र च । कर्मणा मनसा वाचा तदेव मतिमान् वदेत् ।।

(विष्णुपु०३/१२/४५)

भागवतकार के वचनों के आगे कार्ल मार्क्स के विचार भी छोटे लगते हैं -

यावद्भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं दि देहिनाम् । अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति।।

- मनुष्यों को धन की उतनी ही आवश्यकता होनी चाहिये जितने से उसका पेट भर जाये । व्यक्ति उससे अधिक को अपना कहता है तो वह चोर है और दण्डयोग्य है ।

(भागवतपु०७/१४/८), (मार्कण्डेयपु० १५/५७,६२ आदि)

ऐसे ऊँचे विचारों के कारण सनातन धर्म सदा व्यक्ति और समाज का सहयोगी ही रहा है, उत्पीडन में और विश्वविजय के लिये तलवार उठाने में इस धर्म ने कभी विश्वास नहीं किया । व्रत-पर्व-उत्सव सनातन धर्म की नीव को और मजबूत ही करते हैं । मीमांसादि शास्त्रों में इनको मानसी क्रिया कहा गया है, इसका तात्पर्य यह है कि बहुत ज्यादा शास्त्रों का दखल इन कार्यों में नहीं है । व्यक्ति और समाज द्वारा स्थापित मर्यादित पर्व, उत्सव की पद्धति भी इसी श्रेणी में आती है । इन विचारों का बहुत बड़ा विस्तार है । वेदों में ही व्रतशब्द का प्रयोग २२० स्थानों पर हुआ है । अग्नि, गरुड पुराणादि महाभारत शास्त्रों के मतानुसार इनमें तप, कष्ट, इन्द्रिय, संयम, यम, नियम, दान, परोपकार की भावना रहना अनिवार्य है । जुवाड़ी होना या जुआ (द्यूत) खेलने का निर्देश शास्त्र नहीं देते हैं- फिर भी युधिष्ठिर ने जुआँ खेलने की चुनौती को व्रत मान लिया कि कोई मुझे जुआँ खेलने के लिये ललकारता है तो मैं पीछे नहीं हट सकता यह मेरा शाश्वतव्रत है -

आहूतोऽहं न निवर्ते कदाचित्तदाहितं शाश्वतं वै व्रतं मे ।।

(म०भा०आदि ५८/१६)

धार्मिक समारोह, पर्व, उत्सव, व्रतादि में दस गुणों का होना आवश्यक है -

क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः । देवपूजाऽग्निहरणं सन्तोषोऽस्तेयमेव च ।।

(अग्निपु० १७५/१०)

ऐसे पर्वों पर दरिद्र नारायण के सम्मान और भोजन पर विशेष बल दिया गया है -

दीनान्धबधिरादीनां तद्दिनेऽन्नपानं सुमृष्टम् ।

- गरीब, अन्धे, बहरों को भी अन्नपान और मिष्टान्न से प्रसन्न करें ।

वेद और पुराण-स्मृति के व्याख्याता ऋषि ही है । वैदिक यज्ञों में अधिकांश यज्ञों का फल स्वर्ग प्राप्ति है, ये यज्ञपर्व सीमित व्यवस्था के कारण सभी की पकड़ के विषय नहीं थे, ऋषियों के द्वारा ही इनका सरलीकरण तीर्थस्थान, दान, भोजन, व्रत, पर्व, उत्सव आदि रूपों में शास्त्रों में किया गया है, शास्त्रों के अनुसार इसी जन्म में फल भी प्राप्त होता है । इनके निश्चित आधार- सत्य, क्षमा, शम, दम, दान, इन्द्रियसंयम, दरिद्रनारायण सेवा रहे हैं, ऐसे धर्म सदा पालनीय हैं । करोड़ों की भीड़ का नियन्त्रण इसी मानसवृत्ति द्वारा होता है । शास्त्रों में व्रत-पर्वों की संख्या असीमित है । महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज द्वारा सम्पादित व्रतकोश में १६२२ व्रतों की संख्या दी है । हेमाद्रि ७०० व्रत मानते हैं । १२०० व्रत, पर्व, उत्सव के प्रमाण और संकेत मिलते हैं ।

देश, काल, परिस्थिति, सामर्थ्य के अनुसार इनके अनेक अवतार और भेद हो जाते हैं। धर्मशास्त्रों को इसमें किसी प्रकार की आपत्ति नहीं है। सभी वर्णों, अवर्णों, समाज के सभी वर्गों के लिये ये सहज-सुलभ हैं। व्रत, पर्वो का साहित्य बहुत विशाल है। तीर्थ यात्रा और श्राद्ध के अतिरिक्त पुराण शास्त्रों में व्रत-पर्व-उत्सवों पर ही लिखा गया है। पुराणों में इन पर लगभग २५००० श्लोक प्राप्त होते हैं। व्रत, पर्व एवं उत्सवों के बीच विभाग करना कठिन है। बहुत से उत्सवों में धार्मिक तत्त्वों का समावेश है और उसी प्रकार बहुत से व्रतों में उत्सवों की गन्ध मिल जाती है। बहुत से व्रत-उत्सव स्वारोपित या ऐच्छिक हैं इनका विभाजन भी किया गया है। पद्मपुराणादि में इसका निर्देश प्राप्त होता है। कुछ विभाजन काल पर आधारित हैं- ये पर्व, उत्सव एक दिन, मास, ऋतु, वर्ष में सम्पन्न होने वाले होते हैं। तीन-तीन वर्षो में होने वाले परम्परागत कुम्भपर्व भी इसी श्रेणी में आ जाते हैं।

कुम्भपर्व -

भारत के जनजीवन में कुम्भपर्व का एक विशिष्ट स्थान है। कुम्भ हमें हजारों साल पुरानी स्मृति से जोड़ता है। पौराणिक ग्रन्थों में महाकुम्भपर्व की विवेचना, मन्थन और अर्थ निर्धारण की मीमांसा में बहुत से प्रमाण हैं। परमतीर्थ हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन एवं नासिक में प्रत्येक १२ वर्ष के बाद कुम्भ आयोजित होता है। कुम्भ का अर्थ है कलश। हिन्दू धर्म में प्रत्येक धार्मिक कार्यों में कलश की स्थापना की जाती है।

धर्म वही कहलाता है जिसका पहला संकेत वेदादि शास्त्रों में प्राप्त हो। इसीलिये- वेदो धर्ममूलम् (गौतम धर्मसूत्र-१) - वेदों को धर्म का मूल बताया है। इसी का विस्तार- **'श्रुतिस्मृतिविहितो धर्मः। तदलाभे शिष्टाचारः प्रमाणम्। शिष्टः पुनराप्तकात्मा**- जो वेद शास्त्रों को जानते हैं, जिनकी अपनी कामना नहीं है, ऐसे निष्काम पुरुष का मत भी प्रमाण होता है (आपस्तम्ब सूत्र १.१.१.२) हमारी धर्म-कर्म-मर्यादा वेदादि शास्त्रों से ही बँधी है। व्रत शब्द अत्यन्त प्राचीन और वैदिक शब्द है। इसकी निरुक्ति यास्क आदि आचार्यों ने 'वृ धातु' से मानी है। शास्त्रीय आदेशों के अनुसार लिया गया संकल्प इसका मुख्य अर्थ है। आदर्श, आचरण, संकल्प, उपवास, संयम, तितिक्षा और नियमों के पालन में प्रतिज्ञा इत्यादि इसके अन्य अर्थ भी दिखाई देते हैं। जैमिनीय मीमांसा शास्त्र में व्रत को मानसी क्रिया- 'मैं यह करूँगा' 'मैं यह नहीं करूँगा' कहा है।

तिथिवारर्क्षदिवसमासर्त्वब्दार्कसंक्रमे। शास्त्रोदितो हि नियमो व्रतं तच्च तपो मतम् ।।
नियमास्तु विशेषास्तु व्रतस्यैव दमादयः ।।

- तिथि, वार, नक्षत्र, दिन, मास, वर्ष आदि से सूर्य (चन्द्र) के संयोग के कारण होने वाले नियमों को व्रत कहा है,मनोनिग्रह और इन्द्रिय संयम को व्रत कहा है। (अग्निपु०१७५)

पर्व शब्द के गांठ, जोड़, अव्यय, हिस्सा, भाग, अंश, खण्ड, अध्याय आदि अर्थ हैं जैसे-बांस की गांठ, अंगुलियों के पौर- ये पर्व कहलाते हैं। धर्मशास्त्र भी इन अर्थों को स्वीकार करते हैं।

शास्त्रों में पर्व का तात्पर्य सन्धिकाल, सन्धिकाल से तात्पर्य है सूर्य का एक स्थान से दूसरे स्थान पर गमन, यह क्रम लगातार चलता रहता है। धर्मशास्त्रों के अनुसार ऐसे योगों के काल को पर्व शब्द कहा गया है। सूर्य के गमन से दिन-रात होते हैं। दिन-रात मास में बदलकर वर्ष बन जाते हैं। शास्त्रों के आदेश के अनुसार पूर्णिमा, अमावस्या, संक्रान्ति आदि पर्व कहलाते हैं। सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु, २७ नक्षत्रों के आपसी योग से ऐसे शुभ काल को पर्व कहा जाता है। पर्व में पूर्व और पर दो काल का संयोग होना आवश्यक है। पर्व शब्द से शुभ का ही बोध होता है अथवा शुभ योग को ही पर्व कहते हैं। पर्वों के योग का होना प्राकृतिक घटना है। इसको उत्पन्न करने के लिये किसी नियम, संयम, संकल्प की आवश्यकता नहीं मानी गयी है। इस तरह के व्रत और पर्व शास्त्र के अनुसार उत्सव, आमोद-प्रमोद, आनन्द का रूप ले लेते हैं। व्रत का अनुष्ठान व्यक्तिगत होने के कारण समाज के अन्य वर्ग की इसमें सहभागिता नहीं होती। व्रत की पूर्णता, तप की समाप्ति या उद्यापन- पर्व, उत्सव त्यौहार का रूप ले लेता है। समाज के सभी वर्गों का हिस्सा बन जाता है। प्राकृतिक ग्रहों के योगों से पर्व बनते हैं। ये पर्व मुख्य रूप से तीन तरह के हैं -
१- नित्य- सन्ध्याकाल, एकादशी, प्रदोष नित्य पर्व हैं। २- नैमित्तिक- कुछ पर्व किसी निमित्त से आते हैं, - जैसे - ग्रहण, कुम्भ, अवतार, ३- काम्य- किसी इच्छा की पूर्ति के किये विशेष योग में किया जाने वाला अनुष्ठान काम्य पर्व है। धर्म शास्त्र के अध्ययन के अनुसार लगभग १२ सौ शास्त्रीय व्रत/पर्व सनातन धर्म में मनाये जाते हैं। इसलिये विश्व में इसे व्रत, पर्व और त्यौहारों का देश कहा जाता है। सूर्य, चन्द्र और देवगुरु बृहस्पति का विशेष राशियों में आने का योग ही कुम्भ पर्व कहलाता है।

विभिन्न कुम्भ पर्वों में देवगुरु बृहस्पति सूर्य, चन्द्र की स्थिति -

प्रयाग कुम्भ में बृहस्पति वृष राशि में,	सूर्य मकर में	चन्द्र मकर में
हरिद्वार कुम्भ में बृहस्पति कुम्भ राशि में	सूर्य मेष में	चन्द्र मेष में
नासिक कुम्भ में बृहस्पति सिंह राशि में,	सूर्य सिंह में	चन्द्र कर्क में
उज्जैन कुम्भ में बृहस्पति सिंह राशि में,	सूर्य मेष में	चन्द्र तुला में
उज्जैन कुम्भ में बृहस्पति वृश्चिक राशि में,	सूर्य तुला में (वामन काणे)	

मकर संक्रान्ति (कुम्भ शाही स्नान)-

मकर संक्रान्ति सूर्य के उत्तरायण की प्रवेश तिथि है। सूर्य के उत्तरायण होने के बाद से देवों की उपासना का पूर्णकाल प्रारम्भ हो जाता है। इस काल को परा अपरा विद्या की प्राप्ति का काल माना जाता है। यह साधना का सिद्धकाल भी कहा गया है। इसमें देव प्रतिष्ठा, गृह निर्माण आदि किये जाते हैं। पुनीत काल माना गया है एवं पितरों के तिलाञ्जलि का श्राद्ध काल भी माना गया है। महाभारत में भी भीष्मपितामह को शरीर त्याग हेतु सूर्य के उत्तरायण आने की प्रतीक्षा थी। गंगा के दर्शन स्नान, स्पर्श से सारे पाप विनिष्ट हो जाते हैं। मकर संक्रान्ति के दिन स्वास्थ्य वर्धन एवं सर्व कल्याण के लिए तिल का छह प्रकार से प्रयोग पर्व के दिन एवं सूर्य की उत्तरायण की दशा में पुण्यदायक होता

है । १-तिल जल स्नान, २-तिल दान, ३-तिल भोजन, ४-तिल जल पिण्डदान, ५- तिलों की आहुति, ६- तिल तेल उबटन मर्दन । सूर्योपसना की शक्ति साधना में मकर संक्रान्ति का निश्चित रूप से विशेष स्थान है । इस दिन अधिक से अधिक दान करना चाहिये । संगम का स्नान पुण्य को देने वाला है ।

मौनी अमावस्या (शाही स्नान) -

माघ मास कृष्ण पक्ष अमावस्या की प्रसिद्धि मौनी अमावस्या के रूप में है । इस तिथि को सदाचारी व मौन रहकर स्नान का विशेष महत्व है । मौनी अमावस्या के दिन सोमवार का योग पड़ने पर इसका महत्व और बढ़ जाता है और यह सोमवती अमावस्या कहलाती है । माघ मास में त्रिवेणी का स्नान अति फलदायक होता है । अमावस्या माघ मास का सर्वश्रेष्ठ पर्व है । स्नान-दान करके पुण्य प्राप्त करना चाहिये । कुम्भ के इस दिन प्रयागराज विश्व के सबसे अधिक आबादी वाला नगर हो जायेगा, लगभग पाँच करोंड़ ।

वसंत पंचमी (शाही स्नान) -

वसंत पंचमी माघ मास की शुक्ल पंचमी को कहते हैं । इसका दूसरा नाम श्री पंचमी भी है। सरस्वती देवी के साथ-साथ इस तिथि को धन सम्पदा की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी, विष्णु भगवान् की पूजा विधि शास्त्रों में निहित है । इसी तिथि को रति-कामदेव की पूजा एवं महोत्सव का भी विधान बताया गया है । संगम स्नान एवं दान-पुण्य का विशेष महत्व है ।

माघी पूर्णिमा स्नान एवं फल -

माघ मास की पूर्णिमा तिथि को तीर्थ स्थलों में स्नान दान आदि के लिए फलदायिनी बताया गया है । अत: तीर्थराज प्रयाग में उस दिन स्नान दान एवं यज्ञ का विशेष महत्व है । माघ शुक्ल पूर्णिमा को यदि शनि मेष राशि पर गुरु और चन्द्रमा सिंह राशि पर तथा सूर्य श्रवण नक्षत्र पर हों तो माघी पूर्णिमा का योग होता है । यह पूर्ण तिथि स्नान, दान के लिए फलदायिनी है । कल्पवास और कुम्भपर्व की समाप्ति ।

विभिन्न योगों में पर्व का विधान कौन करता है -

- वैदिक सनातन धर्म में विधि का अधिकार केवल वेद, पुराण, स्मृति को ही है । महाभारत और वाल्मीकि रामायण भी स्मृति शास्त्र की श्रेणी में आते हैं ।

- वैदिक सनातन धर्म में विधि का अधिकार ऋषि-मुनियों द्वारा प्रणीत धर्मसूत्र शास्त्रों से भी निश्चित किया जाता है । वैदिक सनातन धर्म में विधि का अधिकार केवल ऋषि-मुनि को ही है ।

- वेदों के मन्त्र ऋषियों द्वारा प्रत्यक्ष किये गये हैं । इसलिये ऋषियों के वेद वाक्य ही विधि में प्रमाण होते हैं ।

- ऋषियों द्वारा ही धर्मसूत्रों का निर्माण हुआ है । इसलिये ऋषियों के वाक्य ही विधि में प्रमाण

होते हैं ।

- ऋषि और मुनियों द्वारा ही पुराण और स्मृतियाँ रची गयी हैं इसलिये ऋषि-मुनियों के वाक्य ही विधि में प्रमाण होते हैं ।

ऋषि और मुनि के वाक्य ही क्यों प्रमाण माने गये ?

ऋषि और मुनि के वाक्यों को प्रमाण मानने के कारण -

ऋषि और मुनि अकामात्मा हैं । अकामात्मा शब्द का तात्पर्य है संकल्प, विकल्प, इच्छाओं से शुद्ध अन्तःकरण वाले महापुरुष जिनकी अपनी कोई इच्छा नहीं है । राजर्षि विश्वामित्र के पास सभी कुछ था परन्तु वे धर्म का विधान नहीं कर सकते थे, इसलिये उनके मनमें त्याग, तपस्या, साधना से ऋषि, ब्रह्मर्षि पद को प्राप्त करने की आकांक्षा हुई । दीर्घकाल तक तपस्या करने पर उन्हें कुछ सम्मान मिलने लगा । महर्षि वसिष्ठ के मुख से उन्हें ब्रह्मर्षि नहीं कहा गया । यह बात विश्वामित्र को कचोटती रहती थी । वसिष्ठ से ब्रह्मर्षि पद प्राप्त करने के लिये विश्वामित्र का बहुत लम्बा संघर्ष चला, इसी संघर्ष में महर्षि वसिष्ठ के पुत्रों की हत्या भी हो जाती है, परन्तु सर्वोच्च अवस्था को पहुँचे हुये महर्षि वसिष्ठ अविचलित रहते हैं । यह आख्यान ऋषि पद की गरिमा को बताता है । ऋषियों की जीवनी, ऋषियों के कर्म, ऋषियों की जीवन पद्धति, वैदिक वाङ्मय के अनुसंधान का एक बड़ा विषय है । ऋषि-मुनियों को अकामात्मा माना गया है इसलिये धर्म के विधान में इनका निर्णय ही मान्य है । इनके हाथ में सृष्टि के संविधान के संचालन का दायित्व था । इसलिये इस दायित्व को वैदिक परम्परा में अन्य किसी को नहीं दिया जा सका । ऋषियों के आदेश के अनुसार ही चक्रवर्ती राजा भी चलते थे । यदि राजाओं को या अन्य महापुरुषों को धर्म के नियमन का अधिकार दे दिया जाता तो धर्म के विकृत होने की और सनातन न होने की स्थिति पैदा हो जाती । ऋषि-मुनि सनातन धर्म-मर्यादा का निर्धारण करते हैं । धर्म पर आधारित किसी विशेष पथ का निर्माण ऋषियों का उद्देश्य नहीं रहा है । ऋषियों पर विशेष विचार के लिये तीर्थराज प्रयाग महिमा-देवधारणा - ५ देखें ।

ऋषि-मुनियों के व्यावहारिक युग को बीते हुये हजारों वर्ष हो चुके हैं । अमलात्मा महर्षि व्यास अन्तिम धर्माचार्य हैं । भगवान् वेदव्यास के बाद विगत पाँच हजार वर्षों में असंख्य महापुरुषों ने भारतभूमि को अलंकृत किया है जैसे- महाभाष्यकार भगवान् पतञ्जलि, अष्टाध्यायी के रचयिता महर्षि पाणिनि, चरक, सुश्रुत, महामति चाणक्य एवं शंकराचार्य, रामानुजाचार्य आदि महापुरुष । इन आचार्यों को भी धर्मशास्त्रों के विधान का अधिकार प्राप्त नहीं था । यहाँ तक कि भगवान् राम, कृष्ण द्वारा भी कोई ग्रन्थ नहीं लिखे गये- इनके वचन भी ऋषियों द्वारा ही प्राप्त होते हैं । यदि ये आचार्य भी सनातन धर्म की परम्परा से इतर धर्म का विधान करते तो सनातन धर्म के आचार्य नहीं माने जाते। संस्कृत वाङ्मय में अष्टादश पुराणों की श्लोक संख्या से भी ज्यादा धर्मशास्त्र के निबन्धकारों के महाग्रन्थ मिलते हैं । जैस- हेमाद्रि, निर्णयसिन्धु, धर्मसिन्धु इत्यादि । ये सभी शास्त्रकार परम तितिक्षु,

धर्म हृदय और बहुत ऊँची अवस्था को प्राप्त थे । इनके महान् ग्रन्थों में केवल धर्म के निर्णय के बारे में ऋषि-मुनियों द्वारा विरचित ग्रन्थों के वाक्यों का ही उदाहरण मिलता है, अपनी ओर से कहा गया या मिलाया गया एक भी शब्द नहीं है । उपर्युक्त विचारों से यह निश्चित हो चुका है कि व्रत, पर्व के निर्णयों में केवल शास्त्रों के वचन ही प्रमाण होते हैं ।

कुम्भ महापर्व का निर्णय प्राचीन काल में कैसे किया गया होगा? - यह स्पष्ट हो चुका है कि धर्मशास्त्र के विशेष विधान के द्वारा ही व्रत और पर्व का निर्णय होता है। प्रकृति में ग्रहों का संचरण लगातार चलता रहता है । यह शुभ योग है और यह अशुभ योग है ऐसे निर्देशों का अधिकार शास्त्रों के अतिरिक्त किसी को भी नहीं है ।

पुण्य योगों में व्रत, पर्व की मान्यता के लिये निम्नलिखित आधार होने चाहिये -

१- धर्मशास्त्र सम्मत नद, नदियों, सरोवरों, सागरों इत्यादि जलाशयों की उपस्थिति ।

२- धर्मशास्त्र सम्मत वन, पर्वत, गिरि, कन्दरा, की उपस्थिति ।

३- धर्मशास्त्र सम्मत पवित्र स्थानों का निर्देश ।

४- धर्मशास्त्र सम्मत ऋषि-मुनियों, सती-साध्वियों के जीवन की घटनाऐं ।

५- धर्मशास्त्र सम्मत देवी-देवताओं की लीला सम्बन्धी घटनाऐं ।

६- धर्मशास्त्र सम्मत अलौकिक कथाऐं एवं घटनाऐं ।

७- धर्मशास्त्र सम्मत विधानों का आदेश ।

कुम्भ पर्व सम्बन्धित घटना -

देवों और असुरों द्वारा अमृत की प्राप्ति के लिये समुद्र मंथन किया गया । देव-दानवों के बारह युद्धों का वर्णन शास्त्रों में प्राप्त होता है । सबसे बड़ा एवं भयंकर युद्ध, समुद्र मंथन द्वारा अमृत की प्राप्ति के लिये हुआ था । इस युद्ध की विकरालता और भयानकता इतनी बड़ी थी कि सदा हिमाद्रि में तपस्या में लगे रहने वाले वीतराग, आप्तकाम भगवान् **नर** और **नारायण** को भी इस युद्ध में तलवार, गदा उठानी पड़ी थी । यह युद्ध देव और दानवों के अस्तित्व के प्रश्न का युद्ध था । देवगुरु बृहस्पति एवं भगवान् विष्णु की कृपा से देवताओं की विजय हुई, उसी समय से इस प्रचलित महाकुम्भपर्व का जन्म हुआ माना जाता है । गरुड द्वारा माता को दासी भाव से मुक्ति के लिये अमृत कुम्भ धराधाम पर लाया गया और इसे गरुड ने कुशा पर रखा, कुशा को चाटने से सर्पों की जीभ कट गयी और कुश नाम की घास अमृत कुम्भ के सम्पर्क में आकर पवित्र होकर पवित्री (पवित्रिन्) कही जाने लगी ।

उपर्युक्त घटना का नामकरण क्या हो -

यह कहा जा चुका है कि विशिष्टयोग, विशिष्टघटनायें पर्वों को जन्म देती है इन पर्वों का नामकरण दो तरह से होता है -

१- पर्वों का नामकरण शास्त्रों द्वारा -

२- पर्वों का नामकरण घटनाओं द्वारा-

पर्वों के निर्धारण में विशिष्टयोग में घटी घटना का होना आवश्यक है । देव-दानवों द्वारा दीर्घकाल तक समुद्र मंथन किया गया । पुराणों के अवलोकन से यह पता चलता है कि देव और दानव दोनों को ही यह नहीं मालूम था कि किस मुहूर्त या घड़ी में अमृत की प्राप्ति होगी । जबकि इस मंथन में सभी देव-दानव भी उपस्थित थे । पुराण साहित्य परंपरा में सभी देवी-देवता अलौकिक सामर्थ्यवान् होते हैं, विशिष्ट होते हुये भी सामान्य मनुष्यों की तरह ही व्यवहार करते हैं और अपने को परा प्रकृति के कालचक्र के अधीन ही मानते हैं । लीलाकाल में देवता भी विराट् प्रकृति की नियति के बारे में अनजान रहते हैं । अत: अमृत कुम्भ, अमृत कलश का प्राकट्य किस काल, योग, मुहूर्त में होगा यह अपार शक्ति से सम्पन्न देवता और असुरों को भी नहीं मालूम था । अमृत की प्राप्ति के लिये ये दोनों दल अथाह परिश्रम करते हुये समुद्र मंथन कर रहे थे । भगवान् धनवन्तरि का अमृत कलश लेकर प्रकट होना ही दोनों के परिश्रम की सफलता थी । यही पुण्य काल अथवा पुण्य योग था । यह पुण्य योग सनातन धर्म की परम्परा में अविच्छिन्न रूप से बिना किसी प्रकार का क्रम टूटे हुये आज तक चला आ रहा है । अमृत प्रकट होने के समय सूर्य, चन्द्र, बृहस्पति की युति, योग उस समय जैसा था वही विशिष्ट योग माना गया । अमृत की उत्पत्ति और अमृत के लिये भीषण संघर्ष की घटना के विवरण शास्त्रों में सभी जगह उपलब्ध हैं । अमृत की उत्पत्ति से जुड़े हुये शब्द हैं १-अमृत, २-कलश, ३-कुम्भ और ४-सूर्य, ५-चन्द्र, ६-बृहस्पति की राशियों में स्थिति । ये सभी शब्द समुद्र मंथन की घटना से जुड़े हुये शब्द हैं । परम्परा को इन शब्दों के निर्माण का अधिकार नहीं दिया गया है, परन्तु विशिष्ट योग में घटी हुई घटना के शब्दों को लेकर नामकरण करने का अधिकार परम्परा को है । इसीलिये विशेष योग में घटी हुई एक ही घटना से सम्बन्धित पर्वों के कई प्रचलित नाम मिलते हैं । अमृत कुम्भ योग या कुम्भ पर्व अथवा महाकुम्भ पर्व भी इसी प्रकार से नामकरण किया हुआ पर्व है । शास्त्रों में कुम्भ पर्व शब्द आये यह आवश्यक नहीं है । परम्परा शास्त्रीय होना चाहिये ।

पर्वों के मनाने में शास्त्रीय आधार का होना आवश्यक है । राशियों में देवगुरु बृहस्पति के गमन के कारण कुम्भ महापर्व अपने स्थान पर बारहवें वर्ष में मनाया जाता है । सनातन धर्म के पर्वों में सबसे बड़ा पर्व कुम्भ महापर्व ही है । अनादिकाल से चली आ रही कुम्भ पर्व की परम्परा किसी व्यक्ति या महापुरुष के आदेश के अनुसार प्रारम्भ नहीं की जा सकती है । सनातन धर्म में एक भी ऐसा पर्व नहीं है जो मनगढ़न्त और मनुष्यों के द्वारा स्थापित हो । धार्मिक पर्वों और धार्मिक क्रियाविधानों में समाज की प्रवृत्ति केवल शास्त्रों के आदेश से ही हो सकती है । सनातन धर्म का यह महापर्व चार स्थान-प्रयागराज, हरिद्वार, नासिक, उज्जैन में बहुत बड़े स्तर पर मनाया जाता है । विश्व का यह सबसे बड़ा विशाल पर्व है । जिस तरह से देवताओं ने परिश्रम पूर्वक अमृत को प्राप्त किया उसी परिश्रम से

जनसमूह द्वारा इस महापर्व को तन-मन-धन लगाकर सम्पन्न किया जाता है । कुम्भपर्व की तैयारी में, ४-६ महीने तक लगातार लगे हुए साधु-सन्तों, सेवकों, कार्यकर्ताओं, श्रद्धालुओं का बिमार हो जाना, बेहोश हो जाना साधारण बात है । दुर्घटनायें और मृत्यु भी महाकुम्भ का एक हिस्सा है । यह सब कुछ महाकुम्भ के प्रति जनमानस की अपार श्रद्धा और इसकी शास्त्रीयता को बताता है ।

कुम्भशब्द के साथ महाशब्द कैसे जुड़ा -

महाकुम्भ पर्व में महाशब्द मनगढ़न्त नहीं है, बृहन्नारदीय पुराण में वरुण योग, महावरुण योग, महामहावरुण योग का स्पष्ट उल्लेख निम्नलिखित है -

अथ यो वारुणे योगे महावारुणके तथा । महामहावारुणे च स्नायात्तत्र विधानतः ।।

(बृहन्नारदीयपु०उ०ख०६६/४६)

सनातन धर्म के कुछ पर्वों में महाशब्द मिल जाता है जैसे- महानवमी, महालय, महानिशापूजन, महाशिवरात्रि । किन्तु दो बार महामहा शब्द का प्रयोग वरुण योग में ही किया है । समुद्र मंथन से अमृत की प्राप्ति सूर्य, चन्द्र, बृहस्पति के योग के कारण अति विशिष्ट हो जाती है, इसीलिये महाकुम्भ यह संक्षिप्त प्रयोग ही व्यवहार में लाया जाता है । वरुणपर्व सामान्य पर्व के रूप में, महावरुण पर्व विशेष पर्व के रूप में और महामहावरुण पर्व महाकुम्भ को बताता हुआ प्रतीत होता है । बृहन्नारदीय पुराण के उत्तर खण्ड का अध्याय ६६ गंगाद्वार के माहात्म्य का वर्णन करता है । इस अध्याय में हरिद्वार के अन्य तीर्थों के वर्णन के साथ महामहावरुण योग भी आया है । पहला महाकुम्भ हरिद्वार में ही सम्पन्न हुआ होगा यह निश्चित है । प्रयागराज, नासिक, उज्जैन तीर्थों में महामहावरुण योग कुम्भ या महाकुम्भ का ही संकेत है । इन चार तीर्थों के अतिरिक्त अन्य तीर्थों में पुण्यस्नान वरुणयोग के अन्तर्गत मानना चाहिये । पुराणों में आये हुये व्याख्यानों से नामकरण की परम्परा को समझना बहुत आवश्यक है -

बृहन्नारदीय पुराण और अन्य पुराणों में - गङ्गाद्वार (हरिद्वार), भागीरथी, देवताओं का तीर्थ में आगमन, देवर्षि ब्रह्मर्षियों का शिष्यों के साथ आना, अन्य देवयोनियों का तीर्थों में आना, तीर्थ स्नान से कामनाओं की प्राप्ति, जप, तप, दान आदि, नागों का वास, कुम्भ (राशि) शब्द, देवगुरु बृहस्पति, रवि-सूर्य, प्रयागादि (आदि शब्द भी) का वर्णन है - आदि शब्द अन्य तीर्थ नासिक, उज्जैन को बताता है। वरुण-जल के देवता का योग, संक्रान्ति (मकर आदि) अमावस्या, व्यतीपात, युगादि (द्वादश वर्ष आदि युग) पवित्र दिन, दान, स्नान, देवपूजन और महाशब्द के साथ वरुण योग में जल स्नान-वारुणयोग, महावारुण योग, महामहावारुण योग, गङ्गाशब्द- (हरिद्वार में गङ्गा, प्रयागराज में गङ्गा, गोदावरी गङ्गा, क्षिप्रागङ्गा) - ये सभी शब्द बृहन्नारदीय पुराण के अध्याय ६६ में प्राप्त होते हैं । इन सभी शब्दों के योग से कुम्भ महापर्व शब्द का निर्माण हुआ है । बहुत आश्चर्य की बात है कि कुम्भ से जुड़े सैकड़ों आधुनिक लेखों में इन विषयों पर किसी भी प्रकार का विचार नहीं किया गया और कुम्भ स्नान पर्व की प्राचीनता और शास्त्रीयता पर प्रश्न भी लगाये गये । सभी धार्मिक कार्य और विधानों

में मीमांसाशास्त्र एवं निरुक्त द्वारा इसी तरह से नामकरण की व्यवस्था है, वैदिक नैरुक्त इसी तरह से नामकरण करता है, इन्हीं शब्दों के योग से पर्व-उत्सव 'कुम्भ' का नामकरण परम्परा द्वारा किया गया है। जैसे कि पाँच दिन के पर्व को दीपवली कहा जाता है। महाकुम्भपर्व का नामकरण भी इन्हीं शब्दावलियों के आश्रय से किया गया है -

अन्यानि वै महाभागे सन्ति तत्र सहस्रशः । योऽस्मिन्क्षेत्रे नरः स्नायात्कुम्भगेज्येऽजगे रवौ ।।
स तु स्याद्वाक्पतिः साक्षात्प्रभाकर इवापरः । अथ याते प्रयागादिपुण्यतीर्थे पृथूदके ।।
अथ यो वारुणे योगे महावारुणके तथा । महामहावारुणे च स्नायात्तत्र विधानतः ।।
सम्पूज्य ब्राह्मणान् भक्त्या स लभेद्ब्रह्मणः पदम् । संक्रान्तौ वाप्यमायां वा व्यतीपाते युगादिके ।।
पुण्येऽहनि तथान्यद्वै यत्किंचिद्दानमाचरेत् । तत्तु कोटिगुणं भूयात्सत्यमेतन्मयोदितम् ।।
गङ्गाद्वारं स्मरेद्यो वै दूरसंस्थोऽपि मानवः । सद्गतिं स समाप्नोति स्मरन्नन्ते यथा हरिम् ।।

(बृहन्नारदीयपु०अ०६६/४४-४९)

शिवपुराण में भी -

एकादश च वर्षाणि लोकानां पातकं त्विह ।।४४।।
तस्यैव क्षालनाय त्वायास्यामः सर्वथा प्रियो ।।४५।।

स्पष्ट ही लोगों के पाप धोने के लिये प्रत्येक ग्यारह वर्ष- बारह वर्ष में गङ्गा जी में देवताओं के आने का उल्लेख है। (शिवपुराण, रुद्रकोटि संहिताअ० २६)

चारों कुम्भ पर्व के समान अलंकार -

१- महामहावरुण योग - महाकुम्भ के रूप में प्रसिद्ध वरुण योग अर्थात् नदियों के पवित्र जल में स्नान, चारों स्थानों के महाकुम्भ का जल से सम्बन्ध- यह चारों स्थानों का कुम्भ से जुड़ा हुआ पहला समान अलंकार है।

२- गंगा जी - महाकुम्भ पर्व प्रयागराज, हरिद्वार, नासिक और उज्जैन में सम्पन्न होते हैं। ये चारों ही स्थान पवित्र नदियों के किनारे हैं। इन चारों ही स्थानों पर गंगा जी भी हैं। हरिद्वार में भागीरथी गंगा, प्रयागराज में भागीरथी गंगा, नासिक में गौतमी गंगा और उज्जैन में क्षिप्रा (विष्णु-देहोद्भवा गंगा)-यह चारों कुम्भ स्थानों का दूसरा समान अलंकार है।

३- कुम्भ शब्द - समुद्र मंथन के समय भगवान् धन्वन्तरि के हाथ में अमृत कलश, अमृत कुम्भ था। इसी कारण से चारों स्थानों के कुम्भ हरिद्वार कुम्भ, प्रयागराज कुम्भ, नासिक कुम्भ, उज्जैन कुम्भ के नाम से जाने जाते हैं- यह चारों कुम्भ स्थानों का तीसरा समान अलंकार है।

४- द्वादश वर्ष - कुम्भ पर्व से बारह वर्ष का समय जुड़ा हुआ है। देवगुरु बृहस्पति के राशि भ्रमण का चक्र बारह वर्ष का होता है। इसलिये कुम्भ पर्व बारह वर्ष में अपने स्थान पर सम्पन्न होता है। देव-दानव युद्ध में देवगुरु बृहस्पति की कृपा से ही देवताओं को विजय प्राप्त हुई थी। कुम्भ योग के मुख्य देवता बृहस्पति ही हैं। यह चारों कुम्भ स्थानों का चौथा समान अलंकार है।

५- देवताओं का एक जगह एकत्रित होना -

तदा वयं च सर्वे त्वागमिष्यामो न संशयः ।।

(शिवपुराण कोटिरुद्र संहिता अ० २६)

द्वादश वर्षीय महाकुम्भ पर्व के समय सभी देवता, ऋषि-मुनि, पवित्र पर्वत, नद, नदियाँ, सिद्ध सन्त अपने-अपने स्थानों को छोड़कर महाकुम्भ पर्व के योग में पुण्य लाभ देने के लिये एकत्रित हो जाते हैं । कुम्भ पर्व के इसी धार्मिक माहात्म्य के कारण अपार जनसमुदाय आत्म कल्याण के लिये कुम्भ में एकत्रित होते हैं । यह चारों कुम्भ स्थानों का पाँचवाँ समान अलंकार है ।

६- पुण्य काल में स्नान - अमृत कलश, कुम्भ पर्व के पुण्य काल में अनादिकाल से श्रद्धालुओं और साधु-सन्तों का तीर्थ में प्रवास और स्नान होता आ रहा है । यह चारों कुम्भ स्थानों का छठवाँ समान अलंकार है ।

७- पुण्य पर्व के कृत्य - कुम्भपर्व के इस महोत्सव में त्याग, तपस्या, साधना की धारा निरन्तर बहती है, शास्त्रों में बताये गये सभी पुण्यकर्म, स्वाध्याय, प्रवचन, दान, सेवा आदि किये जाते हैं। यह चारों कुम्भ स्थानों का सातवाँ समान अलंकार है ।

कुम्भ और भगवान् वेद -

कुम्भ या कलश का धार्मिक अनुष्ठानों में सबसे महत्वपूर्ण स्थान है । कुम्भ में वरुण देवता सहित सभी देवताओं, नदियों, समुद्रों का वास होता है । वेद में कुम्भ, कलश शब्द का श्रद्धा के साथ स्मरण किया गया है -

आपूर्णो अस्य कलशः

- इन्द्र यह आपका परिपूर्ण कलश है । (ऋग्वेद ३/३२/१५)

जघान वृत्रं स्वधितिर्वनेव रुरोज पुरो अरदन्न सिन्धून् ।
बिभेद गिरिं नवमिन्न कुम्भमागा इन्द्रो अकृणुत स्वयुग्भिः।।

(ऋग्वेद १०/८९/७)

'कुम्भी वेद्यां मा व्यथिष्ठा यज्ञायुधैराज्येनातिषिक्ता ।'

(ऋग्वेद)

युवं नरा स्तुवते पज्रियाय कक्षीवते अरदतं पुरंधिम् ।
कारोतराच्छफादश्वस्य वृष्णः शतं कुम्भाँ असिञ्चतं सुरायाः।।

(ऋग्वेद १/११६/७)

कुम्भो वनिष्टुर्जनिता शचीभिर्यस्मिन्नग्रे योन्यां गर्भो अन्तः।
प्लाशिर्व्यक्तः शतधारउत्सो दुहे न कुम्भी स्वधां पितृभ्यः ।।

(शुक्लयजुर्वेद १९/८७)

आविशन्कलशँ्सुतो विश्वा अर्षन्नभिश्रियः । इन्दुरिन्द्राय धीयते।।

(सामवेद, पवमान अ. ५)

चतुरः कुम्भांश्चतुर्धा ददामि । (अथर्ववेद-३/३४/७)

पूर्णः कुम्भोऽधिकाल अहितस्तवं वै पश्यामो बहुधा नु सन्तः ।
स इमा विश्वा भुवनानि कालं तमाहुः परमे व्यामन् ।।

(अथर्ववेद- १९/५३/३)

अमृत कुम्भ से जुड़े अन्य प्रसंग -

चन्द्रः पतनाद्रक्षां सूर्यो विस्फोटनादधः । दैत्येभ्यश्च गुरू रक्षां सौरिदेवेन्द्रजाद्भयात् ।।

- देवों में से सूर्य चन्द्र और गुरु का अमृत कलश की रक्षा में विशेष सहयोग था। चन्द्र ने कलश को गिरने से सूर्य ने फूटने से तथा बृहस्पति ने असुरों के हाथ में जाने से और शनि ने अमृत कलश की रक्षा कर इन्द्र को भयमुक्त किया।

सूर्येन्दुगुरुसंयोगस्तद्राशौ यत्र वत्सरे । सुधाकुम्भप्लवे भूमौ कुम्भो भवति नान्यथा ।।

- सूर्य, चन्द्र, गुरु का राशियों में जब संयोग होता है तब पृथ्वीलोक पर सुधा कुम्भ पर्व मनाया जाता है।

देवानां द्वादशाहोभिर्मर्त्यैर्द्वादशवत्सरैः । जायन्ते कुम्भपर्वाणि तथा द्वादशसंख्यया ।।
तत्राघनुत्तये नृणां चत्वारो भुवि भारते । अष्टौ लोकान्तरे प्रोक्ता देवैर्गम्या न चेतरैः ।।

- देवताओं के बारह दिन मनुष्यों के बारह वर्ष होते हैं, अमृत कुम्भ के लिये देव-दानव में संघर्ष बारह दिन तक चलता रहा इसलिये बारह स्थानों पर बारह कुम्भ सम्पन्न होते हैं। इनमें से चार कुम्भ पृथ्वी पर और आठ कुम्भ देवलोक में होते हैं। जिन्हें देवगण ही प्राप्त कर सकते है, मनुष्यों की वहाँ पहुँच नहीं है।

पृथिव्यां कुम्भयोगस्य चतुर्धा भेद उच्यते । विष्णुद्वारे तीर्थराजेऽवन्त्यां गोदावरी तटे ।।
सुधाबिन्दुविनिक्षेपात् कुम्भपर्वेति विश्रुतम् ।।

- अमृत कलश से सुधा बिन्दु गिरने के कारण हरिद्वार, प्रयाग, नासिक, उज्जैन में कुम्भपर्व सम्पन्न होते हैं।

गंगाद्वारे प्रयागे च, धारा गोदावरी तटे । कुम्भाख्यो दिव्ययोगोऽयं प्रोच्यते शंकरादिभिः।।

- गंगाद्वार (हरिद्वार), प्रयाग, धारा (उज्जैन), गोदावरी (नासिक) में कुम्भ नामक महायोग होता है यह शंकरादि देवों ने बताया है।

अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च । लक्षं प्रदक्षिणा भूमेः कुम्भस्नानेन तत्फलम्।।

- हजारों अश्वमेध याग, सैकड़ों वाजपेय याग और लाखों पृथिवी की प्रदक्षिणा करने का जो फल है वह फल कुम्भ स्नान से ही प्राप्त हो जाता है।

सहस्त्रं कार्तिके स्नानं माघे स्नानं शतानि च। लक्षप्रदक्षिणा पृथ्व्याः कुम्भस्नानेन तत्फलम् ।।

- हजारों कार्तिक स्नान, सैकड़ों माघ स्नान और लाखों पृथिवी की प्रदक्षिणा करने का जो फल है वह फल कुम्भ स्नान से ही प्राप्त हो जाता है ।

श्राद्धं कुम्भे विमुञ्चन्ति ज्ञेयं पापनिषूदनम् । श्राद्धं तत्राक्षयं प्रोक्तं जप्यहोमतपांसि च ।।

- देवगुरु बृहस्पति जी ने कहा- कुम्भतीर्थ में किये गये श्राद्ध, जप, होम, तप अक्षय फल को देने वाले और पापों को नष्ट करने वाले होते हैं ।

अमृत आख्यान -

समुद्र मंथन और अमृत की उत्पत्ति और गरुड द्वारा अमृत-कुम्भ को धरती पर रखने से सम्बन्धित बारह मुख्य आख्यान -

१- समुद्र मंथन का कारण -

रुद्रावतार महर्षि दुर्वासा को वन में भ्रमण करती हुई विद्याधरी देव अप्सरा और उनकी सखियाँ मिली। उसके हाथों में दुर्लभ कल्पक (कल्पवृक्ष के) फूलों की माला थी । फूलों की अद्भुत सुगंध से पूरा वन प्रदेश सुवासित था । महर्षि दुर्वासा का ध्यान भी कल्पवृक्ष के फूलों की सुगन्ध की ओर चला गया। महर्षि इस अद्भुत सुगंध के स्त्रोत की ओर गये । देखा- विद्याधरी अप्सरा के हाथो में कल्पक फूलों की माला से तीनों लोकों को अपने वश में करने वाली सुगन्ध आ रही हैं । महर्षि ने माला देने के लिये निवेदन किया -

उन्मत्तव्रतधृग्विप्रस्तां दृष्ट्वा शोभनां स्त्रजम् । तां ययाचे वरारोहां विद्याधरवधूं ततः ।।

(वि०पु० अंश१/९/४)

- तब उन उन्मत्त-वृत्तिवाले विप्रवर ने वह सुन्दर माला देखकर उसे उस विद्याधर-सुन्दरी से माँगा । अप्सरा ने बड़े आदर के साथ नमस्कार करते हुए सम्मानपूर्वक कल्पवृक्ष के फूलों की माला को महर्षि दुर्वासा को दे दिया । महर्षि दुर्वासा माला को अपने सिर पर धारण करके देवलोक की ओर चले गये । महर्षि ने ऐरावत हाथी पर सवार देवराज इन्द्र को अपने गणों के साथ सामने से आते हुए देखा । महर्षि ने अपने सिर से माला को उतार कर देवराज इन्द्र को आशीर्वाद के रूप में दे दिया । इन्द्र ने महर्षि की दी हुई माला को धारण न करके ऐरावत हाथी के सिर पर रख दिया ।

कल्पक फूलों की सुगन्ध से हाथी मदमस्त हो कर डगमगाने लगा और हाथी ने माला को अपने सिर से उठाकर जमीन पर पटक दिया । माला का यह अपमान देख महर्षि दुर्वासा क्रोध से आग बबूला हो गये और कहा–

मद्दत्ता भवता यस्मात्क्षिप्ता माला महीतले । तस्मात्प्रणष्टलक्ष्मीकं त्रैलोक्यं ते भविष्यति ।।

- अच्छा, तूने मेरी दी हुई माला को पृथिवी पर फेंका है इसलिये तेरा यह त्रिभुवन भी शीघ्र ही श्रीहीन हो जायेगा । (वि०पु०अंश १/९/१६)

मया दत्तामिमां मालां यस्मान्न बहु मन्यसे । त्रैलोक्यश्रीरतो मूढ विनाशमुपयास्यति ।।

अरे दुष्ट इन्द्र! तुमने मेरी माला का बड़ा अपमान किया है, मै तुम्हें, तुम देवों को और देवलोक को शाप देता हूँ कि तुम लोगों का ऐश्वर्य, यश और कीर्ति समाप्त हो जाये ।

(वि०पु०अंश १/९/१४)

यह अभिशाप सुनकर समूचा देवलोक कांपने लगा, पृथ्वी डोल उठी, देवराज इन्द्र कांपते हुए ऐरावत से नीचे उतर आये । महर्षि के चरणों में गिरकर गिड़गिड़ाने लगे कहा- भगवन् ऐसा अभिशाप मत दीजिये, सारा अनर्थ हो जायेगा देवताओं के निर्बल हो जाने से तीनों लोक भी समाप्त हो जायेंगे। परन्तु महर्षि पर देवताओं के गिड़गिड़ाने और क्षमा मांगने का कोई असर नहीं हुआ, और अधिक नाराज होकर कहा- मै कभी पिघलने वाला नहीं हूँ और न ही मेरा स्वभाव क्षमा करने वाला है ।

नाहं कृपालुहृदयो न च मां भजते क्षमा । अन्ये ते मुनयः शक्र ! दुर्वाससमवेहि माम् ।।

- इन्द्र! मैं कृपालु-चित्त नहीं हूँ, मेरे अन्तः करण में क्षमा का कहीं स्थान नहीं है । क्षमा करने वाले वे मुनिजन तो और ही हैं; तुम समझो, मैं तो दुर्वासा हूँ ? (वि०पु०अंश १/९/२०)

गौतमादिभिरन्यैस्त्वं गर्वमारोपितो मुधा । अक्षान्तिसारसर्वस्वं दुर्वाससमवेहि माम् ।।

- गौतमादि अन्य मुनिजनों ने व्यर्थ ही तुझे इतना मुँह लगा लिया है; तू याद रख, यह दुर्वासा है, दुर्वासा सर्वस्व तो क्षमा न करना ही है । (वि०पु०अंश १/९/२१)

वसिष्ठाद्यैर्दयासारैस्स्तोत्रं कुर्वद्भिरुच्चकैः । गर्वं गतोऽसि येनैवं मामप्यद्यावमन्यसे ।।

(वि०पु०अंश १/९/२२)

- दयामूर्ति वसिष्ठ आदि के द्वारा ऊँची-ऊँची स्तुति करने से तू इतना गर्वीला और घमण्डी हो गया कि आज मेरा भी अपमान करने चला है।

ज्वलज्जटाकलापस्य भृकुटीकुटिलं मुखम् । निरीक्ष्य कस्त्रिभुवने मम यो न गतो भयम् ।।

(वि०पु०अंश १/९/२३)

- अरे! आज त्रिलोकी में ऐसा कौन है जो मेरे प्रज्वलित जटाजूट और टेढ़ी भृकुटी को देखकर भयभीत न हो जाये? मेरी आंखों से दूर हो जाओ ऐसा कहते हुए महर्षि दुर्वासा देवलोक से चलकर अपने आश्रम में तपस्या में लीन हो गये । देवराज इन्द्र भी उदास हो, देवलोक अमरावती चले आये।

२- देव-दानवों द्वारा समुद्र मंथन -

महर्षि दुर्वासा के शाप के कारण तीनों लोकों का ज्ञान, वैभव, सौन्दर्य समाप्त होने लगा । वनस्पतियाँ नीरस और निर्जीव हो गई । जड चेतन जगत् का रस समाप्त हो गया । प्रजावर्ग के सभी धार्मिक कृत्य भी बाधित हो गये । यज्ञ-यागादि के समाप्त हो जाने से देवताओं को उनका भाग-भोजन मिलना बन्द हो गया । सभी देवता निर्बल हो गये । देवताओं को कमजोर समझ कर मौका पाकर असुरों ने देवलोक और देवताओं की सम्पत्ति पर कब्जा करना प्रारम्भ कर दिया और देवताओं को खदेड़ने

लग गये । निर्बलता के कारण कौन इन्द्र है, कौन कुबेर-यह पहचाना जाना मुश्किल हो गया । ऐसी भीषण हालत को देखकर, देवगण अपने भोजन के संवाहक अग्नि देव को आगे कर ब्रह्मा जी के यहाँ पहुँचे । प्रार्थना करते हुए कहा- भगवन् इस संहार और प्रलय से बचाइये । परन्तु ब्रह्मा जी के पास भी दुर्वासा के अभिशाप को हटाने की ताकत नहीं थी । ब्रह्मा जी ने कहा देवगणों इस भयंकर दु:ख को दूर तो भगवान् विष्णु ही कर सकते हैं । हमें उन्हीं की शरण में जाना चाहिये। ब्रह्मा जी को आगे करके सभी देवता भगवान् विष्णु की शरण में पहुँचे । देवताओं ने भगवान् की स्तुति करके अपने दु:खों को सुनाया । भगवान् विष्णु ने कहा देवों यह बहुत बड़ा कष्ट है । महर्षि का अभिशाप साधारण नहीं है, इसे हटाना बहुत मुश्किल है । फिर भी मैं प्रयास करुँगा । मैं जैसा कहूँ आप लोग वैसा ही करेंगे तो यह कष्ट दूर हो जायेगा। भगवान् विष्णु ने कहा- आप लोग आमोद-प्रमोद, नृत्य, राग-रंग में डूबे रहने के स्वभाव के कारण इस भीषण परिस्थिति में बहुत ज्यादा निर्बल हो गये हैं । असुर देवलोक की सम्पत्ति को छीनते चले जा रहे हैं । इस विषम हालत में भी असुर तुम लोगों से ज्यादा बलवान् है। परन्तु इस नीरस हालत से वे भी दु:खी हैं । आप लोगों के पुनर्जीवन का एक ही उपाय है - **अमृत मन्थन** ।

दैवैरसुरसङ्घैश्च मथ्यतां कलशोदधिः । भविष्यत्यमृतं तत्र मथ्यमाने महोदधौ ।।

(म०भा०आदि०१७/१२)

सभी देवता और सभी असुर मिलकर क्षीरसागर का मन्थन करें, जिससे अमृत कलश प्रकट होगा। परन्तु अमृत मन्थन करना तुम लोगों के वश की बात नहीं है। यह कार्य असुरों के बल के बिना संभव नहीं हो सकेगा। इस अमृत मन्थन में अनन्त योजन मन्दराचल पर्वत मथनी बनेगा जिसका भार कोई उठा नहीं सकता है, इसलिये मैं कच्छप का अवतार लेकर अपनी पीठपर मन्दराचल पर्वत को धारण करूँगा । वासुकि नाग मथनी की रस्सी होंगे । तुम लोग अविलम्ब जाकर इस विषय में असुरों से समुद्र मन्थन को लेकर सन्धि कर लो । मन्दराचल पर्वत अनन्त औषधियों का भण्डार है जब क्षीरसागर को मथा जायेगा तब मन्दराचल पर्वत से औषधियाँ समुद्र में गिरेंगी, जिसके गिरने से अमूल्य रत्न क्षीरसागर से प्रकट होगें । सुर और असुर सारे संसार की निर्जीव-नीरस औषधियों–वनस्पतियों को भी इकट्ठा करें और इसे क्षीर समुद्र में डाल दें । इनके मन्थन से क्षीर समुद्र से अमृत पैदा होगा। मैं मोहिनी अवतार लेकर तुम लोगों को अमृत का पान कराऊँगा जिससे आप लोग अमर-बलशाली हो जाओगे । किसी युक्ति से असुरों को अमृत पान से दूर रखा जायेगा ।

ऐसा कहते हुए भगवान् विष्णु देवताओं के सामने से अन्तर्धान हो गये । भगवान् विष्णु की आज्ञा से देवता असुरों से सन्धि कर अमृत मन्थन का उपाय करने लगे। सभी ने मिलकर शुष्क, नीरस, निर्जीव औषधियों और वनस्पतियों से क्षीर सागर को भर दिया । देव और दानवों ने मिलकर महामेरु मन्दराचल पर्वत को मथनी बनाने के लिये उखाड़ने का प्रयास किया परन्तु पर्वतराज देव-दानवों से टस से मस नहीं हुआ देवगण भागे-भागे भगवान विष्णु के पास पहुँचे और अपने दु:ख को सुनाया,

भगवान् विष्णु ने हंसकर नागराज अनन्त को मन्दराचल पर्वत को उखाड़ने की आज्ञा दी। नागराज अनन्त नें भगवान् विष्णु की कृपा से तिनके की तरह मन्दराचल पर्वत को उखाड़कर रख दिया और अपने धाम चले गये । देव और दानवों ने मन्दराचल पर्वत को मथनी बनाने के लिये उठाकर क्षीरसागर की ओर ले जाने का प्रयास किया परन्तु असफल हो गये । देवतालोग भागे-भागे फिर भगवान् विष्णु के पास गये और अपने कष्ट को बताया । भगवान् विष्णु ने मन्दराचल पर्वत को उठाकर गरुड की पीठ पर रख दिया -

गिरिं चारोप्य गरुडे हस्तेनैकेन लीलया । आरुह्य प्रययावब्धिं सुरासुरगणैवृतः ।।

(श्रीमद्भागपु० ८/६/३८)

गरुडदेव ने मन्दराचल पर्वत को क्षीरसागर में स्थापित कर दिया । देव-दानवों ने नागराज वासुकि को डोरी बनाकर क्षीर सागर को मथना प्रारम्भ कर दिया। देवताओं ने चतुरता से असुरों को नागराज वासुकि के मुँह की ओर रखा और वासुकि के पिछले भाग पूँछ की ओर स्वयं हो गये । ऐसा करने से नागराज वासुकि की गर्म सांसों से असुरों का बल कमजोर हो गया और देवताओं का बल बना रहा। भगवान् विष्णु कच्छप अवतार के रूप में देव-दानवों को न दिखते हुए मन्दराचल पर्वत के आधारपीठ मथनी बन गये । देव-दानव क्षीर सागर का मन्थन करने लगे ।

३- समुद्र से चौदह रत्नों का प्रकट होना -

सुर-असुरों द्वारा क्षीरसागर के मथने पर सबको आश्चर्य में डालते हुए कामधेनु प्रकट हुई । देव-दानव इसे लेने के लिये झपटने वाले ही थे कि क्षीर सागर से मदिराओं की रानी वारुणी देवी सभी को मदमस्त करते हुए प्रकट हुई । वारुणी देवी को देखकर ही सभी सुध-बुध खोकर संज्ञाहीन हो गये। पारिजात पुष्प प्रकट हुआ और वह देवलोक में चला गया। इसके बाद उच्चैःश्रवा अश्व, पांचजन्य शंख, शार्ङ्गधनु, प्रकट हुये। कौस्तुभ मणि को भगवान् विष्णु ने धारण कर लिया । अनुपम सौन्दर्य से सभी लोकों को अभिभूत करती हुई अप्सरायें प्रकट हुई । रसराज चन्द्रमा को भगवान् शंकर ने अपने मस्तक पर धारण कर लिया । हालाहल विष प्रकट हुआ, इसके प्रकट होते ही सारे संसार में मूर्च्छा सी छा गयी । सकल ब्रह्माण्ड त्राहि-त्राहि करने लगे । देव-दानव में से कोई भी इस विष को लेने के लिये तैयार नहीं हुआ । सारे संसार को इस विष से समाप्त होता हुआ देख, देव-दानवों की प्रार्थना पर कृपा निधान भगवान् शंकर ने इस हालाहल विष को अपने कण्ठ में धारण किया और नीलकण्ठ कहलाये । चौदह भवनों को मोहित करती हुई कमलासन पर विराजमान एक हाथ में कमल लिये हुए भुवनमोहिनी महालक्ष्मी प्रकट हुई । यह देख प्रसन्नता से गन्धर्वगण गान करने लगे, अप्सरायें नृत्य करने लगी । वधू महालक्ष्मी को स्नान कराने के लिये सुर सरिता गंगा प्रकट हो गयी । अपने को परम सौभाग्यशाली मानकर महालक्ष्मी के पिता क्षीर सागर देहधारण कर, हाथों में देव कमलों की माला लेकर प्रकट हो गये । भगवान् ब्रह्मा जी ने जगन्माता के लिये आपाद मस्तक अलंकार प्रदान किये।

देव-दानव की सभा के सामने नृत्य, मंगल गीतों के समक्ष भगवान् विष्णु ने महालक्ष्मी को सदा के लिये अपने हृदय में धारण कर लिया ।

४- समुद्र से अमृत का प्रकट होना -

धन्वन्तरिस्ततो देवि वपुष्मानुदतिष्ठत । श्वेतं कमण्डलुं बिभ्रदमृतं यत्र तिष्ठति ।।

(म०भा०आदि१८/३८)

सभी को चमत्कृत करते हुए श्वेतपरिधान में भगवान् धन्वन्तरि हाथ में अमृत कलश लिये हुए प्रकट हुये । देवताओं द्वारा सभी रत्नों को ले लेने के कारण असुर अपने को ठगा सा महसूस करते हुये नाराज होकर धन्वन्तरि के हाथ से अमृत कलश छीन कर भाग गये । दानवों द्वारा अमृत कलश लेकर भाग जाने से देवताओं में हाहाकार मच गया । दानवों से अमृत कलश कैसे प्राप्त किया जाये- देवगण ऐसी योजना बनाने लगे । भगवान् विष्णु ने देवताओं को आश्वासन दिया- देवों! आप दु:खी न हों असुरों के हाथ से अमृत को वापस लाया जायेगा । मैं मोहिनी अवतार लेकर इस कार्य को करूँगा- ऐसा सुनकर देवता फूल बरसाने लगे, गन्धर्व गान करने लगे और अप्सरायें नृत्य करने लगी।

५- असुरों द्वारा अमृत का अपहरण -

असुरों में श्रेष्ठ वृषपर्वा नाम के असुर ने धनवन्तरि के हाथ में अमृत कलश देख लिया और वह धीरे-धीरे पास में आ गया और कलश को छीन कर भाग गया -

शनैःशनैः समायातो दृष्टोऽसौ वृषपर्वणा । करस्थः कलशस्तस्य हृतस्तेन बलादिव ।।
कलशं सुधया पूर्णं गृहीत्वा ते समुत्सुकाः । दैत्याः पातालमाजग्मुस्तदा देवा भ्रमान्विताः।।

(स्कन्दपु०माहेश्वर खण्ड-केदारखण्ड-१-अ. १२/६-७)

- अमृतकलश का इस प्रकार अपहरण देख देवता भ्रमित हो गये और विचार करने लगे कि अब क्या किया जाये ।

६- भगवान् विष्णु का मोहिनी अवतार -

ततो नारायणो मायां मोहिनीं समुपाश्रितः । स्त्रीरूमद्धुतं कृत्वा दानवानभिसंश्रितः ।।
ततस्तदमृतं तस्यै ददुस्ते मूढचेतसः । स्त्रियै दानवदैतेयाः सर्वे तद्गतमानसाः ।।

(म०भा०आदि१८/४५-४६)

भगवान् विष्णु भुवनमोहिनी अपूर्व सुन्दरी के रूप में असुरों के सामने प्रकट हुये । उस समय असुरगण अमृत के बँटवारे की तैयारी कर रहे थे । विश्वमोहिनी के सौन्दर्य से दशों दिशायें प्रकाशित हो गयी और असुरों की आँखें बन्द हो गई । यह सुन्दरी शर्माते हुये अपनी मोहक चाल से असुरों के सामने प्रकट हुई । असुरगण सुन्दरी को देख कर अमृत पीना भूल गये और पास में आकर प्रश्न करने लगे हे सुन्दरि! तुम कौन हो? कहाँ से आई हो? तुम्हें क्या काम है? हम तुम्हारे लिये क्या कर सकते हैं सुन्दरी ने अपनी नजरें झुकाते हुये, शर्माते हुये उत्तर दिया- मैं धन्वन्तरि की बहन और क्षीर सागर

की पुत्री हूँ, देव और दानव अमृत के लिये लड़ते हुये कहीं चले गये हैं और मैं यहाँ अकेली ही रह गयी हूँ, मैं किसी वीर का स्वयंवर करना चाहती हूँ। इस सुन्दरी को अपनाने का मौका चूक न जाये सभी दानव सुन्दरी के वशीभूत होकर उससे मीठी-मीठी बातें करने लगे। सुन्दरी और अमृत के प्रभाव से असुरों की बुद्धि भ्रमित हो गई। असुरों को एक-दूसरे परविश्वास नहीं था। सभी ने एक मत से प्रस्ताव रखा कि- हे सुन्दरि आप हम असुरों को अपने हाथों से अमृत पान करायें और इसके बाद हम में से किसी सुयोग्य वर का चुनाव कर लें। मोहिनी ने इस प्रस्ताव को स्वीकार करते हुये शर्त रखी कि - जिस समय मैं अमृत बाँटूंगी उस समय सभी अपनी-अपनी आँखें बन्द रखेंगे। जो सबसे बाद में आँख खोलेगा वही मुझे अमृत पिलायेगा और मुझसे विवाह करेगा। सभी नें इस शर्त को सहर्ष मान लिया और मोहिनी के सामने आँखें बन्द कर पंक्ति लगाकर अमृत पीने के लिये बैठ गये। इस मौके को पाकर मोहिनी अमृत कलश लेकर देवलोक को उड़ गयी।

७- देवताओं का अमृतपान -

ततो देवगणाः सर्वे पपुस्तदमृतं तदा। विष्णोः सकाशात् सम्प्राप्य सम्भ्रमे तुमुले सति।।

(म०भा०आदि १९/३)

बहुत देर तक अमृत नहीं मिलने पर असुरों ने जब आँखे खोली तो वहाँ न तो अमृत था और न ही सुन्दरी- यह देख सभी दानव ठगे से रह गये, दु:खी और चिन्तामग्न होकर सोचने लगे किस तरह अमृत और मोहिनी को ढूँढ़ा जाये। अमृत कलश और मोहिनी को ढूँढ़ते हुये असुर देवलोक के दरवाजे तक पहुँच गये। देवलोक में अन्दर जाना बहुत मुश्किल था देवताओं ने सूर्य और चन्द्र को सुरक्षा प्रहरी के रूप में नियुक्त कर रखा था।

८- राहु का सिर कटना -

तस्य कण्ठमनुप्राप्ते दानवस्यामृते तदा। ततो भगवता तस्य शिरच्छिन्नमलंकृतम् ।।

(म०भा०आदि १९/६)

फिर भी राहु किसी प्रकार वेष बदलकर देवलोक में अमृत पीने के लिये चला गया। अमृत के बँटवारे के समय सूर्य और चन्द्र ने राहु को पहचान लिया। भगवान् विष्णु ने अपने सुदर्शन चक्र से राहू का सिर काट दिया।

९- असुरों की पराजय -

ततो महीं लवणजलं च सागरं। महासुराः प्रविविशुरर्दिताः सुरैः।
वियद्गतं ज्वलितहुताशनप्रभं। सुदर्शनं परिकुपितं निशम्यते।।

(म०भा०आदि १९/२९)

असुर सुदर्शन चक्र से डर कर भाग गये। इन्द्र आदि देवताओं ने अमृत पान कर अपने को बलशाली और अमरतत्व को प्राप्त कर लिया था। दानवों ने देवताओं पर क्रोध में आकर भयंकर

आक्रमण कर दिया परन्तु अमृत के प्रभाव से एवं भगवान् विष्णु की कृपा से देवों ने असुरों के सभी आक्रमणों पर विजय प्राप्त की और असुरों का नाश कर दिया ।

१०- गरुड की माता विनता की दासता -

कद्रू एवं विनता दक्ष प्रजापति की पुत्रियाँ थी, जिनका विवाह कश्यप महर्षि से हुआ था । सगी बहन होने पर भी कद्रू का विनता के प्रति द्वेष भाव बना रहता था । कद्रु विनता को प्राय: कष्ट देती रहती थी, और ऐसी चालें चला करती थी जिससे विनता की पराजय हो जाये, किसी एक शर्त में कद्रू विनता को छल से हरा दिया -

ततः सा विनता तस्मिन् पणितेन पराजिता । अभवद् दुःखसंतप्ता दासीभावं समास्थिता ।।

(म०भा०आदि. २३/४)

और एक हजार वर्ष के लिये विनता को अपनी दासी बना लिया । विनता तथा विनता के पुत्र वीर वैनतेय से गुलामों की तरह काम कराती थी । गरुड को माता की और अपनी यह दशा देख कर बहुत दु:ख हुआ ।

किं कारणं मया मातः कर्तव्यं सर्वभाषितम् ।

(म०भा०आदि. २७/१२)

११- विनता के दासीभाव से मुक्ति के लिये अमृत -

उन्होने अपनी विमाता कद्रू से पूछा कि - हे मात:! आप किस तरह से अपने दास्यत्व से हमें मुक्त करेंगी? पराक्रमी गरुड की बात सुन कर कद्रू प्रसन्न हो जाती है और गरुड से कहती है कि यदि तुम मेरे पुत्रों के लिये देवलोक से अमृत ला दोगे तो मैं तुम्हारी माता को और तुम्हें दासता से मुक्त कर दूँगी । माता कद्रू के ऐसे वचन सुनकर और अपनी माता विनता से आज्ञा लेकर गरुड आंधी की तरह अमृत लेने के लिये आकाश में उड़ गये ।

श्रुत्वा तमब्रुवन् सर्पा आहरामृतमोजसा । ततो दास्याद् विप्र मोक्षो भविता तव खेचर।।

(म०भा०आदि. २७/१६)

१२- अमृत के लिये गरुड का पराक्रम -

अमृत लेने के लिये महाबली गरुड आ रहा है यह जानकर देवों ने इससे लड़ने की तैयारी कर दी । देवलोक में गरुड देव का देवताओं से घमासान युद्ध होने लगा । विश्वकर्मा स्वर्गलोक में अमृत कलश की रक्षा कर रहे थे, गरुड को अपराजित और अतुलित बल वाला देखकर विश्वकर्मा ने गरुड से भयंकर युद्ध किया, गरुड से युद्ध करते हुये विश्वकर्मा कुछ ही समय में धराशायी हो गये ।

मुहूर्तमतुलं युद्धं कृत्वा विनिहतो युधि ।

(म०भा०आदि ३२/४)

इन्द्र ने वायु को गरुड का सामना करने के लिये भेजा, गरुड की आँधी के सामने वायु देवता कुछ ही समय युद्ध करके मूर्छित हो गये । रुद्र, वसु, यक्ष, देव, गन्धर्व, किन्नर की बहुत बड़ी सेना युद्ध करने के लिये सामने आ गई, घमासान युद्ध होने लगा, सभी को गरुड ने पराजित कर दिया और कई यक्ष, किन्नरों का वध कर दिया और सूर्य चन्द्र को भी युद्ध में पराजित कर दिया । इन्द्र को युद्ध में पराजित करते हुये गरुड देव अमृत गुफा की ओर चले गये । सुदर्शन चक्र के समान दो भयानक चक्र उस अमृत गुफा की रक्षा कर रहे थे । चारों ओर कई योजन लम्बा भयंकर अग्नि का परकोटा बना हुआ था । गरुड विशाल चक्रों के छिद्र में से सूक्ष्म रूप में अन्दर प्रवेश कर गये । दो विशाल नाग उस अमृत की रक्षा कर रहे थे । ये नाग किसी को भी देखते ही भस्म कर देने की सामर्थ्य रखते थे, गरुड ने अपने पंखो की तेज धूल भरी आंधी से नागों की दृष्टि को बन्द कर नागों के टुकड़े-टुकड़े कर दिये और गरुड ने अपने विशाल पंखों से चक्रों को तोड़ दिया और गरुड ने आठ हजार एक सौ मुखों से अनेक नदियों का जल लाकर अग्नि के परकोटे को बुझा दिया और अमृत कलश लेकर आकाश मार्ग में उड़ चले । गरुडदेव द्वारा सभी देवताओं को पराजित कर और अमृतकलश को ले जाते देखकर देवलोक में हाहाकार मच गया । देवता अमृत कलश छीनने के लिये गरुड के पीछे लग गये । इन्द्र गरुडदेव का लगातार पीछा करते रहे। आकाश में अमृत कलश को गरुडदेव से छीनने के लिये इन्द्र और गरुड का घमासान युद्ध हुआ इन्द्र ने वज्र प्रहार कर दिया, गरुड ने इन्द्र के तथा जिस दधीचि महर्षि की हड्डियों से वह वज्र बना था, उस दधीचि के सम्मान के लिये अपने एक पंख का त्याग कर दिया और कहा -

सपर्वतवनामुर्वीं ससागरजलामिमाम् । वहे पक्षेण वै शक्र ! त्वामप्यत्रावलम्बिनम् ।।

(म०भा०आदि ३४/४)

- हे इन्द्र! तुम मेरे बल को नहीं जानते हो मैं सभी वन, पर्वत, सागर के साथ और तुम्हें भी अपने एक ही पंख पर लेकर उड़ सकता हूँ । गरुड के इस पराक्रम को देखकर इन्द्र भयभीत हो गये, इन्होने गरुड से मित्रता करने की कोशिश की। भगवान् विष्णु जानते थे कि गरुड के अद्भुत पराक्रम के सामने इन्द्र पराजित हो जायेंगे, ऐसा सोचकर भगवान् विष्णु प्रकट हो गये । गरुड के पराक्रम से भगवान् विष्णु प्रसन्न थे । भगवान् ने देखा कि गरुड मातृभक्त हैं इन्होने अमृत का पान भी नहीं किया है, प्रसन्न हो भगवान् ने गरुड से वर माँगने के लिये कहा- मेरे पास किसी वस्तु की कमी नहीं है यदि आप चाहते हैं तो मुझे अपनी ध्वजा पर स्थान दें। भगवान् ने तथास्तु कहा । गरुड ने भी भगवान् से कहा कि अब आप भी मुझसे वर मांगीये, भगवान् तो इस वाक्य की प्रतीक्षा ही कर रहे थे, बिना देर किये भगवान् ने कहा गरुड तुम मेरे वाहन बन जाओ । वैनतेय ने प्रसन्नता से इसे स्वीकार कर लिया। और माता की मुक्ति के लिये अमृत कलश लेकर उड़ चले । इन्द्र भी गरुड का पीछा करते रहे । अमृत कलश लेकर कद्रू पुत्र नागों के पास जाकर गरुड ने कहा लो मैं अपनी माता को दासता से छुड़ाने के लिये तुमलोगों के लिये अमृत ले आया और उस अमृत कलश को कुश पर रख दिया -

इदमानीतममृतं निक्षेप्स्यामि कुशेषु वः ।

(म०भा०आदि ३४/१७)

गरुड और अमृत कलश का पीछा इन्द्र कर ही रहे थे, नागों से कहा आप लोग स्नान करके अमृत पान करें । जब नाग स्नान करने के लिये गये तो इन्द्र अमृत कलश लेकर उड़ गये । नागों ने आकर देखा कि अमृत कलश नहीं है, वे बहुत दु:खी हुये और अपनी जिह्वा से दर्भ कुशा को चाटने लगे । अमृत के सम्पर्क में आने से कुशा पवित्र होकर पवित्री संज्ञा को प्राप्त हुई ।

अभवंश्चामृतस्पर्शाद् दर्भास्तेऽथ पवित्रिनः । एवं तदमृतं तेन हृतमाहृतमेव च ।।

(म०भा०आदि ३४/२४)

कथा में कुश, दर्भ पर अमृत कलश को रखने का प्रसंग प्राप्त है, अमृत के सम्पर्क में आने पर कुशा पवित्र हो गई, धराधाम पर अमृतकलश का आगमन हुआ था- इसी स्मृति में कुम्भमहापर्व मनाया जाता है ।

प्रयाग महाकुम्भ पर्व -

मेषराशिगते जीवे मकरे चन्द्रभास्करौ । अमावस्यां तदा योगः कुम्भाख्यस्तीर्थनायके।।

- जिस समय बृहस्पति मेष राशिपर स्थित हो तथा चन्द्रमा और सूर्य मकर राशिपर हो तो उस समय तीर्थराज प्रयाग में कुम्भ-योग होता है ।

मकरे च दिवानाथे वृषराशिस्थिते गुरौ । प्रयागे कुम्भयोगो वै माघमासे विधुक्षये।।

- मकर में सूर्य, वृष राशि में गुरु के होने पर प्रयाग में माघ-अमावस्या को कुम्भ योग होता है

हरिद्वार महाकुम्भ पर्व -

योऽस्मिन्क्षेत्रे नरः स्नायात्कुंभेज्येऽजगे रवौ । स तु स्याद्वाक्पतिः साक्षात्प्रभाकर इवापरः ।।

(ना०पु०६६/४४-४५)

- गंगाद्वार (हरिद्वार) में कुम्भ राशि में बृहस्पति, मेष में सूर्य के होने से जो योग होता है उसमें स्नान करने से मनुष्य सूर्य के समान तेजस्वी हो जाता है।

पद्मिनीनायके मेषे कुम्भराशिगते गुरौ । गंगाद्वारे भवेद्योगः कुम्भनामा तदोत्तमैः ।।

- जिस समय बृहस्पति कुम्भ राशिपर स्थित हो और सूर्य मेष राशिपर रहे, उस समय गङ्गाद्वार (हरिद्वार) में कुम्भ-योग होता है ।'

कुम्भराशिगते जीवे यदि मेषगो रविः । हरिद्वारे कृतं स्नानं पुनरावृत्तिवर्जनम् ।।

- कुम्भ राशि में बृहस्पति, मेष में रवि के योग में जो हरिद्वार में स्नान करता है उसका पुनर्जन्म नहीं होता है ।

कुम्भयोगे हरिद्वारे यद्ध स्नानेन यत्फलम् । नाश्वमेधसहस्त्रेण तत्फलं लभते भुवि ।।

- पृथ्वी पर कुम्भ योग होने पर हरिद्वार में स्नान का जो फल मिलता है वह अश्वमेध यज्ञ करने पर भी नहीं मिलता ।

नासिक महाकुम्भ पर्व -

सिंहराशिं गते सूर्ये सिंहाराशौ बृहस्पतौ । गोदावर्या भवेत्कुम्भो भुक्तिमुक्तिप्रदायकः ।।

-जिस समय सूर्य तथा बृहस्पति सिंह राशिपर हों उस समय नासिक में सभी भोग एवं मुक्ति को देने वाला कुम्भ होता है ।

ब्रह्मपुराण में सिंहस्थयोग-

गङ्गागङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि । मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ।।८२।।
तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च तीर्थानि भुवनत्रये । तानि स्नातुं समायान्ति गङ्गायां सिंहगे गुरौ।।८३।।
षष्टिवर्षसहस्राणि भागीरथ्यवगाहनम् । सकृद्गोदावरीस्नानं सिंहयुक्ते बृहस्पतौ ।।८४।।
इयं तु गौमती पुत्र यत्र क्वापि ममाऽऽज्ञया । सर्वेषां सर्वदा नृणां स्नानान्मुक्तिं प्रदास्यति।।८५।।
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च । कृत्वा यत्फलमाप्नोति तदस्य श्रवणाद्भवेत् ।।८६।।
इदं कीर्त्यं भुक्तिमुक्तिदायं पापनाशकम् । एतच्छ्रवणमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नरः ।।८९।।

- गंगा जी का प्रभाव कौन बता सकता है, गंगा-गंगा यह उच्चारण जो भी करेगा उसे पुण्य-लाभ होगा । गंगा यह पवित्र नाम उच्चारण करते ही कलियुग के कलंकों को नष्ट करने में दक्ष और कल्याण कारक है । गौतम तुम्हारा कल्याण हो । जो मनुष्य सैकड़ों योजन दूर से भी गंगा-गंगा का उच्चारण करता है वह समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णु लोक को जाता है। तीनों लोकों में साढ़े तीन करोड़ जो तीर्थ हैं, वे सिंह राशि में बृहस्पति के जाने पर गंगा में स्नान करने आते हैं। बृहस्पति के सिंह राशि पर अवस्थित होने पर गोदावरी में एक बार स्नान करने से उतना ही फल मिलता है, जितना साढ़ हजार वर्षों तक गंगा में स्नान करने से होता है । सहस्त्रों अश्वमेध यज्ञ तथा सैंकड़ों वाजपेय यज्ञ करने से जो फल मिलता है वह बृहस्पति के सिंह राशि योग पर गौतमी गंगा में स्नान से मिलता है। (ब्रह्म पुराण अध्याय-१७५)

शिवमहापुराण में सिंहस्थयोग

महर्षि गौतम अपनी पत्नी अहिल्या के साथ ब्रह्मगिरि पर्वत पर हजारों वर्षों से तप कर रहे थे, किसी समय सौ वर्षों तक अनावृष्टि होने से भयानक अकाल पड़ गया, सभी लोग दु:खी थे, चारों ओर कहीं भी हरा-पत्ता दिखायी नहीं देता था। सभी मनुष्य, पशु-पक्षी, मृग उस वन को छोड़कर इधर-उधर चले गये । ऐसे दुष्काल को देखकर महर्षि गौतम ने वरुण देव को प्रसन्न करने के लिये तप किया, प्रसन्न होकर वरुण देव ने कहा वर माँगो- गौतम ऋषि ने उनसे वृष्टि के लिये प्रार्थना की । गौतम द्वारा प्रार्थना करने पर वरुण ने महर्षि से कहा कि तुम एक गड्ढा खोदो। वरुण के इतना कहने पर गौतम ने हाथ भर गहरा एक गड्ढा बनाया, वरुण ने उसे दिव्य जल से भर दिया और कहा - हे महामुने! तीर्थ रूपी यह अक्षय जल तुम्हारे नाम से पृथ्वी में प्रसिद्ध होगा । वरुण देव की इस कृपा से गौतम सुखी हो गये । वह जल सरोवर में बदल गया उस अक्षय जल के कारण चारों ओर अनावृष्टि का कष्ट समाप्त

हो गया । सभी मनुष्य, पशु-पक्षी, प्राणी वापस वहीं पहुँच गये । महर्षि ने धान्य, जौ, नीवार, वृक्ष, फल-फूल लगाकर उस वन को फिर से हरा-भरा बना दिया।

महर्षि गौतम ने अपने शिष्यों को उस अक्षय जलस्रोत से जल लाने के लिए भेजा। वहाँ पहले से ही ऋषि पत्नियाँ जल लेने के लिये आयी हुई थीं । उन्होंने महर्षि गौतमके शिष्यों को जल लेने से रोक दिया ।

ऋषिपत्न्यो वयं पूर्वं ग्रहीष्यामो विदूरतः । पश्चाच्चैव जलं ग्राह्यमित्येवं पर्यभर्त्सयन् ।।३।।

- हम ऋषि पत्नियाँ हैं, पहले हम जल लेगीं, ऐसा कहकर गौतम के ब्रह्मचारियों को झिड़क दिया, ब्रह्मचारियों ने गौतमपत्नी से उक्त कार्य की शिकायत की। महर्षि के पूजा-पाठ में विघ्न देख अहिल्या स्वयं जल लेने के लिये गयी। ऋषि पत्नियों ने नाराज होकर गौतम पत्नी अहिल्या को भी फटकार दिया । दुष्ट स्वभाव वाली वे अपनी-अपनी कुटियों में चली गयी और पतियों से उल्टी शिकायत की - अहिल्या ने हम लोगों को अपमानित कर पानी भरने से मना कर दिया । ऐसा सुन कर कुपित हृदय ऋषियों ने गौतम से बदला लेने के लिये गणेश जी का अनुष्ठान आरम्भ कर दिया। गणेश जी ने कहा- मैं प्रसन्न हूँ, तुम लोग वर माँगों, गणेश के वचन को सुन कर ऋषियों ने कहा- यदि आप हम लोगों पर प्रसन्न हैं तो गौतम और उसकी पत्नी को अपमानित करके यहाँ से बाहर निकलवा दीजिये । ऐसा सुन कर गणेश जी ने कहा- यह उचित नहीं है, महर्षि गौतम परोपकारी और पुण्यात्मा हैं, आप लोग कोई अन्य वर माँग लो। ऋषि नाराज हो गये, कहा- यदि आप को करना है तो यही करेंगे । गणेश जी ने ऋषियों को बहुत समझाया और कहा कि- महर्षि गौतम की कृपा से ही यहाँ अमन-चैन हुआ है, आप सब लोगों पर उनकी कृपा रही है । उनके हित में ऐसा उचित नहीं होगा, परन्तु ऋषियों की जिद लगातार बनी रही अन्त में गणेश जी ने कहा- मैं आप लोगों को दिये गये वरदान को पुरा करूँगा फिर जैसा होना होगा वैसा ही होगा -

भवद्भिः प्रार्थ्यते यच्च करिष्येऽहं तथा खलु । पश्चाद्भावि भवेदेव इत्युक्त्वान्तर्दधे पुनः ।।२६।।

अपने दिये हुए वचन को पूरा करने के लिये गणेश जी दुर्बल गाय बनकर गौतम के खेतों में पहँच कर खेत में चरने लगे । खेत को खराब होते देख महर्षि ने उस दुर्बल गाय को तिनकों से हटा दिया, तृण समूह के स्पर्श मात्र से ही मरने के लिये तैयार गाय पृथ्वी पर गिर पड़ी, ऋषि के देखते ही देखते मर गयी ।

गौतम के विरोधी ऋषि पहले से ही घात लगाये बैठे थे, सभी एक स्वर से गौतम पर गोहत्या का आरोप लगाकर चिल्लाने लगे । ऋषियों ने कहा- गौतम तुम्हारा मुख देखने योग्य नहीं है। गोघातक, पापी तु परिवार सहित अन्यत्र चला जा, इतना कह कर सभी ने गौतम को पत्थरों से मार कर और अहिल्या को गालियाँ देकर दु:खी कर दिया -

इत्युक्त्वा ते च तं सर्वे पाषाणैः समताडयन् । व्यथां ददुरतीवास्मै त्वहल्यां च दुरुक्तिभिः ।।४१।।
इतो गच्छामि मुनयो ह्यन्यत्र निवसाम्यहम् ।।४२।।

विनम्र भाव से गौतम वह स्थान छोड़कर अन्यत्र चले गये । कुछ समय बिताकर अत्यन्त दु:ख के साथ गौतम ने ब्राह्मणों और मुनियों से प्रार्थना करते हुये इस अपराध का प्रायश्चित पूछा । विवेकी मुनियों ने बताया -

शतमेकोत्तरं चैव ब्रह्मणोऽस्य गिरेस्तथा । प्रक्रमणं विधायैवं शुद्धिस्ते च भविष्यति ।।५२।।

अथवा त्वं समानीय गङ्गां स्नानं समाचार । पार्थिवानां तथा कोटिं कृत्वा देवं निषेवय।।५३।।

गङ्गायां च ततः स्नात्वा पूतश्चैव भविष्यसि । पुरा दश तथा चैके गिरेस्त्वं क्रमणं कुरु।।५४।।

शतकुम्भैस्तथा स्नात्वा पार्थवं निष्कृतिर्भवेत् । इति तैर्ऋषिभिः प्रोक्तस्तथेत्योमिति तद्वचः।।५५।।

- ब्रह्मगिरि की एक सौ एक बार परिक्रमा करने पर अथवा भूतल पर गङ्गा जी को लाकर गङ्गा स्नान से, करोडों पार्थिवलिङ्ग बनाकर शिव पूजन कर, पुनः गङ्गा स्नान कर ग्यारह बार पहाड़ की परिक्रमा करने से, सौ घड़े गङ्गा जल से पार्थिव लिङ्ग को स्नान कराने से, तुम्हारी शुद्धि होगी । ऐसा सुन कर प्रसन्नता से महर्षि गौतम, पत्नी अहिल्या, आश्रम के सभी शिष्य भगवान् शंकर की प्रसन्नता के लिये आराधना करने लगे ।

भगवान् शिव अपने गणों सहित प्रकट हो गये। हे महामुने! मैं तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न हूँ वर माँगों - महायोगी शिव के दिव्यरूप को देखकर गौतम ने प्रसन्न होकर प्रणाम किया, प्रार्थना करते हुऐ बोले- महादेव मुझे पाप रहित कीजिये, मैं गोघातक हूँ । यह सुनकर शिव जी बोले मुनि तुम पाप रहित हो, दुष्टों ने एवं खलों ने तुमको छला हैं -

एतैर्दुष्टैः किल त्वं च छलितोऽसि खलात्मभिः ।

- गौतम ने शिव जी से कहा- भगवन् ! उन ऋषियों ने मेरे ऊपर बड़ा उपकार किया है । यदि वे ऐसा न करते तो आपका दर्शन कैसे होता । आपकी कृपा से मैं निष्पाप हूँ, यह उचित है, परन्तु मेरा गोहत्या का पाप लोक में प्रसिद्ध हो गया है और पञ्चों ने जो आदेश मुझे दिया है, उसे मुझे मानना ही होगा -

सत्यं नाथ ! ब्रवीषि त्वं तथापि पञ्चभिः कृतम् । नान्यथा भवतीत्यत्र यज्जातं जायतां तु तत् ।।१८।।

-हे प्रभु! यदि आप प्रसन्न हैं तो गङ्गा के अवतरण का वरदान दीजिये । शिव जी ने अपने कमण्डलु से गङ्गा जल निकालकर भक्तवत्सल गौतम मुनि को दे दिया । सभी ऋषि-मुनियों, ब्रह्मा जी सहित देवी-देवताओं ने भगवान् शिव और गङ्गा जी की स्तुति की और प्रार्थना करते हुये कहा -

यदि प्रसन्नो देवेश ! प्रसन्ना त्वं सरिद्वरे । स्थातव्यमत्र कृपया नः प्रियार्थं तथा नृणाम् ।।४०।।

- महादेव यदि आप हम लोगों पर प्रसन्न हैं? गङ्गा देवि यदि आप हम लोगों पर प्रसन्न हैं, तो लोगों पर उपकार करने के लिये यहीं वास करें । गङ्गा जी ने कहा- आप सब यहाँ लोगों के हित के लिये क्यों नहीं रह जाते? मैं गौतम को पवित्र करके अपने स्थान को चली जाऊँगी । यदि हे देवताओं! आप सब मेरा विशेष सम्मान करें और आप लोग मुझे विशेष रूप से जाने- ऐसा यदि स्वीकार करते हैं तो मैं यहाँ धरा-धाम में रहूँगी । सभी देवी-देवताओं, ऋषि-मुनियों ने एक स्वर में कहा -

सिंहराशौ यदा स्याद्वै गुरुः सर्वसुहृत्तमः । तदा वयं च सर्वे त्वागमिष्यामो न संशयः ।।४३।।
एकादश च वर्षाणि लोकानां पातकं त्विह ! क्षालितं सद्भवेदेवं मलिनाः स्मः सरिद्वरे ।।४४।।
तस्यैव क्षालनाय त्वायास्यामः सर्वथा प्रिये। त्वत्सकाशं महादेवि ! प्रोच्यते सत्यमादरात्।।४५।।
अनुग्रहाय लोकानामस्माकं प्रियकाम्यया । स्थातव्यं शङ्करेणापि त्वया चैव सरिद्वरे ।।४६।।
यावत्सिंहे गुरुश्चैव स्थास्यामस्तावदेव हि । त्वयि स्नानं त्रिकालं च शङ्करस्य च दर्शनम् ठ ।।४७।।
कृत्वा स्वपापं निखिलं विमोक्ष्यामो न संशयः। स्वदेशांश्च गमिष्यामो भवच्छासनतो वयम् ।।४८।।
इत्येवं प्रार्थितस्तैस्तु गौतमेन महर्षिणा। स्थितोऽसौ शङ्करः प्रीत्या स्थिता सा च सरिद्वरा ।।४९।।
तद्दिनं हि समारभ्य सिंहस्थे च बृहस्पतौ । आयान्ति सर्वतीर्थानि क्षेत्राणि दैवतानि च ।।५१।।
सरांसि पुष्करादीनि गङ्गाद्याः सरितस्तथा । वासुदेवादयो देवाः सन्ति वै गौतमीतटे ।।५२।।
यावत्तत्र स्थितानीह तावत्तेषां फलं नहि । स्वप्रदेशे समायातास्तर्ह्येतेषां फलं भवेत् ।।५३।।
ज्योतिर्लिङ्गमिदं प्रोक्तं त्र्यम्बकं नाम विश्रुतम् । स्थितं तटे हि गौतम्या महापातकनाशनम् ।।५४।।
यः पश्येद्भक्तितो ज्योतिर्लिङ्गमिदं त्र्यम्बकनामकम् । पूजयेत्प्रणमेत्स्तुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।५५।।
ज्योतिर्लिङ्गं त्र्यम्बकं हि पूजितं गौतमेन ह । सर्वकामप्रदं चात्र परत्र परमुक्तिदम् ।।५६।।
इति वश्च समाख्यातं यत्पृष्टोऽहं मुनीश्वराः । किमन्यदिच्छथ श्रोतुं तद्ब्रूयां वो न संशयः ।।

- सभी देवताओं ने कहा- हे गंगे! सब का पूज्य बृहस्पति जब सिंहराशि में होगा, जब ग्यारह वर्षों तक सम्पूर्ण संसार का पाप धुलने से हम मलिन हो जायेंगे । हे प्रियगंगे! महादेवि! तब हम उस पाप-समूह का नाश करने के लिये (बारहवें वर्ष में) हम यहाँ निःसन्देह आदर से तुम्हारे समीप आयेंगे। संसार के ऊपर दया करने के लिये और हमें प्रसन्न करने के लिये आप और शिवजी स्थिर रूप से यहाँ रहिये । जब तक बृहस्पति सिंहराशि में रहेंगे तब तक हम देवगण यहीं रहेंगे । तुम्हारे में त्रिकाल स्नान करेंगे और शिवजी का दर्शन करेंगे । इस प्रकार हम सब देवता निःसन्देह अपने पापों से मुक्त होकर आपकी आज्ञा से अपने-अपने धामों को जायेगें । इस प्रकार देवताओं तथा गौतम मुनि की प्रार्थना से शिवजी और गंगा जी वहाँ स्थित हो गये । वह गंगा गौतमी नाम से और वह लिंग त्र्यम्बक नाम से प्रसिद्ध हुआ । ये दोनों ही महापातकों का नाश करते हैं। तब से लेकर सिंह राशि में बृहस्पति के आने पर यहाँ सभी तीर्थ, सभी क्षेत्र तथा सभी देवता चले आते हैं । पुष्कर आदि तीर्थ, गंगा (भागीरथी गंगा) आदि नदियाँ और विष्णु आदि देवता गौतमी तट पर आ जाते हैं । जब तक ये यहाँ रहते हैं, तब तक इनके मूल स्थानों का फल नहीं होता और जब ये अपने स्थानों में चले जाते हैं, तभी इनका फल होता है । यह महापापों का नाश करनेवाला त्र्यम्बक नाम का सुप्रसिद्ध ज्योतिर्लिङ्ग है, जो गौतमी नदी के तट पर विराजमान है । भक्ति से इस त्र्यम्बकेश्वर नामक ज्योतिर्लिङ्ग का दर्शन-पूजन करता है, प्रणाम करता है और स्तुति करता है, वह सब पापों से मुक्त हो जाता है । इस त्र्यम्बकेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग का पूजन महर्षि गौतम ने किया था । इस लोक में सुख भोग और परलोक में मुक्ति को देता है ।

(शिवमहापुराण चतुर्थ कोटिरुद्रसंहिता अ०२५-२६)

उज्जैन महाकुम्भ पर्व-

मेषराशिगते सूर्ये सिंहराशौ बृहस्पतौ । उज्जयिन्यां भवेत्कुम्भः सदा मुक्तिप्रदायकः।।

- जिस समय सूर्य मेष राशिपर हो और बृहस्पति सिंह राशिपर हो तो उस समय उज्जैनमें कुम्भ-योग होता है ।

क्षिप्रा माहात्म्य-

क्षिप्रा ह्यवंति च तथा पारियात्राश्रयाः स्मृताः ।
तास्तु नद्यः सरस्वत्यः सर्वाः गङ्गाः समुद्रगाः । विश्वस्य मातरः सर्वा जगत्पापहराः स्मृता ।।

-विन्ध्याचल की पर्वत श्रेणी पारियात्र पर्वत, पुण्य नदी क्षिप्रा का उद्गम स्थान है । इन पर्वतों से निकलने वाली सभी नदियाँ सरस्वती, गंगा के समान पवित्र और समुद्र की ओर जाने वाली हैं । ये जगत् की माता और सभी पापों को नष्ट करने वाली हैं । (ब्रह्माण्डपु० २/२९,३९)

क्षिप्रा सर्वत्र पुण्यातिपवित्रा पापहारिणी । अवन्त्यां च विशेषेण क्षिप्रा वै पापहारिणी ।।
तथापि तत्समुत्पत्तिं विस्तराद्वदतो मम । यथा वाराहतनया विष्णु देहोद्भवा शिवा ।।
मम देहोद्भवा क्षिप्रा यत्र लीना पयस्विनी । नीलगङ्गा सरिच्छ्रेष्ठा यत्र प्राची सरस्वती ।।
महाकालवने रम्ये यत्र क्षिप्रा सरिद्वर। स्नानदानादिकं कृत्वा श्राद्धं कृत्वा यथोचितम् ।।
तेन पुण्यप्रभावेण स्वकाँल्लोकान् गताः सुराः। एवं व्यास समाख्याता क्षिप्रा वै लोकपावनी ।।

- क्षिप्रा पुण्य को देने वाली पवित्र पापों को नष्ट करने वाली है, उज्जयनी में इसका विशेष महत्व है। यह भगवान् विष्णु के शरीर से उत्पन्न और कल्याण को देने वाली हैं ।

●

दशनाम संन्यास परम्परा - मठाम्नाय - १३

भारत के सांस्कृतिक, धार्मिक, राष्ट्रीय, राजनैतिक, सामाजिक, शैक्षणिक सभी क्षेत्रों में आस्तिक व नास्तिक, वैदिक व अवैदिक का भेद रहा है । वस्तुतस्तु इस भेद का आधार मानव की दैव व आसुर प्रकृति ही है एवं जब तक यह प्रकृति रहेगी भेद भी रहेगा ही । इसी को पाश्चात्य संस्कृति में भूतवाद व ईश्वरवाद (heterodox and orthodox materialism & spiritualism, god and Satan) के नाम से कहा जाता है । अंतिम संसार के सुख को ही स्वीकार करती है एवं प्रथम संसार को केवल एक सोपान स्वीकार करके परमेश्वर को ही आनन्दरूप स्वीकार करती है । संसार के सुखों में भिन्न-भिन्न सुख को उद्देश्य मानकर व सुख के लक्षण भेद करके नास्तिक अवैदिक आसुर सम्प्रदायों में मतभेद चला एवं आज तक चल रहा है । इनमें चार्वाक जैसे ऋण करके भी घी पीने वाले हैं और बुद्ध जैसे विरक्त अनात्मवादी भी हैं । इस प्रकार आनन्द-स्वरूप परमेश्वर के लक्षणादि से आस्तिक वैदिक देव सम्प्रदायों में भी अनादिकाल से भेद चला आ रहा है । इनमें भोगमोक्ष दोनों को प्राप्त करके दोनों ही आनन्दों को महत्त्व देने वाले प्रवृतिमार्गी भी हैं । मोक्ष को ही आनन्द मानकर संसार के सुखों से पूर्ण विरक्त निवृत्ति-मार्गी भी हैं और ब्रह्मानन्द के एकत्व को ही सर्वत्र अनुभव करने वाले संसार को असत्य-कल्प समझ सत्परमेश्वर का ही सर्व विवर्त स्वीकार करने वाले शुद्धाद्वैतवादी भी हैं। शुद्धाद्वैतवाद या केवलाद्वैतवाद ही सर्व आस्तिक दर्शनों का मूर्द्धन्य है क्योंकि इसके साथ सभी आस्तिक दर्शनों का सामञ्जस्य व सभी साधनप्रणालियों की एकरसता है । अत: अद्वैतवाद ही आस्तिक दर्शन का पर्याय बन गया है । सनातन के ही नहीं भारत के विधर्मियों ने भी अपनी सन्तवाणियों में अद्वैतवाद को ही किसी न किसी रूप में प्रश्रय दिया है । यह दूसरी बात है कि उसके शुद्धस्वरूप से अनभिज्ञ होने के कारण उन्होंने उसको दूषित रूप दे दिया हो ।

केवलाद्वैत का शुद्धतम संस्कृत रूप उपनिषदों में प्राप्त होता है । इसके आद्याचार्य स्वयं वेदमूर्ति भगवान् शंकर का दक्षिणामूर्ति रूप है एवं सम्प्रदाय प्रवर्तक यज्ञमूर्ति भगवान् विष्णु का नारायण रूप है । सर्वप्रथम स्वामी कार्तिकेयावतार भगवान् सनत्कुमार को इसका उपदेश व स्वयं भू-ब्रह्मा को शिक्षा मिली । इस प्रकार इस सम्प्रदाय का आदि ही स्वयं परमेश्वर का श्रीविग्रह है । भगवती उमा को ही तो ब्रह्म-विद्या नाम से कहा गया है । इसीलिए जब-जब इस सम्प्रदाय का ह्रास होता है तब तब स्वयं परमेश्वर ही अवतार के द्वारा इसकी रक्षा करते हैं । सत्ययुग में मनु, कपिलादि ने, त्रेता युग में भगवान् राम, महर्षि वशिष्ठ, दत्तात्रेयादि ने, द्वापर में भगवान् कृष्ण, वेदव्यास, शुकदेवादि ने इसकी रक्षा की । कलियुग में बौद्ध आक्रमण से लुप्तप्राय इस सम्प्रदाय का उद्धार स्वयं भगवान् शंकर के पूर्णावतार भाष्यकार भगवत्पादाचार्य ने किया एवं विष्णु के अवतार भगवान् पद्मपादाचार्य, ब्रह्मा के अवतार भगवान् सुरेश्वराचार्य, वायु के अवतार भगवान् त्रोटकाचार्य, सूर्य के अवतार भगवान्

महेश्वराचार्य एवं समित्पाण्याचार्य, शुद्धकीर्त्याचार्य आदि शिष्यों के द्वारा उसे ऐसी दृढ अभेद्य कवचरूपी युक्तियों से परिरक्षित कर दिया कि घोर कलियुग में भी वह अक्षुण्ण बना रहे। इतना ही नहीं 'संघे शक्तिः कलौ युगे' के न्याय का अनुसरण करके एवं भविष्य में भी इस सम्प्रदाय पर आने वाली आपत्तियों का सामना करने वाली शक्ति को मजबूत बनाने के लिए परमहंस संन्यासी सम्प्रदाय को, जोकि भगवान् श्रीदक्षिणामूर्ति के समय से ही अनाद्यनवच्छिन्नगुरुपरंपरा से वैदिक सम्प्रदायरूप से चला आ रहा था, संगठित रूप दिया। उनके प्रधान शिष्यों में कुछ तो संन्यासियों की शिक्षापर विशेष ध्यान देकर विद्या परम्परा की रक्षा करते थे एवं कुछ निरन्तर भ्रमण द्वारा जनसमुदाय को अधिकारानुरूप साधना में प्रवृत्त करके सम्प्रदाय का परिवर्धन व संरक्षण करते थे। इन्हीं ने बाद में मठ व पीठों का रूप ग्रहण किया। मठाध्यक्ष ही संन्यासियों के भोजनादि की व्यवस्था करते थे एवं सद्‌गृहस्थों की सहायता से सारा कार्य सम्पन्न होता था। कालान्तर में शृङ्गेरी मठ, ज्योतिर्मठ आदि मठ राजकीय सहायता को प्राप्त करके भारतीय संस्कृति के विश्वविद्यालय बन गये जिनसे न केवल वेदान्त वरन् न्याय-सांख्य-मीमांसादि दर्शनों की भी रक्षा यवनों के भीषण अत्याचार काल में भी हो सकी। इनमें से चार मठ शृंगेरी, ज्योति, गोवर्द्धन, कालिका (द्वारिका) भारतवर्ष के चारों दिशाओं में स्थित एवं चारों धामों से सम्बन्धित होने के कारण प्रधानतम शिष्यों द्वारा अधिष्ठित हुए एवं तत्तत्प्रदेश के सभी मठ इनके अन्तर्गत माने गये। आज भी वैदिक परमहंस संन्यासी अपनी विद्या गुरुपरम्परा का सम्बन्ध इन्हीं मठों में से किसी एक के साथ बतलाता है। इन मठों के परवर्ती आचार्य भी प्रायः अपने समय के विशिष्टतम विद्वान् होते आये हैं। इन मठों में व इनके अन्तर्गत मठों में भी असंख्य विद्वान् तैयार होते रहे हैं व आज भी हो रहे हैं। मुगलों के अत्याचारों से यद्यपि कालिका (द्वारिका) व गोवर्द्धनमठ बीच में उच्छिन्न हो गये थे एवं ज्योतिर्मठ तो आज भी उसी अवस्था में है तथापि शृंगेरी व कामकोटि मठ आज भी वेदान्तविद्या के एवं मीमांसादि दर्शनों के प्रधान आश्रय हैं।

इसी प्रकार प्रचार कार्यों को भी संगठित रूप से करने के लिए ६ प्रधान शिष्यों के अन्तर्गत सारा कार्य कर दिया गया। यह ६ पीठ हैं जिनके अन्तर्गत आज भी सारा प्रचार कार्य होता है। मध्यकाल में जब मुसलमानों के शासनकालों में अत्याचार ही राज्य का स्वरूप बन गया एवं शस्त्र-बल से सभी वैदिकों को धर्म-परिवर्तन के लिए बाध्य किया गया एवं वैदिक राजा नष्टप्रायः हो गए तब इस अभूतपूर्व स्थित का सामना करने के लिए सभी शांकर सम्प्रदाय के पीठाधीश्वरों व मठाध्यक्षों की सलाह से शस्त्रधारी परिव्राजक दल तैयार किया गया। इस दल की शिक्षा का स्थान अखाड़ा (तत्कालीन भाषा में मल्लशाला) हुआ। इनके संगठन में जो प्रजातान्त्रिक रूप अपनाया गया एवं जिस प्रकार का न्यायविभागादि स्थापित किया गया वह भारत के शिशु प्रजातन्त्र को ही नहीं ब्रिटेन इत्यादि के प्रौढ प्रजातन्त्रों को भी बहुत कुछ सिखा सकता है। इन शस्त्रधारियों को कोई नवीन सम्प्रदाय न समझ लेना चाहिए। यह तो उसी प्राचीन वैदिक परम्परा के ६ पीठों का ही अभिन्न अंग हैं व आज

भी वे अपने को उसी पीठ का सदस्य समझते हैं । इन्होने अपनी संगठन शक्ति, नि:स्वार्थता, बलिदान, अभय आदि सद्गुणों से शीघ्र ही न केवल वैदिक धर्मावलम्बियों की रक्षा की वरन् बड़े-बड़े भूमिखण्डों को अपने अधीन करके उनमें शुद्ध वैदिक धर्मानुकूल शासन करना प्रारम्भ कर दिया । इनकी सहायता की कामना बड़े-बड़े राजा भी करने लगे एवं जहाँ कहीं भी वैदिक धर्म की रक्षा का प्रसंग आया उन्होंने सभी के साथ सहयोग किया । कर्नल टॉड आदि प्रसिद्ध इतिहासकारों ने इनकी विशेष यशोगाथा गाई है । लेकिन राज्य स्थापित होने पर भी नि:स्वार्थ एवं धर्मनिष्ठ होने के कारण इन्होंने केवल अपने अपने पीठ से सम्बन्धित देवता को ही राजा स्वीकार किया एवं पञ्चदेवोपासक होने के कारण आज भी 'पञ्च की सलाह से हुआ' 'पञ्च आ गया' इत्यादि रूप से वे अपनी सर्वोच्च अधिकारी व्यवस्थापिका संस्था का परिचय देते हैं । पीठाधिपति जो अब तक केवल प्रचार का कार्य करते थे एवं पीठ के सर्वाधिकारी होते थे, अब राज्य स्थापना के बाद वैधानिक राजा बन गये एवं विशेष समयों पर ये ही पीठ का प्रतिनिधित्व करते थे । तभी से ये 'मण्डलेश्वर' भी कहाने लगे । लेकिन सारी व्यवस्था चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा होती थी जो महन्त कहलाते हैं । मण्डलेश्वर राजा के अर्थ में संस्कृत का प्राचीन शब्द है एवं संन्यासी-मण्डल (राज्य) का ईश्वर (अध्यक्ष) होने से ही संभवत: अन्य शब्दों की अपेक्षा इसे चुना गया होगा । लेकिन पीठाध्यक्ष का कार्य पीठ के घटकों की आध्यात्मिक उन्नति की प्रतिष्ठा एवं देशव्यापी प्रचार द्वारा पीठ की प्रतिष्ठा और इस प्रकार अद्वैतमार्ग के अनुयायियों और गृहस्थ भक्तों को वैदिकमार्ग में संलग्न रखना ही था । स्वभावत: विरक्त होने के कारण उन्होंने सर्वदा ही सारा कार्य प्रजातान्त्रिक तरीकों से चुने हुए प्रतिनिधि महन्तों पर ही रखा एवं विशेषावसरों को छोड़कर कभी भी राजकीय सम्मानों को महत्त्व नहीं दिया । इन्हें ही प्राचीन शिलालेखों में 'परिव्राजक राजा' कहा गया है । यद्यपि महन्त प्रति ६ वर्ष में चुने जाते थे और आज भी चुने जाते हैं 'मण्डलेश्वर' को आजीवन चुना जाता था और केवल विशेष स्थिति में ही पदत्याग करने को बाध्य किया जा सकता था ।

ब्रिटेन की शासनसत्ता स्थापित हो जाने पर धीरे-धरीरे अराजकता मिटी एवं ये राज्य भी अखण्ड भारत में विलीन हो गये । ध्वंसावशेष रूप से इनके अधिकार में बड़ी-बड़ी जमींदारियाँ रह गई। ''मण्डलेश्वर' पद का प्रयोग अब केवल 'पीठाध्यक्ष' के लिए प्रयुक्त होने लगा । एवं अन्य राजकीय सत्ताओं के समाप्त होने पर भी पीठ के कार्य में अद्यावधि राज्य व सैनिक परम्परा का ही पालन होता है । कुम्भ, जो किसी समय महाराजाओं एवं सम्राटों से व्यवस्थित होते थे, जहाँ राजा हर्षवर्द्धन व परवर्ती राजा भी आकर धर्म की मीमांसा कराते थे एवं धार्मिक आदेश निकालकर पीठाचार्यों के निर्णयों को कानूनी रूप देते थे, मुगल काल में यवनों के घोर अत्याचारों के कारण केवल वैदिक निरीह जनता व साधुओं के सामूहिक हत्या का स्थान हो गया । भगवान् शंकर भगवत्पादाचार्य के समय से ही कुंभावसर पीठनायकों के आपस में एवं अपने सभी घटकों से मिलकर धर्म की तात्कालिक अवस्थाओं को जान कर वैदिक धर्म के प्रशस्त प्रचार की व्यवस्था एवं कठिनाइयों के निवारणार्थ निर्णय करता

था । इसीलिए कुंभावसर पर 'समष्टि' आयोजन होता था एवं प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुसार जो 'समष्टि'' को किसी विशेष निर्णयार्थ बुलाता था वह पीठाध्यक्ष निर्णयानन्तर भोजन की व्यवस्था भी करता था । पीठाध्यक्ष की मृत्यु या पदत्याग होने पर 'समष्टि'' निर्णय ही नवीन पीठाधिपति का चुनाव करता था क्योंकि मठाम्नाय (भाष्यकार द्वारा पीठ चलाने का विधान) के अनुसार पीठ-परम्परा शिष्यपरम्परा से नहीं चलती । कुंभपर्व के विश्रृंखलित होने से संन्यास सम्प्रदाय उच्छिन्न सा होने लगा। विशेषतः कुंभपर्वावसर पर ही पीठ के आचार्य पीठ के सभी घटकों का संन्यास संस्कार कराते थे । इस प्रकार सभी संन्यासियों का नवीन संन्यासियों से परिचय हो जाता था । पीठाचार्य का यह एक प्रधान कार्य था । अलग संन्यास संस्कार कराने का अधिकार संन्यासी को न था, न है । क्योंकि 'निर्णयसिन्धु'' व ''यतिधर्मसंग्रह '' आदि में स्पष्ट ही योग्यतम संन्यासी को चुनकर प्रवचनादि करवा कर फिर सर्वसम्मति से उसे अभिषिक्त करके आदेश दिया जाता है कि अब से तुम दूसरे को संन्यास प्रदान कर तीर्थादि संज्ञा दे सकते हो एवं गृहस्थ शिष्य को भी दीक्षा दे सकते हो । अतः कुंभपर्व के अव्यवस्थित होने पर सभी वस्तुएँ अव्यवस्थितप्राय हो गई । पीठों के सैनिक संगठन के मजबूत हो जाने पर कुंभपर्व की व्यवस्था इसी पीठ के संगठन पर पड़ी एवं इन्होंने इस कार्य को पूरी तरह निभाया । अन्त में राज्य निर्माण हो जाने पर तो पीठों में भी आपस में अपने ऐश्वर्य व शक्ति प्रदर्शन की होड़ सी चलने लगी। कुंभपर्व धार्मिक निर्णय ही नहीं हिन्दू संस्कृति के राजनैतिक निर्णयों का भी केन्द्र हो गया । जिस प्रकार आज के राज्य गणतन्त्रदिवस पर सांस्कृतिक प्रदर्शनी एवं अपनी सेना की शक्ति का प्रदर्शन करते हैं, उसी प्रकार संन्यासी मण्डल कुंभपर्व पर किया करता था । यह पद्धतियाँ आज भी किसी न किसी रूप में चल रही हैं । आज भी अखाड़ें की ''छावनी'' होती है, मण्डलेश्वर की पेशवाई होती है व शाही निकलती है, 'तोप' नोखा चोखा गाड़ी जाती है ।

धीरे-धीरे सैनिक शक्ति का उपयोग न रहा । केवल कुंभपर्व में ही मण्डलेश्वर अपने राजकीय रूप से जनता के सामने आते थे । अब शाहियाँ केवल भूतकाल के स्मृति का अवशेष रह गई । लेकिन पीठाध्यक्ष शान्ति से नहीं बैठे थे । वे अपनी सुदूरदृष्टि से देख रहे थे एक नया युग, जिसमें बौद्धिक युद्ध में बौद्धिक सैनिकों की आवश्यकता होगी । समय से पूर्व तैयारी करना ही बुद्धिमान् का कार्य है। भाष्यकार द्वारा स्थापित गोवर्द्धन, कालिका व ज्योर्तिमठ की तरफ दृष्टि डाली गई । लेकिन यवन आक्रमण से छिन्न इन मठों से कोई विशेष आशा नहीं रही । सुदूर दक्षिण में अवस्थित श्रृंगेरी मठ के साथ भी सम्पर्क स्थापित हुए । बौद्धिक विकास विद्याकेन्द्रों में ही सम्भव है । ये मठ ही विद्यासम्प्रदाय के रक्षार्थ आद्याचार्यों द्वारा स्थापित हुए थे । श्रृंगेरी के तत्कालीन मठाध्यक्ष व कार्यकर्त्ता अभी भी समय के प्रवाह से अति दूर भूतकालीन स्पप्न देख रहे थे । किंच श्रृंगेरी अति दूर में था । उस युग में वहाँ जाना आना सहज न था । दक्षिण भारत यवन आक्रमण से बचा हुआ था । वहाँ की विद्यापरम्परा आज भी शुद्ध व साम्प्रदायिक है । पर पीठनायकों का कार्य अति कठिन है । उन्हें परम्परा के यथार्थ रूप

की रक्षामात्र ही नहीं परम्परा की यथार्थ रक्षा करते हुए बाह्यरूपों में परिवर्तन भी करना पड़ता है । जनता के निरंतर सम्पर्क से जनता की आवश्यकताओं व परिस्थितियों पर विचार कर धर्म-निर्णय करना पड़ता है । स्वयं भगवान् भाष्यकारों का आदेश है 'यतो विनष्टिर्महतीधर्मस्यात्र प्रजायते । मान्द्यं सन्त्याज्यमेवात्र दाक्ष्यमेव समाश्रयेत् । परस्परेण कर्तव्या आचार्येण व्यवस्थिति: ।'' अत: मठ व पीठ के आचार्ये का मतभेद स्वभाविक है । मठाध्यक्ष पीठाचार्यों को सन्दिग्ध दृष्टि से देखते हैं, पीठाध्यक्ष मठाचार्यों को असामयिक समझते हैं । वास्तविक दृष्टि से यह ठीक ही है । मठाचार्य पीठनायकों को परम्परा से दूर नहीं जाने देते एवं पीठाध्यक्ष के उचित निर्णय कालानतर में साम्प्रदायिक परम्परा के अंग बन जाते हैं । ये दोनों ही शक्तियाँ (Heterodoxy and orthodoxy centripetal and centrifugal) परमहंस सम्प्रदाय को शुद्ध वैदिक रखते हुए सामयिक भी रखती है । स्यात् इसीलिए भगवान् भाष्यकार शंकर भगवत्पदाचार्यो ने इसे विभक्त रूप दिया था ।

जब चारों मठों में से कोई भी इस कार्यभार को संभालने के लिए आगे न बढ़ा तो पीठनायकों ने पीठ के अखाड़ों पर दृष्टि डाली । ये ही स्थान थे क्योंकि पीठ पहले किसी स्थान पर नहीं रहता था, भ्रमण करके प्रचार ही करता था । आज भी पीठ ''रमता पंच'' ही है । लेकिन जिन्हें विघटित सैनिक संस्थानों का कुछ भी अनुभव होगा वे जानते ही होंगे कि सैनिक संगठन का परिवर्तन अति दुष्कर है। यह तो महन्तों की योग्यता, कार्यतत्परता एवं त्याग का फल है कि जिन अखाड़ों में ३-३ लाख मूर्तियाँ थीं उन्होंने भी कभी किसी निरीह पर हाथ न उठाया व सैनिक विघटन होने पर भी उनमें से कोई भी उदण्ड व्यवहार वाला न बन गया । कुछ समय तक तो द्विराज्य (Diarchy) भी चला जिसमें ब्रिटेन व अखाड़े दोनों ही कर उगाहते थे एवं शासन करते थे । पर स्वयं ही विचार कर महन्तों ने बिना किसी कठिनाई के अपना अधिकार परित्याग कर दिया। लेकिन ये महन्त मठाधिपति की तरह विद्याकेन्द्र चलाने में समर्थ न थे । अखाड़ों को विद्याकेन्द्र बनाना निकट भविष्य में संभव ना था । अब एक ही उपाय रह गया । पीठाचार्य ही मठस्थापना करें । लेकिन इसमें बड़ी झिझक थी । परम्परा से पीठाचार्य परम विरक्त होते थे । पीठों के राज्य स्थापन होने पर भी उन्होंने कभी उसमें सक्रिय भाग न लिया था। मठकार्य - संचालन में नियामक संरक्षक, आर्थिक-कभी संवाहक, व्यवस्थापक सब बनना पड़ता है । निरन्तर भ्रमणशील प्रचारक इस कार्य का निर्वाह कैसे कर सकेगा । कहीं ऐसा न हो कि पीठनायक केवल मठाध्यक्ष ही रह जावे । कई सन्देह होते थे । अत: कुछ काल पर्यन्त मध्यम मार्ग अपनाया गया। बड़ी-बड़ी मण्डलियाँ रखी गई जिनमें नियमत: संन्यासियों को पढ़ाया जाता था । नये संन्यासी तैयार किए जाते थे । साथ में भ्रमण व प्रचार भी चलता था । किसी किसी पीठनायक के पास १००-१२५ तक भी साधु रहने लगे । २-३ पीढ़ियों तक ऐसा चला । लेकिन व्यावहारिक कठिनाइयाँ सामने आने लगीं । इतने लोगों को सर्वत्र भोजन मिलना भी सरल न था । भ्रमण में नवीन संन्यासियों को पढ़ने का सुयोग भी कम मिलता था । पाठ नियम से चलता था पर मनन न हो पाता था । इन्हीं के वैयक्तिक

मतभेद व कठिनाइयों को दूर करने में पीठनायक का समय लग जाता था । अत: प्रचार कार्य शिथिल होने लगा । गृहस्थ भक्तों के सम्पर्क से संन्यासी बहिर्मुखी व प्रमादी बनने लगे । अब तक गृहस्थों के सामने चुने हुए योग्य संन्यासी ही आते थे, अन्य मठ या अखाड़ों में रहते थे, अत: संन्यासी मात्र पर गृहस्थ की श्रद्धा थी । अब नये साधकों को जब वही श्रद्धा भेंट पूजा मिलने लगी तो साधक का प्रमादी बनना स्वाभाविक था एवं किन्हीं गृहस्थों को अपना भक्त बनाकर वे संन्यासी मंडली से बाहर स्वतंत्र जीवन, जो सदा नैतिक भी नहीं होता था और उच्छृङ्खल तो सर्वदा होता था, व्यतीत करने लगे । इससे गृहस्थ भी अश्रद्धालु होने लगे । इन्होंने अनधिकार चेष्टापूर्वक ही नवीन संन्यासी बनाने प्रारंभ कर दिये एवं इनको देख कर व्यवस्था और भी बिगड़ने लगी । गृहस्थ व साधक संन्यासी दोनों के सम्पर्क को मिटाना आवश्यक था । यह मठ निर्माण के बिना संभव न था । अत: अगत्या पीठनायक मठाधिपति बने ।

सर्वप्रथम श्रीनिरञ्जन पीठ के तत्कालीन आचार्य ने काशी में मठ-स्थापन किया । फिर ऋषीकेश में भी स्थापना हुई । धीरे-धीरे अन्य मठ निर्माण होने लगे प्रारम्भ में कई पीठनायक मठ के नवीन कार्य में इतने संलग्न हुए कि पीठ के प्रचार कार्य की उपेक्षा होने लगी । ऐसी अवस्था में उन्हें पीठाधीश्वर के पद को त्याग करने के लिए बाध्य किया गया । नवीन कार्यो में कठिनताएँ मतभेद आदि होते ही स्वयं ही पीठाचार्य के पद छोड़ एकान्त जीवन व्यतीत करने लगे । प्रचार योग्यता, विद्या परम्परा संरक्षण योग्यता एवं व्यवस्थापकता एक ही व्यक्ति में मिलना अति दुर्लभ है । इसके साथ आदर्श आचारवान् संन्यासी भी होना, विरक्तपूर्ण हृदय तो और कठिन है । फिर भी धीरे-धीरे मठ व पीठ दोनों के कार्य चलने लगे । पीठाधीश्वर भ्रमण करते थे अत: मठों में पढ़ने की व्यवस्था अन्य संन्यासी करते थे । लेकिन योग्य प्रचारकों की आवश्यकता ने पठित संन्यासिओं को प्रचार कार्य में खींच लिया, ऐसी अवस्था में मठों में ही विद्यालय स्थापित हुए एवं विद्वान् पंडित ही पढ़ाने लगे । धीरे-धीरे गृहस्थ विद्यार्थिओं के पढ़ने की भी व्यवस्था की गई एवं संस्कृत विश्वविद्यालयों से सम्बन्ध स्थापित होकर परीक्षाएँ भी होने लगीं । पीठाचार्यों ने प्रचारार्थ देहली, बम्बई, अहमदाबाद आदि स्थानों में भी आश्रम स्थापित किये जहाँ नित्य सत्संग आदि की सुविधा से लाभ उठाकर आधुनिक जनता भी नास्तिकता से आस्तिकता की ओर बढ़ने लगी । इन संस्थाओं के बढ़ने से व्यवस्था का भार अत्यधिक बढ़ गया एवं योग्य व्यवस्थापकों की कमी भी खटकने लगी । पीठाचार्यों का अधिक समय व्यवस्था में व्यतीत होने लगा एवं प्रचार कार्य की शिथिलता से प्रचार की व्यापकता में कमी आने लगी । इसलिए एवं अन्य कई कारणों से पीठाध्यक्ष एवं पीठ के कार्यकर्ताओं ने पीठ के अन्तर्गत अन्य भी आधिकारिक प्रचारक बनाने का निश्चय किया । अत: पीठाधीश्वरों से अतिरिक्त भी 'मण्डलेश्वर' शब्द केवल आधिकारिक चुने हुए प्रचारक को द्योतित करने लगा । धीरे-धीरे सभी योग्य प्रचारक इस पद पर आने लगे । कई अन्य विद्वान् संन्यासी स्वतन्त्र प्रचारक बनकर कार्य करने लगे । इन सभी ने वैदिक सिद्धान्त की रक्षा में पूर्ण

सहयोग दिया हैं यह नि:सन्दिग्ध है इनके सहयोग एवं प्रचार में ही आज भी वैदिक धर्म सुरक्षित है। आधुनिक भौतिकवाद एवं अनीश्वरवाद के प्रचार से सनातन धर्म की रक्षा इसी संगठन से हो सकती है। लेकिन क्या आज के क्रान्तिकालीन परिस्थिति से ये अनादि परम्परा बच सकेगी ? कौन कह सकता है। भविष्य ही निर्णय कर सकेगा।

श्रीनिरञ्जनपीठ

उपर्युक्त पीठों में श्री निरञ्जनपीठ भी एक अति प्राचीन पीठ है एवं स्वामी कार्तिकेय की उपासना की इसमें प्रधानता है। इस पीठ की विशेषता रही है कि प्राचीन परम्पराओं का इसमें पालन पूर्णरूप से रहा है। पीठ के इष्टदेव की कृपा से इसके पीठाधीश्वर अपने समय के योग्यतम विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ परमत्यागी व तपस्वी रहते आए है। इस पीठ के व्यवस्थापक महन्त लोग भी योग्यतम, त्यागी एवं कुशल व्यक्ति रहे हैं। अत: संन्यासी सम्प्रदाय में इस पीठ का विशेष आदर व सम्मान है उपर्युक्त ऐतिहासिक परिवर्तनों में से यह पीठ उज्ज्वल-रत्नवत् चमकता हुआ निकला है एवं अपने आदर्शों को अक्षुण्ण रखते हुए अन्य पीठों के लिए आज भी स्पर्धा का विषय बना हुआ है। इसके पीठाधीश्वर काशी में श्री दक्षिणामूर्ति मठ श्री दक्षिणामूर्ति संस्कृत महाविद्यालय, श्री ध्रुवेश्वर मठ, श्री नन्दिकेश्वर मठ एवं देहली में श्री संन्यास आश्रम, श्री विश्वनाथ संस्कृत महाविद्यालय आदि का कार्य संचालन करते हैं। जहाँ शताधिक संन्यासी-विद्यार्थी लाभ उठाते हैं। श्री दक्षिणामूर्ति मठ का अपना अलग एक साम्प्रदायिक महत्व है एवं इसकी विद्या परम्परा अनाद्यनवच्छिन्न गुरु परम्परा से प्राप्त है और इसकी उपासना पद्धति गूढ एवं प्राचीन है। इसकी परम्परा से विद्वत्समुदाय सम्बन्धित रहा है। इसका प्रमाणपुर:सर विवेचन स्थानाभाव से अशक्य है।

इस पीठ के आधुनिक आचार्यों में श्री १०८ नृसिंहगिरि जी महाराज महामण्डलेश्वर ने पीठोन्नति के लिए समधिक परिश्रम किया है। आप वेदान्तशास्त्र के उद्भट विद्वान् ही नहीं वेदान्त के गूढ तत्वों को सरल भाषा में जनता के सामने सुबोध रूप से प्रस्तुत करने में साक्षात् बृहस्पति के समान है। आपने अपने २४ वर्ष के पीठाधीश्वर काल में न केवल काशी में संस्कृत विद्यालय स्थापित किया बल्कि भारत की राजधानी देहली में सांस्कृतिक व आध्यात्मिक केन्द्र संन्यास आश्रम व श्रीविश्वनाथ संस्कृत महाविद्यालय स्थापित कर धर्म व राष्ट्र की अभूतपूर्व सेवा की है। आपके शिष्यों में से अनेक मण्डलेश्वर पदों पर हैं एवं अनेक धर्म प्रचार के कार्य में रत हैं। आपने अपने निरन्तर धर्म प्रचार से बीकानेर-लाहौर, देहली, अमृतसर, नापासर आदि नगरों में धार्मिक जागृति उत्पन्न कर उत्पथ में जाने वालों को सत्पथ में लगाया। यद्यपि अब आपने सक्रिय पद का त्याग कर दिया है फिर भी अनवरत मार्गदर्शन द्वारा अब भी पीठ की उन्नति के लिए आप क्रियाशील हैं। आपका आचार शास्त्र संन्यासी समाज के लिए एक श्रद्धा और आदर्श का विषय रहा है व विशृंखला के प्रसार को रोकने में आप एक बहुत बड़ी

शृंखला रहे हैं। आपका परमवैराग्यमय जीवन एवं तपो-निष्ठा अश्रद्धालु के हृदय में भी श्रद्धा भरती है। अत: इस वचनामृत में आपके उपदेशों का सार जैसा है वैसा रखने का प्रयत्न किया गया है। प्रयत्न उस परमेश्वर का ही है व फल भी उसी का है। शिष्य का कर्तव्य तो गुरु सेवा मात्र है।

- ब्रह्मीभूत श्री १०८ निरञ्जनी अखाड़ा आचार्य महामण्डलेश्वर श्री स्वामी महेशानन्द गिरि जी महाराज, श्री दक्षिणा मूर्ति मठ, वाराणसी। (लेखन समय- वर्ष-१९५७)

आद्यजगद्गुरुश्रीशंकराचार्यविरचित:

।। मठाम्नाय: ।।

प्रथम: शारदापीठ:

प्रथम: पश्चिमाम्नाय: शारदामठ उच्यते । कीटवार: सम्प्रदायस्तस्य तीर्थाश्रमौ पदे ।।१।।
द्वारकाख्यं हि क्षेत्रं स्याद् देव: सिद्धेश्वर: स्मृत: । भद्रकाली तु देवी स्यादाचार्यो विश्वरूपक: ।।२।।
गोमतीतीर्थममलं ब्रह्मचारी स्वरूपक: । सामवेदस्य वक्ता च तत्र धर्मं समाचरेत् ।।३।।
जीवात्मपरमात्मैक्यबोधो यत्र भविष्यति। तत्त्वमसि महावाक्यं गोत्रोऽविगत उच्यते ।।४।।
सिन्धु-सौवीर-सौराष्ट्र-महाराष्ट्रास्तथान्तरा:। देशा: पश्चिमदिक्स्था ये शारदामठभागिन: ।।५।।
त्रिवेणी-सङ्गमे तीर्थे तत्त्वमस्यादि-लक्षणे। स्नायात्तत्त्वार्थ-भावेन तीर्थनाम्ना स उच्यते ।।६।।
आश्रम-ग्रहणे प्रौढ आशापाश-विवर्जित:। यातायात-विनिर्मुक्त एव (ह्य) आश्रम उच्यते ।।७।।
कीटादयो विशेषेण वार्यन्ते यत्र जन्तव:। भूतानुकम्पया नित्यं कीटवार: स उच्यते ।।८।।
स्व-स्वरूपं विजानाति स्वधर्म-परिपालक:। स्वानन्दे क्रीडते नित्यं स्वरूपो बटुरुच्यते ।।९।।

द्वितीयो गोवर्धनपीठ:

पूर्वाम्नायो द्वितीय: स्याद् गोवर्धनमठ: स्मृत:। भोगवार: सम्प्रदायो वनारण्ये पदे स्मृते ।।१०।।
पुरुषोत्तमं तु क्षेत्रं स्याज्जगन्नाथोऽस्य देवता । विमलाख्या हि देवी स्यादाचार्य: पद्मपादक: ।।११।।
तीर्थं महोदधि: प्रोक्तं ब्रह्मचारी प्रकाशक:। महावाक्यं च तत्र स्यात् प्रज्ञानं ब्रह्म चोच्यते ।।१२।।
ऋग्वेदपठनं चैव काश्यपो गोत्रमुच्यते । अङ्गबङ्गकलिङ्गाश्च मगधोत्कलबर्बरा: । गोवर्धनमठाधिना देशा: प्राचीव्यवस्थिता: ।।१३।।
सुरम्ये निर्जने स्थाने वने वासं करोति य: । आशाबन्धविनिर्मुक्तो वननामा स उच्यते ।।१४।।
अरण्ये संस्थितो नित्यमानन्दे नन्दने वने । त्यक्त्वा सर्वमिदं विश्वमरण्यं परिकीर्त्यते ।।१५।।
भोगो विषय इत्युक्तो वार्यते येन जीविनाम् । सम्प्रदायो यतीनाञ्च भोगवार: स उच्यते ।।१६।।
स्वयंज्योतिर्विजानाति योगयुक्तिविशारद:। तत्त्वज्ञानप्रकाशेन तेन प्रोक्त: प्रकाशक: ।।१७।।

तृतीय: ज्योतिष्पीठ:

तृतीयस्तूत्तराम्नायो ज्योतिर्नाम मठो भवेत् । श्रीमठश्चेति वा तस्य नामान्तरमुदीरितम् ।।१८।।

आनन्दवारो विज्ञेयः सम्प्रदायोऽस्य सिद्धिदः। पदानि तस्य ख्यातानि गिरिपर्वतसागराः ।।१९।।
बदरीकाश्रमं क्षेत्रं देवो नारायणः स्मृतः। पूर्णागिरिश्च देवी स्यादाचार्यस्तोटकः स्मृतः ।।२०।।
तीर्थं चालकनन्दाख्यमानन्दो ब्रह्मचार्यभूत् । अयमात्मा ब्रह्म चेति महावाक्यमुदाहृतम् ।।२१।।
अथर्ववेद-प्रवक्ता च भृग्वाख्यं गोत्रमुच्यते । कुरुकश्मीर-काम्बोज-पाञ्चालादिविभागतः ।
ज्योतिर्मठवशा देशा उदीचीदिगवस्थिताः ।।२२।।
वासो गिरिवने नित्यं गीताध्यान-तत्परः। गम्भीराचलबुद्धिश्च गिरिनामा स उच्यते ।।२३।।
वसन् पर्वतमूलेषु प्रौढं ज्ञानं बिभर्ति यः। सारासारं विजानाति पर्वतः परिकीर्त्यतेः ।।२४।।
तत्त्वसागर - गम्भीरज्ञानरत्न - परिग्रहः। मर्यादां वै न लङ्घ्येत सागरः परिकीर्त्यते ।।२५।।
आनन्दो हि विलासश्च वार्यते येन जीविनाम्। सम्प्रदायो यतीनां चानन्दवारः स उच्यते ।।२६।।
सत्यं ज्ञानमनन्तं यो नित्यं ध्यायेत तत्त्ववित् । स्वानन्दे रमते चैव आनन्दः परिकीर्त्यते ।।२७।।

चतुर्थः श्रृङ्गेरीपीठः

चतुर्थो दक्षिणाम्नायः श्रृङ्गेरी तु मठो भवेत् । सम्प्रदायो भूरिवारो भुर्भुवो गोत्रमुच्यते ।।२८।।
पदानि त्रीणि ख्यातानि सरस्वती भारती पुरी । रामेश्वराह्वयं क्षेत्रमादिवाराहो देवता ।।२९।।
कामाक्षी तस्य देवी स्यात् सर्वकामफलप्रदा । हस्तामलक आचार्यस्तुङ्गभद्रेति तीर्थकम् ।।३०।।
चैतन्याख्यो ब्रह्मचारी यजुर्वेदस्य पाठकः। अहं ब्रह्मास्मि तत्रैव महावाक्यं समीरितम् ।।३१।।
आन्ध्र - द्रविड -कर्णाट-केरलादिप्रभेदतः। श्रृङ्गेर्यधीना देशास्ते ह्यवाचीदिगवस्थिताः ।।३२।।
स्वरज्ञानरतो नित्यं स्वरवादी कवीश्वरः। संसारसागरासार-हन्ताऽसौ हि सरस्वती ।।३३।।
विद्याभरेण सम्पूर्णः सर्वभारं परित्यजन् । दुःखभारं न जानाति भारती परिकीर्त्यते ।।३४।।
ज्ञानतत्त्वेन सम्पूर्णः पूर्णतत्त्वपदे स्थितः। परब्रह्मरतो नित्यं पुरीनामा स उच्यते ।।३५।।
भूरिशब्देन सौवर्ण्यं वार्यते येन जीविनाम् । सम्प्रदायो यतीनां च भूरिवारः स उच्यते ।।३६।।
चिन्मात्रं चैत्यरहितमन्तमजरं शिवम् । यो जानाति स वै विद्वान् चैतन्यं तद्विधीयते ।।३७।।
मर्यादैषा सुविज्ञेया चतुर्मठविद्यायिनी । तामेतां समुपाश्रित्याचार्याः स्थापिता क्रमशः ।।३८।।

आद्यश्रीशङ्कराचार्य द्वारा पश्चिम दिशा में वैदिक धर्म-दर्शन (आम्नाय) के प्रचार-प्रसार के लिये स्थापित पहला पीठ शारदामठ है । इसका कीटवार सम्प्रदाय है । तीर्थ और आश्रम- इसके संन्यासियों के पद-योगपट्ट हैं ।१। इसके क्षेत्र का नाम द्वारका, देवता सिद्धेश्वर, देवी भद्रकाली हैं तथा आचार्य विश्वरूप (सुरेश्वराचार्य) हैं ।२। निर्मल तीर्थ गोमती है, यहाँ स्वरूप नामक ब्रह्मचारी सामवेद का वक्ता है, वह वहाँ धर्म का पालन करे ।३। इस आम्नाय का महावाक्य 'तत्त्वमसि' है - जिसका उल्लेख सामवेदान्तर्गत 'छान्दोग्य उपनिषद्' ६/८ में है । यह जीवात्मा और परमात्मा के अभेद का बोध कराता है, मठ का गौत्र अविगत है ।४। सिन्धु, सौवीर-कच्छ, सौराष्ट्र-काठियावाड़, महाराष्ट्र और इसके मध्यवर्ती भारत के पश्चिम दिशा में स्थित प्रदेश शारदामठ की अधिकार सीमा में है ।५। जो तत् त्वम् असि इन तीन पदात्मक महावाक्य रूपी त्रिवेणी-संगम में तीर्थ की भावना से स्नान करता है अर्थात्

तत् त्वम् पदों का शोधन करके महावाक्य के लक्ष्य अर्थ के चिन्तन में तल्लीन रहने वाला 'तीर्थ' नाम से कहा जाता है ।६। संन्यासाश्रम में दृढ, आशा के बन्धन से रहित आवागमन से मुक्त संन्यासी ही आश्रम कहा जाता है ।७। जिसमें प्राणियों पर दया के कारण कीट आदि जन्तुओं को प्राण हानि से बचा दिया जाता है, वह सम्प्रदाय कीटवार है ।८। जो अपने स्वरूप को भलिभाँति पहचानता है, स्वधर्मपालन करते हुए आत्मानन्द में नित्य क्रीडा करता है, वह ब्रह्मचारी स्वरूप कहलाता है ।९।

दूसरा आम्नाय पूर्व दिशा को गोवर्धन मठ है । सम्प्रदाय भोगवार, वन और अरण्य इसके संन्यासियों के पद-योगपट्ट हैं ।१०। क्षेत्र पुरुषोत्तम, देवता जगन्नाथ, देवी विमला तथा आचार्य पद्मपाद हैं ।११। तीर्थ महोदधि और ब्रह्मचारी प्रकाश हैं । यहाँ का महावाक्य 'प्रज्ञानं ब्रह्म'' (ऐत०उ०५/३) है ।१२। इस मठ के ब्रह्मचारी के लिए ऋग्वेद का स्वाध्याय है । गौत्र कश्यप है और अंग भागलपुर, बंग-बंगाल, कलिङ्ग-दक्षिण पूर्व भारत, मगध, उत्कल-उड़िसा और बर्बर-जांगल प्रदेश इसकी सीमा हैं ।१३। जो रमणीय एकान्त वन में निवास करे और आशा के बन्धनों से मुक्त है, वह संन्यासी वन नाम से कहा गया ।१४। जो इस समस्त विश्व को छोड़ आनन्ददायक नन्दन वन में रहे वह अरण्यनामा है ।१५। भोग को विषय कहा गया है । जिसके द्वारा प्राणियों को भोगों से दूर किया जाय वह भोगवार सम्प्रदाय है ।१६। जो स्वयं ज्योति:स्वरूप आत्मा को जाने व योग साधना में निपुण तथा तत्त्वज्ञान प्रकाश से युक्त हो, उसे प्रकाश ब्रह्मचारी कहा जाता है ।१७।

तीसरा आम्नाय उत्तर दिशा में है जिसे ज्योतिर्मठ या श्रीमठ कहते हैं ।१८। इसके सिद्धिदाता सम्प्रदाय को आनन्दवार कहा जाता है । इसके संन्यासियों के योगपट्ट गिरि, पर्वत व सागर हैं ।१९। इसका क्षेत्र बदरिकाश्रम, भगवान् नारायण देवता, पूर्णागिरि देवी तथा तोटकाचार्य आचार्य हैं ।२०। तीर्थ का नाम अलकनन्दा, इस मठ का ब्रह्मचारी आनन्द तथा माण्डूक्योपनिषद् का महावाक्य 'अयमात्मा ब्रह्मा' है ।२१। आनन्द नामक ब्रह्मचारी अथर्ववेद का प्रवक्ता, गोत्र भृगु है और कुरु-हस्तिनापुर, कुरुक्षेत्र, कश्मीर, काम्बोज-हरियाणा, पश्चिमोत्तर उत्तर प्रदेश, पांचाल-पंजाब तथा उत्तर दिशा के सभी प्रदेश इसकी सीमा में आते हैं ।२२। पर्वतों-वनों में जिसका नित्य निवास हो, जो निरन्तर गीता के ध्यान में संलग्न हो तथा जिसकी बुद्धि गम्भीर और निश्चल हो, उसे गिरिनामा संन्यासी कहा जाता है ।२३। जो पर्वतों के मूल अर्थात् उपत्यका में निवास करता हो, जिसका ज्ञान दृढ़ हो चुका हो, जो सार व असार को विशेष रूप से जानता हो वह पर्वत नामक संन्यासी कहा जाता है ।२४। जो तत्त्वों के गहरे समुद्र से ज्ञान रूपी रत्न ग्रहण करे और सागर की भाँति निर्धारित मर्यादा का निश्चित ही उल्लंघन नहीं करता, वह संन्यासी सागर नाम से कहा जाता है ।२५। जो संसार के प्राणियों को विषयानन्द और भोग-विलास से विमुख करे, संन्यासियों का वह सम्प्रदाय आनन्दवार होता है ।२६। अनन्त सत्य, ज्ञान तथा ब्रह्मा का नित्य चिन्तन करने वाला, आत्मा के आनन्द में निरन्तर रमण करने वाला ब्रह्मचारी आनन्द होता है ।२७।

चौथा दक्षिण दिशा में अवस्थित आम्नाय है, मठ का नाम शृंङ्गेरी है, सम्प्रदाय भूरिवार है तथा इसका गोत्र भुर्भूवः है ।२८। दक्षिणाम्नाय की तीन उपाधियाँ-योगपट्ट हैं - सरस्वती, भारती और पुरी। रामेश्वर नामक क्षेत्र है तथा भगवान् आदिवाराह इसके देवता हैं ।२९। इस मठ की देवी कामाक्षा हैं जो प्रत्येक प्रकार की कामना को सफल करती हे । आचार्य हस्तामलक हैं तथा तीर्थ है तुङ्गभद्रा ।३०। इस आम्नाय का ब्रह्मचारी चैतन्यनामा होता है जो यजुर्वेद का स्वाध्यायी है । इसका ही महावाक्य 'अहं ब्रह्मास्मि' कहा गया है ।३१। आन्ध्र, द्रविड़, कर्णाटक, केरल आदि विभिन्न देश जो दक्षिण दिशा में अवस्थित हैं वे सभी शृङ्गेरी मठ की सीमा के अन्तर्गत आते हैं ।३२। निरन्तर स्वर श्वास-प्रश्वास-प्राणायाम सम्बन्धी ज्ञान में रत, स्वर सहित वेदवाचन में सक्षम, क्रान्तदर्शियों में श्रेष्ठ तथा तथा संसार रूपी समुद्र के अनवरत प्रसार को अवरुद्ध करने वाला संन्यासी 'सरस्वती' है ।३३। विद्या की राशि से पूर्ण, समस्त संसारिक सभी पुत्रादि भारों का त्याग करने वाला, दुःख के भार को न जानने वाला संन्यासी 'भारती' कहा जाता है ।३४। जो ज्ञान के तत्त्व से परिपूर्ण- तत्त्व पद कूटस्थ चैतन्य में स्थित है एवं नित्य परमब्रह्म में प्रतिष्ठित है, वह संन्यासी 'पुरी' नाम से कहा जाता है ।३५। जो भूरि शब्द से वाच्य सुवर्णादि सम्पत्तियों के संग्रह से प्राणियों को अलग करता है अर्थात् वैराग्य की ओर ले जाता है संन्यासियों का वह सम्प्रदाय 'भूरिवार' कहा जाता है ।३६। चित् विकारों सुख-दुःख आदि से अलिप्त, अनन्त, अजर एवं शिव, चित्स्वरूप ब्रह्म को जो जानता है, वह विद्वान् है, उसके लिए 'चैतन्य' नाम विहित है ।३७। चारों मठों की विधान करने वाली इस व्यवस्था को भलीभाँति समझना चाहिये । इसी अवस्था का आधार लेकर चारों पीठों में क्रमशः आचार्य स्थापित किए गये हैं ।।३८।।

प्रथम- जगद्गुरु श्री शंकराचार्य श्रीद्वारकामठ विवरण -

मठ नाम	-	श्रीशारदा (द्वारका) मठ
सम्प्रदाय	-	कीटवार
नाम योगपट्ट	-	तीर्थ और आश्रम
स्थापना क्षेत्र	-	द्वारिका
देवता	-	सिद्धेश्वर
देवी	-	भद्रकाली
आचार्य	-	श्रीविश्वरूप (श्रीसुरेश्वराचार्य)
तीर्थ	-	गोमती
ब्रह्मचारी	-	स्वरूप
वेद	-	सामवेद

महावाक्य	-	तत्त्वमसि
गोत्र	-	अविगत
प्रचार क्षेत्र	-	सिन्धु, सौवीर (कक्ष) सौराष्ट्र, काठियावाड़

द्वितीय- जगद्गुरु श्री शंकराचार्य श्री गोवर्धन मठ विवरण-

मठ नाम	-	श्री गोवर्धन मठ
सम्प्रदाय	-	भोगवार
नाम योगपट्ट	-	वन, अरण्य
स्थापना क्षेत्र	-	पुरुषोत्तम
देवता	-	श्रीजगन्नाथ
देवी	-	विमला
आचार्य	-	पद्मपाद
तीर्थ	-	महोदधि
ब्रह्मचारी	-	प्रकाश
वेद	-	ऋग्वेद
महावाक्य	-	प्रज्ञानं ब्रह्म
गोत्र	-	कश्यप
प्रचार क्षेत्र	-	अंग (भागलपुर) बंग (बंगाल), कलिंग (दक्षिण पूर्व भारत) मगध, उत्कल (उड़ीसा), बर्बर (जांगल प्रदेश)

तृतीय- जगद्गुरु श्री शंकराचार्य श्री ज्योतिर्मठ विवरण-

मठ नाम	-	श्रीज्योर्तिमठ या श्री श्रीमठ
सम्प्रदाय	-	आनन्दवार
नाम योगपट्ट	-	गिरि, पर्वत, सागर
स्थापना क्षेत्र	-	बद्रिकाश्रम
देवता	-	भगवान् नारायण
देवी	-	पूर्णागिरि
आचार्य	-	तोटकाचार्य

तीर्थ	-	अलकनन्दा
ब्रह्मचारी	-	आनन्द
वेद	-	अथर्ववेद
महावाक्य	-	अयमात्मा ब्रह्म
गोत्र	-	भृगु
प्रचार क्षेत्र	-	कुरुक्षेत्र, हस्तिनापुर, कश्मीर, हरियाणा, पश्चिम उत्तर प्रदेश, पंजाब, उत्तर दिशा के सभी प्रदेश

चतुर्थ- जगद्गुरु श्री शंकराचार्य श्री शृंगेरीमठ विवरण-

मठ नाम	-	श्री शृंगेरी मठ
सम्प्रदाय	-	भूरिवार
नाम योगपट्ट	-	सरस्वती, भारती, पुरी
स्थापना क्षेत्र	-	रामेश्वर
देवता	-	आदिवाराह
देवी	-	कामाक्षी
आचार्य	-	हस्तामलक
तीर्थ	-	तुंगभद्रा
ब्रह्मचारी	-	चंतन्य
वेद	-	यजुर्वेद
महावाक्य	-	अहं ब्रह्मास्मि
गोत्र	-	भूर्भुवः
प्रचार क्षेत्र	-	आन्ध्र, द्रविड, कर्नाटक, केरल

।। शेषाम्नायाः ।।

अथोर्ध्वं शेषा आम्नायास्ते विज्ञानैकविग्रहाः। पञ्चमस्तूर्ध्वमाम्नायः सुमेरुमठ उच्यते । सम्प्रदायोऽस्य काशी स्यात् सत्यज्ञानाभिधे पदे ।।३९।।
कैलासः क्षेत्रमित्युक्तं देवताऽस्य निरञ्जनः । देवी माया तथाचार्य ईश्वरोऽस्य प्रकीर्तितः ।।४०।।
तीर्थं तु मानसं प्रोक्तं ब्रह्मतत्त्वावगाहि तत् । तत्र संयोगमात्रेण सन्यासं समुपाश्रयेत् ।।४१।।
सूक्ष्मवेदस्य वक्ता च तत्र धर्मं समाचरेत् । षष्ठः स्वात्माख्य आम्नायः परमात्मा मठो महान् ।।४२।।
सत्त्वतोषः सम्प्रदायः पदं योगमनुस्मरेत् । नभः सरोवरं क्षेत्रं परहंसोऽस्य देवता ।।४३।।

देवी स्यान्मानसी माया आचार्यश्चेतनाह्वयः। त्रिपुटीतीर्थमुत्कृष्टं सर्वपुण्यप्रदायकम् ।।४४।।
सप्तमो निष्कलाम्नायाः सहस्त्रार्कद्युतिर्मठः । सम्प्रदायोऽस्य सच्छिष्यः श्रीगुरोः पादुके पदे ।।४५।।
तत्रानुभूतिः क्षेत्रं स्याद् विश्वरूपोऽस्य देवता । देवी चिच्छत्तिनाम्नी हि आचार्यः सद्गुरुः स्मृतः ।।४६।।
सच्दास्त्रश्रवणं तीर्थं जरामृत्युविनाशकम् । पूर्णानन्दप्रसादेन संन्यासं तत्र चाश्रयेत् ।।४७।।

इसके बाद के पीठ शेषाम्नाय हैं, उनका स्वरूप केवल भावना के लिए है अर्थात् उनकी भौतिक स्थिति नहीं है । पाँचवाँ आम्नाय ऊर्ध्वाम्नाय 'सुमेरु मठ' कहा जाता है । इसका सम्प्रदाय काशी तथा सत्य और ज्ञान नामक उपाधियाँ-योगपट्ट हैं ।३९। इसका क्षेत्र कैलाश, देवता निरञ्जन, देवी माया और आचार्य ईश्वर है ।४०। तीर्थ मानस है जो ब्रह्मतत्त्व में अवगाहन कराने वाला है । वहाँ भावना मात्र से संन्यास आश्रय लेना चाहिए ।४१। आचार्य सूक्ष्मवेद का उपदेशक है, उस क्षेत्र में भावनामय धर्म का आचारण करना चाहिए । छठा ''स्वात्मा'' नाम का आम्नाय है और महान परमात्मा मठ है ।४२। सत्त्वतोष सम्प्रदाय और उपाधि ''योग'' क्षेत्र नभः सरोवर और देवता पर हंस हैं ।४३। मानसी माया देवी हैं, चेतन आचार्य तथा श्रेष्ठ तीर्थ त्रिपुटी है ।।४४।। सातवाँ निष्कल आम्नाय जिसका मठ सहस्त्रार्कद्युति, सम्प्रदाय सच्छिष्य तथा पद-योगपट्ट गुरुपाद का है ।४५। क्षेत्र अनुभूति, देवता विश्वरूप, देवी चित्त शक्ति और आचार्य सद्गुरु है ।४६। तीर्थ इसका अच्छे शास्त्रों का श्रवण है जो जरा-मरण विनाशक है, यहाँ पूर्ण आनन्द और प्रसन्नता के साथ संन्यास लेना चाहिए ।४७।

।। महानुशासनम् ।।

आम्नायाः कथिता ह्येते यतीनां च पृथक् प्रथक् । तैः सर्वैश्चतुराचार्यैर्नियोगेन यथाक्रमम् ।।४८।।
प्रयोक्तव्याः स्वधर्मेषु शासनीयस्त्ततोऽन्यथा । कुर्वन्तु एवं सततमटनं धरीणीतले ।।४९।।
विरुद्धाचरणप्राप्तावाचार्याणां समाज्ञया । लोकान् संशीलयन्त्येव स्वधर्माप्रतिरोधतः ।।५०।।
स्व-स्वराष्ट्र प्रतिष्ठित्यै सञ्चारः सुविधीयताम्। मठे तु नियतो वास आचार्यस्य न युज्यते ।।५१।।
वर्णाश्रमसदाचारा अस्माभिर्ये प्रसाधिताः । रक्षणीयाः सदैवैते स्व-स्व-भागे यथाविधि ।।५२।।
यतो विनष्टिर्महती धर्मस्यास्य प्रजायते । मान्द्यं सन्त्याज्यमेवात्र दाक्ष्यमेव समाश्रयेत् ।।५३।।
परस्परविभागे तु न प्रवेशः कदाचन । परस्परेण कर्तव्या ह्याचार्येण व्यवस्थितिः ।।५४।।
मर्यादाया विनाशेन लुप्येरन्नियमाः शुभाः। कलहाङ्गारसम्पत्तिरतस्तां परिवर्जयेत् ।।५५।।
परिव्राडार्यमर्यादो मामकीनां यथाविधि । चतुष्पीठाधिगां सत्तां प्रयुञ्ज्याच पृथक् पृथक् ।।५६।।
शुचिर्जितेन्द्रियो वेदवेदाङ्गादिविशारदः । योगज्ञः सर्वशास्त्राणां स मदास्थानमाप्नुयात् ।।५७।।
उक्तलक्षणसम्पन्नः स्याच्चेन्मत्पीठभाग् भवेत् । अन्यथारूढपीठोऽपि निग्रहार्हो मनीषिणाम् ।।५८।।
न जातु मठमुच्छिन्द्यादधिकारिण्युपस्थिते। विघ्नानामपि बाहुल्यादेष धर्मः सनातनः ।।५९।।
अस्मत्पीठसमारूढः परिव्राडुक्तलक्षणः । अहमेवेति विज्ञेयो यस्य देव इतिश्रुतेः ।।६०।।
एक एवाभिषेच्यः स्यादन्ते लक्षणसम्मतः । तत्तत्पीठे क्रमेणैव न बहु युज्यते क्वचित् ।।६१।।
सुधन्वनः समौत्सुक्यनिवृत्यै धर्म-हेतवे । देवराजोपचारांश्च यथावदनुपालयेत् ।।६२।।
केवलं धर्ममुद्दिश्य विभवो ब्रह्मचेतसाम् । विहितश्चोपकाराय पद्मपत्रनयं व्रजेत् ।।६३।।

सुधन्वा हि महाराजस्तथान्ये च नरेश्वराः। धर्मपारम्परीमेतां पालयन्तु निरन्तरम् ।।६४।।
चातुर्वर्ण्यं यथायोग्यं वाङ्मनःकार्यकर्मभिः। गुरोः पीठं समर्चेत विभागानुक्रमेण वै ।।६५।।
धरामालम्ब्य राजानः प्रजाभ्यः करभागिनः। कृताधिकारा आचार्या धर्मतस्तद्वदेव हि ।।६६।।
धर्मो मूलं मनुष्याणां स चाचार्यावलम्बनः । तस्मादाचार्यसुमणेः शासनं सर्वतोऽधिकम् ।।६७।।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन शासनं सर्वसम्मतम् । आचार्यस्य विशेषेण ह्यौदार्यभरभागिनः ।।६८।।
आचार्याक्षिप्तदण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवाः । निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा ।।६९।।
इत्येवं मनुरप्याह गौतमोऽपि विशेषतः । विशिष्ट-शिष्टाचारोऽपि मूलादेव प्रसिद्ध्यति ।।७०।।
तानाचार्योपदेशांश्च राजदण्डांश्च पालयेत् । तस्मादाचार्यराजानावनवद्यौ न निन्दयेत् ।।७१।।
धर्मस्य पद्धतिर्ह्येषा जगतः स्थितिहेतवे । सर्ववर्णाश्रमाणां हि यथाशास्त्रं विधीयते ।।७२।।
कृते विश्वगुरुर्ब्रह्मा त्रेतायामृषिसत्तमः । द्वापरे व्यास एव स्यात् कलावत्र भवाम्यहम् ।।७३।।

संन्यासियों के ये चार आम्नाय अलग-अलग कहे गये हैं । उन में स्थापित सभी चारों आचार्यों को चाहिए कि अपने-अपने मठम्नाय की सीमा में आने वाली जनता को स्वधर्म का आचरण करायें। उससे स्वधर्माचरण से और अन्यथा आचारण करने वालों को अनुशासित करें । निरन्तर अपने क्षेत्र में भ्रमण करते रहें ।४९। जब लोगों में धर्म के विरुद्ध आचरण की प्रवृत्ति बढ़े तो तत्सम्बन्धित देश के राजाओं को चाहिए कि वे अपने मठ के आचार्यों की आज्ञा लेकर प्रजा के आचरण की परीक्षा अपने धर्म में बाधा न डालते हुए करें ।५०। अपने-अपने उपदेश क्षेत्र रूपी राष्ट्र की प्रतिष्ठा अर्थात् सुदृढ व्यवस्था हेतु आचार्य निरन्तर भ्रमण करते रहें, केवल मठ में ही बने रहना आचार्य के लिए उचित नहीं ।५१। मैंनें जिस वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था स्थिर की है उसे अपने-अपने क्षेत्र में सदा यथावत् सुरक्षित रखना चाहिए ।५२। यदि आचार्य अपने-अपने क्षेत्र में भ्रमण न करें तो उपदेश के अभाव में इस वर्णाश्रम धर्म की अत्यन्त क्षति होने लगती है । अत: आचार्य को मन्दता का परित्याग करना ही चाहिए तथा कौशल सक्रियता का आश्रय लेना ही चाहिए । अर्थात् कुशलतापूर्वक अपने धर्म की रक्षा करनी चाहिए । ।५३। आचार्य को चाहिए कि वह एक दूसरे के क्षेत्र में प्रवेश न करें । आवश्यकता पड़ने पर पारस्परिक विचार-विनियम द्वारा व्यवस्था कर लें ।५४। मठों की मर्यादा नष्ट हो जाने पर कल्याणकारी नियम भी लुप्त हो जाते हैं परस्पर कलह की ज्वाला भड़कने लगती है । अत: इस कलह रूपी अग्नि के फैलाव से बचना चाहिए ।५५। शुद्ध मर्यादा वाला संन्यासी चारों पीठों की सत्ता का नियमानुसार अर्थात् तत्तत मठ से सम्बन्धित विधानों के अनुसार अलग-अलग प्रयोग करें ।।५६। इससे एक ही आचार्य चारों पीठों पर भी रह सकता है जो पवित्र जितेन्द्रिय, वेद तथा अनेक अङ्गों- शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्द और ज्योतिष में पारंगत हो और सभी शास्त्रों इतिहास, पुराण तथा शास्त्रीय उपाख्यान में समन्वय की बुद्धि रखने वाला हो, वह मेरी पीठ का अधिकारी हो ।५७। यदि ऊपर बतलाए गये लक्षणों से युक्त व्यक्ति हो तभी वह मेरी पीठ का अधिकारी हो सकता है अन्यथा पीठारूढ़ हो जाने पर भी मनीषियों के द्वारा पीठ से हटा दिया जाये ।५८। योग्य अधिकारी के उपस्थित

रहते मठ-परम्परा का उच्छेद कभी नहीं करना चाहिए । चाहे विघ्नों की बहुलता भी हो ।५९। उपरोक्त लक्षणों से सम्पन्न संन्यासी मेरी पीठ पर आसीन हो तो उसे मेरा ही स्वरूप समझना चाहिए उसे मैं शंकराचार्य ही हूँ ऐसा क्योंकि -

''यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ । तस्येते कथिता ह्यर्था प्रकाशन्ते महात्मन।।''

(श्वेताश्वतरोपनिषद् अ० ६/२३) इत्यादि श्रुति प्रमाण है ।६०।

अत: शङ्कराचार्य की किसी भी पीठ पर आसीन संन्यासी शङ्कर भगवत्पाद का साक्षात् स्वरूप होता है, उसके प्रति पूर्ण निष्ठा प्रत्येक सनातन धर्मानुयायी में होनी चाहिए । शङ्कर भगवान्, आद्यशङ्कराचार्य भगवत्पाद तथा चारों पीठों के आचार्यों में अभेद बुद्धि रखे ।

आचार्य के ब्रह्मलीन होने पर पूर्वोक्त लक्षणों से सम्पन्न एक ही आचार्य का अभिषेक सम्बद्ध पीठों पर तत्तत् पीठ की मर्यादा के अनुसार एक-एक का करना चाहिए । एक से अधिक आचार्य एक ही पीठ पर उचित नहीं है ।६१। सम्राट् सुधन्वा की उत्कण्ठा की शान्ति तथा धर्म की रक्षा के लिए शंकराचार्यों को चाहिए कि वे देवराज इन्द्र की भाँति ही समस्त उपचारों, राज चिह्नों, छत्र, चामर, सिंहासन आदि को यथावत् धारण करें ।६२। धर्म से बहिर्मुख हुए लोगों को धर्म के पथ पर लाने के लिए तथा परोपकार की भावना से ही ब्रह्मनिष्ठ आचार्यों के लिए ऐसे वैभव का विधान है । अत: उक्त चिह्नों का प्रयोग कमल के पत्र की बिन्दु के न्याय से करें । अर्थात् - पीठाधीश्वरों को वैभव को धारण करते हुए भी उनसे निर्लिप्त रहना चाहिए ।६३। सम्राट् सुधन्वा एवं आगे आने वाले अन्य सभी नरेश धर्म की इस परम्परा का निरन्तर पालन करें ।६४। चारों वर्णों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की जनता को चाहिए कि मनसा, वाचा, कर्मणा अपने-अपने सम्बन्धित गुरु-पीठों की पूजा करें ।६५। जिस प्रकार अधिकार सम्पन्न राजा अपनी प्रजा से षष्ठांश कर लेने का अधिकारी है, उसी प्रकार अधिकार प्राप्त किए हुए पीठाधीश्वर भी धर्मानुसार कर ग्रहण करने के अधिकारी हैं ।६६। मनुष्य का मूल धर्म है, वह आचार्य पर निर्भर है, इसलिए आचार्यरूपी अनमोल मणि का शासन सर्वोपरि है।६७। अत: सर्वतोभावेन उदारता सम्पन्न आचार्य का शासन विशेष रूप से सभी को मानना चाहिए ।६८। मनुष्य पाप कर्म करके आचार्य द्वारा निर्धारित दण्ड-प्रायश्चित भोगकर शुद्ध हो जाते हैं तथा पुण्यात्माओं की भाँति स्वर्ग जाते हैं ।६९। सभी प्रकार मनु ने तथा विशेष कर गौतम ने भी अपनी-अपनी स्मृतियों में कहा है कि मूल वेद से ही विशेष प्रकार के शिष्टाचारों की सिद्धि होती है ।७०। आचार्यों के उन उपदेशों तथा राजा द्वारा दिए गए दण्ड को लोगों को स्वीकार करना चाहिए । अत: आचार्य और राजा दोनों ही शुद्ध और पवित्र है । उनकी निन्दा कभी नहीं करनी चाहिए ।७१। संसार की रक्षा के कारण धर्म का यह मार्ग सभी वर्णों तथा आश्रमों के लोगों के लिए शास्त्र की मर्यादा के अनुसार निर्धारित किया गया है ।७२। सतयुग में ब्रह्मा, त्रेता में मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ, द्वापर में वेदव्यास तथा कलियुग में मैं शङ्कराचार्य जगद्गुरु हूँ ।।७३।।

(संस्कृत एवं हिन्दी अनुवाद डॉ० कामेश्वरनाथ मिश्र, वाराणसी द्वारा प्रकाशित मठाम्नायमहानुशासनम् से लिया गया है, सधन्यवाद)

महाराज सुधन्वा की ताम्रपत्र-विज्ञप्ति -

श्रीमहाकालनाथाय नमः । श्रीमहाकाल्यै नमः । श्रीमत्सदाशिवापरावतारमूर्तिचतुष्षष्टिकला-विलासविहारमूर्तिबौद्धादिसर्ववादिदानवनृसिंहमूर्तिवर्णाश्रमवैदिकसिद्धान्तोद्धारकमूर्तिमामकीनसाम्राज्य-व्यवस्थापनामूर्तिविश्वेश्वरविश्वगुरुपदजगज्जेगीयमानमूर्तिनिखिलयोगिचक्रवर्तिश्रीमच्छङ्करभगवत्पादपद्मयोः भ्रमरायमाणसुधन्वनो मम सोमवंशचूडामणियुधिष्ठरपारम्पर्यपरिप्राप्तभारतवर्षस्याञ्जलिबन्धपूर्विकेयं राजन्यस्य विज्ञप्तिः ।

भगवद्भिर्दिग्विजयोऽकारि । सर्वे वादिनः पराकृताः । सर्वे वर्णा आश्रमाश्च कृतयुगवत्पूर्णे वैदिकाध्वनिनियोजिताः सन्तो यथा शास्त्रमाचरन्ति हि धर्मम् । ब्रह्मविष्णुमहेश्वरमहेश्वरीस्थानान्यशेष-देशवर्त्तीन्युद्धृतानि । सर्वं ब्रह्मकुलमुद्धारितम् । विशिष्यास्मद्राज्यकुलमान्वीक्षिक्याद्यशेषराजतन्त्रपरिशीलनेनोन्नीतं भवति । ब्रह्मक्षत्राद्यस्मत्प्रमुखनिखिलविनयलोकसम्प्रार्थनया चतस्रो धर्मराजधान्यो जगन्नाथ-बदरी-द्वारका-शृङ्गर्षिक्षेत्रेषु भोगवर्धनज्योतिश्शारदाशृङ्गेरीमठापरसंज्ञकाः संस्थापिताः । तत्रोत्तरदिशो योगिजनप्राधान्येन धर्ममर्यादारक्षणं सुकुरमेवेति ज्योतिर्मठे श्रीतोटकापरनाम्नः प्रतर्दनाचार्यानथ शृङ्गेर्याश्रमे शृङ्गर्षिसम-स्वभावान्पृथ्वीधाराभिधेयहस्तामलकचार्यान् भोगवर्धने स्वत एवाभिमतत्त्वेनात्यन्तोग्रस्वभावानपि सर्वज्ञ-कल्पपद्मपादापरनामसनन्दनाचार्यानथ बौद्धकापालिकादिसकलवादिभूयिष्ठपश्चिमस्यां दिशि वादिदैत्याङ्कुरः पुनर्मा भवत्विति शारदापीठे किल द्वारकायां जैनैरुत्सादितवज्रनाभनिर्मितभगवदालयादिदुर्दशां दूरीकृत्य भगवद्भिस्त्रिलोकसुन्दरनाम्ना पुनस्सन्निबद्धभगवदालयश्रीकृष्णादिसकलमर्यादासुसंस्कृतायामधिगताशेषलौकिक-वैदिकतन्त्रविश्वविख्यातकीर्तिसर्वज्ञानमयान्विश्वरूपापरनामसुरेश्वराचार्यांश्चास्मत्सर्वलोकाभिमतिपूर्वकमभिषिच्यैवं चतुर्भ्य आचार्य्येभ्यश्चतस्रो दिश आदिष्टा भारतवर्षस्य। त एते तत्तत्पीठप्रणाल्या निजनिजमेव मण्डलं गोपायन्तो वैदिकमार्गमुद्भासयन्तु । सर्वे वयं तत्तन्मण्डलस्था ब्रह्मक्षत्रादयस्तत्तन्मण्डलस्यैवाचार्यस्याधि-काराधिकृता वर्तिष्यामहे च । महद्विनिर्णयप्रसक्तौ तु सुरेश्वराचार्य्या एवोक्तलक्षणतः सर्वत्रैव व्यवस्थापका भवन्तु भगवतामनुशासनाच्च । अस्मद्राजसत्तेव निरंकुशगुरुसत्ताप्युक्तमर्यादया जगत्यविचलं विचलतु । परिव्राजको हि महाकुलीनत्ववैदुष्यादिविशिष्टाचार्यलक्षणैरन्वित एव श्रीभगवत्पादपीठानामधिकारमर्हति न तु विनिमयेनेत्येवमादिनियमबन्धे भगवदाज्ञासमवबुद्धस्समस्तैरथास्मदादिब्रह्मक्षत्रादिवंशोद्भवैः परमप्रेम्णोत्तमाङ्गेनाद्रियत इत्येतां विज्ञप्तिमङ्गीकुर्वन्तु भगवन्त इति । स्वस्त्यस्तु लोकेभ्यः । युधिष्ठिरशके २६६३ आश्विनशुक्ले १५॥*

*यह उद्धरण ग्रन्थकार श्रीमद्राजराजेश्वरशङ्कराश्रमस्वामी के 'विमर्शः' पृ० २९-३१ से दिया गया है। इसका प्रकाशन वाराणसी में विक्रम सम्वत् १९५५ में हुआ था ।

महाराज सुधन्वा की ताम्रपत्र-विज्ञप्ति का हिन्दी अनुवाद -

श्रीमहाकालनाथ को नमस्कार । श्रीमहाकाली को नमस्कार श्रीमत् सदाशिव की अपरावतार मूर्ति, चौसठ कलाओं के विलास की विहारमूर्ति, बौद्ध आदि समस्त वादि रूप दानवों के लिए नृसिंह मूर्ति, वर्णाश्रम युक्त वैदिक सिद्धान्त की उद्धारक मूर्ति, मेरे साम्राज्य की व्यवस्थापक मूर्ति, विश्वेश्वर और जगद्गुरु के पद से संसार द्वारा गेयमूर्ति, सम्पूर्ण योगियों के चक्रवर्ती श्रीमत् शंकर भगवत्पाद के पादपद्मों के भ्रमर मुझ राजा सुधन्वा की, जिसे सोमवंश चूडामणि युधिष्ठिर की परम्परा से भारत वर्ष की राजसत्ता प्राप्त है, करबद्ध विज्ञप्ति ।

भगवत् ने दिग्विजय कर लिया है । सभी वादियों को पराजित कर दिया है । समस्त वर्ण और आश्रम, इस समय, सत्ययुग के समान वैदिक मार्ग में नियुक्त होकर शास्त्रानुसार धर्माचरण कर रहे हैं। (भगवत्पाद) सम्पूर्ण देश में अवस्थित ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर तथा महेश्वरी के देवस्थानों का उद्धार कर चुके हैं । समस्त ब्राह्मण कुलों का उद्धार कर चुके हैं । विशेषकर आन्वीक्षिकी आदि अन्य राजतंत्र के परिशीलन से हम राज कुलों की उन्नति हुई है । हम लोगों जैसे प्रमुख ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि तथा सम्पूर्ण लोक की प्रार्थना पर (भगवत्पाद ने) चार धर्म राजधानियों को गोवर्द्धन, ज्योति, शारदा तथा शृङ्गेरी मठ के नाम से जगन्नाथ, बदरी, द्वारका तथा शृंग ऋषि के क्षेत्र में संस्थापित किया । वहाँ उत्तर दिशा में योगीजनों की प्रधानता से धर्ममर्यादा की रक्षा सरलता से करने हेतु ज्योतिर्मठ में श्री तोटक अपरनाम प्रतर्दनाचार्य को, शृंग ऋषि के आश्रम में उन्हीं के समान स्वभाव वाले पृथ्वीधर अपरनाम हस्तामलकाचार्य को, भोगवर्द्धन में अपने से ही विचारणीय विषयों में अभिमत रखने वाले, अत्यन्त उग्र स्वभाव के होने पर भी सब कुछ जानने में समर्थ पद्मपाद अपरनाम सनन्दनाचार्य को तथा बौद्ध कापालिक आदि समस्त वादियों से भरपूर पश्चिम दिशा में वादी दैत्यांकुर पुनः अंकुरित न हो जाये इस प्रयोजन से शारदापीठ द्वारका में वज्रनाभ (कृष्ण के प्रपौत्र) द्वारा निर्मित तथा जैनियों के द्वारा ध्वस्त भगवदालय में श्रीकृष्ण को सम्पूर्ण मर्यादा से सुसंस्कृत कर प्रतिष्ठित कर समस्त लौकिक तथा वैदिक तंत्र में विश्वविख्यात कीर्ति प्राप्त सर्वज्ञानमय विश्वरूप अपरनाम सुरेश्वराचार्य को हम सब लोगों की लोक सम्मति से अभिषिक्त कर भारतवर्ष की चारों दिशाओं में चार आचार्यों को अधिष्ठित कर आदेश दिया कि वे अपने पीठ की मर्यादानुसार अपने-अपने मण्डल की रक्षा करते हुए वैदिक मार्ग को उद्भाशित करें । हम सभी उस मण्डलस्थ ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि उन मण्डलों के अधिकारी आचार्यों की आज्ञा का पालन करते हुए व्यवहार करें । महत्वपूर्ण निर्णय की स्थिति में उपर्युक्त लक्षणों से युक्त सुरेश्वराचार्य

सर्वत्र व्यवस्थापक हों, यह भगवत्पाद का अनुशासन है । हमारी राजसत्ता के समान निरंकुश गुरुसत्ता मर्यादानुसार संसार में अविचल रूप से अच्छी तरह चले । महाकुलीन, वैदुष्यादि विशिष्ट आचार्य गुणों से युक्त परिव्राजक ही श्रीभगवत्पाद की पीठों में अधिकार रखता है, किसी प्रकार के विनियम से न हो। भगवत्पाद की आज्ञानुसार नियमों में बन्धे हुए हम सभी ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वंशों में उत्पन्न हुए लोग परम प्रेम से इस आज्ञा को स्वीकार करते हैं । इस विज्ञप्ति को भगवन्त स्वीकार करें । विश्व कल्याण हो । युधिष्ठर शक २६६३ आश्विन शुक्ल १५ सम्राट् सुधन्वा ।।इति।।

(हिन्दी अनुवाद डॉ० रामजी मिश्र की पुस्तक, "शंकराचार्य और उनकी परम्परा" से लिया गया है । सधन्यवाद ।)

●

प्रयागराज-इलाहाबाद के प्रमुख स्थान - १४

कुम्भ क्षेत्र - बारह वर्ष में प्रयागराज में महाकुम्भ एवं बारह वर्ष में अर्धकुम्भ (कुम्भपर्व) सम्पन्न होता है। तात्पर्य यह है कि छह-छह वर्षों के अन्तराल में दोनों- महाकुम्भ और अर्धकुम्भ (कुम्भपर्व) सम्पन्न होते हैं। यह विश्व का सबसे बड़ा धार्मिक उत्सव है, लगभग दस से पन्द्रह करोड़ यात्रियों का आगमन होता है। कुम्भ मेलाक्षेत्र एवं संगम का दर्शन करने के लिये खण्डहर किला-समुद्र कूप उचित स्थान है, यहाँ से दिन/रात्रि में संगम एवं कुम्भ मेले का दृश्य बहुत सुन्दर और मनोहर दिखायी देता है।

त्रिवेणी स्थली - गंगा, यमुना सरस्वती का संगम। शीतऋतु में आये हुये मेहमान पक्षी इसके सौन्दर्य को बढ़ा देते हैं।

अक्षयवट - प्रयागराज में संगम तट के पास किले के अन्दर अक्षयवट स्थित है, इस अक्षयवट में भगवान् विष्णु का सदा वास रहता है, भगवान् शिव और पार्वती यहाँ नित्य स्थित रहते हैं, शूलपाणि महेश्वर इस अक्षयवट की रक्षा करते हैं, इस वटवृक्ष के नीचे प्राणों का त्याग विष्णु लोक को देता है-

प्रयाग के सभी तीर्थो में अक्षयवट का सर्वोच्च स्थान है। गङ्गा जी के पश्चिम तट पर अक्षयवट इसका प्रलयकाल में भी नाश नहीं होता इसीलिए इसे अक्षयवट कहते हैं और पूर्वीतट झूसी पर सन्ध्यावट स्थित है। मत्स्यपुराण में आया है कि प्रलयकाल में (कल्पान्त के समय) प्रयाग का नाश ही नहीं होता यहाँ त्रिदेव वास करते हैं इसमें भगवान् ब्रह्मा, विष्णु, शंकर का वास इसी पवित्र अक्षयवट में ही रहता है, पुराणों में दिव्य अक्षयवट का अद्भुत वर्णन किया गया है। वर्तमान में किले में अक्षयवट का दर्शन होता है।

बडे हनुमान् जी - सम्राट् अकबर के किले की दिवार के बाहर संगम-त्रिवेणी बांध के नीचे हाथ में पर्वत लिये हुए हनुमान् जी की विशाल मूर्ति शयन मुद्रा में है। राजस्थान के पत्थरों के शिल्पी विश्व प्रसिद्ध हैं इनके द्वारा भारतवर्ष में किले, ऐतिहासिक इमारतें, मन्दिर, राजमहल मुस्लिम कारीगरों के साथ बनाये गये हैं। उदयपुर, जोधपुर, भरतपुर, जयपुर, अलवर, दिलवाड़ा (माउण्ट आबू), आगरा, दिल्ली से लेकर इलाहाबाद के अकबरी किले तक का विशाल और वैभव पूर्ण शिल्प कार्य मुस्लिम और हिन्दू कला का संगम है। इस बृहद् निर्माण के पहले हिन्दू शिल्पी मुहूर्त के रूप में मुख्य द्वार पर हनुमान् जी (बाला जी) या गणेश जी की विशाल-बड़ी मूर्ति बनाते थे, या राजपरिवार के देवी-देवता की मूर्ति बनाते थे, इसी परम्परा का निर्वाह करते हुये राजस्थान के शिल्पियों द्वारा निर्विघ्न समाप्ति के लिये हनुमान् जी की यह मूर्ति बनायी गयी थी। राजस्थान में सभी भव्य इमारतों के द्वार पर ऐसी मूर्तियाँ मिलेंगी। किले के बनने के बाद आक्रान्ताओं के द्वारा मूर्ति को खण्डित करने के भय से शिल्पकारों ने कार्य की समाप्ति कर हनुमान् जी की मूर्ति को भूमिगत कर दिया। कालान्तर में गंगा नदी के कटाव से हनुमान् जी की मूर्ति प्रकट हो गयी। प्रयागराज आये हुये तीर्थ यात्री संगम स्नान

और बडे हनुमान् जी का दर्शन अवश्य करते हैं । नगरवासियों के लिये भी यह दर्शनीय स्थान है । वर्तमान में बडे हनुमान् जी की पूजा का प्रबन्ध बाघम्बरी गद्दी दारागंज के अधीन है ।

अकबरी किला - यह इलाहाबाद जंक्शन से पूरब किला रोड़ पर ५ किमी. की दूरी पर गंगा-यमुना के मनोरम संगम पर स्थित है । इसकी नीव सम्राट अकबर ने सन् १५८३ में रखी थी जो ४५ वर्ष ५ माह १० दिन मे लगभग सात करोड़ रुपये की लागत से निर्मित हुआ । इसका क्षेत्रफल लगभग ९८३ बीघा है । इस किले का वास्तुशिल्प भारतवर्ष में बनाये गये सैकड़ों किलों से अलग ढंग का है । गंगा-यमुना जैसी विशाल नदियों के पाट (Bed of the Rivers) में बना हुआ यह किला विश्व का एक मात्र विशाल क्षेत्रफल वाला किला है जो भूमि की सतह के नीचे से बनाया गया है । किले के ठीक सामने पूर्व दिशा की ओर प्रतिष्ठानपुरी नाम से झूसी पौराणिक गाँव स्थित है । प्रतिष्ठानपुरी का प्राचीन वैभव और इसकी धार्मिकता शास्त्रों में वर्णित है । झूसी प्राचीन काल में (लगभग ५०० से १००० साल पहले) विशाल नगर था इसकी सभ्यता हडप्पा, मोहनजोदड़ो से भी प्राचीन मानी गई है । प्रतिष्ठानपुरी झूसी में प्राचीन किले के अवशेष अभी भी प्राप्त हैं । प्रसिद्धि है कि उजड़ी हुई झूसी (सिद्ध श्रीगोरखनाथ के शाप से झूलसी हुई) के मलबे-खण्डहर से इस किले की भूमि का भराव किया गया है । किले के अन्दर भव्य स्मारक, जल संरक्षण के तालाब हैं । सरस्वती कूप (प्राची सरस्वती नदी की धारा में बना हुआ कूप), अक्षयवट, अशोक स्तम्भ एवं अन्य स्थान इस किले के अन्दर हैं। आम जनता के लिये किले का कुछ ही भाग कभी-कभी अक्षयवट आदि के दर्शन के लिये खोला जाता है । अंग्रेजी शासन में यह किला सैनिक गढ़ के रूप में स्थापित होने के कारण आज भी यह सैनिक शस्त्रागार के रूप में विद्यमान है । यह मुगलकालीन शिल्पकला और सुन्दर-सुन्दर इमारतों का भव्य नमूना है । दो महानदियों के बीच में किला बनाने का विचार वाले, मुगल-ए-आजम, भारत सम्राट् अकबर को सही अर्थों में अकबर द ग्रेट कहा गया है ।

अशोक स्तम्भ - यह किला में संस्थापित ३५ फुट ऊंचा ऐतिहासिक स्तम्भ है । इस पर सम्राट अशोक ने राजाज्ञाएं लिखवाई थीं । समुद्र गुप्त की दक्षिण भारत पर विजय का व्योरा भी अंकित है, जो ईसापूर्व का है । जहांगीर आदि की भी घोषणाएं अंकित हैं । यह २३२ ई०पू० में सम्राट अशोक की आज्ञा से बनवाया गया था और यह कौशाम्बी से लाया गया बीच का हिस्सा है, जिसे किले के अन्दर १८३८ में खड़ा किया गया था ।

पातालपुरी मन्दिर -संगम त्रिवेणी घाट अकबरी किले की पूर्वोत्तर दिवार के निकट तहखाने में स्थित– पातालपुरी मन्दिर प्राचीन अवशेषों में से है । प्राय: सभी मूर्तियाँ सही-सलामत अवस्था में है । मन्दिर की लम्बाई पूर्व-पश्चिम ८४ फुट एवं चौडाई उत्तर-दक्षिण ४९.५ फुट है । मन्दिर की छत ज्यादा ऊँची नहीं है। छत ६.५ फुट ऊँचे खम्भों पर टिकी हुई है। इसमें १२-१२ खम्भों की सात पंक्तियॉ है, केवल बीचवाली पंक्ति में दोहरे खम्भे है । लगभग १०० खम्भे है। पश्चिम की ओर मन्दिर का

मुख्य द्वार है। सीढियों से नीचे उतरना पडता है। कुछ दूर तक रास्ता पूर्व की ओर जाकर मन्दिर के मुख्य भाग से मिल जाता है । मन्दिर में गणेश, धर्मराज, नरसिंह, गोरखनाथ-आदि की १८वीं और १९वीं शताब्दी निर्मित छोटी-बडी कुल ४३ मूर्तियाँ स्थापित हैं । स्थान- स्थान पर शिवलिंङ्ग भी स्थापित है। यह मन्दिर व्यवस्थित तरीके और मेहतन से बनाया गया है । मन्दिर की उत्तरी दिवार में एक बडा सा आला है, उसमें पुरानी लकडी का एक मोटा गोल टुकडा लाल कपडें में लिपटा हुआ इसे अच्छे ढंग से रखा गया है । मालुम होता है कि यहाँ पर पातालपुरी मन्दिर बनने के पूर्व विशाल पेड़ था, यह किस जाति का पेड़ था इसका वनस्पति वैज्ञानिकों द्वारा निर्णय नहीं किया गया है । शायद यह किला, मन्दिर बनाने के लिये की गई तोड़-फोड से सूख गया है । परम्परा से इसे ही अक्षयवट का तना कहा जाता है । पश्चिमी दिवार में बेतिया के राजा रावगोपाल का सन् १८३२ का एक अभिलेख अंकित है -..................सन् १९०६ तक इस मन्दिर में पूर्व अन्धकार रहता था। दीपक की मन्द रोशनी में यात्री दर्शन करते थे । बाद में खिडकियाँ खोल दी गई है । वर्तमान में प्रकाश की पर्याप्त व्यवस्था है । मन्दिर दर्शनीय है, दर्शनाथियों का मन्दिर में ताता लगा रहता है ।

शंकरविमानमण्डपम् - दाक्षिणात्य- पाण्ड्य, चोल, पल्लव शैली का संगम, शंकर विमान मण्डपम् एक अत्यन्त सुन्दर देवालय है । यह देवालय बड़े हनुमान् जी की ओर जाते समय मार्ग में स्थित है। मन्दिर की छत से गंगा-यमुना का संगम और विशेष कर सावन-भादों में संगम का विहंगम दृश्य अदुभुत आनन्द को देता है । इस मन्दिर में मीनाक्षी परिवार और शिवलिंग की प्रधानता है । १३० फीट ऊँचे मण्डपम् में १२ टन वजनी अद्भुत शिवलिंग है । प्रसिद्ध है कि- इस भव्य मण्डपम् का निर्माण स्वनाम धन्य काञ्ची काम कोटी पीठाधीश्वर शंकराचार्य जी महाराज द्वारा कराया गया है । संगम मेला क्षेत्र प्राचीन काल से निर्माण वर्जित क्षेत्र रहा है । संगम मेला क्षेत्र और बांध पर भव्य मन्दिर का निर्माण राजनेताओं पर सन्त महात्माओं की गहरी राजनैतिक पकड़ का भी प्रतीक है । बहुत कम ही तीर्थ यात्री इसका दर्शन करने जाते है ।

नागवासुकि / वासुकीह्रद - वासुकि एक प्रसिद्ध नागराज है, जो आस्तीक के मामा तथा कश्यप और कद्रु के पुत्रों में एक थे । इनकी पत्नी का नाम शतशीर्षा था । देवताओं और असुरों द्वारा किये गये प्रसिद्ध समुद्र मंथन में डोरी के रूप में इनका ही प्रयोग किया गया था । म०भा०शल्य ३७/३०-३२ के अनुसार नाग धन्वातीर्थ इनका निवास स्थान है, वहीं देवताओं ने इनका नागराज के पद पर अभिषेक किया था । म०भा०वन८५-८६ के अनुसार तीर्थराज प्रयाग में भी इनका स्थान है, धृतराष्ट्र नामक नाग ने वासुकि जी को विष्णुपुराण सुनाया था । ये शिव भक्त थे शिव के गले में दिखने वाले नाग वासुकिनाग ही हैं । त्रिपुरदाह के समय शिव के धनुष् की डोरी थे । कहा गया है कि प्रयाग में नागवासुकि या भोगवती नामक उत्तम तीर्थ है जिसमें स्नान करने से अश्वमेध यज्ञ का उत्तम फल प्राप्त होता है । आजकल यह मन्दिर दारागंज के पास गंगा तट पर है । दारागंज में बिन्दु माधव जी के दर्शन

करके वहाँ से आगे लगभग डेढ़ किलोमीटर जाने पर गंगा तट पर ही स्थित बक्सी बांध (वासुकि बांध) नाम के मुहल्ले में नागवासुकि जी का मन्दिर है । यहाँ नागपंचमी को बड़ा मेला लगता है । यह प्रयाग की उत्तरी सीमा है । भगवान् बलराम शेषनाग के अवतार थे इसलिये इस स्थान को शेष जी का स्थान भी कहा जाता है । मन्दिर में नागवासुकि की नागरूप में दर्शनीय मूर्ति है । नागपञ्चमी यहाँ का प्रसिद्ध उत्सव है, इस तीर्थ की यात्रा के बिना प्रयाग की यात्रा का फल नहीं मिलता । वासुकिह्रद / तालाब की स्थिति अच्छी नहीं है ।

कोटितीर्थ - कोटि तीर्थ नामक प्रसिद्ध पवित्र तीर्थ ही आज कल प्रयाग में शिवकोटी के नाम से जाना जाता है । यहाँ आश्रम, शिव मन्दिर, धर्मशाला, गोशाला एवं कूपादि पवित्र स्थल हैं । यह बलदेव जी, नागवासुकि से दो मील आगे गङ्गातट पर स्थित है, गङ्गा जी का भव्य दृश्य दिखता है । श्रावण के महीने में यहाँ विशाल मेला लगता है ।

अलोपी देवी - प्रसिद्ध अलोपी देवी मन्दिर की गणना देवी के सिद्धपीठों में की जाती है । यह प्रसिद्ध मन्दिर प्रयागराज के अलोपीबाग मुहल्ले में स्थित है ।

ललिता देवी - तन्त्र चूड़ामणि के अनुसार ५१ शक्ति पीठों में से एक शक्ति पीठ प्रयागराज में है । जहाँ सती की हस्ताङ्गुलि गिरी थी । यही शक्तिपीठ ही 'ललिता देवी' हैं । त्रिपुरा रहस्य में भी भारत स्थित बारह प्रधान देवी विग्रह एवं उनके स्थान वर्णित है । जिसके अनुसार भी ललिता देवी का स्थान प्रयाग में है-

'प्रयागे ललिता विन्ध्ये विन्ध्यनिवासिनी '' (देवीभागवत / त्रिपुरा० म०ख० ४८/७२ उत्तरार्द्ध)

प्रयाग में ललिता देवी का प्रसिद्ध मन्दिर मीरापुर मुहल्ले में स्थित है । यहीं पर कल्याणी देवी का भी मन्दिर है । ललिता देवी, अलोपी देवी, कल्याणी देवी और मिर्जापुर विन्ध्याचल ये चारों ही मन्दिर परम्परा में शक्तिपीठ माने जाते हैं ।

कल्याणी देवी - प्रयागान्तर्गत मालवीय नगर मुहल्ले के पास कल्याणी देवी नाम से प्रसिद्ध एवं मान्य शक्ति पीठ है - (इसी नाम से यह मुहल्ला भी है) यह स्थान बहुत प्राचीन है । इस स्थान को भी ललिता देवी का सिद्ध पीठ कहा जाता है ।

दशाश्वमेधघाट - प्रयागराज की उत्तरसीमा पर गंगा जी के किनारे दशाश्वमेध नामक प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है, यहाँ पर किया गया अभिषेक अश्वमेध यज्ञ के बराबर फल देने वाला है, इसमें स्नान करने वाला व्यक्ति धार्मिक, धनाढ्य, रूपवान्, कुशल और दान देने वाला होता है - महाभारत वन पर्व में गंगा तट पर दशाश्वमेधक तीर्थ होने का उल्लेख है । पितामह ब्रह्मा के दश अश्वमेध यज्ञों का स्थल होने से ही यह दशाश्वमेधक कहलाता है । इसी के नाम पर यहाँ स्थित घाट का नाम दशाश्वमेध घाट है जो दारागंज के पास स्थित है । इसका शास्त्रों में भी प्रचुर उल्लेख मिलता है । मन्दिर दर्शनीय है ।

श्री बड़े गणेश-ओंकार गणपति - दारागंज क्षेत्र, गङ्गातट के पास श्री बड़े गणेश-ओंकार गणपति जी का प्रसिद्ध मन्दिर है । मूर्ति भव्य और दर्शनीय है ।

बाघम्बरी गद्दी - बाघम्बरी गद्दी, दशनामी संन्यासी परम्परा का एक प्राचीन, प्रसिद्ध सिद्धपीठ है जो कि गङ्गा जी किनारे दारागंज-अल्लापुर में स्थित है । प्राचीन समय में षड्दर्शन, साधुसमाज का यहाँ पर समागम होता था और धर्म सम्बन्धी निर्णय लिये जाते थे । कुछ समय पूर्व इस बाघम्बरी गद्दी में बहुत बड़ा बगीचा था । बगीचे के फल और बेल बहुत प्रसिद्ध थे । इस गद्दी के पूर्व महन्त श्री १०८ स्वामी विचारानन्द गिरि जी महाराज प्रसिद्ध सन्त और वेदान्त के बहुत बड़े विद्वान् थे, श्री स्वामी विचारानन्द जी महाराज का अध्ययन काशी श्री दक्षिणामूर्ति मठ में और संस्कार दीक्षा श्री नृसिंहगिरि जी महाराज द्वारा सम्पन्न हुई थी । इनके द्वारा सन् १९६३ में महन्त विचारानन्द संस्कृत महाविद्यालय की स्थापना की गई । विद्यालय व्यवस्थित अवस्था में चल रहा है । वर्तमान में गद्दी का संचालन श्री १०८ स्वामी नरेन्द्रगिरि जी महाराज द्वारा किया जा रहा है । बाघम्बरी गद्दी द्वारा ही संगम स्थित बड़े हनुमान् जी की देखरेख और व्यवस्था की जाती है । बाघम्बरी गद्दी द्वारा अन्य परोपकार की योजनायें भी चलाई जाती हैं ।

हनुमत् निकेतन -हनुमत् निकेतन सिविल लाइन वाले हनुमत् जी के नाम से प्रसिद्ध है । यह इलाहाबाद का आधुनिक परन्तु अत्यन्त प्रसिद्ध मन्दिर है । स्वर्गीय रामलोचन पहलवान ब्रह्मचारी जी के प्रयास का यह अनुपम उदाहरण है । कई एकड़ों में फैला मन्दिर का परिसर अत्यन्त आकर्षक है। परिसर में सैकड़ो हजारों की भीड़ बनी रहती है । पूज्य स्वर्गीय ब्रह्मचारी जी महाराज की प्रयागवासियों के लिये यह मन्दिर एक अनुपम देन है । हनुमान् जी के प्रधान विग्रह के अतिरिक्त मन्दिरों में राम, लक्ष्मण, सीता, भगवती दुर्गा एवं शिव परिवार एवं द्वादश ज्योतिर्लिंग की मूर्तियॉ भी प्रतिष्ठित हैं । यहाँ सायंकाल में लोगों का मेला लगा रहता है । इस मन्दिर के अतिरिक्त भी इलाहाबाद में रामबाग, त्रिपोलिया और इलाहाबाद हाई कोर्ट के नजदीक हनुमान् मन्दिर है, इस मन्दिर का प्रांगण हाई कोर्ट में आये हुए लोगों को आराम और विश्राम देता है ।

उच्च न्यायालय इलाहाबाद - इलाहाबाद जंक्शन व सिविल लाइन्स बस स्टैण्ड से लगभग १.५ किमी० की दूरी पर कानपुर राजमार्ग पर स्थित इलाहाबाद उच्च न्यायालय देश के प्रमुख न्यायालयों में से एक है । इलाहाबाद हाईकोर्ट की वर्तमान इमारत का शिलान्यास सन् १९११ में किया गया । इलाहाबाद उच्च न्यायालय की स्थापना १८६६ में हुई थी । इलाहाबाद उच्च न्यायालय का परिसर और भवन बहुत बड़ा है । इलाहाबाद के अधिवक्ता- पं० मोतीलाल नेहरु, महामना मदनमोहन मालवीय, पं० जवाहरलाल नेहरु, सर तेज बहादुर सप्रू, कैलाशनाथ काटजू आदि सैकड़ों ने राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन में आगे बढ़कर हिस्सा लिया और देश को आजाद कराने का यश अर्जित किया था। न्याय के क्षेत्र में यह देश का कीर्तिमान आज भी बना हुआ है ।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय - प्रयाग रेलवे स्टेशन से लगभग १ किमी०, इलाहाबाद जंक्शन से लगभग ६ किमी०, व सिविल लाइन्स बस अड्डे से ४ किमी० की दूरी पर कर्नलगंज मोहल्ले के बगल में स्थित इलाहाबाद विश्वविद्यालय अंग्रेजों के जमाने से ही उच्चकोटि की शिक्षा के लिए विख्यात है। इसे भारत का आक्सफोर्ड भी कहा गया था। अंग्रेजों के बाद पहले वायसचांसलर होने का गौरव डॉ० गंगानाथ झा को प्राप्त है। चारों दिशाओं के ज्ञान का संगम होने के कारण देश-विदेश के छात्र, छात्राएं शिक्षा ग्रहण करने आते हैं । इलाहाबाद विश्वविद्यालय की स्थापना १६ नवम्बर १८८७ को सर अल्फ्रेड लायन लेफ्टीनेन्ट गवर्नर के प्रयत्नों से पूर्ण हुई। पहले यह कलकत्ता विश्वविद्यालय के अन्तर्गत परीक्षक विश्वविद्यालय था। जो १९२२ में एक्ट के अनुसार शिक्षक विश्वविद्यालय हो गया। १९१२ में विश्वविद्यालय परिसर में विशाल सीनेट भवन ५८५५००/- रु० की लागत से निर्मित किया गया। इस विश्वविद्यालय के अन्दर भव्य इमारतें और बाग-बगीचे स्थित हैं। इलाहाबाद विश्वविद्यालय की एक विशेषता यह है कि इसने अपने अंचल में ऐसे विद्वान् देश भक्तों को प्रश्रय दिया जिन्होंने स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये और बाद में राष्ट्र निर्माता की भूमिका भी अदा की। इस समय यह केन्द्रिय विश्वविद्यालय हो गया है।

खुसरूबाग पेड-पौधे - इलाहाबाद जंक्शन से लगभग १.५ किमी० दूरी पर स्थित खुल्दाबाद मोहल्ले के बगल में इलाहाबाद नगर का सुप्रसिद्ध खुशरू बाग मुगलकालीन स्थापत्य कला का नमूना ही नहीं अनेक ऐतिहासिक घटनाओं का आइना भी है। इसमें मुगल सम्राट (जहांगीर) के पुत्र खुशरू और उसके बगल उनकी मां एवं बहन का मकबरा है। यह बाग १६०५ में निर्मित हुआ। बाग के अन्दर की भव्य इमारतें मुगल कला के अद्भुत नमूने हैं। सरकार के द्वारा संरक्षित क्षेत्र है। सन् १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम के दौरान क्रान्तिकारी गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र रहा है। महगांव के बागी लियाकत अली ने यहीं अपना मुख्यालय बनाया था लेकिन बाग पर कर्नल नील द्वारा कब्जा किये जाने और क्रांतिकारियों को खदेड़ने पर वे फरार हो गये। इसके एक भाग में जल संस्थान है। खुशरू बाग प्राचीन पेड़ पौधों की खान होने के कारण पर्यटकों के लिए एक दर्शनीय स्थल है तथा इलाहाबादी अमरूदों के लिए प्रसिद्ध है। यह १५५ बीघे के क्षेत्रफल में फैला है।

कम्पनी बाग- अल्फ्रेड पार्क - अमर शहीद चन्द्रशेखर आजाद पार्क - हिन्दी साहित्य सम्मेलन - इसकी स्थापना १ मई सन् १९१० में की गई थी। हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा हिन्दी भाषा के उद्धार के लिये बहुत प्रयास किया गया सैकड़ों ग्रन्थों का प्रकाशन कर हिन्दी भाषा को समृद्ध किया। राष्ट्रिय आन्दोलन के अग्रणी महापुरुष गाँधी जी, नेहरु जी, राजर्षि श्री पुरुषोत्तमदास टंडन का सम्बन्ध सम्मेलन से था। आज भी यह संस्था हिन्दी साहित्य के उन्नयन के लिये प्रयासरत है। यहाँ समृद्ध पुस्तकालय है, संस्कृत के बहुमूल्य बड़े ग्रन्थों का प्रकाशन भी सम्मेलन द्वारा किया गया है। इलाहाबाद जंक्शन से लगभग १ किमी० व जीरो रोड बस स्टैण्ड से ५०० मीटर की दूरी पर स्थित है। यहां

पर हिन्दी में शोध पत्र एवं विशारद की डिग्री दी जाती है। यहीं पर हिन्दी का पुस्तकालय है। यह जीरो रोड़ पर घण्टाघर से १ किमी० की दूरी पर स्थित है।

हिन्दुस्तानी एकेडमी - प्रयागराज में हिन्दी भाषा के उन्नयन के लिये प्रयासरत और प्रयास में पूर्ण सफल हिन्दुस्तान एकेडमी की स्थापना २७ जनवरी सन् १९२७ में हुई थी। इसकी स्थापना और हिन्दी साहित्य की उन्नति में योगदान देने वालों में तत्कालीन शिक्षामंत्री पं. राय राजेश्वर बली, पं० यज्ञनारायण उपाध्याय, श्री हाफिज हिदायत हुसैन, सर तेजबहादुर सप्रू एवं लखनऊ प्रान्त के गवर्नर सर विलियम मॉरिस आदि का योगदान रहा। इतनी लम्बी उम्र के बाद भी यह अकादमी स्वस्थ्य हालत में अपना कार्य कर रही है । यहाँ से बहुत ही उम्दा प्रकाशन किया गया है। यहाँ से प्रकाशित **प्रयाग-प्रदीप** प्रयागराज के दोसौ-तीनसौ साल के इतिहास को देखने के लिये एक मात्र पुस्तक और अच्छी जानकारी का सूचीपत्र है। यह एकेडमी इलाहाबाद जंक्शन से लगभग ५ किमी० दूर सिविल लाइन्स बस स्टैण्ड से लगभग १.५ किमी० की दूरी पर चन्द्र शेखर आजाद पार्क के पास स्थित है।

संगीत एकेडमी - प्रयागराज में प्रयाग संगीत एकेडमी की स्थापना महाशिवरात्रि सन् १९२६ में की गई थी। यहाँ पर हिन्दी में शोध पत्र एवं विशारद की डिग्री दी जाती है। यही पर हिन्दी का पुस्तकालय है। इलाहाबाद जंक्शन से लगभग १ किमी० व जीरोरोड बस स्टैण्ड से ५०० मी० की दूरी पर स्थित है। यह जीरो रोड बस अड्डे से दारागंज जाने वाली रोड पर, घण्टाघर से १ किमी० की दूरी पर स्थित है। संगीत एकेडमी द्वारा भारतीय, शास्त्रीय संगीत की अभूतपूर्व सेवा की गई है। इस एकेडमी से भारतवर्ष के प्रसिद्ध संगीत कलाकारों का सम्बन्ध रहा है यह एकेडमी आज भी अपने संकल्प के प्रति प्रतिबद्ध है। बाहर से खड़े होकर देखने पर भी खुशी का अनुभव होता है।

स्वराज भवन / आनन्दभवन (Observatory) - यह ऐतिहासिक भवन इलाहाबाद जंक्शन से लगभग १० किमी० व प्रयाग रेलवे स्टेशन से लगभग १.५ किमी० कर्नलगंज मोहल्ले के पास स्थित है। संसार में शायद ही कोई भवन इतना भाग्यशाली हो जिसने अपने सजाने संवारने वाले की चार पीढ़ियों को लगातार अपने देश की आजादी के लिए तिल-तिल कर न केवल कुर्बान किया बल्कि स्वाधीन देश को सजाने संवारने, उसके बिखरे तारों को जोड़ते-जोड़ते अपने प्राणों की आहुति दे दी। प्रयाग का स्वराज भवन ऐसा ही भाग्यशाली भवन है। राष्ट्रीय एकता एवं भारतीय पहचान, आदर्श के लिए भारत की प्रधानमन्त्री श्रीमती इंदिरा गांधी, श्री राजीव गांधी आदि ने अपने को कुर्बान किया। उसी प्रक्रिया से गुजरते हुए उनका यह पैतृक निवास पहले महमूद मंजिल फिर पाठक निवास उसके बाद न हिन्दू न मुसलमान अपितु शुद्ध भारतीय स्वराज भवन बन गया। अजीब संयोग है कि जिस भवन का अंग्रेजों ने भारत में अपना सुदृढ शासन संचालन हेतु बनवाया था। उसी ने अंग्रेजों को देश से निकालने में अग्रणी भूमिका निभाई। सन् १८७१ में सर जान स्ट्रेची ने २२ एकड़ भूमि में बनवाया था। जो महमूद मंजिल बाद में पाठक निवास आदि नामकरण हुए। पाठक जी ने बाद में सन् १८९९

में पंडित मोतीलाल नेहरू के हांथ बेच दिया इसका नाम आनन्द भवन हुआ। सन् १९२६ में मोती लाल नेहरू जी ने जवाहर लाल नेहरू जी को किसी से कहते हुए कहीं सुन लिया कि जब हम आनन्द भवन के मालिक होंगे तो वे उसे राष्ट्र को समर्पित कर देंगे। यह बात सुनकर उसे राष्ट्र को समर्पित करने का संकल्प कर मोती लाल नेहरू ने १९२७ में उससे सटे नए भवन का निर्माण करवाया, इस नए भवन का नाम भी आनन्द भवन रखा गया। ६ अप्रैल १९३० को इसको राष्ट्र के नाम देने की घोषणा की परन्तु फरवरी १९३१ में उनका स्वर्गवास हो गया। इसके बाद स्वराज भवन बनाकर एक न्यास का नामाकरण कर इसे राष्ट्र को समर्पित कर दिया गया। इसी पुराने आनन्द भवन में श्रीमती इंदिरा गांधी, श्रीमती कृष्णा हटी सिंह का जन्म हुआ। जबकि जवाहर लाल नेहरू का जन्म इलाहाबाद चौक स्थित मकान (मौजूदा मोहम्मद अली पार्क) में हुआ। पंडित विजय लक्ष्मी पंडित का जन्म सिविल लाइन्स के मकान में हुआ था। यह भवन स्वाधीनता आन्दोलन की दिशा निर्देश का मुख्य केन्द्र रहा। सन् १९४६ तक यह अखिल भारतीय कांग्रेस का मुख्यालय रहा। स्वतंत्रता आन्दोलन की बहुत सी ऐतिहासिक बैठकें व निर्णय इसी स्वराज भवन में लिये गये। सन् १९१६ में इसी भवन में कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग की तीन प्रमुख बैठकें हुई थी। इसी भवन से अति महत्व पूर्ण निर्णय सन् १९२० में महात्मा गांधी के द्वारा लिया गया ''असहयोग आन्दोलन'' भी था। अंग्रेजों ने कितनी ही बार इसे लूटा व खसोटा है। श्रीमती कमला नेहरू द्वारा इसी भवन से संचालित स्वतंत्रता सेनानियों के अस्पताल को एवं अमूल्य वस्तुओं को नष्ट कर छति पहुँचाई गई। जुलाई सन १९४८-४९ में कांग्रेस वर्किंग कमेटी के निर्णय के बाद स्वराज भवन में एक बाल भवन की स्थापना राष्ट्रीय बाल संस्थान के तत्वावधान में की गयी। पं० जवाहरलाल नेहरू का बच्चों के प्रति स्नेह जग-जाहिर है। तब से आज तक यह देश की एकता एवं अखण्डता के लिए कटिबद्ध अनवरत रूप से राष्ट्र की सेवा में लगा हुआ है। इसी भवन में Jawahar Planetarium दर्शनीय स्थान है। दर्शनार्थियों की भीड़ लगी रहती है।

पत्थर गिरजाघर - प्रयागराज की सुन्दरता के चार चाँद में एक नाम पत्थर गिरजाघर (All Saints Cathedrals) का आता है। यह भव्य इमारत गोथिक शैली की बनी हुई है, इसे विश्व प्रसिद्ध इंजीनियर शिल्पी सर विलियम इमर्सन ने चार साल के अन्दर बनाकर तैयार किया था। सर विलियम इमर्सन के द्वारा ही विश्वप्रसिद्ध इमारत विक्टोरिया मेमोरियल कोलकाता का भी निर्माण किया था। इनके बारे में प्रसिद्ध है कि ये बिना देखे ही बनने वाली इमारतों की अच्छाई और कमियों को बातचीत करने वाले शिल्पियों को बता देते थे। यह इमारत प्रयागराज रेलवे स्टेशन और हाई कोर्ट के मार्ग पर स्थित है, जिन्होंने अंग्रेजो की प्राचीनकाल की इमारतों को नहीं देखा है इस इमारत को देखना चाहिये।

गंगानाथ झा- संस्कृत शोध संस्थान - यह इलाहाबाद जंक्शन लगभग ५ किमी० दूर सिविल लाइन्स

बस स्टैण्ड से लगभग १.५ किमी० की दूरी पर चन्द्र शेखर आजाद पार्क परिसर में स्थित है। प्रयागराज प्राचीनकाल से ही संस्कृत और हिन्दी भाषा के लिये प्रसिद्ध रहा है । अंग्रेजों के समय में विश्वविद्यालयों के अधिपति अंग्रेज ही हुआ करते थे । डॉ. गंगानाथ झा अद्भुत प्रतिभा के धनी, संस्कृत विद्वान् होने के साथ-साथ अंग्रेजी भाषा के भी पण्डित थे, अपनी अद्भुत वक्तृत्वशक्ति और शास्त्रबल पर श्रोताओं को स्तम्भित कर देते थे । इनकी प्रतिभा को देखकर अंग्रेजों ने तत्कालीन संस्कृत कॉलेज (वर्तमान- सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी) का प्रिंसिपल / वाइस-चान्सलर बनाया । इस मान्यता प्राप्त पद पर अंग्रेज ही हुआ करते थे । डॉ गंगानाथ झा प्रथम भारतीय प्रिंसिपल के रूप में स्थापित हुये । डॉ. गंगानाथ झ के द्वारा न्याय-मीमांसा आदि के महान् ग्रन्थों का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया गया । इनकी कुल परम्परा उच्च विद्वानों की परम्परा मानी गई है । डॉ. गंगानाथ झा के सम्मान में इनके जीवनकाल में ही सन् १९३४ में इनके विचारों के अनुसार संस्कृत भाषा को समर्पित डॉ. गंगानाथ झा रिसर्च इन्सटीट्यूट सेन्टर की स्थापना हुई । वर्तमान में यह राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, दिल्ली की बारह संस्थानों की श्रंखला में राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, गंगानाथ झा कैम्पस के रूप में संचालित हो रहा है । यह संस्थान अद्यावधि संस्कृत भाषा के अनुसंधान में लगा हुआ है, अनुसंधान के अतिरिक्त ग्रन्थों का प्रकाशन भी किया जाता है । यहाँ पर संस्कृत पुस्तकालय एवं संस्कृत के शोध से संम्बधित पुस्तकें एवं विद्वानों के लेख उपलब्ध हैं ।

महर्षि महेशयोगी आश्रम - इलाहाबाद रेलवे स्टेशन से १२ किमी० की दूरी पर अरैल, प्रयागराज में महर्षि महेश योगी का आश्रम स्थित है । महेश योगी का विदेश में स्वर्गवास होने के बाद उनके शरीर को संगम तट पर ही चिताग्नि दी गई थी । यहाँ से गंगा और यमुना का संगम दिखाई देता है । स्व० महर्षि महेश योगी अपनी विशेष ध्यान-पद्धति, योग-पद्धति के द्वारा विश्व के चर्चित व्यक्ति बनें । वेदशास्त्रों एवं भारतीय परम्परा में उनकी गहरी आस्था थी । इन्होंने अपने समय पर अपार यश और धन अर्जित किया । प्राय: विश्व में सभी जगह महर्षि महेश योगी की संस्थायें हैं ।

सच्चा बाबा आश्रम अरैल - इलाहाबाद जंक्शन से यमुना नदी के उस पार नैनी रेलवे स्टेशन से दो किमी० उत्तर तथा त्रिवेणी संगम के ठीक सामने दक्षिणी तट पर १० किमी० दूर अरैल क्षेत्र विद्यमान है । अरैल का पुराना, पौराणिक नाम अलर्कपुरी तीर्थ क्षेत्र रहा है । प्रचलित है कि यहाँ के राजा अलर्क ने सत्य के लिए अपनी आखें निकलवा दी थी । यह भी कहा जाता हे कि इसकी स्थापना इला के नाम से हुई । जिसके वंशज प्रतिष्ठान पुर के चन्द्र वंशीय नरेश हुए है । जलालउद्दीन खिलजी के शासन काल में यहाँ राजा राजदेव के पुत्र रायसेन का राज्य था । हुमायूं चुनार में शेर खाँ से हार कर यहाँ आया और यहाँ के राजा बीरभान बघेल की सहायता से जमुना पार करके कड़े की ओर गया । अकबर ने इसका नाम जलालाबाद रखा था । इस समय पर यहाँ पर पुराण प्रसिद्ध वेणी माधव, आदि माधव और सोमेश्वर महादेव के प्राचीन मन्दिर हैं । अरैल में बल्लभ सम्प्रदाय का मठ एक दर्शनीय स्थल है।

जहाँ महाप्रभु चैतन्यदेव ने निवास किया था। इस समय सच्चा बाबा द्वारा संस्थापित सच्चा आश्रम भक्तों के लिए एक प्रमुख आकर्षक केन्द्र है। सच्चा बाबा आश्रम धर्म-संस्कृत, संस्कृति के प्रचार-प्रसार के लिये प्रसिद्ध संस्था है।

शृंगवेरपुर - शृंगवेरपुर इलाहाबाद से उत्तर पश्चिम की दिशा में फाफामऊ से आगे लखनऊ राजमार्ग पर लगभग ४० किमी० भगवतीपुर से दक्षिण लगभग ४ किमी० की दूरी पर गंगा के किनारे पर स्थित तीर्थ स्थान है। इसे सिगरौर भी कहते हैं। यहाँ शृंगी ऋषि का आश्रम है। यहीं पर शृंगी ऋषि कि समाधि भी है। कहा जाता है कि यही पर राजा दशरथ ने पुत्रोत्पत्ति हेतु यज्ञ कराया था। इसी स्थान से निषाद राज ने रामचन्द्र जी को वनवास जाते समय गंगा नदी पार कराया था। राजा अकबर ने यहाँ एक किले का निर्माण कराया था। यहाँ पर खुदाई के समय जनरल कनिघंम को बहुत पुराने सिक्के मिले थे जो कुछ हिन्दुओं एवं मुस्लिम शासकों के थे। इसी के समीप शांता देवी उपनाम आनन्दी माई का मन्दिर है जो शृंगी ऋषि कि पत्नी थी। आषाढ़ सावन एवं वैसाख की तृतीया एवं कार्तिक पूर्णिमा को यहाँ मेला लगता है। वर्ष १९९० से यहां प्रति वर्ष एकादशी से पूर्णिमा तक राष्ट्रीय रामायण मेला का सफल आयोजन किया जाता है।

पण्डिला महादेव - यह इलाहाबाद जंक्शन से उत्तर दिशा की ओर फाफामऊ से आगे (प्रयागराज-प्रतापगढ़ राष्ट्रीय राजमार्ग ९६) होते हुए लगभग १६ किमी० दूरी पर कमलानगर रोड़ पर स्थित है। इसे पाण्डेश्वर नाथ धाम भी कहा जाता है। यहाँ शिवरात्रि के पर्व पर बहुत बड़ा मेला लगता है। जहाँ पर दूर-दराज के लोग अपनी मनोकामनाओं की पूर्ति हेतु भगवान् शिव जी को जल अर्पित एवं पूजा-पाठादि कार्य करते हैं। मिर्जापुरी पक्के पत्थरों से भव्य मन्दिर बना है। यहाँ बारहों महीने धूम-धाम बनी रहती है। जन-परम्परा के अनुसार संगम क्षेत्र से पाँच कोश की दूरी पर पूर्व द्वार पर दुर्वासा मुनि का आश्रम ककरा-कोटवा, पश्चिम में पाँच कोश की दूरी पर पश्चिमी द्वार पर वनखण्डी शिव धाम, दक्षिण में पाँच कोश की दूरी पर प्रणाश आश्रम पनासा और उत्तर में पाँच कोश की दूरी पर उत्तरी द्वार पर पण्डिला महादेव मन्दिर है। ये चारों क्षेत्र पंचक्रोशी परिक्रमा में आते हैं। वाराणसी की पंचक्रोशी परिक्रमा तो प्राचीन काल की तरह ही जीवित है किन्तु प्रयागराज की यह पंचक्रोशी परिक्रमा लुप्त हो गई है, इसे जीवित करने का प्रयास किया जाना चाहिये। तीर्थों के विकास के साथ-साथ जन-जीवन को व्यवसाय भी प्राप्त होगा। किम्वदन्तियों के अनुसार एक बार मुगल सम्राट औरंगजेब ने अपनी फौज के द्वारा इस मन्दिर को तोड़ने की कोशिश की तो यहाँ से विषैले जीव-जन्तुओं ने निकलकर सैनिकों पर आक्रमण कर दिया तथा शिवलिंग पर हथियार चलाने से खून की धारा निकलने लगी। पंडिला धाम के पास श्री बैजू बाबा का मन्दिर है तथा यहाँ पर गणेश जी की विशालकाय मूर्ति भी है। एक अन्य किम्वदन्ती के अनुसार पाण्डव वनवास के समय यहीं रहते थे तथा भीम ने हिडिम्ब नामक राक्षस को मारकर उसकी बहन हिडिम्बा से शादी रचायी थी पंडिलेश्वरनाथ महादेव की स्थापना की थी।

दर्शनीय स्थान प्रतिष्ठानपुरी झूसी -

समुद्रकूप - झूसी के मुख्य टीले के पूर्वी कोने पर संगम के बाद समुद्र कूप नाम का टीला है । जिस पर एक बहुत बड़ा कुआँ है उसे समुद्रकूप कहते हैं । ऐसा कथन है कि इसका निर्माण समुद्रगुप्त ने करवाया था । मत्स्य पुराण में भी इसका उल्लेख मिलता है। समुद्रकूप सप्तसागर का प्रतिनिधि माना जाता है। पुराणों में विविध विद्वानों में सप्तसागर महादान का उल्लेख मिलता है । यह दान समुद्रकूप के समीप किया जाता था । पद्मपुराण के अनुसार इसके दर्शन करने व जल पीने से मनुष्य पाप रहित हो जाता है । अमावस्या, पूर्णिमा, सूर्यग्रहण, चन्द्र ग्रहण पर इसकी परिक्रमा करने से पृथ्वी की परिक्रमा का लाभ होता है । पहले यह कूप बन्द था । लोगों को विश्वास था कि इसको खोदने से समुद्र उमड़ पड़ेगा व पृथ्वी जलमग्न हो जायेगी । कई सौ वर्ष पूर्व अयोध्या के एक वैष्णव साधु बाबा सुदर्शन दास ने इस कूप को खुलवाया व साफ करवाया तथा एक आश्रम की स्थापना भी की । गंगा की ओर इस टीले में एक बड़ी सीढ़ी और अनेंक गुफायें हैं । यहीं पर किले के भगनावशेषी भी हैं गुफा में हनुमान जी की एवं अन्य देवी-देवताओं की मूर्तियाँ हैं । इस टीले से संगम और मेला क्षेत्र का सम्पूर्ण दृश्य दिखाई देता है, रात्रि को मेलाक्षेत्र की जगमगाहट देखना हो तो इस टीले से ही देखना चाहिये । यह टीला गंगा जी के जलस्तर से लगभग दो सौ फीट ऊपर है और खड़ी चढ़ाई है ।

हंसकूप - प्राचीन और नवीन झूसी के मध्य गंगा किनारे हंसकूप नामक खण्डहरनुमा पवित्र कूप स्थित है । झूसी में स्थित हंसतीर्थ या हंसकूप का उल्लेख वराह पुराण व मत्स्य पुराण में भी मिलता है । यह धार्मिक महत्व का पक्का कुआं है । इस पर लिखा है कि इसका पानी पीने व स्नान करने से मोक्ष प्राप्त होता है । इसके दक्षिण पूर्वी कोने पर एक हंस मन्दिर नाम का स्थान है, जिसकी स्थापना जीर्णोद्धार सम्वत् १९२९ में जिला भागलपुर के शाहपुर सोनवरसा के निवासी क्षत्रिय जमीनदार ठाकुर प्रसाद जी ने साधुत्व धारण करने के बाद की थी । यह स्थान हठ योगियों के लिए विशेष महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसके द्वारा मानव शरीर के आन्तरिक रूप का दर्शन कराया गया है । इस तीर्थ का आकार पान के समान है । इसको सहस्त्रदल कमल भी कहते हैं । योगियों के मुक्ति हेतु निराकार योगाभ्यास समझाने के लिए हंसतीर्थ में योग की सारी क्रियाएं साकार रूप में दर्शायी गयी हैं । ऐसा मन्दिर अन्यत्र कहीं भी नहीं है । विशेष विवरण और चित्रों के लिये **प्रयाग प्रदीप** पृ० २६८ देखें । इस मन्दिर पर सत्यम् क्रियायोग द्वारा कब्जा कर लिया गया है और मन्दिर के अधिकांश भाग को तोड़ दिया है । यात्रियों का आना-जाना निषिद्ध है ।

हंसतीर्थ मन्दिर - प्रतिष्ठान पुरी झूसी का किनारा उर्वशी-पुलिन के नाम से प्रसिद्ध है यहीं पर हंसप्रपतन नाम का तीर्थ भी है । हंसप्रपतन का शाब्दिक अर्थ है कि हंसों के उतरने का, रहने का स्थान । आज से ४० वर्ष पूर्व तक इस हंसप्रपतन गंगा के झूसी क्षेत्र में सर्दियों के मौसम में हंसों के जोड़े आया करते थे । आबादी और कोलाहल के कारण इनका आना इस समय बन्द हो गया । हंसप्रपतन, हंसतीर्थ और

उर्वशी-पुलिन, उर्वशी कुण्ड ये सभी तीर्थ प्रतिष्ठानपुरी झूसी, गंगा के किनारे के आस-पास के तीर्थ स्थान सत्यम् क्रियायोग के कब्जे में हैं और अवैध निर्माणों से भरे हुये हैं । प्रशासन द्वारा अवैध निर्माण हटाकर तीर्थों का उद्धार किया जाना बहुत आवश्यक है । जिससे मेले का फैलाव और तीर्थयात्रियों को सुविधा के साथ ही धार्मिक स्थलों के दर्शन, आवास का पुण्य प्राप्त हो सके । यह पवित्र स्थल प्रतिष्ठानपुरी के उत्तर एवं गङ्गा के पूर्व स्थित है। यह एक महत्वपूर्ण तीर्थ है। कई पुराणों में भी इसका माहात्म्य पूर्ण उल्लेख मिलता है।

प्रतिष्ठानपुर झूसी, सन्ध्यावट - प्रतिष्ठानपुरी (झूसी) - झूसी बहुत ही पुरानी नगरी है । आधुनिक खनन वेत्ताओं के अनुसार झूसी का इतिहास छः हजार से १२ हजार वर्ष प्राचीन है । यह प्रतिष्ठानपुरी झूसी हड्प्पा, मोहनजोदड़ो, संस्कृति से भी प्राचीन है । प्रतिष्ठानपुरी (झूसी) का नाम और माहात्म्य शास्त्रों में प्रयागराज के समानान्तर प्राप्त होता है । चन्द्रवंशीय राजा पुरूरवा-उर्वशी (अप्सरा) की राजधानी यहीं पर थी। महाकवि कालिदास प्रतिष्ठानपुरी का उल्लेख करते हैं । महाभारत में वन पर्व के अनुसार यह प्रजापति ब्रह्मा की एक वेदी के अन्तर्गत है । यहाँ राजा ययाति की राजधानी थी, यहाँ गालव और गरुड आये थे । विष्णु पुराण के अनुसार यहाँ पहले राजा मनु का अधिकार था मुनि वशिष्ठ के कहने पर मनु ने सुद्युम्न को प्रतिष्ठान नामक नगर दे दिया । सुद्युम्न ने पुरुरवा को दिया ।

इस समय प्रतिष्ठानपुरी झूसी के नाम से जानी जाती है, यहाँ प्राचीन गौरव के अवशेष अभी भी देखे जा सकते हैं । समुद्रकूप के पास आज भी प्राचीन किले का अवशेष प्राप्त होता है । सैकड़ों वर्ष पूर्व ही इस किले को खजाने और बहुमूल्य वस्तुओं के लालच में एक-एक इञ्च खोद-खोद कर खण्डहर कर दिया गया था, ईंट-पत्थर उठाकर लोग ले गये । किले का भाग पुरातत्त्व मंत्रालय भारत सरकार के अधीन है । यह किला गंगा और यमुना के संगम की ओर दक्षिण-पश्चिम दिशा की तरफ मुंह किये हुये है । यदि इस किले पर चढ़कर दाहिनी तरफ छः किलोमीटर और बाँयी तरफ छः किलोमीटर देखेंगे तो जमीन का धनुष की तरह ढ़ाल वाली दिखेगी । यह किला वर्तमान में भी संगम के जलस्तर से लगभग २०० फीट ऊँचा है । कहने का तात्पर्य यह है कि गंगा-यमुना की बाढ़ को रोकने के लिये लगभग १०० किलोमीटर स्क्वायरफीट मिट्टी का भराव करके प्रतिष्ठानपुरी नगर को सुरक्षा दी गई थी । मिट्टी के भराव के चिह्न गंगा किनारे खड़े होकर देखने से समझ में आ सकते हैं।

यह प्रसिद्धि है कि गंगा-यमुना के बीच, पाट में सम्राट् अकबर के द्वारा बनाये गये सैकड़ों एकड़ क्षेत्रफल के किले का भराव और उठान झूसी के ही मलबे से किया गया था । प्राचीन और नवीन झूसी के मध्य हंसकूप नामक पवित्र कूप है । यह पवित्र कूप तीर्थयात्रियों की आस्था का केन्द्र है । प्राचीन समय यात्री स्नान और पीने का जल प्राप्त करते थे । हंसकूप के पूर्व संध्यावट है तथा द्वादश माधवों में संकष्टहर माधव का मन्दिर भी १५ वर्ष पूर्व तक था, जिसके छायाचित्र कल्याण के तीर्थाङ्क पृ० १७५ पर प्राप्त है । भगवान् संकष्टहर माधव के मन्दिर को सत्यम् क्रियायोग द्वारा तोड़ दिया गया

है, सत्यम् क्रियायोग की रजिस्ट्री में ''एक मन्दिर'' का उल्लेख है। प्रतिष्ठानपुरी झूसी के मुख्य तीर्थों में गंगा का किनारा- उर्वशी-पुलिन, हंसकूप, संध्यावट, उर्वशी-ह्रद, हंसप्रपतन, समुद्रकूप आदि प्रसिद्ध हैं।

किला स्थल दर्शनीय है।

संध्यावट का बहुत बड़ा हिस्सा और इसकी जड़ों को सत्यम् क्रियायोग द्वारा काट दिया गया था। इस ऐतिहासिक-पौराणिक हंसतीर्थ मन्दिर पर सत्यम् क्रियायोग द्वारा २०१५ में अवैध रूप से कब्जा कर हंसतीर्थ मन्दिर और इस मन्दिर के अन्दर के कूप को तहस-नहस कर दिया है। संध्यावट, हंसमन्दिर आदि में तीर्थयात्रियों के निवास और दर्शन पर रोक लगा दी गई है।

परमानन्द आश्रम ट्रस्ट -

श्री स्वामी नरोत्तमानन्द गिरि वेद विद्यालय -

गंगेश्वर संस्कृत उत्तर माध्यमिक विद्यालय -

झूसी स्थित श्री परमानन्द आश्रम लगभग २५० वर्ष पुराना आश्रम है। यह झूसी का सबसे प्राचीन स्थान है। यहाँ भगवान् श्री गंगेश्वर महादेव, वेणीमाधव, दुर्गा जी के भव्य मन्दिर हैं। यह संस्था अपने स्थापना काल से ही लगातार संस्कृत, वेद, वेदान्त, भारतीय संस्कृति, धर्म आदि के प्रचार-प्रसार में लगी हुई है। इस आश्रम में उच्च कोटि का श्री स्वामी नरोत्तमानन्द गिरि वेद विद्यालय एवं गंगेश्वर संस्कृत उत्तर माध्यमिक विद्यालय चलता है। आने-जाने वालों सन्त-महात्मा, भिक्षुक, यात्रियों के लिये अन्नक्षेत्र की व्यवस्था रहती है। यह आश्रम भारतवर्ष के प्राचीनतम आश्रमों में गिना जाता है जो सैकड़ों वर्ष से अपनी परम्परा को निभाते चले आ रहे है। आश्रम का परिसर लगभग ५ एकड़ में फैला हुआ है, आश्रम को देखते ही प्रसन्नता का अनुभव होता है, चारों ओर बड़े-बड़े पेड़ और हरियाली छायी हुई है, आश्रम की ओर से पशु-पक्षियों के विकास पर विशेष दृष्टि रखी जाती है, सैकड़ों-हजारों पक्षियों को कलरव आश्रम में गूँजता रहता है। अमर शहीद चन्द्रशेखर आजाद, छद्म वेश और सन्त वेश में आश्रम में अपने साथियों के साथ रह चुके हैं। राष्ट्रिय स्वतंत्रता आन्दोलन से सम्बन्धित गतिविधियाँ भी आश्रम में बनी रहती थी।

आश्रम में उपलब्ध साक्ष्यों से एवं **प्रयाग प्रदीप** पुस्तक (प्रकाशक- हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद) के पृ० २६८ विवरण से ज्ञात होता है कि लगभग १५० वर्ष पूर्व बाबा गंगागिरि जी जो सिंध के रहने वाले थे, पहले पंजाब की ओर कहीं तहसीलदार अथवा किसी रियासत के दीवान थे। गदर (सन् १८५७ की क्रान्ति) के बाद साधु होकर यहाँ चले आए और इस जगह एक छोटी सी कुटी बना कर रहने लगे। बाबा गंगागिरि की वेदान्त पर एक पुस्तक **'ज्ञानकथारहस्य'** सन् १८५८ ई में छपकर प्रकाशित हुई थी। फिर इसमें बहुत सी नई-नई इमारतें स्वामी परमानन्द गिरि जी के समय में बनीं। स्वामी जी बड़े सज्जन महात्मा और वेदांत के सिद्ध-अच्छे पण्डित थे, उनके एक काश्मीरी

शिष्य पण्डित कर्ताकिशुन उनको काशी से झूसी-प्रयागराज लिवा लाए थे । सन् १९३१ में बहुत ही वृद्धावस्था में उनका देहांत हुआ है । स्वामी परमानन्द गिरि जी अपने समय के बड़े प्रसिद्ध सन्त थे आस-पास के राजा-महाराजा उनके दर्शनार्थ में आश्रम आते थे, इलाहाबाद हाई कोर्ट के वकील एवं नगर के लोग शनिवार के दिन सत्संग में आश्रम आते थे । शायद श्री स्वामी परमानन्द गिरि जी कश्मीर के रहने वाले थे क्योंकि श्री मोतीलाल जी नेहरू एवं उनके परिवार के लोग, श्री कैलाशनाथ काट्जू, सर तेज बहादुर सप्रू एवं अन्य कश्मीर के वरिष्ठ लोग आश्रम में प्राय: आते रहते थे । श्री स्वामी परमानन्द गिरि जी के ब्रह्मलीन होने के बाद उनके शिष्य श्री स्वामी नित्यानन्द गिरि जी ने आश्रम के कार्यभार को सम्भाला, इनके ब्रह्मलीन होने पर ब्रह्मचारी श्री प्रकाशानन्द जी ने कार्य सम्भाला, ब्रह्मचारी जी के ब्रह्मलीन होने पर श्री निरञ्जनी अखाड़े के आचार्य ब्रह्मलीन १०८ श्री नृसिंहगिरि जी के आदेश से बाघम्बरीगद्दी के महन्त श्री १०८ ब्रह्मलीन विचार गिरि जी महाराज ने इसकी व्यवस्था की, भारतवर्ष के प्रसिद्ध सन्त निरञ्जनी अखाड़े के आचार्य महामण्डलेश्वर ब्रह्मलीन श्री १०८ स्वामी नृरसिंह गिरि जी श्री दक्षिणामूर्ति मठ-वाराणसी के शिष्य श्री स्वामी नरोत्तमानन्द गिरि जी महाराज जो कि ज्योतिष एवं धर्मशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान थे, इन्होंने अपने गुरुदेव के आदेश से आश्रम के कार्यभार को सम्भाला, उसी परम्परा में वर्तमान में श्री स्वामी शारदानन्द गिरि जी महाराज आश्रम के अध्यक्ष हैं । आश्रम में सैकड़ों लोगों एवं वेद-संस्कृत के छात्रों की चहल-पहल बनी रहती है एवं अन्य कार्यक्रम भी चलते रहते हैं । कुम्भ एवं माघमेले में आये हुये सन्त-महात्मा, यात्रियों की अभूतपूर्व सेवा की जाती है एवं आश्रम के सभी दरवाजे एवं मार्ग चौबीस घंटे खुले रहते हैं ।

श्री मौनी आश्रम - शास्त्री पुल झूसी गंगा जी के किनारे ब्रह्म बाबा पीपल के पेड़ के पास श्री मौनी आश्रम स्थित है । इसके पीपल के पेड़ पर भूत-प्रेत उतारने के लिये घन्टा बांधा जाता है । भूत-प्रेतों की बाधा शान्त हो जाती है । इसमे सन्त-महात्मा, संस्कृत-वेद के छात्र एवं संस्कृत के विद्वान् निवास करते हैं। यह अत्यन्त प्राचीन आश्रम है और श्री परमानन्द आश्रम ट्रस्ट झूसी द्वारा ही इसका भी संचालन होता है । इस आश्रम का विकास काशी से गये हुये सन्त ब्रह्मलीन श्री स्वामी ज्ञानानन्द जी महाराज के समय पर हुआ । स्वामी ज्ञानानन्द जी वेदान्त आदि शास्त्रों के अच्छे विद्वान् थे, इन्होंने आश्रमवास करते हुये लम्बे समय तक मौन व्रत धारण कर किया था जिससे स्वामी जी मौनी बाबा और आश्रम मौनी आश्रम के नाम से प्रसिद्ध हो गया, वैसे इस आश्रम का नाम शारदामठ है । वर्तमान में श्री मौनी आश्रम के अध्यक्ष एवं महंत श्री स्वामी शारदानन्द गिरि जी महाराज हैं । इस आश्रम से कुम्भ का भव्य दृश्य दिखाई देता है ।

श्री योगानन्द आश्रम- श्रीतीर्थराज संन्यासी संस्कृत पाठशाला - प्रयागप्रदीप इलाहाबाद के विवरण के अनुसार- यह स्थान झूसी रेलवे पुल से बिल्कुल मिला हुआ है । पहले इस जगह स्वामी माधवानन्द जी की एक छोटी सी कुटिया थी । सन् १९०९ में रेलवे लाइन निकलने पर उनके शिष्य स्वामी योगानन्द जी ने धीरे-धीरे बहुत सी पक्की इमारतें बनाईं, जो बिल्कुल गंगा के तट पर होने से बहुत

ही रमणीक मालूम होती है । सन् १९१३ में उन्होंने इस स्थान में पहले विशेषकर नवयुवक साधुओं की शिक्षा के लिए एक पाठशााला स्थापित की और उनके रहने तथा खाने-पीने का भी उचित प्रबंध किया, परन्तु अब इसमें संस्कृत छात्र ही अधिक पढ़ते हैं । यहाँ आगंतुक साधुओं को भोजन भी दिया जाता है । वर्तमान में आश्रम में सभी सुविधायें उपलब्ध हैं, आश्रम का संचालन उत्तम अवस्था में है। वर्तमान में आश्रम के महन्त श्री स्वामी चिद्घनानन्द गिरि जी महाराज हैं ।

श्री दण्डी आश्रम - प्रयाग प्रदीप इलाहाबाद के अनुसार- श्री योगानन्द आश्रम के ठीक पास में ही उत्तर की ओर एक और पक्का बड़ा आश्रम नया बना है । जिसको तेरह हजार रुपये की लागत से सन् १९३३ ई० में मैनपुरी निवासी पण्डित हीरालाल चौबे ने दंडी साधुओं के लिए बनवाया है । चौबे जी रेलवे में स्टेशन मास्टर थे । विश्राम लेकर इसी स्थान में वानप्रस्थ का जीवन व्यतीत करने लगे । वर्तमान में यह आश्रम पूज्यपाद पुरीपीठाधीश्वर शंकराचार्य श्री १०८ स्वामी निश्चलानन्द जी महाराज के अधीन है ।

श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी आश्रम - झूसी गंगा के किनारे श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी आश्रम संकीर्तन भवन के नाम से प्रसिद्ध है इस आश्रम की स्थापना प्रसिद्ध सन्त प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी महाराज द्वारा की गई थी, ब्रह्मचारी जी बड़े यशस्वी और तेजस्वी सन्त थे, प्रसिद्ध गोहत्या आन्दोलन इन्हीं के नेतृत्व में किया गया था । गौ, गंगा, गायत्री, भगवान् कृष्ण, राधा जी एवं सनातन धर्म की सभी परम्पराओं के प्रति इनमें बड़ा मान-भाव था । तीर्थयात्रा और हरिसंकीर्तन से इनका बड़ा लगाव था । सनातन धर्म के विरोध में एक शब्द भी सुनना इनको पसन्द नहीं था । ब्रह्मचारी जी हिन्दी भाषा के ओजस्वी और आशु कवि थे । श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थों का इन्होंने कविता में अनुवाद किया है । आश्रम का परिसर बहुत बड़ा है इस परिसर में संकीर्तन भवन संस्कृत महाविद्यालय, बी०एड० कालेज आदि गतिविधियाँ चलती हैं । आश्रम की व्यवस्था सुचारु है, वर्तमान में श्री १०८ रामानुज जी महाराज आश्रम के महंत एवं अध्यक्ष हैं ।

श्री रामलोचन ब्रह्मचारी आश्रम - श्री रामलोचन स्वरूप ब्रह्मचारी आश्रम झूसी प्रयागराज की स्थापना सन् १९९५ ई० में श्री रामलोचन स्वरूप ब्रह्मचारी द्वारा की गई है । इस आश्रम का द्वितीय पंजीकृत नाम श्री नर्मदेश्वर धाम गौरीशंकर संस्थान दण्डी आश्रम ट्रस्ट है । जिसकी स्थापना सन् २००२ में ब्रह्मचारी जी द्वारा की गई। सन् २००२ से ही यहाँ पर संस्था के द्वारा श्रीविष्णुदेव वेद पाठशाला भी संचालित है । इस विद्यालय में शुक्ल यजुर्वेद एवं आधुनिक विषय की पढ़ाई होती है । छात्रों का भरण-पोषण, दण्डी, साधु-सन्त आदि की आवास, भोजन की समुचित व्यवस्था है । ट्रस्ट के अध्यक्ष श्री काशीनाथ पाण्डेय उपाध्यक्ष- श्री कपिलमुनि करवरिया हैं । संस्था के प्रथम महन्त श्री रामलोचन जी, द्वितीय महन्त श्री दिगम्बर स्वरूप ब्रह्मचारी जी, वर्तमान महन्त एवं संस्था के संचालक श्री सर्वेश स्वरूप ब्रह्मचारी जी हैं । इनके द्वारा सन् २०१२ से प्रत्येक वर्ष गायत्री महायज्ञ का आयोजन तथा

जनता तथा दण्डी स्वामियों को भोजन एवं अन्य आवश्यक वस्तुओं का वितरण किया जाता है । यहाँ पर नर्मदेश्वर धाम नामक शिव मन्दिर है, आश्रम दर्शनीय है ।

श्री हरिचैतन्य आश्रम - यह एक प्राचीन आश्रम है दण्डी स्वामियों का मुख्य आवास स्थान है ।

सतुवा बाबा आश्रम - श्री सतुवा बाबा काशी के सिद्ध सन्त थे, देश-विदेश में उनके अपार शिष्य हैं । प्रयागराज गङ्गा किनारे झूसी में यह आश्रम है, वर्तमान में अध्यक्ष एवं संचालक श्री संतोष दास जी महाराज हैं।

चौवनफुट के हनुमान् जी - सद्‌गृहस्थ सन्त श्री परमानन्द जी महाराज द्वारा स्थापित ५४ फीट के हनुमान् जी की मूर्ति एवं १११ शिवलिङ्ग स्थापित हैं ।

श्री राधाकृष्ण वेद विद्यालय - झूसी स्थित श्री राधाकृष्ण वेदविद्यालय की स्थापना सन् २०१४ में हुई थी । वेद विद्यालय में शुक्ल यजुर्वेद एवं ऋग्वेद की पढाई होती है । इस वेद विद्यालय के संस्थापक श्री ईश्वर चन्द्र अग्रवाल जो सुप्रीम कोर्ट के वरिष्ठ अधिवक्ता हैं । वेद विद्यालय के प्रांगण में श्री राधाकृष्ण भगवान् की ११५ वर्ष पुराना मन्दिर और मूर्ति स्थापित है ।

तिवारी जी का शिवाला - गङ्गा जी के किनारे झूसी में तिवारी जी का शिवाला के नाम से प्राचीन प्रसिद्ध शिव मन्दिर है । यह मन्दिर मिर्जापुरी पत्थरों से सुन्दर नक्काशी द्वारा बनाया गया है ।

छतनाग - प्रयाग में त्रिवेणी संगम से गङ्गा पार होकर गङ्गा किनारे पर लगभग छः मील चलने पर छतनगा (शङ्खमाधव) से चार मील दूर ककरा ग्राम पड़ता है । यहाँ दुर्वासा मुनि का मन्दिर है। श्रावण में मेला लगता है ।

दुर्वासा आश्रम - गङ्गा जी के पास ककरा, दुबावल (हनुमानगंज क्षेत्र-प्रयागराज) में महर्षि दुर्वासा की तपस्थली एवं प्रसिद्ध शिव मन्दिर है । शिवरात्रि को विशाल मेला लगता है । दुर्वासा आश्रम के पास में ही प्राचीन ऐरन्डी देवी धाम भी है । मन्दिर दर्शनीय है ।

इफ्को खाद कारखाना- यह इलाहाबाद से लगभग ३८ किमी० की दूरी पर इलाहाबाद जौनपुर मार्ग पर फूलपुर तहसील के पूर्व भारतवर्ष का प्रसिद्ध रासायनिक खाद बनाने का कारखाना है । यहां से भारत के सम्पूर्ण प्रान्तों में रासायनिक खाद की आपूर्ति की जाती है । तथा प्रान्तों से किसानों का चयन कर उन्हें कृषि संबंधी प्रशिक्षण भी दिया जाता है ।

●

दर्शनीय स्थान आस-पास - १५

सीता समाहित स्थल - यह मन्दिर श्री संत रविदास नगर, भदोही में स्थित है । यह मन्दिर इलाहाबाद एवं वाराणसी हाइवे के मध्य जंगीगंज के बाजार से ११ किलोमीटर गङ्गा किनारे स्थित है । मान्यता है कि इसी स्थान पर माता सीता ने अपने आप को धरती में समाहित कर लिया था । यहाँ पर हनुमान् जी की ११० फीट ऊँची विशाल मूर्ति है जिसे विश्व की सबसे बड़ी हनुमान् मूर्ति होने का गौरव प्राप्त है। स्वामी जितेन्द्रानन्द जी के असीम प्रयास से एवं उद्योगपति श्री प्रकाशनारायण पुंज जी के सहयोग से यह स्थान तीर्थ स्थान और पर्यटक स्थल के रूप में उभर कर आया है ।

विन्ध्याचल - इलाहाबाद से लगभग ८० किमी० दूर मिर्जापुर जनपद से पांच किमी० पहले विन्ध्याचल कस्बे मे विन्ध्यवासिनी देवी का मन्दिर गङ्गा जी के तट पर स्थित है । अपने विशिष्ट महत्व के कारण आस्थावान् जनों के लिए यह प्राचीन काल से ही श्रद्धा का केन्द्र रहा है । चैत्र एवं आश्विन मास में पड़ने वाले नवरात्र पर्वो पर यहां देश-प्रदेश के विभिन्न अंचलों से लाखों की संख्या में दर्शनार्थी आते हैं । यहां पर अन्य दर्शनीय स्थल भी हैं । यह सिद्ध शक्तिपीठ है ।

तारकेश्वरनाथ मन्दिर - यह मन्दिर मिर्जापुर नगर में ही कचेहरी के पास स्थित है । देवी पुराण में इसका उल्लेख है । कहा गया है कि महालक्ष्मी जी ने भगवान् विष्णु से तारकेश्वरनाथ का माहात्म्य सुनकर यही तपस्या की । घनघोर तपस्या के बाद भी जब भगवान् शंकर प्रकट नहीं हुए तो महामाया ने तारकेश्वर के उत्तर में एक कुण्ड खोदा जो बाद में लक्ष्मीकुण्ड के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

गेरूआ, मोतिया तालाब - यह स्थान १४ किमी० दूर विन्ध्य पर्वत पर स्थित है । यहाँ एक प्राचीन मन्दिर में भगवान् श्री कृष्ण की मूर्ति स्थापित है । मन्दिर के निकट गेरूआ रंग की मिट्टी मिलते है एवं एक सुन्दर जलाशय भी है । गेरुआ तालाब से २ किमी० पश्चिम की ओर विन्ध्यपर्वत के वातावरण में मोतिया तालाब स्थित है । यहां स्थित भगवान् शंकर एवं हनुमान जी का प्राचीन मन्दिर है। इस स्थान का प्रमुख आकर्षण एक सुन्दर जलाशय है जो दो भागों में विभक्त है ।

अष्टभुजा मन्दिर - यह मन्दिर विन्ध्यवासिनी देवी मन्दिर से मात्र ३किमी० दूरी पर विन्ध्यपर्वत पर स्थित है। अष्टभुजा देवी के मन्दिर के बारे में कहा जाता है कि जब यशोदा के गर्भ से पैदा हुई कन्या को कंस ने मारने के उद्देश्य से उठाकर भूमि पर पटकना चाहा तो बालिका उसके हाथ से छूटकर आकाश मार्ग को चली गयी, बाद में अष्टभुजा पर्वत पर शक्ति के रूप में अवतरित हुई ।

सीताकुण्ड - अष्टभुजा मन्दिर के पास एक जल स्रोत है जिसका जल एक कुण्ड में एकत्रित होता है। मान्यता है कि इसी स्थान पर सीता जी ने स्नान किया था, इसीलिए इसका नाम सीताकुण्ड पड़ा ।

कालीखोह - यह मिर्जापुर से लगभग १५ किमी० दूर विन्ध्यपर्वत माला में काली जी का भव्य मन्दिर है । माँ काली के रूप में चंडी, चामुंडा आदि नामों से पूजा अर्चना की जाती है ।

विन्ध्याचल के आस-पास के दर्शनीय स्थल - विन्ध्येश्वर मन्दिर, लाल भैरव, काल भैरव, कुमुद हनुमान्, कामाख्या देवी क्षेत्रपाल, चितवा खोह, लाल भट्ट की बावली, एक दंत गणेश, सप्त सरोवर, प्रताप भान के किले का टीला रूपी अवशेष, शिव खोह, भ्रामरी, विरोधिनी, वीर भद्र, संकट मोचन हनुमान्, रावण की तपस्थली, साक्षी गोपाल मन्दिर, शेषशाही विष्णु, बंगाली बाबा की समाधि, पातालपुरी का सिद्ध काली मन्दिर, एकादश रुद्र मन्दिर, भैरव कुण्ड, मत्स्येन्द्र कुण्ड, गोरक्ष कुण्ड, रामेश्वर महादेव मन्दिर, माँ आनन्दमयी आश्रम, रामजानकी मन्दिर, श्मशान तारा, अक्षोभ्य शिव मन्दिर, संकटा देवी मन्दिर, शीतला देवी मन्दिर आदि हैं ।

चित्रकूट

यह इलाहाबाद से लगभग १३० किमी० दूर चित्रकूट (कर्वी) जिले में मंदाकिनी नदी के किनारे चित्रकूट धाम के नाम से प्रसिद्ध है। १४ वर्ष के वनवास के समय भगवान् राम यहां पर सीता जी एवं लक्ष्मण के साथ अत्रि मुनि एवं सती अनुसुइया से मिलने आये थे । महान् धार्मिक ग्रन्थ श्रीरामचरित मानस के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने जीवन का काफी समय यही पर भगवान् राम की चरणधूल में बिताया था । यहां के प्राकृतिक सौन्दर्य के बारे में उन्होने अनेकों रचनायें की थी । भगवान् राम ने यहाँ पर निवास किया था । स्थान दर्शनीय और मनोहर है ।

कामदगिरि - यह एक पवित्र धार्मिक पहाड़ी है । यह खड़ीढाल पहाड़ी होने के नाते इस पहाड़ी पर चढ़ना मुश्किल है । इसकी परिक्रमा करने के लिए एक पक्की सड़क का निर्माण किया गया है। परिक्रमा के रास्ते पर छोटी-छोटी मन्दिर है जिनमें हनुमान् जी का मन्दिर, साक्षी गोपाल का मन्दिर, लक्ष्मी नारायण जी का मन्दिर प्रमुख हैं । जानकी कुण्ड, स्फटिकशिला एवं चरणपादुका चित्रकूट के प्रमुख स्थान हैं । कामतानाथ परिक्रमा के रास्ते में भगवान् श्रीराम के चरण चिह्न आज भी मौजूद हैं। यह वहीं स्थान है जहां पर रामचन्द्र जी अपने छोटे भाई भरत से मिले थे और उन्हें गले से लगा लिया था यह स्थान राम-भरत मिलाप के नाम से प्रसिद्ध हुआ । लक्ष्मण पहाड़ पर लक्ष्मण जी का मन्दिर स्थित है । यह मन्दिर उस स्थान पर बनाया गया है जहां पर राम-सीता की रक्षा हेतु लक्ष्मण जी खड़े थे ।

अनसूया-अत्रि आश्रम - स्फटिक शिला से ४ किमी० की दूरी पर सती अनुसुइया और अत्रिमुनि का आश्रम है जो चारों तरफ से घने जंगल से घिरा हुआ है । यहाँ की शांति जंगली जानवरों की आवाजों से टूटती है । आश्रम में सती अनुसुइया, अत्रिमुनि, दत्तात्रेय एवं दुर्वासा ऋषि की प्रतिमायें हैं ।

गुप्त गोदावरी - एक प्राकृति आश्चर्य जनक गुप्त गोदावरी गुफा अनुसुइया-अत्रिमुनि आश्रम से १० किमी० की दूरी पर स्थित है । गुफा के अन्दर एक तालाब है। जिसमें एक छोटी नदी से पानी आता है । इसे सीताकुण्ड के नाम से जाना जाता है ।

मरफा - गुप्त गोदावरी से ४ किमी० की दूरी पर है जो अपने प्राकृतिक सौन्दर्य, जल प्रपात, जल

मोचन सरोवर, श्री बालाजी मन्दिर, पंचमुखी शिवलिंग एवं किले के खंडहर के लिए प्रसिद्ध है । ऐसा विश्वास है कि चन्देल राजाओं ने इसे बनवाया था ।

भरतकूप - यदि चित्रकूट भ्रमण के दौरान इस पवित्र धार्मिक स्थान भरतकूप का दर्शन न किया जाये तो यात्रा अधूरी रह जाती है । कहा जाता है कि भगवान् राम के राजतिलक के लिए उनके भाई भरत जी ने सभी पवित्र नदियों से जल एकत्र किया था जिसे महर्षि अत्रि के कहने पर एक गहरे कुएं में डाला गया था वही कुआं आज भरत कूप के नाम से प्रसिद्ध है ।

जानकी कुण्ड - यह कुण्ड मंदाकिनी नदी के किनारे स्थित है । मान्यता है कि जानकी जी रोज सुबह इसी कुण्ड में स्नान करती थीं ।

स्फटिकशिला - जानकी कुण्ड से १.५ मील की दूरी पर स्फटिक शिला है । यहीं पर भगवान् राम और माता सीता बैठकर चारों तरफ के सौन्दर्य को निहारा करते थे ।

सीतापुर - यह कर्वी से ८ किमी० दूर मंदाकिनी नदी के किनारे स्थित है। यह कामतानाथ पहाड़ी से जुड़ा हुआ है । तीर्थयात्री पहले मंदाकिनी नदी में सीतापुर में स्नान करते हैं, तत्पश्चात् कामतानाथ पहाड़ी की परिक्रमा के लिए जाते हैं । इसका वास्तविक नाम जयसिंहपुर है, जिसे पन्ना के राजा अमनसिंह ने महन्त चरणदास को दिया था, जिन्होंने बाद में माँ सीता के नाम पर इसका नाम सीतापुर रखा । यहां पर मंदाकिनी नदी के किनारे २४ घाट एवं अनेकों मन्दिर निर्मित हैं ।

अयोध्या

यह इलाहाबाद से लगभग १६५ किमी० दूर फैजाबाद जनपद में सरयू नदी के किनारे बसा हुआ है । अयोध्या देवताओं द्वारा निर्मित पूज्यनीय स्थल है । सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र, राजा सगर, राजा भगीरथ, राजा रघु एवं राजा दशरथ यहीं के राजा थे । भगवान् राम का जन्म भी यहीं पर हुआ था, भगवान् राम के पिता राजा दशरथ थे । महर्षि वाल्मीकि ने इस स्थान के महत्व पर ही रामायण की रचना की थी । बृहद्बल यहीं के राजा थे जो महाभारत के दौरान मारे गये थे । यहाँ पर अनेक धर्मों जैसे- हिन्दू, जैन, बौद्ध, इस्लाम से संबन्धित प्रमाण पाये जाने से इस स्थान की पवित्रता बढ़ जाती है, यह स्थान विश्व के प्राचीनतम स्थानों में आता है ।

रामकोट - रामकोट अयोध्या का एक विशेष धार्मिक स्थल है जो शहर के पश्चिमी भाग में स्थित है। रामनवमी के दिन यहां पर सम्पूर्ण भारत से श्रद्धालुगण आते हैं और विशेष आयोजन किये जाते हैं।

हनुमानगढ़ी - टाउन के मध्य में ७६ सीढ़ियों की ऊँचाई का हनुमान् गढ़ी मन्दिर है । पुराणों में कहा गया है कि हनुमान् जी यहां एक गुफा में रहते हैं और जन्मभूमि की रक्षा करते हैं । मुख्य मन्दिर में मां अंजनी की गोद में बैठे हनुमान् जी की मूर्ति है । मान्यता है कि यहां पर एक बार दर्शन करने से मनोकामना पूरी होती है ।

त्रेता के ठाकुर - यह मन्दिर उस स्थान पर बना है जहां राम ने अश्वमेध यज्ञ किया था। लगभग ३०० साल पहले कुल्लू के राजा ने एक नये मन्दिर का निर्माण करवाया था जिसका १७८४ में अहिल्याबाई होलकर द्वारा जीर्णाद्धार करवाया गया था।

नागेश्वरनाथ का मन्दिर - कहा जाता है कि भगवान् राम के पुत्र कुश ने इस मन्दिर का निर्माण करवाया था। यहां पर शिवरात्रि का पर्व बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता है।

कनक भवन - कहा जाता है कि रानी कैकेयी ने सीता जी के लिए एक महल बनवाया था जो कनक भवन के नाम से प्रसिद्ध है।

मणि पर्वत - यह ६५ फिट ऊंचा खड़ा पर्वत है। कथानुसार लक्ष्मण जी को जब शक्ति लगी थी तो हनुमान् जी संजीवनी बूटी लाने के लिए गये संजीवनी बुटी न पहचान पाने के कारण पूरा पर्वत लेकर लंका की ओर आ रहे थे उसी पर्वत का एक भाग टूटकर अयोध्या में गिर पड़ा जो आज मणि पर्वत के नाम से जाना जाता है।

तुलसी चौरा - गोस्वामी तुलसी दास जी से तुलसी चौरे का सम्बन्ध बताया जाता है। इसी के पास गोस्वामी तुलसीदास की स्मृति में तुलसी स्मारक भवन का निर्माण करवाया गया जिसका प्रयोग प्रार्थना सभा, गीत, भजन गायन हेतु होता है। १९८८ में यहीं पर रामकथा म्यूजियम का निर्माण करवाया गया। अयोध्या शोध संस्थान द्वारा एकत्र साहित्यिक पुस्तकें यहां उपलब्ध हैं।

रामजन्म स्थली - भगवान् रामचन्द्र जी की मूर्ति की स्थापना। पूजा-अर्चना, दर्शन होते हैं।

अन्य दर्शनीय स्थल - यहाँ पर जैन तीर्थंकर भगवान् देव की ९ मीटर विशाल प्रतिमा है। यह अजितनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ, अनन्तनाथ आदि की जन्मभूमि है।

प्रमुख घाट एवं कुण्ड - गुप्तघाट, राजघाट, रामघाट, लक्ष्मण घाट, जानकी घाट, नया घाट एवं सीताकुण्ड, विष्णुकुण्ड, ब्रह्मकुण्ड, विद्याकुण्ड आदि प्रमुख हैं।

कौशाम्बी

यहां राजाओं की राजधानी थी यह इलाहाबाद से ६५ किमी० लगभग दक्षिण पश्चिम यमुना नदी के उत्तरी तट पर स्थित है इसका उपनाम कोसम है। पुराणों में यह महापुरी के नाम से विख्यात है। पाणिनि के सूत्र, महाभाष्य में इसका उल्लेख है। मत्स्य व हरिवंश पुराण में भी इसका नाम है। संस्कृत के प्रख्यात विद्वान आचार्य कात्यायन ऋषि का जन्म इसी जगह हुआ था कहा जाता है कि इसे राजा कुश ने बसाया था इसलिए इसका नाम कौशाम्बी पड़ा। यह चन्द्रवंशी नरेशों मे पुरुरवा के दसवीं पीढ़ी में हुए थे। कहा जाता है कि पांडवों ने अपने १३ वर्ष वनवास के दौरान यहीं रहे थे। यहाँ आज भी एक अशोक स्तम्भ है जिसका एक सिरा टूटा पड़ा है। बौद्ध काल में यह विशाल नगर था गौतम बुद्ध ने अपने साधु जीवन में छठां और नवां वर्ष यहीं व्यतीत किया था। चीनी यात्री फाह्यान व ह्वेनसांग दोनों ही इस स्थान को देखने आए थे। भगवान् बुद्ध ने यहां उपदेश दिया था। उनकी यात्रा की याद

में यहां २ विहार (मठ) बनाए गये थे जो खण्डहर के रूप में यहाँ आज भी मौजूद हैं । सम्राट् अशोक ने यहाँ अशोक स्तम्भ स्थापित किये ।

प्रभाष गिरि (प्रभोसा)

इलाहाबाद से लगभग ५० किमी० दूर व कौशाम्बी से ५ किमी० दूर सराय अकिल तहसील में यमुनानदी के किनारे मनोहर स्थान है । इस पहाड़ी से छठवें तीर्थकर परमप्रभु ने यहाँ पर तप कर ज्ञान प्राप्त किया । यह कौशाम्बी नगरी की वनस्थली है । अब यहां कांच के सुन्दर मन्दिर का निर्माण हुआ है, इस पहाड़ी में एक हजारों वर्ष प्राचीन गुफा प्राप्त हुई है जिस पर ब्राह्मीलिपि के हजारों वर्ष प्राचीन लेख प्राप्त हुये हैं एवं प्राचीन प्रतिमाएं भी ऊकेरी हुई है । यहाँ पर हर पूर्णिमा को विशाल मेला लगता है ।

कड़ा (कौशाम्बी)

यह इलाहाबाद जिले से लगभग ७० किमी० दूर खागा के पास गंगा नदी के तट पर स्थित है। अलाउद्दीन तुर्की कड़ा प्रान्त का सूबेदार था । खिलजी ने घोड़े और पैदल की डाक व्यवस्था पहली बार बनायी थी । इसी के पास शीतला धाम है । पास में गंगा नदी भी बहती है, यहां नवरात्रि में मेला लगता है । यहीं कन्नौज के अन्तिम राजा जयचन्द का किला है । सन्त मलूक दास भी यहीं पैदा हुए थे । इसका पुराना नाम काल नगर है, क्योंकि यहां कालेश्वर महादेव का मन्दिर है । कहा जाता है कि यहां सती का एक हाथ गिरा था । शीलताधाम सिद्धपीठ स्थान है । प्रसिद्ध मुसलमान यात्री इब्नबनूता जो सन् १३४० ई. में यहां आया था, अपने यात्रा में हिन्दुओं के एक तीर्थ स्थान का वर्णन किया है। वर्तमान बस्ती से कुछ दूर गंगा के किनारे एक पुराने दुर्ग का टीला आज भी है जो नीचे की भूमि से ९० फिट ऊंची है । यह जयचन्द का किला है, यहीं उसके साम्राज्य की पूर्वी उप राजधानी थी ।

वाराणसी

इलाहाबाद से लगभग १३० किमी० दूर गंगा नदी के किनारे बसा हुआ वाराणसी या बनारस विश्व का प्राचीनतम शहर है । वरुणा और अस्सी नदी दोनों नदियों के बीच का स्थान ही वाराणसी या काशी के नाम से प्रसिद्ध है । सूर्य की पहली किरण वाराणसी के गंगा घाट पर ही पड़ती है और गङ्गा जी कुछ मिनट के लिये सुनहरी रंग की हो जाती है । प्रातःकाल की सुनहरी गङ्गा का दर्शन करने के लिये हजारों देश-विदेश के श्रद्धालु-सैलानी आते हैं । यह नगर कभी सोता नहीं है । पौराणिक कथाओं के अनुसार काशी ही वह वास्तविक नगर है जो शिव-पार्वती के द्वारा बनाया गया है और भगवान् शंकर के त्रिशूल पर स्थित है, इस नगर के अधिपति भगवान् शंकर ही हैं, जब महाराजा हरिश्चन्द्र ने महर्षि विश्वामित्र को भूमण्डल दान कर दिया तो राजा हरिश्चन्द्र सपत्नीक काशी में ही रहने के लिये आये थे । इस कथा का सार यह है कि ये राजा हरिश्चन्द्र को सभी भूमि को दान करने का अधिकार प्राप्त

था, काशी का दान विश्वनाथ जी की नगरी होने से नहीं किया जा सकता था । इसीलिये महाराजा हरिश्चन्द्र ने यहीं वास किया । काशी अपनी भीड़, चहल-पहल, ज्ञान-विज्ञान, संस्कृत भाषा की राजधानी, विद्वानों की नगरी, सिद्ध सन्तों का स्थान, सैकड़ों वर्ष प्राचीन मठ-मन्दिरों, कई विश्वविद्यालयों, गङ्गा जी, भगवान् विश्वनाथ एवं अन्य सैकड़ों मन्दिरों के कारण प्रसिद्ध है । यह नगर व्यापार का एवं उद्योग का भी प्रसिद्ध केन्द्र है । यहाँ की हस्तकला और वस्त्र विश्व प्रसिद्ध हैं । वाराणसी में हजारों विदेशी मेहमान अध्ययन करते हैं । विदेशी यात्रियों, पर्यटकों की भीड़ लगी रहती है । वाराणसी में प्रतिदिन एक लाख से ऊपर यात्रियों का आना-जाना लगा रहता है । वाराणसी में भारतवर्ष के सभी प्रान्तों के निवासी निवास करते हैं । वाराणसी नगर गङ्गा जी के किनारे धनुष् के आकार में बसा हुआ शहर है । गङ्गा जी के सौन्दर्य और घाटों के सौन्दर्य को नौका द्वारा अवश्य देखना चाहिये । यहाँ की घाटों पर होने वाली गङ्गा आरती प्रसिद्ध है ।

दुर्गा मन्दिर - १८वीं शताब्दी में नागर शैली में शक्ति की देवी मां दुर्गा के मन्दिर का निर्माण किया गया था । यह वाराणसी का एक प्रमुख मन्दिर है ।

काशी विश्वनाथ मन्दिर - सोने से मढ़े हुए काशी विश्वनाथ मन्दिर का १७७६ ई०पू० में इंदौर की रानी अहिल्या बाई होल्कर ने जीर्णोद्धार करवाया था । जिसमें शिवलिङ्ग स्थापित है । १८३५ ई० पू० में पंजाब के महाराजा रणजीत सिंह द्वारा दान में दिये गये सोने से इस मन्दिर को मढ़ा गया । इसे स्वर्ण मन्दिर के नाम से भी जाना जाता है । काशी शिव पार्वती की प्रिय नगरी रही है। धार्मिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से इस स्थान का विशेष महत्व है । यहां पर श्रद्धालु पतित पावनी गंगा में स्नान कर काशी विश्वनाथ मन्दिर में दर्शन करते हैं और मनोकामना पूर्ण हेतु श्रद्धा पूर्वक पंचकोसी परिक्रमा करते हैं जो मणिकर्णिका घाट, कर्दमेश्वर, भीमचण्डी, रामेश्वर, शिवपुर, कपिलधारा आदि प्रमुख स्थानों से होकर पूरी होती है । विश्वनाथ लेन में ही मां अन्नपूर्णा और ढुण्डिराज गणेश जी का मन्दिर है । विश्वनाथ मन्दिर के बगल में औरंगजेब द्वारा निर्मित ज्ञानव्यापी मस्जिद भी स्थित है ।

भारत माता मन्दिर - यहां पर भारत माता का एक मानचित्र बना है जो बाहर से संगमरमर से ढका है।

तुलसीमानस मन्दिर - सन् १९६४ में कलकत्ता के धनी-मानी सेठ सुरेका जी ने इसका निर्माण करवाया गया था । इस मन्दिर के उद्घाटन कार्यक्रम में तत्कालीन उपराष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन् आये थे । इस मन्दिर में भगवान् राम की भव्य प्रतिमा है । इस मन्दिर में श्री रामचरित मानस पत्थरों पर उकेरी गयी है । यह मन्दिर वाराणसी के प्रसिद्ध दर्शनीय स्थानों में है ।

नया काशी विश्वनाथ मन्दिर - यह भव्य मन्दिर काशी हिन्दु विश्वविद्यालय परिसर में स्थित है । इसका शिखर भारतवर्ष के मन्दिरों में सबसे ऊँचा शिखर है । इस मन्दिर को धीरे-धीरे और शान्ति से देखना चाहिये । शिलालेखों को अवश्य पढ़ें, मन्दिर की दूसरी मन्जिल पर एक शिलालेख प्राप्त होगा, जिसमें लिखा है कि वैद्यराज ने प्राचीन भारतीय रसायन विद्या के द्वारा सभी के सामने शुद्ध स्वर्ण बनाकर

विश्वविद्यालय को दान किया ।

आलमगिर गुम्बद - गङ्गा के किनारे पंचगङ्गा घाट के पास भगवान् वेणीमाधव का विश्वप्रसिद्ध मन्दिर था । सम्राट् औरंगजेब द्वारा निर्मित आलमगिर गुम्बद यहीं पर स्थित है । यह स्थान वेणीमाधव का धरोहरा के नाम से प्रसिद्ध है, यहाँ से गङ्गा जी का एवं घाटों का भव्य दृश्य देखकर बहुत लोगों को चक्कर आने लगता है ।

जैन मन्दिर - वाराणसी में गङ्गा किनारे, भेलूपुर, मैदागिन, सारनाथ आदि स्थानों में प्रसिद्ध प्राचीन जैन मन्दिर है । वाराणसी छह तीर्थंकरों की जन्म स्थली है ।

प्रमुख घाट - वाराणसी घाटों का नगर है, यहाँ पर आठ किलोमीटर तक कुल चौरासी घाट हैं । जिसमें प्रमुख घाट - पंच गंगा घाट, मणिकर्णिका घाट, दशाश्वमेध घाट, केदार घाट, हरिश्चन्द्र घाट, भदैनी घाट, शिवाला घाट एवं अस्सी घाट आदि प्रमुख घाट हैं ।

अन्य दर्शनीय स्थल - संकट मोचन मन्दिर, केदारेश्वर महादेव मन्दिर, तिलभाण्डेश्वर मन्दिर, फटे महादेव का मन्दिर, मृत्युञ्जय महादेव मन्दिर, ललिता घाट आदि हैं ।

विशेष - वाराणसी पर सभी भाषाओं में विशाल साहित्य उपलब्ध है ।

सारनाथ

यह स्थान भगवान् गौतम बुद्ध की तपस्थली, प्रवचन स्थली रही है । यह वाराणसी का उप नगर है । यहाँ पर हजारों वर्ष प्राचीन स्मारक, खण्डहर हैं । भारतीय मुद्रा पर छपा हुआ चतुर्मुख सिंह की पाषाण की वास्तविक प्रति सारनाथ संग्रहालय में ही रखी हुयी है । यहीं पर भगवान् बुद्ध ने अपना पहला उपदेश दिया था । जिसे महाधर्म चक्र प्रवर्तन के नाम से जाना जाता है । सारनाथ बौद्धों के लिए एक प्रमुख स्थान है । सम्राट् अशोक के द्वारा धर्मराजिका स्तूप का निर्माण यही पर करवाया गया था। इसी के पास अशोक की लाट स्थित है । जिसे भारत का राष्ट्रीय चिन्ह माना गया है। यहां पर मूल-गंधकुटी, धमेख स्तूप, चौखण्डी स्तूप तथा बौद्ध धर्म सोसाइटी का मूलगंध कुटी विहार मन्दिर आदि स्थान हैं एवं यहाँ पर एक राष्ट्रिय संग्रहालय भी है ।

सारंगनाथ मन्दिर - वाराणसी से लगभग १५ किमी० दूरी पर सरनाथ में भगवान् शिव का मन्दिर है जो सारंगनाथ मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है, इसी कारण इस स्थान का नाम सारनाथ हुआ ।

●

अखाड़ों के शाही स्नान - १६

सम्वत् २०७५, सन् २०१९

षड्दर्शन अखाड़ों की धर्मध्वजा का पूजन -

०१. श्री पंचदशनाम जूना अखाड़ा	धर्मध्वजा पूजन - २०-१२-२०१८
०२. श्री अग्नि अखाड़ा	धर्मध्वजा पूजन - २०-१२-२०१८
०३. श्री पंचदशनाम आवाहन अखाड़ा	धर्मध्वजा पूजन - २६-१२-२०१८
०४. श्री पंच अटल अखाड़ा	धर्मध्वजा पूजन - २७-१२-२०१८
०५. श्री निर्वाणी अखाड़ा	धर्मध्वजा पूजन - २७-१२-२०१८
०६. श्री पंचायती निरञ्जनी अखाड़ा	धर्मध्वजा पूजन - २८-१२-२०१८
०७. श्री आनन्द अखाड़ा	धर्मध्वजा पूजन - २८-१२-२०१८
०८. श्री नया उदासीन अखाड़ा	धर्मध्वजा पूजन - ०९-०१-२०१९
०९. श्री बड़ा उदासीन अखाड़ा	धर्मध्वजा पूजन - १२-०१-२०१९
१०. श्री निर्मल अखाड़ा	धर्मध्वजा पूजन - १४-०१-२०१९
११. श्री दिगम्बर अखाड़ा	
१२. श्री निर्वाणी अखाड़ा	
१३. श्री निर्मोही अखाड़ा	

षड्दर्शन अखाड़ों की पेशवाई/छावनी प्रवेश -

०१. श्री पंचदशनाम जूना अखाड़ा	पेशवाई - २५-१२-२०१८
०२. श्री अग्नि अखाड़ा	पेशवाई - २५-१२-२०१८
०३. श्री पंचदशनाम आवाहन अखाड़ा	पेशवाई - २७-१२-२०१८
०४. श्री निर्वाणी अखाड़ा	पेशवाई - ०१-०१-२०१९
०५. श्री पंचायती निरञ्जनी अखाड़ा	पेशवाई - ०२-०१-२०१९
०६. श्री पंच अटल अखाड़ा	पेशवाई - ०३-०१-२०१९
०७. श्री आनन्द अखाड़ा	पेशवाई - ०३-०१-२०१९
०८. श्री नया उदासीन अखाड़ा	पेशवाई - १०-०१-२०१९
०९. श्री बड़ा उदासीन अखाड़ा	पेशवाई - ११-०१-२०१९
१०. श्री निर्मल अखाड़ा	पेशवाई - १३-०१-२०१९
११. श्री दिगम्बर अखाड़ा	
१२. श्री निर्वाणी अखाड़ा	
१३. श्री निर्मोही अखाड़ा	

अखाड़ों के शाही स्नान -

प्रयागराज-प्रथम शाही स्नान - मकर संक्रान्ति, १५ जनवरी- २०१९ दिन- मंगलवार
विक्रमाब्द - २०७५, पौष शुक्ल नवमी

द्वितीय शाही स्नान - मौनी अमावस्या, ०४ फरवरी- २०१९ दिन- सोमवार
विक्रमाब्द - २०७५, माघी मौनी सोमवती अमावस्या

तृतीय शाही स्नान - वसंत पंचमी, १० फरवरी- २०१९ दिन- रविवार
विक्रमाब्द - २०७५, माघ शुक्ल पंचमी

- भारतवर्ष में उपर्युक्त प्रसिद्ध तेरह अखाड़ों से जुड़े हुये अन्य बहुत से अखाड़े और आश्रम हैं । इन अखाड़ों के अतिरिक्त वैदिक सनातन धर्म की परम्परा को मानने वाले स्वतंत्र साधु-सन्त, विरक्त, फक्कड़, मनमुखी सन्त भी हैं । ये सभी किसी न किसी तरीके से अखाड़ों से जुड़े रहते हैं एवं अन्य धर्मों के सन्त-महात्माओं का आगमन भी कुम्भ में होता है । कुम्भपर्व में आने के लिये किसी को भी मना नहीं किया जाता है । शाही कुम्भ स्नान से तात्पर्य उपर्युक्त तेरह अखाड़ों से है । शाही स्नान प्रात:काल तीन बजे के बाद आरम्भ हो जाता है और लगभग रात्रि को बारह बजे तक यह स्नान चलता रहता है । सभी अखाड़ों का स्नान के लिये जाने और आने का मार्ग तथा स्नान का समय निश्चित रहता है, अखाड़ों के मार्ग में शाही स्नान के दिन आम जनता का प्रवेश निषिद्ध है । कृपया इस मार्ग में आने-जाने का कष्ट न करें अन्यथा नुकसान की सम्भावना रहेगी । शाही स्नान के मार्ग के दोनों तरफ जनता के लिये दर्शन की व्यवस्था रहती है । संगम स्थल पर अखाड़ों के शाही स्नान के लिये अलग से घाट बनाया जाता है जो लगभग ७००फीट लंबा होता है । इस घाट पर भी शाही स्नान के दिन आम जनता का आना और स्नान करना निषिद्ध है । आम जनता को संगम में स्नान के लिये लगभग आधा किलोमीटर का घाट उपलब्ध कराया जाता है, इस घाट पर किसी भी समय आम जनता स्नान कर सकती है ।

कृपया ध्यान दें -

०१- तृतीय शाही स्नान वसंत पंचमी के बाद सन्त-महात्माओं की बड़ी संख्या, छावनी / डेरा वाराणसी में लगता है । शिवरात्रि को जूना, आवाहन, अग्नि अखाड़े शाही जुलूस के साथ भगवान् विश्वनाथ जी का दर्शन करने जाते हैं । वसंत पंचमी के बाद सन्त-महात्माओं के धार्मिक आयोजन, पंचक्रोशी परिक्रमा आदि पूर्ण किये जाते हैं ।

०२- अखाड़ों के छावनी प्रवेश के समय आवागमन बन्द हो जाता है ।

०३- शाही स्नान के समय एवं स्नान पर्वों पर भी आवागमन बन्द हो जाता है ।

०४- शाही स्नान के एक दिन पूर्व से कुम्भमेला क्षेत्र के मार्गों पर मोटर-गाड़ी दिखाई नहीं देना चाहिये । सभी प्रकार के वाहनों का गमन-आगमन (Entry Pass / Permission होने पर) भी बन्द हो जाता है ।

०५- शाही स्नान के दिन मेलाक्षेत्र में आने के लिये, शाही स्नान से दो दिन पूर्व ही वाहन द्वारा मेलाक्षेत्र में पहुँच जायें, अन्यथा किसी भी तरह से मेलाक्षेत्र में वाहन का प्रवेश नहीं हो पायेगा।

०६- शाही स्नान देखने के लिये, शाही स्नान की पूर्व सन्ध्या पर मेलाक्षेत्र में पहुँच जायें ।

०७- शाही स्नान के एक या दो दिन पूर्व से ही मेलाक्षेत्र में आने वाले वाहनों को मेलाक्षेत्र से ५, १०, १५ या २० किलोमीटर दूर से ही प्रतिबन्धित कर दिया जायेगा या अन्य मार्गों पर मोड़ दिया जायेगा ।

०८- मुख्य शाही स्नान के समय मेलाक्षेत्र में अत्यन्त वृद्ध, रोगी, विकलाङ्ग या शारीरिक रूप से कमजोर लोगों को न लायें ।

०९- **गोद के शिशुओं / बालकों को कुम्भ मेलाक्षेत्र में न लायें ।**

१०- सोने-चाँदी, ज्वेलरी आदि कीमती वस्तुओं का उपयोग मेलाक्षेत्र में न करें ।

११- मुख्य शाही स्नान एवं अन्य स्नान पर्वों पर संगम क्षेत्र से दूर रहने वाले यात्रियों को कम से कम ६ से २० किलोमीटर पैदल चलना होगा ।

१२- **प्रयागराज का माघमास में मौसम-** गङ्गा और यमुना के मध्य और इनके किनारों पर खुले में टेन्ट/छावनी लगाकर प्रयागराज का कुम्भपर्व मनाया जाता है, यह उत्सव लगभग चालीस दिन चलता है । यदि दिन में बादल नहीं हैं तो अच्छी धूप निकलती है और मौसम सुहाना और गर्म रहता है । रात्रि के समय बहुत अच्छी ठण्ड हो जाती है । माघमास में बरसात और कोहरा भी हो जाता है । रात्रि का तापमान तीन से सात डिग्री सेल्सियस रहता है, कड़ाके की ठण्ड होती है ।

●

प्रयागाष्टकम्

राजा यथा कोशगजादि दत्ते संसेव्यमानो निजसेवकानाम् ।
तथा प्रयागः कुरुते स्वसेवकं नीचं हि सर्वोत्तममात्मतुल्यम् ।।

जिस प्रकार राजा अपने सेवको को प्रसन्न होकर खजाना हाथी आदि देता है उसी प्रकार प्रयाग भी अपने सेवक को भी अपने समान बनाकर सर्वोत्तम बना देता है ।

यत्रास्ति मोक्षोऽपि विनैव ज्ञानात् स्वर्गोऽपि वाञ्छां कुरुतेऽप्यहर्निशम्।
नीचोऽपि यत्रोच्चपदं प्रयाति स तीर्थराजो जयति प्रयागः ।।

जहाँ बिना ज्ञान के मोक्ष होता है, स्वर्ग भी जहाँ के लिये इच्छा करता है, निम्न भी जहाँ ऊँचा पद पाता है वह तीर्थराज प्रयाग श्रेष्ठ है ।

यं प्राप्तुकामोऽखिलकामदाता चिन्तामणिर्वाञ्छति वासमत्र ।
समीहते कल्पतरुर्मनोगतं स तीर्थराजो जयति प्रयागः ।।

जनता की अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाला चिन्तामणि जहाँ वास करने की अभिलाषा करता

है और कल्पवृक्ष भी मनोरथ सिद्धि की इच्छा जिससे करता है, वह तीर्थराज प्रयाग श्रेष्ठ है ।

यं सेवितुं जह्नुसुता समागता कलिंदकन्याऽपि तथा यमस्वसा ।
सरस्वती चाक्षयकल्पपादपः स तीर्थराजो जयति प्रयागः ।।

जिसकी सेवा करने के लिये गंगा और यमुना आयी सरस्वती और अक्षयवट आये वह तीर्थराज प्रयाग सबसे श्रेष्ठ है ।

यत्रावगाहात्सुरलोकवासः कैलासवासो विधिलोकवासः ।
वैकुण्ठवासश्च निजेच्छया भवेत् स तीर्थराजो जयति प्रयागः ।।

जहां स्नान करने से मनुष्य देव लोक कैलाश ब्रह्मलोक तथा वैकुण्ठ में अपनी इच्छा के अनुसार रह सकता है वह तीर्थराज प्रयाग सबसे श्रेष्ठ है ।

यत्रोभये कूलपतत्रिणोऽपि भागीरथीभानुजयोर्विवासात् ।
सारूप्यमुक्तिं दधते नराः किं स तीर्थराजो जयति प्रयागः ।।

जहाँ यमुना और गंगा के दोनों तीरों पर रहने वाले पक्षी भी सारूप्य मुक्ति पाते हैं वहाँ मनुष्यों की तो बात ही क्या, वह तीर्थराज सब से श्रेष्ठ है ।।

यत्र प्रयातुं विधिविष्णुलोकयोस्तत्सेवकानां विहिता विधात्रा ।
वेणीसु निश्रेणिरिवाविभाति स तीर्थराजो जयति प्रयागः ।।

ब्रह्मा और विष्णु के भक्तों को ब्रह्मलोक और विष्णुलोक जाने के लिये मानो कि ब्रह्मा ने वेणी को सीढी बनाया है वह तीर्थराज प्रयाग सबसे श्रेष्ठ है ।

यात्रात्मभूकेशवशंकराद्या हित्वा स्वलोकान्निवसन्ति नित्यम् ।
स्त्रीभिः समेता ददतोऽर्थिकामान् स तीर्थराजो जयति प्रयागः ।।

जहाँ अपने अपने लोकों को छोड़ कर ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि रहते हैं और अपनी-अपनी स्त्रियों के साथ अर्थियों की इच्छा पूर्ण करते हैं, वह तीर्थराज प्रयाग सब से श्रेष्ठ है ।

यत्र त्रिलोकीगतजीवसंघा वाञ्छन्ति माघं परमादरेण ।
स्नानेन कामो मरणेन मुक्तिं स तीर्थराजो जयति प्रयागः ।।

तीनों लोको के रहने वाले प्राणी जहां माघ मास की बड़े आदर से प्रतीक्षा करतें हैं । जहाँ स्नान करने से मनोरथ सिद्ध और मृत्यु से मुक्ति प्राप्त होती है वह तीर्थराज सबसे श्रेष्ठ है ।

दुर्लभं यत्फलं सर्वं त्रैलोक्ये सचराचरे । त्रिवेणी तत्फलं स्वस्मिन् ददाति स्नानमात्रतः।।

चराचर त्रिलोक में जो फल दुर्लभ है वह फल केवल स्नान करने से ही त्रिवेणी देती है ।

(प्रयागशताध्यायी अ० १००)

श्रीगङ्गास्तोत्रम्

देवि सुरेश्वरि भगवति गङ्गे त्रिभुवनतारिणि तरलतरङ्गे ।
शङ्करमौलिविहारिणि विमले मम मतिरास्तां तव पदकमले।।१।।
भागीरथि सुखदायिनि मातस्तव जलमहिमा निगमे ख्यातः ।
नाहं जाने तव महिमानं पाहि कृपामयि मामज्ञानम् ।।२।।
हरिपदपाद्यतरङ्गिणि गङ्गे हिमविधुमुक्ताधवलतरङ्गे ।
दूरीकुरु मम दुष्कृतिभारं कुरु कृपया भवसागरपारम् ।।३।।
तव जलममलं येन निपीतं परमपदं खलु तेन गृहीतम् ।
मातर्गङ्गे त्वयि यो भक्तः किल तं द्रष्टुं न यमः शक्तः ।।४।।
पतितोद्धारिणि जाह्नवि गङ्गे खण्डितगिरिवरमण्डितभङ्गे ।
भीष्मजननि हे मुनिवरकन्ये पतितनिवारिणि त्रिभुवनधन्ये ।।५।
कल्पलतामिव फलदां लोके प्रणमति यस्त्वां न पतति शोके ।
पारावारविहारिणि गङ्गे विमुखयुवतिकृततरलापाङ्गे ।।६।।
तव चेन्मातः स्रोतःस्नातः पुनरपि जठरे सोऽपि न जातः ।
नरकनिवारिणि जाह्नवि गङ्गे कलुषविनाशिनि महिमोत्तुङ्गे ।।७।।
पुनरसदङ्गे पुण्यतरङ्गे जय जय जाह्नवि करुणापाङ्गे ।
इन्द्रमुकुटमणिराजितचरणे सुखदे शुभदे भृत्यशरण्ये ।।८।।
रोगं शोकं तापं पापं हर मे भगवति कुमतिकलापम् ।
त्रिभुवनसारे वसुधाहारे त्वमसि गतिर्मम खलु संसारे ।।९।।
अलकानन्दे परमानन्दे कुरु करुणामयि कातरवन्द्ये ।
तव तटनिकटे यस्य निवासः खलु वैकुण्ठे तस्य निवासः।।१०।।
वरमिह नीरे कमठो मीनः किं वा तीरे शरटः क्षीणः ।
अथवा श्वपचो मलिनो दीनस्तव न हि दूरे नृपतिकुलीनः ।।११।।
भो भुवनेश्वरि पुण्ये धन्ये देवि द्रवमयि मुनिवरकन्ये ।
गङ्गास्तवमिममलं नित्यं पठति नरो यः स जयति सत्यम्।।१२।।
येषां हृदये गङ्गाभक्तिस्तेषां भवति सदा सुखमुक्तिः ।
मधुराकान्तापज्झटिकाभिः परमानन्दकलितललिताभिः ।।१३।।
गङ्गास्तोत्रमिदं भवसारं वाञ्छितफलदं विमलं सारम् ।
शङ्करसेवकशङ्कररचितं पठति सुखी स्तव इति च समाप्तः।।१४।।

।। इति श्रीमत्परमहंसश्रीशङ्कराचार्यविरचितं गङ्गास्तोत्रं सम्पूर्णम् ।।

हे देवि गङ्गे ! तुम देवगण की ईश्वरी हो, हे भगवति ! तुम त्रिभुवन को तारने वाली, विमल और तरल तरङ्गमयी तथा शङ्कर के मस्तक पर विहार करने वाली हो ! हे मातः ! तुम्हारे चरणकमलों में मेरी मति लगी रहे ।१। हे भागरथि ! तुम सब प्राणियों को सुख देती हो, हे मातः ! वेद-शास्त्र में तुम्हारे जल का माहात्म्य वर्णित है, मैं तुम्हारी महिमा कुछ नहीं जानता, हे दयामयि ! मुझ अज्ञानीकी रक्षा करो !२। हे गङ्गे!

तुम श्रीहरि के चरणों की चरणोदकमयी नदी हो, हे देवि ! तुम्हारी तरङ्गे हिम, चन्द्रमा और मोती की भाँति श्वेत हैं, तुम मेरे पापों का भार दूर कर दो और कृपा करके मुझे भवसागर के पार उतारो ।३। हे देवि! जिसने तुम्हारा जल पी लिया, अवश्य ही उसने परमपद पा लिया, हे मातः गङ्गे! जो तुम्हारी भक्ति करता है, उसको यमराज नहीं देख सकता अर्थात् तुम्हारे भक्तगण यमपूरी में न जाकर वैकण्ठ में जाते हैं ।।४। हे पतितजनों का उद्धार करने वाली जह्नुकुमारी गङ्गे! तुम्हारी तरङ्गे गिरिराज हिमालय को खण्डित करके बहती हुई सुशोभित होती है, तुम भीष्म की जननी और जह्नुमुनिकी कन्या हो, पतितपावनी होने के कारण तुम त्रिभुवन में धन्य हो ।५। हे मात:! तुम इस लोक में कल्पलता की भाँति फल प्रदान करने वाली हो, तुम्हे जो प्रणाम करता है, वह कभी शोक में नहीं पड़ता, हे गङ्गे! तुम समुद्र के साथ विहार करती हो और तुम्हारा चपल अपाङ्ग नेत्र-कोण विमुख वनिता की तरह चञ्चल है ।६। हे गङ्गे! जिसने तुम्हारे प्रवाह में स्नान कर लिया, वह फिर मातृगर्भ में प्रवेश नहीं करता, हे जाह्नवि! तुम भक्तों को नरक से बचाती हो और उनके पापों का नाश करती हो, तुम्हारा माहात्म्य अतीव उच्च है ।।७।। हे करुणाकटाक्षवाली जह्नुपुत्रि गङ्गे! मेरे अपावन अङ्गोंपर अपनी पावन तरङ्गों से युक्त हो उल्लसित होने वाली, तुम्हारी जय हो! जय हो! तुम्हारे चरण इन्द्र के मुकुट मणि से प्रदीप्त हैं, तुम सबको सुख और शुभ देने वाली हो और अपने सेवक को आश्रय प्रदान करती हो ।८। हे भगवति ! तुम मेरे रोग, शोक, ताप, पाप और कुमति-कलाप को हर लो, तुम त्रिभुवन की सार और वसुधा का हार हो, हे देवि! इस संसार में एकमात्र तुम्हीं मेरी गति हो ।९। हे दु:खियों की वन्दनीया देवि गङ्गे! तुम अलकापुरी को आनन्द देनेवाली और परमानन्दमयी हो, तुम मुझपर कृपा करो, हे मात:! जो तुम्हारे तट के निकट वास करता है, वह मानो वैकुण्ठ में ही वास करता है ।१०। हे देवि ! तुम्हारे जल में कच्छप या मीन बनकर रहना अच्छा है, तुम्हारे तीरपर दुबला-पतला गिरगिट (कृकलास) बनकर रहना अच्छा है या अति मलिन दीन चाण्डालकुल में जन्म ग्रहण कर रहना अच्छा है परन्तु तुम से दूर कुलीन नरपति होकर रहना भी अच्छा नहीं ।११। हे देवि ! तुम त्रिभुवन की ईश्वरी हो, तुम पावन और धन्य हो, जलमयी तथा मुनिवर की कन्या हो । जो प्रतिदिन इस गङ्गास्तव का पाठ करता है, वह निश्चय ही संसार में जयलाभ कर सकता है ।१२। जिनके हृदय में गङ्गा के प्रति अचला भक्ति है, वे सदा ही आनन्द और मुक्ति लाभ करते हैं, यह स्तुति परमानन्दमयी सुललित पदावली से युक्त, मधुर और कमनीय है ।।१३।। इस असार संसार में उक्त गङ्गास्तव ही निर्मल सारवान् पदार्थ है, यह भक्तों को अभिलषित फल प्रदान करता है, शङ्कर के सेवक शङ्कराचार्यकृत इस स्तोत्र को जो पढ़ता है, वह सुखी होता है । इस प्रकार यह स्तोत्र समाप्त हुआ ।।

यमुनाष्टकम्

कृपापारावारां तपनतनयां तापशमनीं
मुरारिप्रेयस्यां भवभयदवां भक्तिवरदाम् ।।
वियज्जालोन्मुक्तां श्रियमपि सुखाप्तः प्रतिदिनं
सदा धीरो नूनं भजति यमुनां नित्यफलदाम् ।।१।।
मधुवनचारिणि भास्करवाहिनि जाह्नविसंगिनि सिंधुसुते
मधुरिपुभूषिणि माधवतोषिणि गोकुलभीतिविनाशकृते।
जगदघमोचनि मानसदायिनि केशवकेलिनि दानगते
जय यमुने जय भीतनिवारिणि सङ्कटनाशिनि पावय माम्।।२।।

अयि मधुरे मधुमोदविलासिनि शैलविदारिणि वेगभरे
परिजनपालिनि दुष्टनिषूदिनि वांछितकामविलासधरे ।।
व्रजपुरवासिजनार्जितपातकहारिणि विश्वजनोद्धरिके
जय यमुने जय भीतनिवारिणि सङ्कटनाशिनि पावय माम्।।३।।
अतिविपदम्बुधिमग्नजनं भवतापशताकुलमानसकं
गतिमतिहीनमशेषभया-कुलमागतपादसरोजयुगम् ।।
ॠणभयभीतिमनिष्कृतिपातककोटिशतायुतपुंजतरं
जय यमुने जय भीतनिवारिणि सङ्कटनाशिनि पावय माम्।।४।।
नवजलदद्युतिकोटिलसत्तनुहेममयाभररञ्जितके
तडिदवहेलिपदाञ्चलचञ्चलशोभितपीतसुचैलधरे ।।
मणिमयभूषणचित्रपटासनरञ्जितगञ्जितभानुकरे
जय यमुने जय भीतनिवारिणि सङ्कटनाशिनि पावय माम्।।५।।
शुभपुलिने मधुमत्तयदूद्भवरासमहोत्सवकेलिभरे
उच्चकुलाचलराजितमौक्तिकहारमयाभररोदसिके ।।
नवमणिकोटिकभास्करकञ्चुकिशोभिततारकहारयुते
जय यमुने जय भीतनिवारिणि सङ्कटनाशिनि पावय माम्।।६।।
करिवरमौक्तिकनासिकभूषणवातचमत्कृतचञ्चलके
मुखकमलामलसौरभचञ्चलमत्तमधुव्रतलोचनिके ।।
मणिगणकुण्डललोलपरिस्फुरदाकुलगण्डयुगामलके
जय यमुने जय भीतनिवारिणि सङ्कटनाशिनि पावय माम्।।७।।
कलरवनूपुरहेममयाचितपादसरोरुहसारुणिके
धिमिधिमिधिमिधिमितालविनोदितमानसमंजुलपादगते ।।
तव पदपङ्कजमाश्रितमानव-चित्तसदाखिलतापहरे
जय यमुने जय भीतनिवारिणि सङ्कटनाशिनि पावयमाम् ।।८।।
भवोत्तापाम्भोधौ निपतितजनो दुर्गतियुतो
यदि स्तौति प्रातः प्रतिदिनमनन्याश्रयतया ।
हयाह्रेषैः कामं करकुसुमपुंजैरविरतं
सदा भोक्ता भोगान्मरणसमये याति हरिताम् ।।९।।

।। इति श्रीमत्परमहंसश्रीशङ्कराचार्यविरचितं यमुनाष्टकं सम्पूर्णम् ।।

जो कृपाकी समुद्र, सूर्यकुमारी, ताप को शान्त करने वाली, श्रीकृष्णचन्द्र की प्रेमिका, संसार भीति के लिये दावानलस्वरूप भक्तों को वर देने वाली और आकाश जाल से मुक्त लक्ष्मीस्वरूपा हैं, उन नित्यफलदायनी यमुनाजी का धीर पुरुष सुख प्राप्ति के लिये निश्चय पूर्वक निरन्तर प्रतिदिन भजन करता है।१। हे मधुवन में विहार करने वाली! हे भास्करवाहिनि! हे गङ्गाजी की सहचारी! हे सिन्धुसुते! हे श्रीमधुसूदनविभूषिणि! हे माधवतृप्तिकारिणि! हे गोकुल का भय दूर करने वाली! हे जगत्पापविनाशिनि! हे

वञ्छितफलदायिनि! हे कृष्णकेलि की आश्रयभूता सकलभयनिवारिणी संकटनाशिनी यमुने! तुम्हारी जय हो! जय हो! तुम मुझे पवित्र करो ।२। अयि मधुरे! अयि मधुगन्धविलासिनि! हे पर्वतों में विहार करने वाली! परम वेगवती अपने तीरवर्ती भक्तजनों का पालन करने वाली, दुष्टों का संहार करने वाली, इच्छित कामनाओं की विलासभूमि, व्रजभूमिनिवासियों के अर्जित पापों को हरण करने वाली तथा सम्पूर्ण जीवों का उद्धार करने वाली, सकलभयनिवारिणी संकटनाशिनी यमुने! तुम्हारी जय हो! जय हो! तुम पवित्र मुझे पवित्र करो।३। जो महान् विपत्तिसागर में निमग्न हैं, सैकड़ों सांसारिक संतापों से जिसका मन व्याकुल है, जो गति-आश्रय और मति (विचार) से शून्य तथा सब प्रकार के भयों से व्याकुल है, जो ऋण और भय से दबा हुआ तथा सैकड़ों-हजारों-करोड़ों प्रतिकारशून्य पापों का पुतला है, तुम्हारे चरणकमलयुगल में प्राप्त हुए ऐसे मुझको, सकलभयनिवारिणी संकटनाशिनी यमुने! तुम्हारी जय हो! जय हो! तुम पवित्र मुझे पवित्र करो ।४। तुम्हारा शरीर करोड़ों नवीन मेघों की कान्ति से सुशोभित तथा सुवर्णमय आभूषणों से विभूषित है, जिसका चञ्चल अञ्चल चपलाकी भी अवहेलना करता है, ऐसे पीत दुकूल को धारण करके तुम परम शोभायमान हो रही हो तथा मणिमय आभूषण और चित्र-विचित्र वस्त्र एवं आसन से रञ्जित होकर तुमने सूर्य की किरणों को भी कुण्ठित कर दिया है, सकलभयनिवारिणी संकटनाशिनी यमुने ! तुम्हारी जय हो! जय हो! तुम पवित्र मुझे पवित्र करो ।५। हे सुन्दर तटोंवाली! हे मधुमत्त-यदुकुलोत्पन्न श्रीकृष्ण और बलरामके रासमहोत्सवकी क्रीडाभूमि! हे ऊँचे-ऊँचे कुलपर्वतों की श्रेणियोंपर शोभायमान मुक्तावलीरूप आभूषणों से पृथ्वी और आकाश को विभूषित करने वाली, हे करोड़ों भास्करों के समान नवीन मणियों की कञ्चुकी से सुशोभित तथा तारावलीरूप हारसे युक्त, सकलभयनिवारिणी संकटनाशिनी यमुने! तुम्हारी जय हो! जय हो! तुम पवित्र मुझे पवित्र करो ।६। तुम्हारी नासिका की भूषणरूप गजमुक्ता वायु से चञ्चल होकर झिलमिल रही है, तुम्हारे नेत्ररूप मतवाले भौंरे मानो मुखकमलकी सुवास से चञ्चल हो रहे हैं तथा दोनों अमल कपोल हिलते हुए मणिमय कुण्डलों की झलक से झिलमिला रहे हैं, सकलभयनिवारिणी संकटनाशिनी यमुने ! तुम्हारी जय हो! जय हो! तुम पवित्र मुझे पवित्र करो ।७। तुम्हारे अरुण चरणकमल सुवर्णमय नूपुरों के कलरव से युक्त हैं, तुम मनको प्रसन्न करने वाल 'धिमि धिमि'' स्वरमयी मनोहर गति से गमन करती हो, जो मनुष्य तुम्हारे चरणकमलों में चित्त लगाता है, तुम उसके सम्पूर्ण ताप हर लेती हो, सकलभयनिवारिणी संकटनाशिनी यमुने! तुम्हारी जय हो! जय हो! तुम पवित्र मुझे पवित्र करो ।८। जो मनुष्य संसार के सन्ताप समुद्र में डूबकर अत्यन्त दुर्गतिग्रस्त हो रहा है, वह यदि प्रतिदिन प्रात;काल अनन्य चित्त से (इस स्तोत्र द्वारा श्रीयमुनाजी की) स्तुति करेगा, वह यावज्जीवन घोड़ों की हिनहिनाहट तथा हाथों में पुष्पपुञ्ज से सुशोभित होकर, निरन्तर सम्पूर्ण भोगों को भोगेगा और मरने के समय भगवद्रूप हो जायेगा ।।९।।

●